राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 16 अंक 1, जनवरी–जून 2014**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

समाजशास्त्रीय सैद्वान्तिक परिप्रेक्ष्य में संरचनाकरण के सिद्वान्त की रूपरेखा एवं समीक्षा

❑ **प्रोफेसर श्यामधर सिंह**

समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत संरचनाकरण क्रियाओं एवं संरचनाओं दोनों के अतिरिक्त सामाजिक व्यवहारों के महत्त्व को शिनाख्त करता है। यह उन तरीकों का उल्लेख करता है जिसमें सामाजिक संरचना को व्यवहार के द्वारा उत्पादित, पुनरुत्पादित ओर रूपान्तरित किया जाता है। समकालीन सिद्धान्तकारों में गिडेन्स ही एक ऐसे सिद्धान्तकार हैं जिन्होंने संरचनाओं एवं व्यवस्थाओं को क्रिया (एजेन्सी) के साथ सम्मिश्रित करने का प्रयास किया है। यह कार्य उन्होंने एक अद्वितीय उपाय से किया है। उनका यह अद्वितीय उपाय संरचनाओं को क्रिया के आकस्मिक या अनैच्छिक परिणाम के रूप में उनकी उद्घोषणा है – जिसका प्रस्तुतीकरण उन्होंने संरचनाकरण के सिद्धान्त में किया है। गिडेन्स ने समाजशास्त्र में विद्यमान सिद्धान्तों, विशेषकर प्रकार्यवाद, मार्क्सवाद संरचनावाद, प्रघटनाशास्त्र, प्रतीकात्मक अन्तर्क्रियावाद एवं भूमिका सिद्धान्त के सैद्धान्तिक स्वरूपों पर प्रहार किया है। इन सिद्धान्तों की कमियों को दूर कर उन्होंने एक नव्य सिद्धान्त (संरचनाकरण के सिद्धान्त) की आधारशिला रखी। वस्तुतः संरचनाकरण की धारणा गिडेन्स द्वारा प्रतिपादित 'संरचना के द्वित्व' या द्वयात्मकता की अवधारणा से संबंधित है जिसमें संरचनाएं जहां एक ओर मानवीय क्रिया द्वारा प्रतिपादित की जाती हैं वहां दूसरी ओर वे सामाजिक क्रिया का माध्यम या साधन भी होती हैं।

समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत संरचनाकरण क्रियाओं एवं संरचनाओं दोनों के अतिरिक्त सामाजिक व्यवहारों के महत्त्व को शिनाख्त करता है। यह उन तरीकों का उल्लेख करता है जिसमें सामाजिक संरचना को व्यवहार के द्वारा उत्पादित, पुनरुत्पादित ओर रूपान्तरित किया जाता है।

संरचनाकरण गिडेन्स के समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य की बुनियादी अवधारणा है जिसके माध्यम से वे संसार में विद्यमान वस्तुओं के स्वरूपों को सुस्पष्ट करना चाहते हैं। संसार में यथार्थतः क्या हो रहा है, इसके बारे में गिडेन्स न तो कोई विकास के नियमों का सृजन करते हैं और न ही सुस्पष्ट प्राक्कल्पनाओं का सुझाव प्रस्तुत करते हैं। वे मात्र इतना ही कहना चाहते हैं कि जब हम समाज का अध्ययन करते हैं तब यह अवलोकित करते हैं कि वस्तुतः हम क्या देखते हैं न कि यह देखते हैं कि किस प्रकार एक विशिष्ट समाज कार्य करता है। गिडेन्स आधुनिक युग के बहुचर्चित समाजशास्त्रीय सिद्धान्तकारों की श्रेणी में सर्वाधिक प्रखर एवं उत्कृष्ट सिद्धान्तवेत्ता हैं। समाजशास्त्र के मूलतत्वों पर उनकी दृढ़ तथा गहरी पकड़ है। उनके परिप्रेक्ष्य का केन्द्रीय सार क्रिया, एजेन्सी और संरचना के सिद्धान्त को विकसित करना है और सामाजिक कर्त्ता की सामाजिक जानकारी को संरचनाकरण के सिद्धान्त के माध्यम से समृद्ध करना है। गिडेन्स आधुनिकता के परिणामों के सन्दर्भ में समाज के सिद्धान्त के रूप में उत्तर–आधुनिकता के छिद्रान्वेषी रहे हैं। अस्तु, उत्तर–आधुनिकता के विकल्प के रूप में उन्होंने समाज के विकास में एक निश्चित सोपान के रूप में आधुनिकता एवं उच्च आधुनिकता की परावर्तकता के विचार को बेहतर माना है। उनका कहना है कि 'स्व' के विकास में परावर्तकता महत्वपूर्ण है। किन्तु, उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि आज की आधुनिकता ने विकराल व भयानक रूप धारण कर लिया है जिसे उन्होंने जगरनॉट पद से सम्बोधित किया है, जिसका हैतुकीय कारण उन्होंने वैष्वीकरण के आविर्भाव को माना है। वैश्विक सर्वदेशीय समाज का आविर्भाव परम्परा को तोड़ता है, राष्ट्र को समाप्त करता है और उच्चस्तरीय वैयक्तिक चिन्ता की सृष्टि करता है।

अंथोनी गिडेन्स का जन्म इंग्लैण्ड के उत्तर लन्दन में सन् १९३८ में हुआ था। इन्होंने हल विश्वविद्यालय तथा लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से शिक्षा ग्रहण की। लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में (स्पोर्ट समाजशास्त्र) सोशियोलॉजी ऑफ स्पोर्ट पर मास्टर थीसिस का प्रणयन किया। इनका प्रथम अध्ययन कार्य लीसेस्टर विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड से आरम्भ हुआ, जहाँ उनका परिचय न्यूस्टैड एवं नार्बर्ट एलिमास से हुआ। तत्पश्चात् वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में किंग कॉलेज के फेलो के रूप में चले गये और अन्ततः समाजशास्त्र के प्रोफेसर बने। पुनः वे सान्ता बारबारा, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में समान पद पर नियुक्त हुए। इनकी प्रकाशित रचनाएँ लगभग बीस से ऊपर हैं। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभाओं में एक अन्य विलक्षणता यह है कि गिडेन्स, डेविड हेल्ड एवं जॉन थाम्पसन के साथ पॉलिटी प्रेस के संयुक्त संस्थापक रहे हैं जो सामाजिक विज्ञान

❑ निवर्तमान प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

का बहुत बड़ा प्रकाशन केन्द्र रहा है। गिडेन्स की एक बहुत महत्वपूर्ण उपलब्धि यह भी है कि ब्रिटिश एकेडमी की फेलोशिप के निमित्त मनोनीत किया गया। कथ्य है कि इस फेलोशिप से बहुत कम समाजशास्त्रियों को अलंकृत किया जाता है।

गिडेन्स मंजे हुए सिद्धान्तकार हैं। इनकी रचनाओं ने समाजशास्त्र को उत्कर्ष की चरम ऊँचाई पर पहुँचा दिया है। गिडेन्स ने पाण्डित्य अर्जित किया है। उनकी रचनाओं में विद्वता की गहरी तह में बैठकर गहरी छानबीन की उनकी क्षमता का परिचय मिलता है। यह निर्विवाद है कि गिडेन्स इस काल के या सम्पूर्ण आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ समाजशास्त्री सिद्धान्तकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं विशेषकर कैपिटलिज्म ऐण्ड माडर्न सोशल थीऑरि १६७१, पालिटिक्स ऐण्ड सोशियोलॉजी इन दि थॉट ऑफ मैक्स वेबर १६७२, इमाईल दुर्खीम १६७८, और सोशियोलॉजी १६८२ में क्रमशः शास्त्रीय समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों एवं शास्त्रीय समाजशास्त्रीय चिन्तकों तथा समाजशास्त्र के कलेवर की विस्तृत व्याख्या की है। उनकी कृति दि क्लास स्ट्रक्चर ऑफ दि एडवांस्ड सोसाइटिज १६७३, वर्ग विश्लेषण की परम्परागत समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। क्रिया, एजेन्सी एवं संरचनाकरण के सिद्धान्त की चर्चा उन्होंने न्यू रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड १६७६, स्टडिज इन सोशल ऐण्ड पॉलिटिकल थीऑरि १६७७, सेन्ट्रल प्राब्लम्स इन सोशल थीऑरि १६७६, प्रोफाइल्स ऐण्ड क्रिटिक्स इन सोशल थीऑरि, १६८३ एवं दि कांस्टिट्यूशन ऑफ सोसाइटी, १६८४ में की है। ऐतिहासिक भौतिकवाद की अनुदार आलोचना उन्होंने अपनी पुस्तक ए कन्टेम्पोररि क्रिटिक ऑफ हिस्टीरिकल मैटेरियलिज्म, १६८१ में की है। दि नेशन स्टेट ऐण्ड वायलेन्स, १६८५ में उन्होंने राज्य के विकास एवं सामाजिक सम्बन्धों पर अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों के प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत करने में समाजशास्त्र की असफलता को चित्रित किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने समाजशास्त्र की जमकर आलोचना की है। उनकी रचना

दि कान्सिक्वेन्सेज ऑफ मॉडर्निटी, १६६० आधुनिकता के परिणामों का सांगोपांग विवेचना करती है। उनकी एक अन्य रचना मॉडर्निटी ऐण्ड सेल्फ–आईडेन्टिटी, १६६१ के अन्तर्गत 'स्व' के विकास में परावर्तकता के महत्व का स्वर सुनायी पड़ता है। इसी तरह उन्होंने अपनी एक अन्य कृति दि ट्रान्सफारमेशन ऑफ इन्टिमेसी, १६६२ में मनोभावों के समाजशास्त्र का अन्वेषण किया है। उनकी वियोण्ड लेफ्ट ऐण्ड राईट १६६४, दि थर्ड वे १६६८, दि थर्ड वे ऐण्ड इट्स क्रिटिज २०००, दि ग्लोबल थर्ड वे डिवेट, २००१ और ह्वेअर नाउ फॉर न्यू लेबर, २००२ इत्यादि रचनाएँ उस युगीन राजनीतिक जीवन की बदलती प्रकृति को प्रतिबिम्बित करती हैं जब समाजवाद एवं अधिकार के राजनीतिक दर्शन अवनति व अस्तगमन की स्थिति में रहे।

सन् १६६६ में प्रकाशित उनकी पुस्तक रनअवे वर्ल्ड, १६६६ में परम्परा, परिवार एवं जनतन्त्र पर भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण के सामान्य एवं व्याधिग्रस्त प्रभावों का स्वर लक्षित होता है। उनका कहना है कि वैश्विक सर्वदेशीय समाज का आविर्भाव जहाँ एक ओर आर्थिक समृद्धता का स्वर है, वहाँ दूसरी ओर परम्परा को भंग करता है, राष्ट्र राज्यों को समाप्त करता है और वैयक्तिक चिन्ताओं को सृजित भी करता है। नवीन वैश्विक अर्थव्यवस्था आर्थिक असमानताओं को भी बनाये रखती है। इस प्रकार, गिडेन्स की रचनाओं में कई प्रकार की प्रवृत्तियों का संगम मिलता है। इनमें आधुनिकता एवं वैश्वीकरण के युग–बोध, वैयक्तिक सुख–दुःख, हर्ष–विषाद और आशा–निराशा के साथ सामाजिक विद्रोह तथा निम्न वर्ग का पीड़ा–बोध भी लक्षित होता है।

यहाँ हम यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण समझते हैं कि गिडेन्स का बौद्धिक पार्श्वचित्र, उनके संरचनाकरण एवं आधुनिकता के सिद्धान्त कोरे अमूर्त अनुभववाद पर आधारित नहीं है, बल्कि उनके स्वाध्याय, संवेदनशीलता और वैयक्तिक अनुभूति पर आधारित है। अस्तु, इस सन्दर्भ में कहीं–कहीं उनकी कोरी बौद्धिकता का भुष्क बोध उभर आता है। फिर भी, इनकी रचना–लोक में विभिन्न रूप–रंग, विभिन्न ध्वनियाँ, गन्ध ओर स्पर्श के दर्शन होते हैं। गिडेन्स ने बुनियादी सिद्धान्तों के शास्त्रीय कार्यो को सूक्ष्मातिसूक्ष्म ढंग से अवलोकित किया है। अतः, उनके सिद्धान्तों में व्यापकता एवं गहराई है। यही कारण है कि उनका स्वर व्यक्ति से लेकर समाज तक, परम्परा से लेकर आधुनिकता एवं वैश्वीकरण तक, आदिम गन्ध से लेकर विज्ञान की चेतना तक, यन्त्र–सभ्यता से लेकर वर्तमान लोक परिवेश तक फैला हुआ है।

समकालीन सिद्धान्तकारों में गिडेन्स ही एक ऐसे सिद्धान्तकार हैं जिन्होंने संरचनाओं एवं व्यवस्थाओं को क्रिया (एजेन्सी) के साथ सम्मिश्रित करने का प्रयास किया है। यह कार्य उन्होंने एक अद्वितीय उपाय से किया है। उनका यह अद्वितीय उपाय संरचनाओं को क्रिया के आकस्मिक या अनैच्छिक परिणाम के रूप में उनकी उद्घोषणा है – जिसका प्रस्तुतीकरण उन्होंने संरचनाकरण के सिद्धान्त में किया है। समाजशास्त्रीय सिद्धान्तीकरण के क्षेत्र में आधुनिक प्रयासों के अन्तर्गत अंथोनी गिडेन्स ने कार्य को संरचनाकरण के सिद्धान्त के रूप में अभिहित (बोधित) किया है। इस बुनियादी सिद्धान्त का प्रस्तुतीकरण उन्होंने अनेक स्थानों पर किया है, किन्तु, गिडेन्स के दो अत्यन्त विस्तृत ग्रन्थों, दि कान्स्टिट्यूशन ऑफ सोसाइटी : अउट लाईन ऑफ दि थिऑरि ऑफ स्ट्रक्चरेशन,

१६८४ एवं सेन्ट्रल प्रोब्लम्स् इन सोशल थिअॅरि, १६७६ से वस्तुतः संरचनाकरण के सिद्धान्त की नयी यात्रा प्रारम्भ होती है जो बाद में उनके कई ग्रन्थों में संगृहीत दिखाई पड़ती है। आलोचनात्मक रूप में, गिडेन्स ने समाजशास्त्र में विद्यमान सिद्धान्तों, विशेषकर प्रकार्यवाद, मार्क्सवाद संरचनावाद, प्रघटनाशास्त्र, प्रतीकात्मक अन्तर्क्रियावाद एवं भूमिका सिद्धान्त के सैद्धान्तिक स्वरूपों पर प्रहार किया है। इस सन्दर्भ में उनके दो ग्रन्थ प्रोफाइल्स ऐण्ड क्रिटिक्स इन सोशल थीअॅरि, १६८२ एवं न्यू रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड : ए पोजिटिव क्रिटिक ऑफ इन्टरप्रेटेटिव सोशियोलॉजीज, १६७६ विशेष रूप से द्रष्टव्य है। इन ग्रन्थों में उन्होंने समाजशास्त्र में विद्यमान उपर्युक्त नामित सिद्धान्तों की अनुदार आलोचना की है। इन सिद्धान्तों की कमियों को दूर कर उन्होंने एक नव्य सिद्धान्त (संरचनाकरण के सिद्धान्त) की आधारशिला रखी।

गिडेन्स की सिद्धान्त योजना के कौशल के महत्व को स्वीकार करते हुए हम सोचते हैं कि उनके संरचनाकरण के सिद्धान्त पर प्रकाश डालने के पूर्व बेहतर होगा कि सर्वप्रथम हम सामाजिक सिद्धान्त की उनकी आलोचनाओं का चित्रण प्रस्तुत करें। इस रूप में , हम संरचनाकरण सिद्धान्त की रणनीति एवं सार को इसके आलोचनात्मक सन्दर्भ में प्रस्तुत कर सकते हैं।

सामाजिक सिद्धान्त की आलोचना :

(१) प्रकृतिवाद एवं प्रत्यक्षवाद का अस्वीकरण - सर्वप्रथम गिडेन्स समाजशास्त्र की प्रकृतिवादी या प्रत्यक्षवादी विचारधारा व चिन्तन-विधा का खण्डन करते हुए यह स्थापित करते हैं कि समाजशास्त्र की प्रकृति स्वभावतः प्रकृतिवादी व प्रत्यक्षवादी या वैज्ञानिक नहीं है, अस्तु, समाजशास्त्र की प्रकृति प्राकृतिक विज्ञानों के सदृश वैज्ञानिक नहीं हो सकती। एतदर्थ सामाजिक प्रक्रियाओं के बारे में कोई अमूर्त नियम नहीं बनाये जा सकते। अपने इस दृढ़ कथन के समर्थन में उन्होंने हरबर्ट ब्लुमर के इस विचार को उद्धृत किया है कि किसी भी सामाजिक संगठन को व्यक्तियों के कृत्यों द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है और इस प्रकार किसी सामाजिक संगठन के अपरिवर्तनीय या स्थिर गुणों के बारे में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। गिडेन्स प्रकृतिवाद और प्रत्यक्षवाद की आलोचना करने में तीन मुख्य तर्क प्रस्तुत करते हैं :

१. सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा सामाजिक प्रक्रियाओं के अवबोध के सन्दर्भ में जिन अवधारणाओं एवं सामन्यीकरणों का प्रयोग किया जाता है उनको कर्त्ताओं द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है। अस्तु, "विज्ञान" के सम्भाव्य सामान्यीकरणों का निराकरण किया जा सकता है। हम गिडेन्स के इस विचार से सहमत हैं कि सामान्य जन भी "सामाजिक सिद्धान्तकार हैं जो अपने सिद्धान्तों को अपने अनुभवों के प्रकाश में परिवर्तित करते हैं और आवक या प्रवेशी सूचनाओं के सन्दर्भ में ग्रहणशील होते हैं।"१ और इस प्रकार के सामाजिक सिद्धान्त अक्सर सामान्यकर्त्ताओं के लिए कोई नये 'समाचार' नहीं होते और जब वे स्वभावतः ऐसे हैं, तब ऐसे सिद्धान्तों का प्रयोग उस व्यवस्था को रूपान्तरित या परिवर्तित करने के सन्दर्भ में यिका जा सकता है जिसका वे वर्णनकरते हैं। अस्तु, जिस संरचना की परिस्थिति में व्यक्ति रहता है, और जिसके बारे में वह सोचता है उसको परिवर्तित करने की भी उसमें योग्यता होती है।

२. द्वितीयतः, सामाजिक सिद्धान्त स्वभावतः सामाजिक आलोचना के विषय होते हैं। सामाजिक सिद्धान्त किसी कार्य के कारणों के सन्दर्भ में अक्सर अन्तर्विरोधात्मक कारणों की चर्चा करते हैं। यही कारण है कि वे आलोचना के विषय बन जाते हैं। इन तथ्यों के निहितार्थ, गिडेन्स के अनुसार बड़े गूढ़ होते हैं। अस्तु, हमें प्राकृतिक विज्ञानों का अनुकरण करना शीघ्रातिशीघ्र बन्द कर देना चाहिए। बौद्धिक क्रियाकलाप के सन्दर्भ में यह भ्रम दूर हो जाना चाहिए कि हम ऐसे सामाजिक नियमों की खोज कर सकते हैं जो अनन्त काल तक चरैवेति या चलते रहेंगे।

३. तृतीयतः, हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि सामाजिक सिद्धान्त हमसे, हमारे ब्रह्माण्ड से "बाहर" नहीं होते। हमें इस तथ्य को भी स्वीकार करना चाहिए कि जिस कार्य को समाजशास्त्री और सामान्यकर्त्ता सम्पादित करते हैं, मौलिक अर्थ में, एक समान ही होते हैं और हमें उन "सुग्राही अवधारणाओं" को विकसित करने के सन्दर्भ में प्रयासरत रहना चाहिए जो व्यक्तियों के बीच अन्तर्क्रिया की सक्रिय प्रक्रियाओं को समझने में मदद करती हैं जैसा कि वे सामाजिक संरचनाओं को उत्पादित और पुनरुत्पादित करती हैं जब इन संरचनाओं द्वारा निर्देशित होती हैं।

(२) समाजशास्त्रीय द्वैतवाद का निराकरण - गिडेन्स की सर्वाधिक उपयोगी आलोचना समाजशास्त्र में अन्तर्निहित द्वैत का अस्वीकरण है। समाजशास्त्र के अरुणोदयकाल से ही इसके सिद्धान्तों में द्वैतवादी चिन्तन प्रभावी रहा है, यथा, सूक्ष्म बनाम बृहत्, व्यक्ति बनाम समाज, आत्मपरकता बनाम वस्तुपरकता, कर्त्ता बनाम संरचना। समाजशास्त्रीय साहित्य में इन द्विभाजनों को लेकर कथमपि मतैक्यता नहीं रही है। समाजशास्त्री इस द्वैत को लेकर अपने पक्ष में तर्क देते रहे हैं। इस पक्ष-विपक्ष को लेकर समाजशास्त्री अपने पक्ष के तर्क से बहुत गहन भाव से जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए, सूक्ष्म समाजशास्त्रीय अध्ययन के हिमायतियों का कहना है कि यथार्थता का अध्ययन केवल सूक्ष्म समाजशस्त्रीय विधा

के आधार पर ही किया जा सकता है, जबकि बृहत् समाजशास्त्रियों का मत ठीक इसके विपरीत है। उनका तर्क है कि यथार्थता का रहस्योद्घाटन करने में बृहत् समाजशास्त्री अध्ययन ही सार्थक है। इस द्वैत को नकार कर, इससे अलग हटकर एक नये सिद्धान्त के प्रतिपादन का प्रयत्न करते हुए गिडेन्स ने संरचनाकरण के सिद्धान्त का सृजन किया है। 'संरचनाकरण' की प्रक्रिया इस तथ्य पर प्रकाश डालती है कि व्यक्ति और समाज, कर्त्ता और संरचना तथा सूक्ष्म और बृहत् आदि द्वैतवाद की रचना नहीं करते, बल्कि 'द्वित्व' या 'द्वयात्मकता' को सृजित करते हैं। अर्थात्, लोग अन्तर्क्रिया के दौरान नियमों एवं साधनों का प्रयोग करते हैं जो उनके प्रतिदिन के जीवन में सहयोगात्मक सन्दर्भों में सामाजिक संरचना का निर्माण करते हैं, और ऐसा करने में, वे संरचना के इन नियमों एवं साधनों का पुनर्निमाण भी करते हैं। इस प्रकार, वैयक्तिक क्रिया, अन्तर्क्रिया एवं सामाजिक संरचना ये सभी एक-दूसरे से गूँथे हुए हैं। वे अलग यथार्थताओं का निर्माण नहीं करते हैं, बल्कि एक समान यथार्थ के अन्तर्गत द्वित्व या द्वयात्मकता को सृजित करते हैं। वस्तुतः, ये सामाजिक व्यवस्थाओं की संरचनात्मक गुणों या विशेषताओं के दो माध्यम और परिणाम हैं।[२] कोई व्यक्ति सामाजिक संरचना के नियमों एवं साधनों के सन्दर्भात्मक अभाव में क्रिया एवं अन्तर्क्रिया को समझ नहीं सकता, जबकि बृहत् स्तर पर कोई भी व्यक्ति दीर्घकालीन संस्थागत संरचनाओं को मूर्त अन्तर्क्रिया के सन्दर्भ में इन संस्थागत संरचनाओं के नियमों एवं साधनों के कर्त्ताओं के प्रयोग के ज्ञान के अभाव में सम्यक् रूप से अवबोध प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार व्यक्ति और समाज, सूक्ष्म और बृहत् तथा आत्मपरकता और वस्तुपरकता अलग-थलग नहीं है, बल्कि द्वित्व है - दोनों एक साथ संयोजित होकर कार्य सम्पादन करते हैं।

(३) प्रकार्यवाद और उद्विकासवाद की आलोचना - गिडेन्स ने प्रकार्यवाद और उद्विकासवाद की बहुत ही कठोर आलोचना की है। वस्तुतः ये दोनों ही सिद्धान्त कठोर चाबुक की मार से दो मरे हुए घोड़े के समान हैं। इन दोनों पर निष्ठुर प्रहार करते हुए गिडेन्स का कहना है कि प्रकार्यवाद सामाजिक प्रघटनाओं का विश्लेषण इन आवश्यकताओं के सन्दर्भ में करता है जिसकी पूर्ति संरचनाएँ करती हैं, और उद्विकास ऐसे दृढ़ सोपानों का वर्णन करता है जिनसे समाज गुजर कर आधुनिकता तक पहुँचता है। प्रायः सभी प्रकार्यवादी सिद्धान्त उद्विकासीय सिद्धान्त हैं; अस्तु, गिडेन्स का तर्क है कि ये दोनों ही सिद्धान्त समाज को समझने में उपयुक्त उपागम नहीं है। इसी सन्दर्भ में गिडेन्स मार्क्सवाद पर भी निर्मम प्रहार करते हैं और कहते हैं कि समकालीन मार्क्सवाद भी प्रकार्यवाद एवं उद्विकासवाद का ही दूसरा स्वरूप है और इसलिए यह भी बहुत उपयोगी नहीं है।[३]

जोनाथन टर्नर की दृष्टि में गिडेन्स की आलोचना युक्तियुक्त है। उनका तर्क है कि प्रकार्यात्मक विश्लेषण अन्तर्क्रिया में कर्त्ता की सक्रिय प्रक्रियाओं की उपेक्षा करता है एवं कर्त्ता पर "बाह्य दबाव" के रूप में सामाजिक संरचना पर विशेष बल देता है, जबकि उद्विकासवादी विश्लेषण कतिपय कारणात्मक कारक की प्रतिक्रिया में समाजों की दृढ़ गतिकी पर बल देता है। गिडेन्स के लिए, "संरचना का द्वित्व इन सभी प्रकार्यात्मक आवश्यकता के विश्लेषणों, जैसे संरचना के दबावों, विकास के सोपानों एवं परिवर्तन के मूल कारणों में खो जाता है।" अन्य शब्दों में, अन्तर्क्रिया की परिस्थितियों में कर्त्ता के सक्रिय कृतित्व पर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया गया है; जबकि संरचना को कर्त्ता से अलग-थलग रूप में देखा गया है जो वस्तुतः इसके निर्माण व पुनर्निमाण तथा रूपान्तरण व परिवर्तन में संलग्न रहता है।

गिडेन्स ने प्रकार्यवाद और उद्विकासवाद के सिद्धान्तों में अन्तर्निहित संरचना एवं कर्त्ता के द्वैतवाद को नकारा है और यह स्वीकार किया है कि संरचना के निर्माण में कर्त्ता (एजेन्ट) की महनीय भूमिका है। इसी धारणा के आधार पर गिडेन्स ने प्रकार्यवाद और उद्विकासवाद की अनुदार आलोचना की है।

(४) अन्तर्क्रियावाद की परिसीमाएँ - गिडेन्स ने अन्तर्क्रियावाद विशेषकर जिसका विकास इर्विंग गाफमैन एवं अन्यों ने किया है, उनको भी कसौटी पर यथासम्भव संतुलित ढंग से परखने का प्रयास किया है। इस सन्दर्भ में वे इर्विंग गॉफमैन एवं अन्य अन्तर्क्रिया सिद्धान्तकारों के मतों की निर्भीक ढंग से अनेक रूपों में आलोचना करते हैं। सर्वप्रथम, वे अन्तर्क्रियावाद के व्यक्ति बनाम संरचना के द्वैतवाद पर प्रहार करते हैं। उनका कहना है कि अन्तर्क्रियावादी अपने विवेचन में कहीं भी इस तथ्य का उल्लेख नहीं करते कि किस प्रकार अन्तर्क्रिया की प्रक्रिया द्वारा संरचना का पुनर्निमाण होता है। इसके अतिरिक्त, कतिपय अन्तर्क्रियावादी खुलेआम आमने-सामने की प्रतीकात्मक अन्तर्क्रिया को ही संरचना की रचना में सर्वेसर्वा मानते हैं और इस सन्दर्भ में वे संस्थागत प्रक्रियाओं की भूमिकाओं को बरखास्त करते हैं। वे कथमपि यह स्वीकार नहीं करते कि संख्या के निर्माण व पुनर्विकास में संस्थागत प्रक्रियाओं की भी कुछ महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

गिडेन्स का द्वितीय दोषारोपण यह है कि अन्तर्क्रियावादी सिद्धान्तों में अभिप्रेरणा को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया है। अन्तर्क्रियावादी के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है कि लोग जो काम करते हैं उसके पीछे कौन से प्रेरक तत्व होते हैं? कर्त्ता को कोई कार्य सम्पादित करने के लिए कौन-सी प्रवृत्तियाँ मूलतः उत्प्रेरित करती हैं? कर्त्ता जिन हावभावों को अपने व्यवहारों में

प्रदर्शित करते हैं, उनके उत्तरदायी हैतुकीय कारक कौन से हैं? क्यों कोई व्यक्ति किसी नाटक में जोकर की भूमिका अदा करता है?क्यों कोई लोकरीति के अनुसार चलता है?क्यों कोई लोकनृत्य, लोकवार्ता व लोकगीत गाता है? क्यों कोई लोकसाहित्य, लोक कथा, लोक कहानी की रचना करता है? गिडेन्स का कहना है कि गॉफमैन के अभिनयशास्त्र में इन प्रश्नों का कोई जबाव नहीं है। गिडेन्स का मानना है कि इस दृष्टि से अन्तर्क्रियावादी सिद्धान्त में अभिप्रेरणा के सिद्धान्त को अन्तर्निहित करने के सन्दर्भ में संशोधन करने की महती आवश्यकता है, क्योंकि व्यक्ति जो भी क्रिया करता है उसके पीछे कोई न कोई प्रेरणा अवश्य होती है। बिना प्रेरणा के शायद ही कोई कार्य सम्पादित होता है।

गिडेन्स का तृतीय दोषारोपण अन्तर्क्रियावादी सिद्धान्तकारों की संरचनात्मक उन्मुखता, जैसे संरचनात्मक भूमिका सिद्धान्त पर अधिक बल देने को लेकर है। गिडेन्स का मत है कि अन्तर्क्रियावादी मन में से स्पष्ट रूप से देखी गयी भूमिकाओं को ही संरचना का मूलाधार तत्त्व मानते हैं। वस्तुतः अन्तर्क्रियात्मक भूमिका से तात्पर्य ऐसी क्रियाओं से होता है जिसे एक व्यक्ति अपने 'स्व' के अनुभव के आधार पर करता है। व्यक्तियों की भूमिकाएँ ही संरचना का निर्माण करती हैं। किन्तु, इस बात को गिडेन्स अस्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि लोगों या सामूहिक इकाईयों के वास्तविक व्यवहार न कि भूमिकाएँ, व्यक्ति और समाज के बीच सन्धियोजन के बिन्दु हैं। अस्तु, गिडेन्स ने संरचना-निर्माण में "भूमिका सिद्धान्त" को अपर्याप्त माना है। अक्सर किसी समूह व समुदाय को सामूहिक व्यवहार समूह व समुदाय के विचारों, विश्वासों व मनोवृत्तियों में परिवर्तन ला देता है। जबकि भूमिकाओं की व्यवस्था के रूप में संरचना का प्ररूपण कर्त्ताओं के सक्रिय आत्मवाचक, रचनात्मक एवं सम्भावित रूपान्तरकारी व्यवहारों को दूर कर सकता है। अतः अन्तर्क्रियावाद को सामूहिक क्रियाओं को अपने सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में उचित स्थान देना चाहिए।

(५) संरचनावाद की आलोचना – गिडेन्स, लेवी-स्ट्रास के संरचनावाद की आलोचना करते हैं, क्योंकि यह मानव क्रिया (एजेन्सी) या लोगों की क्षमता की पूर्णतः उपेक्षा करता है। लेवी स्ट्रास के संरचनावाद का मुख्य स्रोत भाषाशास्त्र है। स्ट्रास ने संरचनात्मक भाषाशास्त्र की विधियों द्वारा अपने उपागम की मानवशास्त्रीय तथ्यों के साथ तुलना की है और "मानसिक संरचनाओं" को उजागर करने का प्रयास किया है। ऐसे संरचनावादी उपागमों में संहिताओं की सर्वव्यापी व्यवस्थाओं के अनुसार कर्त्ताओं पर दबाव डाला जाता है, उन्हें ढकेला जाता है। ऐसे बृहत् संरचनावाद में सामाजिक संरचना की कर्त्ताओं से उनकी बोली या आदेश के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा रहती है।

प्रायः सभी संरचनात्मक सिद्धान्त एवं सिद्धान्तकार अन्तर्क्रिया में कर्त्ताओं द्वारा सक्रिय पुनर्निमाण (या बदलाव) की प्रक्रिया को स्वीकार करने में पूर्णतः असफल रहे हैं। उन्होंने कर्त्ताओं की दक्षता व उनकी रचनात्मक योग्यता व शक्ति की अवहेलना की है। गिडेन्स के लिए संरचनावाद कोई प्रामाणिक बाह्य एवं दबाव देने वाली शक्ति नहीं है जो मानव को यन्त्रवत् काम करने वाला या रोबोट एवं भोला-भाला इनसान बना दे। वस्तुतः संरचना अन्तर्क्रिया के दौरान लोगों की प्रतिदिन की दिनचर्या में आलिप्त रहती है एवं उसी से उसका पुनर्निमाण भी होता है। दूसरे शब्दों में, सामाजिक संरचना लोगों की दिन-प्रतिदिन की दिनचर्या में सक्रिय रूप से संलग्न रहती है और लोगों की अन्तर्क्रियात्मक क्रिया के संरचना की पुनर्ररचना भी की जाती है। गिडेन्स के ही शब्दों में, "यह दबाव डालने वाली एवं शक्ति प्रदान करने वाली दोनों ही दिन-प्रतिदिन की लागों की अन्तर्क्रिया है।"

गिडेन्स का मत है कि सामाजिक संरचना का प्रयोग सक्रिय कर्त्ताओं द्वारा किया जाता है और संरचना के गुणों या विशेषताओं का प्रयोग करने में इस संरचना का रूपान्तरण या पुनर्निमाण करते हैं।

इस प्रकार, गिडेन्स समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के इस अनुचित विश्वास का खण्डन करते हैं कि सार्वभौमिक नियम विकसित किये जा सकते हैं। इसकी अनावश्यक द्वैतवादी प्रवृत्ति ओर प्रकार्यवादी एवं उद्विकासवादी विश्लेषण की आलोचना करते हैं, अन्तर्क्रिया की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा एवं संरचना को अन्तर्विष्ट करने में इसकी असफलता को उजागर करते हैं, तथा संरचनाओं एवं प्रतीकों को कर्त्ताओं से बाहर मानकर इस पर विचार करने वाली इसकी प्रवृत्ति की भर्त्सना करते हैं, क्योंकि वस्तुतः ये कर्त्ता ही हैं जो इन संरचनाओं एवं प्रतीकों की रचना, पुनर्रचना एवं कार्यापलट करते हैं। किन्तु, अन्य आलोचकों की भाँति गिडेन्स अपनी दुकान के सन्दूक को इस बिन्दु पर उतारकर घर नहीं जाते, बल्कि सैद्धान्तिक विश्लेषण के एक वैकल्पिक प्रकार को विकसित करने का रचनात्मक प्रयास करते हैं। उनका यह विकल्प "संरचनाकरण" का सिद्धान्त है, जिसके प्रतिपादन से वे समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों के दोषों एवं कमियों को दूर करने का दावा करते हैं।

संरचनाकरण का सिद्धान्त : चूँकि गिडेन्स इस बात में कथमपि यह विश्वास नहीं करते कि सामाजिक क्रिया, अन्तर्क्रिया एवं संगठन के सन्दर्भ में अमूर्त नियम विद्यमान हैं, अतः उनके द्वारा प्रतिपादित संरचनाकरण का सिद्धान्त प्रस्थापनाओं की श्रृंखला नहीं है। इसके बदले, यह सिद्धान्त सुग्राह्य अवधारणाओं का समूह है जिसका सम्बन्ध तर्कमूलक विमर्श से होता है। गिडेन्स की मुख्य अवधारणा 'संरचनाकरण' है जो संरचना के द्वित्व को सूचित

करता है जिसमें संरचनाएँ मानव क्रिया द्वारा उत्पादित की जाती है और सामाजिक क्रिया की माध्यम होती है। इस प्रकार गिडेन्स का यह कार्य सुग्राह्य अवधारणात्मक योजना है। गिडेन्स ने समाजशास्त्र में परम्परागत वर्गीकरण के परे 'सामाजिक व्यवहारों' जो संरचना द्वारा उत्पादित एवं पुनरुत्पादित किये जाते हैं, पर अपना ध्यान आकर्षित किया है। इस प्रकार गिडेन्स ने समाजशास्त्र में दीर्घकाल से क्रिया ओर संरचना के बीच चले आ रहे परम्परागत द्विभाजन को पाटने का प्रयास किया है। संरचनाएँ, गिडेन्स के लिए सामाजिक कर्त्ताओं से कोई बाह्य वस्तु नहीं हैं, बल्कि कर्त्ताओं के व्यवहारों द्वारा उत्पादित एवं पुनरुत्वादित की जाती हैं। उन्होंने सामाजिक सिद्धान्त एवं सामाजिक विश्लेषण के लिए समय और स्थान के महत्त्व पर भी बल दिया हैं। उनका ऐतिहासिक समाजशास्त्र उन विभिन्न तरीकों की खोज करता है जिनमें समाज इन्हें एक साथ बाँधने का प्रयास करता है। इस प्रकार, संरचनाकरण का सिद्धान्त सामाजिक संरचनाओं एवं व्यवस्थाओं के संरचनाकरण के लिए मानवकर्त्ताओं के आत्मपरक शक्तियों एवं संरचनाओं की वस्तुपरक शक्तियों जिसका उत्पादन वे द्वित्व के रूप में करते हैं, द्वैतवादी अन्तर के रूप में इन दोनों के बीच सन्धि सम्बन्ध के अवधारणाकरण द्वारा सुस्पष्ट करता है।

संरचनाकरण का क्या तात्पर्य है?

वस्तुतः संरचनाकरण की धारणा गिडेन्स द्वारा प्रतिपादित 'संरचना के द्वित्व' या द्वयात्मकता की अवधारणा से सम्बन्धित है, जिसमें संरचनाएँ जहाँ एक ओर मानवीय क्रिया द्वारा उत्पादित की जाती हैं, वहाँ दूसरी ओर वे सामाजिक क्रिया का माध्यम भी होती हैं। गिडेन्स संरचनाकरण की परिभाषा में संरचना अन्तर्विष्ट है। कर्त्ता सदैव कुछ न कुछ क्रिया सम्पादित करता है, और क्रिया सम्पादित करते समय वह वास्वत में संरचनाकरण करता है, अर्थात् संरचना का पुनरुत्पादन करता है। इस प्रकार संरचना का पुनरुत्पादन ही संरचनाकरण है। संरचनाकरण की प्रक्रिया वास्तव में एक क्रिया का वर्णन करती है। अस्तु, संरचना उत्पादन करने की क्रिया या रचना व पुनर्रचना करने की क्रिया को संरचनाकरण कहा जाता है। गिडेन्स ने वैयक्तिक क्रिया पर विशेष बल दिया है। उनका तर्क है कि संरचनाकरण का सिद्धान्त एक प्रमुख प्रमेय के रूप में एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक सामाजिक कर्त्ता जिस समाज का वह सदस्य है उसके पुनरुत्पादन की दशाओं को पूर्णतः जानता है। इस प्रकार क्रिया के अन्तर्गत दो चीजें अन्तर्निहित हैं : (१) कर्त्ता एवं (२) सामाजिक संरचना। शास्त्रीय सिद्धान्तकारों का तर्क है कि सामाजिक सरंचना कर्त्ता के क्रियाकलापों को अधीनस्थ या मातहत बनाती है। इन शास्त्रीय सिद्धान्तकारों के अनुसार कर्त्ता या व्यक्ति को गौण समझा जाता है, उनको सदैव पिछला सीट या आसन दिया जाता है। सामाजिक संरचना व्यक्ति के व्यवहार पर एक प्रकार की निश्चित दबाव डालती है। उसमें मनुष्य को बाधित करने की शक्ति होती है। इस समस्या को गिडेन्स द्वारा उठाया गया है। गिडेन्स के अनुसार यह द्वैतवाद चिन्तन का वह स्वरूप है जिसमें बुनियादी श्रेणियों या वर्गों को तार्किक ढंग से एक-दूसरे से पृथक् माना जाता है। इस प्रसंग में कर्त्ता और संरचना दोनों प्रकार के अलग-अलग तथ्य हैं, जैसे- द्वैतवादी दर्शनशास्त्र में आत्मा एवं ब्रह्म दो अलग-अलग तत्व हैं। अर्थात् द्वैतवाद में गैर-तादात्म्य या गैर-एकात्मक सम्बन्ध पाया जाता है। इसमें एकात्मकता नहीं पायी जाती है। वस्तुतः समाजशास्त्र में प्रकार्यवाद एवं व्यवस्था के सिद्धान्तों ने व्यक्ति या कर्त्ता को पृष्ठभूमि में रख दिया है। किन्तु, यह गिडेन्स को स्वीकार नहीं है। उन्होंने अपने संरचनाकरण के सिद्धान्त में व्यक्ति को पीछे से हटाना चाहते हैं। अपने सिद्धान्त को गैर-प्रकार्यवादी उद्घोषणा करने वाले गिडेन्स का तर्क है कि वे सिद्धान्त जो सामाजिक व्यवस्थाओं को स्वयं साध्य के रूप में स्वीकार करते हैं, अवैध व अप्रामाणिक हैं। अस्तु, उनका दावा है कि उन्होंने व्यक्ति या कर्त्ता को आत्मपरकतावाद में बिना बिलीन किये पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया है। उनका पुनः तर्क है कि कर्त्ता एवं वस्तु दोनों अर्थात् व्यक्ति और व्यवस्था दोनों विद्यमान हैं। कर्त्ता के रूप में, व्यक्ति को उसमें अन्तर्निहित शक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके आधार पर वह संरचनात्मक प्रतिबन्ध या दबाव का प्रतिरोध करता है या रोकता है, और कभी-कभी वह अपने सामाजिक अस्तित्व की संरचनात्मक दशाओं में यथार्थ रूप में नव परिवर्तन लाने या रूपान्तरण लाने के लिए रचनात्मक शक्तियों का प्रयोग भी करता है। संक्षेप में, कर्त्ता या व्यक्ति अपने अस्तित्व की सामाजिक दशाओं में रूपान्तरण लाने के सन्दर्भ में अपनी क्षमताओं का प्रयोग करने से बाज नहीं आते। वास्तव में गिडेन्स का संरचनाकरण का सिद्धान्त संरचनाओं के निर्माण के सन्दर्भ में विषयाश्रितता एवं आत्मश्रितता दोनों का एक साथ ही प्रयोग करता है। इन दोनों का प्रयोग वह अलग-थलग रूप में नहीं करता बल्कि दोनों के संयोजन से यह संरचना का निर्माण व पुनर्निमाण करता है। उसके लिए संरचना और क्रिया के बीच द्वित्व या द्वयात्मकता का सम्बन्ध पाया जाता है, द्वैतवाद नहीं। अस्तु, गिडेन्स के अनुसार, संरचना और क्रिया के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध पाया जाता है। इसी सम्बन्ध को उन्होंने संरचना एवं क्रिया की द्वित्व एकात्मकता के नाम से सम्बोधित किया है। वस्तुतः संरचना और क्रिया की यह तादात्म्यता या एकात्मक द्वित्व ही संरचनाकरण की अवधारणा है। अस्तु, संरचनाकरण की रचना में गिडेन्स ने द्वैतवाद की धारणा को अस्वीकार कर द्वित्व की धारणा को स्वीकार किया है।

गिडेन्स द्वारा प्रतिपादित संरचनाकरण की व्याख्या के लिए अधोलिखित तीन बुनियादी तरीके हैं :

विषयाश्रितवाद	वस्तुओं का कर्त्ताओं से सम्बन्ध	आत्माश्रितवाद
संरचनावाद	**(संरचनाएँ) + (क्रिया या एजेंसी)**	मानववाद
विषय कर्त्ताओं को मजबूर	(अ) द्वैतवाद : गैर-एकात्मक सम्बन्ध करता है या इसके महत्त्व	कर्त्ता विषय के महत्त्व को कम करता है। कोई
को कम करता है।	अथवा	संरचना नहीं।
कोई क्रिया (एजेंसी) नहीं।	(ब) द्वित्व : संरचना और क्रिया (एजेंसी) की एकात्मकता त्र गिडेन्स की संरचनाकरण की अवधारणा	

संरचनाकरण के सिद्धान्त के सम्यक् अवबोध के सन्दर्भ में गिडेन्स का कहना है कि आधुनिक एवं अधिकाधिक समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की रचना की दिशा में आधुनिक सामाजिक विज्ञानों के लिए शास्त्रीय समाजशास्त्रियों को पुनः पढ़ना अत्यावश्यक है। ऐसा करने से ही वे संरचनात्मक प्रकार्यवाद एवं पारसन्स द्वारा प्रतिपादित क्रिया समाजशास्त्र से अलग हुए। इस दिशा में हरबर्ट ब्लुमर एवं हैरॉल्ड गार्फिंकेल के अन्तर्क्रियावाद से भी विमुख हुए। ठीक इसी प्रकार वे कार्लमार्क्स, मैक्स वेबर, इमाइल दुर्खीम आदि के विचारों को भी ग्रहीत किया, जिसके आधार पर अपने सिद्धान्त की बुनियाद रखी और इसी आधार पर आधुनिक समाज की विशिष्ट विशेषताओं को आलोकित किया। कहना न होगा कि इन सब सिद्धान्तकारों के विचारों के आधार पर ही गिडेन्स ने एक नवीन प्रकार के समाजशास्त्रीय सिद्धान्त अर्थात् संरचनाकरण के सिद्धान्त की आधारशिला रखी जो शास्त्रीय समाजशास्त्र की बुनियादी समस्याओं से परे है।

गिडेन्स का मत है कि सामाजिक विज्ञानों में शास्त्रीय एवं आधुनिक योदगानों ने अनेकानेक समस्याओं को पैदा किया है। वे सभी समाज की अवधारणाओं की व्याख्या करने में कोसों दूर हैं। क्या समाज वैयक्तिक क्रियाओं का कुछ योग है? या क्या समाज इन क्रियाओं के कुल योग से भी कुछ और अधिक? और ऐसी कोई सामाजिक संरचना है जो प्रत्येक व्यक्ति की क्रियाओं से स्वतन्त्र है? ये कुछ ऐसे जटिल प्रश्न हैं जिनके उत्तर गिडेन्स ने अपने संरचनाकरण के सिद्धान्त के माध्यम से देने का प्रयास किया है।

संरचनाकरण की प्रक्रिया की प्रधान विशेषताएँ :

(१) संरचना की प्रकृति
(२) संरचना के प्रयोग करने वाले कर्त्ता, और
(३) वे तरीके जिनके द्वारा ये पारस्परिक रूप से एक दूसरे में समाविष्ट होकर मानव संगठन के विविध प्रतिमानों को उत्पादित करते हैं।

संरचनाकरण के सिद्धान्त के प्रमुख आधारतत्त्व :

गिडेन्स के संरचनाकरण के सिद्धान्त के प्रमुख तीन आधार स्तम्भ हैं :

(१) संरचना का द्वित्व या कर्त्ता-संरचना द्वित्व
(२) संरचना की प्रकृति
(३) कर्त्ता एवं क्रिया

(१) संरचना का द्वित्व या कर्त्ता संरचना द्वित्व - गिडेन्स के संरचनाकरण के सिद्धान्त का प्रथम आधारीय अवधारणा 'संरचना का द्वित्व है, जिसमें संरचनाएँ मानव क्रिया द्वारा उत्पादित की जाती हैं और सामाजिक क्रिया का माध्यम दोनों ही होती हैं। गिडेन्स का कहना है कि समाजशास्त्र के अरुणोदय काल से लेकर अब तक समाजशास्त्रियों में यह विवाद का विषय रहा है कि समाज की रचना में प्रधानता किसकी रही है : व्यक्ति या कर्त्ता की या समाज या संरचना की। इस प्रश्न का उत्तर देने में समाजशास्त्रीय जगत् में बृहत् व सूक्ष्म दो सम्प्रदायों का जन्म हुआ है। बृहत् सम्प्रदाय का तर्क है कि संरचना प्रधान है और कर्त्ता या व्यक्ति गौण। इस सम्प्रदाय का कहना है कि संरचना की कर्त्ता या व्यक्ति से पृथक् अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता है। ऐसी सत्ता जो व्यक्तियों पर आश्रित नहीं है, विषय के रूप में इसकी स्वतन्त्र अपनी हैसियत है। जैसे संसार की भौतिक तथा दृश्य वस्तुओं में, उन वस्तुओं में जिनकी मनुष्य के मस्तिष्क में ही नहीं; अपितु स्वतन्त्र रूप में भौतिक सत्ता है, भौतिक नियमों को हटाकर विचार किया जाता है, वैसे ही समाज को व्यक्ति से भिन्न एक स्वतन्त्र वस्तु मान कर विचार किया जाना चाहिए। अगर सामाजिक संरचना को व्यक्तियों का या उसकी क्रियाओं का योग मान लिया जाय तब तो समाजशास्त्र केवल मनोविज्ञान का एक रूपमात्र रह जाता है, परन्तु, सामाजिक संरचना का विरचन व्यक्तियों व उनकी क्रियाओं के योग से नहीं होता, वह व्यक्तियों से भिन्न, उनके परे और ऊपर एक स्वतन्त्र

सत्ता है, इसलिए समाजशास्त्र मनोविज्ञान से भिन्न एक स्वतन्त्र विज्ञान है। संरचना कर्त्ता या व्यक्ति से श्रेष्ठतर है, उसकी दृष्टि कर्त्ता या व्यक्ति की अपेक्षा बहुत आगे उससे अधिक और बेहतर होती है। अस्तु, संरचना ही व्यक्ति को नियन्त्रित व नियमित रखती है। सामाजिक संरचना ही कर्त्ता या व्यक्ति की क्रियाओं को निर्धारित करती है। व्यक्ति मात्र कठपुतली होता है जो सामाजिक संरचना द्वारा नियन्त्रित होता है। इसके विपरीत, सूक्ष्म सम्प्रदाय का तर्क है कि कर्त्ता एवं उनकी क्रियाएँ संरचना व समाज की रचना करती है। सूक्ष्म सम्प्रदाय का मत है कि कर्त्ता प्रधान है, संरचना गौण। इस सम्प्रदाय की दृष्टि में समाज की इकाई व्यक्ति या कर्त्ता है, कर्त्ता एवं उसकी क्रियाएँ संरचना की रचना करती है। एतदर्थ, कर्त्ता से स्वतन्त्र किसी संरचना या व्यवस्था का कोई अस्तित्व ही नहीं होता। अस्तु, व्यक्तियों के संसार में संरचना को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इस सम्प्रदाय का तर्क है कि व्यक्ति के कार्य और उसकी क्रियाओं का योग ही संरचना या समाज की रचना करता है। अस्तु, कर्त्ता के अभाव में संरचना-व्यवस्था का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। ये दोनों ही सम्प्रदाय दो स्वतन्त्र दृष्टियों पर बल देते हैं। ये दोनों स्वतन्त्र हैं और इनसे सामाजिक प्रघटनाओं में यथार्थता की सम्यक् व्याख्या नहीं की जा सकती। इसलिए गिडेन्स बृहत् एवं सूक्ष्म इन दोनों ही सम्प्रदायों के कटु आलोचक हैं। इस सन्दर्भ में वे एक ओर जहाँ दुर्खीम, मैक्स वेबर, पारसन्स एवं मर्टन, लाकवुड, ओर्पर, मैजेलिस, पीटर ब्लाउ आदि बृहत् समाजशास्त्रीय सिद्धान्तकारों की आलोचना करते हैं, वहाँ दूसरी ओर जार्ज हरबर्ट मीड, इर्विंग गॉफमैन, हैराल्ड गार्फिंकेल, आलफ्रेड सूट्ज एवं कोलिन्स आदि अन्य सूक्ष्म समाजशास्त्रीय सिद्धान्तकारों की भी कठोर आलोचना करते हैं। अस्तु, गिडेन्स ने कर्त्ता और संरचना दोनों पर समान रूप से बल देकर समाजशास्त्र में एक नवीन सिद्धान्त - 'संरचनाकरण के सिद्धान्त' को प्रधानता दी है। इस सन्दर्भ में गिडेन्स का कहना है कि संरचनाकरण का उनका नवीन सिद्धान्त संरचना + क्रिया का तादात्म्य या एकात्मक स्वरूप है। अस्तु, उनका यह सिद्धान्त द्वैतवाद के स्थान पर द्वित्व की बात करता है। यह कर्त्ता और संरचना की स्थापना गैर-तादात्म्य या गैर-एकात्मकता को सम्बन्ध के आधार पर स्थापित नहीं करता बल्कि कर्त्ता और संरचना के तादात्म्य या एकात्मकता के सम्बन्ध के आधार पर स्थापित करता है। कर्त्ता और संचना में कौन प्रधान है इस द्वैतवादी प्रश्न का समाधान गिडेन्स ने संरचना के द्वित्व के आधार पर किया है। संरचना के द्वित्व को सुस्पष्ट करते हुए गिडेन्स का कहना है कि सामाजिक संरचना का प्रयोग क्रियाशील व्यक्तियों (जिन्हें गिडेन्स ने एजेन्ट कहा है) द्वारा किया जाता है। संरचना के बुनियादी तत्त्वों का प्रयोग करते हुए इस संरचना का उत्पादन या पुनरुत्पादन करते हैं। इस प्रकार गिडेन्स ने अपने संरचनाकरण के सिद्धान्त में कर्त्ता और संरचना के द्वैतवाद को अस्वीकार कर यह स्वीकार किया है कि संरचना की रचना में कर्त्ता (एजेन्ट) और संरचना दोनों की अपनी-अपनी भूमिका होती है, किन्तु, ये भूमिकाएँ एक-दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित होती हैं। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, एक सिक्के के दो पहलू हैं। अस्तु, क्रिया और संरचना को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। संरचना और क्रिया का यह द्वित्व गिडेन्स के संरचनाकरण के सिद्धान्त की रचना की आधारशिला है।

(२) संरचना - गिडेन्स के संरचनाकरण के सिद्धान्त का द्वितीय बुनियादी आधार 'संरचना' की अवधारणा है। इस अवधारणा को उन्होंने पुनर्परिभाषित किया है। इस सन्दर्भ में गिडेन्स ने शास्त्रीय सिद्धान्तकारों द्वारा दी गयी संरचना की परम्परागत परिभाषाओं की लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन करने का साहस कर अपनी दृष्टि से इसकी नयी परिभाषा दी है। गिडेन्स के अनुसार संरचना को 'नियमों' एवं 'संसाधनों' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका प्रयोग कर्त्ताओं द्वारा साकार या मूर्त पर्यावरण में "अन्तर्क्रियात्मक सन्दर्भों" में दिक् और काल से परे किया जाता है। इन नियमों एवं संसाधनों का प्रयोग करने में कर्त्ता संरचना को दिक् एवं काल में बनाए रखते हैं या पुनरुत्पादित करते हैं।

कर्त्ताओं को इन नियमों के बारे में जानकारी होती है और वे इनका प्रयोग विविध परिस्थितियों में धड़ल्ले से करते हैं। कभी-कभी इन नियमों के बारे में उन्हें सुस्पष्ट अवबोध नहीं भी हो सकता है, किन्तु, फिर भी वे इनका प्रयोग करते हैं। ये नियम निम्नलिखित विशेषताओं को उद्घाटित करते हैं :

(१) इन नियमों का प्रयोग प्रायः (अ) बातचीत, (ब) अन्तर्क्रियात्मक कृत्यों, तथा (स) व्यक्तियों के प्रतिदिन के नित्यचर्यात्मक जीवन में किया जाता है;

(२) वे मौन रूप से पूर्णरूपेण स्वीकार कर लिये जाते हैं तथा समझ लिये जाते हैं और वस्तुतः वे सुयोग्य कर्त्ताओं के 'ज्ञान भण्डार' के अंश होते हैं।

(३) वे अनौपचारिक और अलिखित होते हैं; और

(४) अन्तर्वैयक्तिक प्रविधियों के माध्यम से वे बहुत ही कमजोर ढंग से स्वीकृत होते हैं।

नियमों की उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त गिडेन्स ने संरचना को पुनर्परिभाषित करते समय अपने पूर्ववर्ती सिद्धान्तों एवं सिद्धान्तकारों द्वारा प्रस्तावित निम्नलिखित विचार-बिन्दुओं को अपने विचार-बिन्दुओं में अन्तर्विष्ट करने में कोई संकोच नहीं किया है :

(१) प्रकार्यवादियों का वह तत्त्व-ज्ञान जिसके आधार पर वे संस्थागत आदर्शमानकों एवं सांस्कृतिक मूल्यों पर विशेष बल देते हैं;
(२) लोकविधि वैज्ञानिकों का वह तत्त्व-ज्ञान जिसके आधार पर वे लोक विधियों पर विशेष बल देते हैं;
(३) संरचनावादियों का वह तत्व-ज्ञान जिसके आधार पर वे प्रतीकों एवं संहिताओं की उत्पादक प्रकृति पर विशेष बल देते हैं; तथा
(४) इन सभी सिद्धान्तों के अन्तर्गत छिटपुट रूप में पाये जाने वाले अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व-ज्ञानों को साग्रह स्वीकार कर गिडेन्स ने अपने सिद्धान्त को समृद्ध किया है।

गिडेन्स का तर्क है कि नियम कर्त्ताओं की जानकारी के अंश होते हैं। कुछ नियम आदर्शमानकीय हो सकते हैं जिन्हें कर्त्ता स्पष्ट रूप से सन्दर्भ बना सकते हैं, किन्तु, अनेक अन्य नियम अस्पष्ट रूप से समझे जाते हैं और उनका प्रयोग अन्तर्क्रिया के प्रवाह को निर्देशित करने के सन्दर्भ में इस प्रकार किया जाता है कि उनकी अभिव्यक्ति आसानी से नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त, कर्त्ता नियमों को समकालीन युग-जीवन की समस्याओं को वाणी प्रदान करने के सन्दर्भ में रूपान्तरित कर सकते हैं और उनके स्थान पर नये नियमों की पुनर्स्थापना कर सकते हैं।

संरचना के दूसरे तत्त्व संसाधनों की चर्चा करते हुए गिडेन्स का कहना है कि संसाधनों के अन्तर्गत वे सभी सुविधाएँ समाहित हैं जिनका प्रयोग कोई व्यक्ति क्रिया- सम्पादन के सन्दर्भ में करता है। गिडेन्स संसाधनों को ऐसे रूप में देखते हैं जो शक्ति उत्पादित करते हैं। किन्तु, अधिकांश सामाजिक सिद्धान्तकारों का तर्क है कि शक्ति संसाधन नहीं है। इस प्रकार, शक्ति संरचना का अभिन्न अंग है। जैसे ही कर्त्ता अन्तर्क्रिया करते हैं, वे संसाधनों का प्रयोग करते हैं और जैसे ही संसाधनों का प्रयोग करते हैं, वे दूसरों की क्रियाओं को आकार या रूप प्रदान करने के लिए शक्ति को गतिशील बनाते **हैं।**

गिडेन्स ने नियमों एवं संसाधनों को 'रूपान्तरणकारी' और 'मध्यस्तकारी' रूप में देखा है। उनका तर्क है कि नियमों और संसाधनों को भिन्न प्रतिमानों और स्वरूपों में रूपान्तरित किया जा सकता है। इसी प्रकार, नियम और संसाधन 'मध्यस्थकारी' होते हैं क्योंकि वे सामाजिक सम्बन्धों को बांधने का कार्य करते हैं।

गिडेन्स के अनुसार संरचना की रचना नियमों एवं संसाधनों से होती है और ये दोनों अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। इसी प्रकार सभी संगठनों एवं संस्थाओं का संचालन उनके अपने-अपने नियमों एवं संसाधनों से होता है। वे नियम एवं संसाधन भी कहीं स्वर्गलोक व देवलोक से नहीं आते बल्कि इस भूलोक में व्यक्तियों द्वारा ही इनकी रचना एवं पुनर्रचना की जाती है। इनके प्रबन्धकार एवं संरक्षक व्यक्ति ही होते हैं। अस्तु, गिडेन्स ने सामाजिक संरचना को ऐसे रूप में देखा है जिसका प्रयोग कर्त्ताओं द्वारा ही किया जाता है, न कि किन्हीं बाह्य यथार्थता के रूप में जो कर्त्ताओं पर दबाव डालता है या उन्हें धक्का मारकर आगे बढ़ाता है। इस प्रकार, सामाजिक संरचना को उन नियमों एवं संसाधनों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसको साकार पर्यावरणों में कर्त्ताओं के प्रयोग के रूप में रूपान्तरित किया जा सकता है। गिडेन्स का मत है कि संरचनाएँ केवल व्यवहार में विद्यमान होती हैं जिसका प्रयोग हम क्रिया में करते हैं। संरचना कोई बाह्य ढाँचा नहीं है। यह निरन्तर कर्त्ताओं द्वारा उत्पादित की जाती है जिसका प्रयोग क्रिया करते समय किया जाता है। इस प्रकार कर्त्ता, क्रिया और संरचना सम्बन्धित हैं, और इसलिए गिडेन्स द्वारा परिभाषित संरचना को कर्त्ता से बाहर नहीं देखा जा सकता। उनकी दृष्टि में संरचना की परम्परागत अवधारणा समाप्त हो चुकी है और साथ-साथ अब यह कर्त्ता के सामाजिक व्यवहार का माध्यम और परिणम बन चुकी है।

इस प्रकार गिडेन्स द्वारा प्रतिपादित संरचना की मुख्य विशेषताओं को हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं :
(१) संरचना का अस्तित्व केवल व्यवहार में होता है। उसकी रचना कर्त्ताओं द्वारा की जाती है। यह हमारी स्मृति में होती है।
(२) संरचना एक ओर जहाँ हमें क्रिया करने के लिए प्रोत्साहित करती है, वहाँ दूसरी ओर कर्त्ता को नियन्त्रित भी करती है।
(३) संरचना नियमों एवं संसाधनों की रचना है। इस रचना का विरचन कर्त्ता अपने सामाजिक अन्तर्क्रिया के दौरान करते हैं। अस्तु, सामाजिक संरचना और सामाजिक-अन्तर्क्रिया दोनों परस्पर अलिप्त होती हैं।
(४) कर्त्ता, क्रिया और संरचना एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। ये किसी भी स्थिति में एक-दूसरे से बाहर नहीं होते।
(५) संरचना कर्त्ता के सामाजिक व्यवहार का माध्यम और परिणाम दोनों ही है जिससे सामाजिक व्यवस्था की रचना होती है। गिडेन्स का तर्क है कि सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही कर्त्ता अन्तर्क्रिया करते हैं। इस सन्दर्भ में वे नियमों व संसाधनों का उत्पाद करते हैं या उनको रूपान्तरित करते हैं।
(६) संरचना का सामाजिक जीवन के एक मूर्त पर्यावरण में कर्त्ताओं का अंश होता है।
(७) सामाजिक संरचना रूपान्तरणकारी एवं लचकदार होती है।

(८) सामाजिक संरचना का प्रयोग कर्त्ताओं द्वारा दिक् और काल से परे सामाजिक सम्बन्धों के प्रतिमानों का सृजन करने के लिए किया जाता है।

(३) कर्त्ता एवं कर्त्ता की क्रिया – जैसा कि सुस्पष्ट है कि गिडेन्स ने संरचना को द्वित्व के रूप में देखा है, जैसे- सूर्य्य में य का दोहरा होना। यह वस्तुतः कर्त्ताओं की क्रियाओं का भाग है और इसलिए गिडेन्स के उपागम में, मानवीय क्रिया की गतिशीलता को समझना अत्यावश्यक है। उन्होंने एक 'स्तरीकरण प्रतिरूप' को प्रस्तावित किया है, जो मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त, प्रघटनाशास्त्र, लोकविधिविज्ञान तथा क्रिया सिद्धान्त के तत्त्वों को संश्लेषित करने के रूप में दिखाई पड़ता है। इस प्रतिरूप का चित्रण चित्र संख्या १ के निम्नतर भाग में चित्रित किया गया है। गिडेन्स के लिए "क्रिया" उन घटनाओं को निर्दिष्ट करती है जिन्हें कर्त्ता करता है। इस अर्थ में गिडेन्स ने क्रिया को 'इरादों', 'उद्देश्यों', 'साध्यों' या अन्य स्तरों से भिन्न किया है। क्रिया वह है जिसे एक परिस्थिति में वास्तव में कर्त्ता करता है जिसके परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु, यह कोई आवश्यक नहीं है कि परिणाम इरादापूर्ण ही हों। गिडेन्स ने कर्त्ता के प्रतिरूप (मॉडल) के साथ ही संरचनाकरण के सिद्धान्त के औपचारिक सामान्य कथन का श्रीगणेश किया है। उन्होंने इसे 'स्तरीकरण प्रतिरूप' इसलिए कहा है क्योंकि उन्होंने कर्त्ता को चेतना के स्तरों की एक श्रृंखला के रूप में देखा है। सर्वाधिक चेतना या 'जानकार' स्तर वह है जिसके अन्तर्गत कर्त्ता अपने स्वयं के क्रिया-कलापों के प्रवाह को प्रबोधक या मानीटर रूप में अर्थात् आत्मवाचक दृष्टि द्वारा तथा अन्यों के क्रिया-कलापों को अवबोध या 'वेर्स्टेहन'[४] द्वारा अवलोकित करता है।

संरचनाकरण सिद्धान्त का महत्वूर्ण आधार तत्त्व कर्त्ता है। हमारा समाज, वस्तुतः मानवीय क्रियाओं से ही बनता है। ये मानवीय क्रियाएँ व्यक्ति या कर्त्ता द्वारा उत्पादित एवं पुनरुत्पादित की जाती हैं। गिडेन्स ने मानवीय क्रियाओं की व्याख्या कर्त्ता या सामाजिक संरचना की अप्रधानता या अतिप्रधानता के सन्दर्भ में नहीं की है, बल्कि उन्होंने मानवीय क्रिया की व्याख्या कर्त्ता की अवधारणा के सन्दर्भ में की है। यह कर्त्ता ही है जो अपनी अधिकांश क्रियाओं के बारे में जानता है। मानवीय क्रिया के बारे में यह ज्ञान "व्यावहारिक चेतना" के माध्यम से होता है। "व्यावहारिक चेतना" ज्ञान का वह भण्डार है जिसका कोई व्यक्ति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में क्रिया करने के लिए तथा अन्यों की क्रियाओं की व्याख्या करने के लिए अप्रत्यक्षतः प्रयोग करता है। वाराणसी से नई दिल्ली जाने के लिए कर्त्ता सर्वप्रथम रेलवे स्टेशन, कैण्ट, वाराणसी जाता है। वहाँ वह टिकट-खिड़की पर पंक्ति में खड़ा होकर नियम-विनियम के अनुसार टिकट खरीदता है। टिकट लेकर वह प्लेटफार्म पर जाता है जिस पर उससे सम्बन्धित रेलगाड़ी आने वाली है या जिस प्लेटफार्म से सम्बन्धित रेलगाड़ी जाने वाली है। चूँकि कर्त्ता के पास एसी-२ वर्ग का टिकट है, अतः वह ऐसी-२ वर्ग के कम्पार्टमेन्ट में ही चढ़ता है और अपने सीट पर नम्बर देखकर बैठ जाता है। कुछ ही देर में रेलगाड़ी चल देती है और तदनुसार वह अपने गन्तव्य स्थान पर निर्धारित समय पर पहुँच जाता है। कर्त्ता की इस जानकारी को गिडेन्स ने व्यावहारिक चेतना का परिणाम माना है। मानवीय क्रिया की इस व्यावहारिक चेतना के अतिरिक्त एक तार्किक चेतना का स्तर भी होता है। जब कोई व्यक्ति अपने कार्य के लिए (और अन्यों के ऐसे ही कार्यों के व्यवहार के लिए) तर्क या बुद्धि संगत व्याख्या प्रस्तुत करता है तो उसे गिडेन्स ने व्यावहारिक चेतना कहा है। चेतना का यह स्तर व्यावहारिक चेतना से उच्चतर होता है। उदाहरणस्वरूप, रेलगाड़ी में सफर करने वाला यात्री कानूनी तौर पर यह जानता है कि यदि वह बिना टिकट लिये सफर करता है तब टी.टी.ई. द्वारा पकड़े जाने पर उसे दण्डित होना पड़ेगा और सम्भवतः उसको जेल या कारागार भी जाना पड़ सकता है। कर्त्ता की यह चेतना ही तार्किक चेतना है।

मानवीय क्रिया की इन दोनों चेतनाओं के अतिरिक्त, गिडेन्स ने एक और अन्य तीसरी चेतना के स्तर की भी चर्चा की है जिसे उन्होंने अचेतन अभिप्रेरणा के नाम से सम्बोधित किया है। क्रिया-सम्पादन के लिए कर्त्ता पर कई प्रकार के दबाव होते हैं जिसे वह नहीं देखता है। कुछ क्रियाओं को सम्पादित करने में उसे हिचकिचाहट होती है, उसे संकोच भी होता है। ऐसी क्रियाएँ जिसका वह सम्पादन नहीं कर पाता, उसके अचेतन मन में स्थान ग्रहण कर लेती हैं और वहाँ वे दब जाती हैं। गिडेन्स का तर्क है कि ऐसी बहुत सी अभिप्रेरणाएँ होती हैं जो अचेतन होती हैं। ये अभिप्रेरणाएँ अचेतन मन में बिखरी या फैली होती है, किन्तु, यदा-कदा चेतनात्मक व्यवहारों को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार व्यक्ति के अनेकानेक चेतन व्यवहारों की अभिप्रेरणाएँ व्यक्ति को उसके अचेतन अभिप्रेरणाओं से मिलती हैं। कथ्य है कि सामाजिक सिद्धान्त में अचेतन का पुनः प्रवर्तित करने में

गिडेन्स ने एरिक एरिकसन के मनोविश्लेषणात्मक विचारों को ग्रहीत किया है। मानवीय क्रिया प्रबोधन के इस विश्लेषण को हम निम्नलिखित चित्र के आधार पर प्रदर्शित कर सकते हैं :

चित्र संख्या-१

क्रिया की गतिशीलता

संस्थागत प्रतिमान

(अ) क्षेत्रीय सन्दर्भ

(ब) नित्यचर्यात्मक सन्दर्भ

सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में अन्यों के साथ अन्तर्क्रिया

↕

तार्किक चेतना के माध्यम से तर्कबुद्धिसंगत व्याख्या

↕

क्रियाओं का आत्मवाचक प्रबोधक

↕

व्यावहारिक चेतना के माध्यम से व्याख्या

↕

अचेतन दबाव

↕

सात्त्विक सुरक्षा बनाए रखने के लिए अचेतन अभिप्रेरणाएँ (अन्यों से विश्वास प्राप्त करना एवं चिन्ताओं को कम करना)

कर्त्ता को अपने सामाजिक पर्यावरण के बारे में पर्याप्त जानकारी होती है। उसे यह बोध होता है कि समाज के सदस्यों के साथ किस प्रकार का व्यवहार व आचरण करना चाहिए। व्यावहारिक जानकारी ऐसी जानकारी होती है जो समाज में उसे सदैव होती रहती है। इसी जानकारी से वह अपने सन्दर्भ में तथा अन्यों के सन्दर्भ में घटनाओं की व्याख्या करता है। कर्त्ता का यह व्यवहार नित्यचर्या के दौरान होता रहता है। नित्यचर्यारण के सन्दर्भ में ऐसा व्यवहार वह अन्तर्क्रिया के प्रसंग में करता रहता है। परम्परागत समाज में नित्यक्रम से वह प्रातः होते ही सर्वप्रथम अपने इष्टदेव व माता-पिता को नमन या प्रणाम करता है, उनके सामने सिर झुकाता है। इसके बाद वह अन्य लौकिक कार्यों को सम्पादित करने में संलग्न व दत्तचित्त होता है। उसे इस बात की भी जानकारी होती है कि यदि वह अपने माता-पिता व गुरुजन का आदर नहीं करता है, उनके प्रति श्रद्धानत् नहीं रहता है तो लोग उसे हेय की दृष्टि से देखेंगे। वह इस चौपाई का अर्थ जानता है कि ''मानहि माता-पिता नहीं देवा। सन्तन से करवावहिं सेवा।। जिनके यह आचरण भवानी। सो जानइ निसिचर सम प्राणी।।'' इस सन्दर्भ में उसका यह व्यवहार तार्किक चेतना का परिणाम होता है। इन दोनों व्यवहारों के अतिरिक्त, उसका एक तीसरा व्यवहार अभिप्रेरणात्मक भी हो सकता है जिसका सम्पादन व व्याख्या वह अपने ज्ञान के परोक्ष भण्डार से (अचेतन भण्डार से) कर सकता है।

चित्र संख्या १ में हमने यह दर्शाया है कि संस्थागत प्रतिमान क्रिया की गतिशीलता को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही हम यह भी देखते हैं कि अचेतन अभिप्रेरणाएँ जो सात्त्विक सुरक्षा को बनाए रखती हैं, के लिए नित्यचर्यात्मक अन्तर्क्रियाओं जो कि क्षेत्रीय होती हैं की महती आवश्यक्ता होती है। ऐसे क्षेत्रीयकरण और नित्यचर्याकरण कर्त्ताओं के भूतकालीन अन्तर्क्रियाओं के उत्पाद होते हैं। यद्यपि वे कर्त्ताओं की वर्तमान (और भविष्यगत) क्रियाओं के माध्यम से सतत् बने रहते हैं या पुनरुत्पादित किये जाते हैं। नित्यचर्याओं एवं क्षेत्रों को बनाए रखने के लिए कर्त्ताओं को अपनी क्रियाओं को अपने संचित ज्ञान-भण्डार एवं तार्किक सामर्थ्यों पर चित्रांकित कर आवश्यक रूप से प्रबोधक या सचेत करने वाला (मॉनिटर) होना पड़ता है। इस रूप में, गिडेन्स संस्थागत प्रतिमानों को क्रिया की प्रकृति में देखते हैं। संस्थाओं एवं कर्त्ताओं का एक-दूसरे के बिना अस्तित्व सम्भव नहीं हो सकता। वस्तुतः संस्थाएँ कर्त्ताओं द्वारा पुनरुत्पादित व्यवहार ही हैं। अर्थात् कर्त्ताओं द्वारा पुनरुत्पादित व्यवहारों को ही संस्थाओं के नाम से जाना जाता है, जबकि क्रिया की चेतन और अचेतन गतिशीलता संस्थागत प्रतिमानों द्वारा प्रदत्त नित्यचर्याओं एवं क्षेत्रों पर आधारित होती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि गिडेन्स का यह सैद्धान्तिक प्रयास भिन्न-भिन्न सैद्धान्तिक परम्पराओं का संश्लेषण है। गिडेन्स की संरचना का नियमों एवं साधनों के रूप में नवीन सम्प्रत्ययीकरण के जो स्वर उगे हैं वे उनके संरचनाकरण के सिद्धान्त में बीज रूप में प्रस्फुटित होते रहे हैं। गिडेन्स का निर्भीक अवलोकन संरचना-कर्त्ता का द्वित्व सम्बन्ध है। उन्होंने निडर होकर तर्क प्रस्तुत किया कि संरचना-कर्त्ता का सम्बन्ध द्वैतवादी नहीं बल्कि द्वयात्मक या द्वित्व है। न तो कर्त्ता संरचना का निर्धारण करता है और न ही संरचना कर्त्ता का निर्धारण करती है। उन्होंने संरचना के द्वित्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। संरचना के द्वित्व की अवधारणा जानकार कर्त्ताओं द्वारा सामाजिक अन्तर्क्रिया के उत्पाद को दिक् और काल से परे सामाजिक व्यवस्था के पुनरुत्पादन के साथ संयुक्त करती हैं। इस प्रकार गिडेन्स का संरचनाकरण का सिद्धान्त एक द्वयात्मक प्रक्रिया है जिसमें नियमों एवं संसाधनों का प्रयोग दिक् और काल के परे अन्तर्क्रिया को संगठित करने के लिए किया जाता है, और इस प्रयोग के द्वारा, इन नियमों तथा संसाधनों को पुनरुत्पादित या रूपान्तरित किया जाता है। किन्तु, कुल मिलाकर कहना पड़ेगा कि गिडेन्स के इस सिद्धान्त के प्रति भी समाजशास्त्रियों में आलोचनात्मक स्वर उठा है। उनके इस प्रौढ़ चिन्तन के प्रति भी

चोट करते उद्गार अभिव्यक्त किये गये हैं। इन आलोचनाओं के स्वर को हम निम्नलिखित रूप में रेखांकित व रूपायित कर सकते हैं :

(१) संरचनाकरण का सिद्धान्त यद्यपि सुस्पष्ट तथा अर्थपूर्ण है, तथापि जोनाथन टर्नर जैसे प्रखर सिद्धान्तकारों का दोषारोपण है कि यह अस्पष्ट है, क्योंकि इसमें विशिष्ट शब्दावलियों, रूपकों एवं सामान्य विचारों का भरपूर प्रयोग किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप, बहुधा इस सिद्धान्त को समझना बहुत कठिन हो जाता है।[५] द्वैतवाद एवं द्वित्व का जिस रूप में गिडेन्स ने प्रस्तुतीकरण किया है वह अनेक रूप में विसंगतियों को स्पर्श करती है। इसी तरह कर्त्ता (एजेन्ट), क्रिया (एजेन्सी) एवं एक्शन पदों को लेकर एक सामान्य अध्येता (स्कॉलर) गिडेन्स की चिन्तन की सीमा में शायद ही प्रवेश पा सके। 'एजेन्ट', 'एजेन्सी' और 'एक्शन' शब्दों को लेकर सामान्य अध्येताओं में कई भ्रम पैदा हो जाते हैं।

यहाँ एक गम्भीर प्रश्न उठाया जा सकता है कि किस आधार पर गिडेन्स के इस सिद्धान्त को अस्पष्ट कहा जा सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में जोनाथन टर्नर का निम्नलिखित तर्क हैः

(१) गिडेन्स का यह सिद्धान्त वास्तव में परिभाषाओं की एक श्रृंखला है। अवधारणाओं के बीच संयोजन के प्रयास स्पष्ट नहीं हैं। गिडेन्स के तर्क विश्लेषणात्मक न होकर अक्सर उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। वस्तुतः उदाहरण द्वारा प्रस्तुत विश्लेषणात्मक व्याख्या अत्यन्त कठिन होती है। उदाहरणस्वरूप, गिडेन्स ने अपने कार्यों में कई स्थानों पर समान उदाहरण प्रस्तुत कर संरचनात्मक सिद्धान्तों एवं संरचनात्मक समूहों की अवधारणाओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है, और तब भी इन विचारों की परिभाषाएँ तथा उनकी अवधारणात्मक व्याख्याएँ निश्चित रूप से अस्पष्ट हैं।

(२) हेल्ड एवं थाम्पसन ने गिडेन्स के संरचनाकरण के सिद्धान्त की आलोचना के सन्दर्भ में उनके द्वारा संरचना की अवधारणा की पुनर्व्याख्या को अस्पष्ट माना है।[६] उनका कहना है कि गिडेन्स ने संरचना को नियमों एवं संसाधनों का ढाँचा माना है, किन्तु, इन पदों या शब्दों का प्रयोग उन्होंने न तो किसी सुपरिचित तरीके से किया है और न ही पर्याप्त रूप से इसकी सुस्पष्ट व्याख्या ही की है। इसके अतिरिक्त, तथापि, एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि ये नियम एवं संसाधन कहाँ स्थित हैं अथवा अधिक औपचारिक रूप से पूछा जाये तो उनकी प्रस्थिति की यथार्थता क्या है? इसके उत्तर में गिडेन्स के दो तर्क हैं। एक तो यह कि संरचना मानवीय स्मृति में स्थित होती है और दूसरे अन्तर्क्रियात्मक व्यवहारों के रूप में अवस्थित होती है। ये दोनों भिन्न स्थितियाँ हमें दो भिन्न उत्तरों का अर्थबोध कराती हैं। कोई भी व्यक्ति साहस के साथ संरचना की इन धारणाओं को द्वैत कह सकता है। स्मृति रूपरेखा को गिडेन्स ने लेवी स्ट्रास के अचेतन संरचनावाद का सूचक माना है, न कि फ्रायड का। गिडेन्स ने इसे अचेतन संरचनावाद की अपेक्षा अनकहा रूप में लिया है। अन्तर्क्रियावाद प्रतीकात्मक अन्तर्क्रियावाद की भाँति पूर्णतः क्रिया सिद्धान्त है, जिसमें संरचना को कर्त्ताओं के चेतन व्यवहारों का उत्पाद माना जाता है। अस्तु, इन्हें संरचना के विरोधी विचारों के रूप में समझा जा सकता है।

(३) गिडेन्स अपने तर्क में द्वैतवाद की समस्या का समाधान करने के लिए और समुच्चयबोधक शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द का बार-बार प्रयोग करना उनका सामान्य व्यवहार है। उनका तर्क है कि संरचना द्वैतवादी नहीं बल्कि द्वित्व या द्वयात्मक है क्योंकि यह समर्थ या शक्तिशाली और बाध्यकारी है। इन दोनों शब्दों में न केवल भिन्न-भिन्न अर्थबोध होते हैं बल्कि वास्तव में ये एक-दूसरे का खण्डन भी करते हैं। वस्तुतः ये दोनों शब्द एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं। समर्थ शब्द का तात्पर्य शक्तिशाली या योग्य आदि बनाने से है। इस शब्द के और कई अर्थ होते हैं जिनका चुनाव कर्त्ता अपने आचरण समपादन में करता है। किन्तु, इस चुनाव की आवृत्ति सीमित होनी चाहिए। इसके विपरीत, बाध्यकारी पद है जिसका अभिप्राय है व्यक्ति पर 'बन्धन' डालना। जिस चीज की 'वस्तुगत यथार्थता' होगी, वह वहाँ विचार-कर्त्ता के लिए बाध्यता होगी, वहाँ वह विचार-कर्त्ता पर किसी न किसी प्रकार का बन्धन भी अवश्य डालेगी, उसे 'बाध्य' करेगी। वह कैसे? यदि हम समर्थ हैं, शक्तिशाली हैं तो फिर हम पर प्रतिरोध या बन्धन कैसा?इस सन्दर्भ में संरचना पद का प्रयोग करने का कोई अर्थ नहीं है। यदि यहाँ गिडेन्स दुर्खीम के इस कथन को कि 'सामाजिक तथ्यों' में हम पर बन्धन डालने की शक्ति होती है, को स्वीकार करते हैं तो उसके आधार पर दुर्खीम को कहना पड़ेगा कि सामाजिक तथ्यों में मनुष्य को 'बाधित करने की शक्ति' होती है तो फिर दुर्खीम एवं गिडेन्स की सोच एक समान हो जाएगी। अस्तु, गिडेन्स का यह विचार युक्तियुक्त नहीं है।

(४) इससे सम्बन्धित एक अन्य प्रश्न यह उठता है कि गिडेन्स के सिद्धान्त का कर्त्ता कौन है या वह क्या चुनाव करता है? यदि संरचना कर्त्ता के व्यावहारिक चेतना के अन्तर्गत स्मृति में अन्तर्निहित है तो तर्क यह होना चाहिए कि संरचना वस्तुतः कर्त्ता का निर्माण करती है। यदि कर्त्ता संरचना से अलग नहीं है तब स्वतन्त्र कर्त्ता के सत्तामूलक प्रस्थिति का अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाएगा। यह तथ्यारोपण गिडेन्स के सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

(५) गिडेन्स का तर्क केवल संरचना की क्रिया के रूपान्तरण के प्रकटन या आविर्भाव को दर्शाता है। तथ्यतः क्या होता है या किस

रूप में होता है, इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि द्वित्व के अवधारणाकरण के सभी दावों को स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह नहीं कहा जा सकता है कि क्रिया संरचना का रूपान्तरण है। यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि संरचना सचमुच में स्मृति और क्रिया के उदाहरणों या दृष्टान्तों में स्थित होती है तब यह सचमुच में क्रिया के स्तर में स्थित है और कुछ नहीं है।

(६) गिडेन्स के तर्क में द्वैतवाद के समाधान की दिशा में एक अन्य पारिभाषिक दोष भी अन्तर्निहित है। उनका तर्क है कि संरचना क्रिया की रचना करती है जो (क्रिया) पुनः संरचना का पुनरुत्पादन करती है जो क्रिया की रचना करती है और इसी तरह यह क्रम साथ-साथ चलता रहता है। यह भी क्रिया की संरचना के रूपान्तरण का ही एक पक्ष है। यह गोलापन केवल कर्त्ता एवं कर्त्ता के चेतना के स्तर पर हो सकता है। यह गोलापन एक ओर आत्मवाचक प्रबोधक क्रिया की स्थिति, एवं व्यावहारिक चेतना एवं दूसरी ओर संरचना की स्थिति के बीच का गोलापन है।

(७) इस सभी व्यक्तिवादी रूपान्तरण में कर्त्ता का पक्ष जो वास्तव में व्यक्ति का तादात्म्य स्थपित करता है, वह लुप्त हो जाता है। यह विरोधात्मक तथ्य है। कर्त्ता का तृतीय एवं सर्वाधिक अचेतन सोपान, अचेतन अभिप्रेरणाओं का सोपान और ज्ञान एक ओर तो स्वतन्त्र उद्‌गम स्रोत के रूप में दिखाई पड़ता है और दूसरी बार यह निर्धारक रूप में भी दिखाई पड़ता है, और फिर भी, इसका विवेचन न तो संरचना एवं संरचनाकरण के सम्बन्धों में और न ही विश्लेषण में अन्यत्र स्थान पर ही किया गया है।

(८) कुछ आलोचकों की टिप्पणी है कि आनुभविक विश्लेषण के सन्दर्भ में गिडेन्स का यह सिद्धान्त उपर्युक्त नहीं है। अस्तु, आनुभविक अनुसंधान में यह बहुत कम उपयोगी है। इस सिद्धान्त का अमूर्त स्तर इसकी उपयोगिता को कमजोर बना देता है। आनुभविक अध्ययन के लिए अनुसंधाताओं को स्वयं राह बनानी होगी।

(९) गिडेन्स के इस सिद्धान्त की एक उल्लेखनीय कमजोरी यह है कि गिडेन्स ने अपने पूर्ववर्ती विचारकों द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षवादी एवं प्रकृतिवादी उपागम पर आक्रमण किया है। गिडेन्स उन समस्त विचारों के विरुद्ध हैं जो समाजशास्त्र को विज्ञान बनाते हैं। उनका तर्क है कि समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की रचना में प्राकृतिक नियमों की स्थापना कथमपि नहीं की जा सकती। प्रत्यक्षवाद उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पश्चिमी जगत् में उत्पन्न हुआ एक वैचारिक आन्दोलन है। यह आन्दोलन वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से अनुभवसिद्ध प्रघटनाओं का अध्ययन करते हुए उनके बीच सक्रिय प्राकृतिक नियमों की खोज का प्रयास करता है ताकि इन नियमों के आधार पर तत्कालीन बौद्धिक अव्यवस्था और उससे उत्पन्न सामाजिक दूरव्यवस्था को दूर किया जा सके। इस आन्दोलन का प्रादुर्भाव मूलतः प्राकृतिक प्रघटनाओं के क्षेत्र में हुआ था। वहाँ फ्रांसिस बेकन, गैलिलेयी, गैलीलियो, रैन देकार्ट आदि इसके संस्थापक रहे हैं। प्रत्यक्षवाद को प्राकृतिक प्रघटनाओं के क्षेत्र में आगे बढ़ाते हुए सामाजिक प्रघटनाओं तक विस्तारित करने का श्रेय आगस्त कोंत को प्राप्त है। इसी प्रयास में आगस्त कोंत ने समाजशास्त्र में प्रत्यक्षवाद पद की रचना तथा स्वयं 'समाजशास्त्र' की स्थापना का श्रेय भी प्राप्त किया था। प्रत्यक्षवाद ने कालक्रम में तीन रूप अपनाया है : सामाजिक प्रत्यक्षवाद, अनुभवात्मक आलोचनावाद तथा नव-प्रत्यक्षवाद। सामाजिक प्रत्यक्षवाद के साथ आगस्त कोंत, हरबर्ट स्पेन्सर, जे.एस. मिल आदि का नाम, आलोचनात्मक प्रत्यक्षवाद के साथ अर्न्स्ट मैक अवेनैरियस, फ्रेंज एडलर आदि के नाम तथा नव-प्रत्यक्षवाद के नाम रसेल, लुडविग विजेस्टीन, रुडोल्फ का नैंप आदि के साथ जुड़े हैं। सामाजिक प्रत्यक्षवाद अनुभव के आधार पर वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से सामाजिक प्रघटनाओं के मूल में निहित प्राकृतिक नियमों की खोज का प्रयास करता है। अनुभवात्मक आलोचनावाद व्यक्तिनिष्ठतावाद का रूप ले रहे चरम मनोविज्ञानवाद की दृष्टि से ज्ञान की समस्याओं का अध्ययन करता है। नव-प्रत्यक्षवाद वैज्ञानिक अन्वेषणों की संरचना, प्रतीकात्मक तर्क, भाषा की दर्शनशास्त्रीय समस्याओं आदि पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। हमारा तर्क है कि गिडेन्स को समाजशास्त्रीय विज्ञानवादी प्रवृत्ति पर प्रहार करना किस सीमा तक तर्कसंगत है, यह हमें पुनर्विचार करना होगा, नहीं तो समाजशास्त्र पर रूप धारण कर लेगा।

(१०) जोनाथन टर्नर ने न केवल गिडेन्स के संरचनाकरण के सिद्धान्त की सीमाओं को उद्‌घाटित किया है, अपितु समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में उनके द्वारा प्रतिपादित नवीन अवधारणाओं को बहुत उपयुक्त नहीं माना है। टर्नर की दृष्टि में गिडेन्स का सिद्धान्त वस्तुतः केवल अवधारणाओं की एक व्यवस्था है। यह बहुत कुछ टॉलकाट पारसन्स के विश्लेषणात्मक यथार्थवाद की समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक योजना के समान है। यद्यपि टर्नर ने गिडेन्स की इस योजना को पारसन्स की योजना से अधिक रोचक एवं कुतूहल उत्पन्न करने वाला माना है। टर्नर का कहना है कि गिडेन्स का सिद्धान्त परिभाषाओं की श्रृंखला है जो ठीक ढंग से एक साथ जुड़ी हुई नहीं है।[७]

(११) जोनाथन टर्नर ने यह स्वीकार किया है कि नियम के बारे में गिडेन्स की अत्यन्त संकुचित दृष्टि है क्योंकि उनके लिए नियम एक आनुभविक सामान्यीकरण है - कहना न होगा कि उनका ऐसा

कहना आनुभविक घटनाओं के बीच सहविरोध कथन को सूचित करता है। यदि यह आपकी दृष्टि है, तब यह कहना सरल है कि कोई भी सार्वभौमिक नहीं है। इसके बावजूद, सार्वभौमिक नियम हैं – ऐसा आज के वैज्ञानिकों का दावा है। इसके अतिरिक्त, स्वयं गिडेन्स ने नियमों को सुस्पष्ट करने का प्रयास किया है, यह दूसरी बात है कि उन्होंने उसकी सार्वभौमिकता के रूप को अस्वीकार किया है। जोनाथन टर्नर ने यह भी स्वीकार किया है कि गिडेन्स के सिद्धान्त में वैज्ञानिक उपागम को नकारा गया है जो उनके चिन्तन विधा का एक प्रमुख दोष है। जोनाथन टर्नर का तर्क है कि वे जो गिडेन्स की अवधारणा के साथ कार्य कर रहे हैं वे प्रत्यक्षवाद के उतने विरोधी नहीं है जितना कि गिडेन्स स्वयं हैं। जोनाथन टर्नर को सुझाव है कि गिडेन्स की अपेक्षा यह अधिक सम्भावित है कि समाज के प्राकृतिक विज्ञान को विकसति करने के लिए – अर्थात्, सामाजिक ब्रह्माण्ड के अमूर्त नियमों को विकसित करने के लिए सहायता प्रदान करने की बात स्वीकार करनी ही होगी।

अन्ततः, हमें स्वीकार करना होगा कि गिडेन्स के संरचनाकरण के सिद्धान्त के प्रतिपादन से समाज की संरचना एवं क्रिया के विषय में जो द्वैतवादी धुंध छाया हुआ था, उसकी सफाई हो जाती है। गिडेन्स इस धुंध की सफाई करते हुए यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि संरचना और क्रिया की यह द्वैतवादी दृष्टि समाज की यथार्थता का अर्थबोध कराने में हमें कोसों दूर ले जाती हैं। अस्तु, इसे विलुप्त कर हमें 'संरचना के द्वित्व' या द्वयात्मकता को अंगीकार करना चाहिए। हमें संरचना और क्रिया को द्वित्व के रूप में अर्थात् एक एकल प्रघटना के समकालिक पक्षों के रूप में स्वीकार करना चाहिए। द्वित्व या द्वयात्मकता के आधार पर ही सामाजिक संरचना की यथार्थता का सम्यक् अथबोध प्राप्त किया जा सकता है। संरचनाकरण की धारणा का गिडेन्स की 'संरचना के द्वित्व' की अवधारणा के साथ साहचर्य है, जिसमें संरचनाओं को जहाँ एक ओर मानव क्रिया द्वारा उत्पादित माना जाता है, वहाँ दूसरी ओर उन्हें सामाजिक क्रिया के माध्यम के रूप में भी स्वीकार किया जता है। अस्तु, संरचनाकरण के सिद्धान्त को संक्षिप्त रूप में गिडेन्स के समाजशास्त्र का मूलाधार कहा जा सकता है जिसके अन्तर्गत कर्त्ताओं की सुविज्ञता, क्रिया के लौकिक एवं स्थानीय आयाम दिन-प्रतिदिन के जीवन में क्रिया का खुलापन एवं प्रासंगिकी और समाजशास्त्र में क्रिया और संरचना का मिथ्यावादी पृथक्करण आदि समाविष्ट हैं। कहना न होगा कि गिडेन्स के संरचनाकरण के सिद्धान्त का प्रभाव आधुनिक समाजशास्त्रीय साहित्य पर खूब पड़ा है।

सन्दर्भ

१. अंथोनी गिडेन्स, 'दि कांस्ट्यूशन ऑफ सोसाइटी : आउटलाइन ऑफ दि थीऑरि ऑफ स्ट्रक्चरेशन', पालिटी प्रेस, आक्सफोर्ड, १९८४, पृ० ३३५.

२. अंथोनी गिडेन्स, 'सेन्ट्रल प्राब्लेम्स इन सोशल थीऑरि', मैकमिलन प्रेस लिमिटेड, लन्दन, १९७९, पृ० ६९.

३. विशेषकर, देखें, अंथोनी गिडेन्स, 'ए कन्टेम्परोरि क्रिटिक ऑफ हिस्टारिकल मैटरियलिज्म', वाल्यूम १, पावर, प्रोपर्टी ऐण्ड दि स्टेट, मैकमिलन प्रेस लिमिटेड, लन्दन, १९८१.

४. मैक्स वेबर को अवबोधात्मक समाजशास्त्र का जनक होने का श्रेय प्राप्त है। यह श्रेय उन्होंने सामाजिक प्रघटनाओं के 'आत्मपरक' अर्थ की ज्ञान-प्राप्ति अवबोध को अपने अध्ययन का लक्ष्य बनाकर प्राप्त किया था। इसके पहले आगस्त कोंत, हरबर्ट स्पेन्सर आदि प्रत्यक्षवादी समाजशास्त्री सामाजिक प्रघटनाओं के 'वस्तुपरक' अर्थ के स्पष्टीकरण में व्यस्त रहे हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि मैक्स वेबर के पूर्व किसी का ध्यान सामाजिक प्रघटनाओं के आत्मपरक अध्ययन की ओर गया ही नहीं था। जॉन गुस्टाव ड्रायसेन और विलहेम्स डिल्थी जैसे विचारक सामाजिक प्रघटनाओं के 'अवबोध' में पहले से ही लगे हुए थे। परन्तु 'अवबोध' को अगर समाजशास्त्रीय अध्ययन का लक्ष्य किसी ने बनाया तो वे मैक्स वेबर ही थे, डिल्थी और ड्रायसेन तो अवबोध को सामाजिक विज्ञानों की पद्धति के रूप में ही स्वीकार कर रहे थे।

५. जोनाथन टर्नर, 'दि स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थीऑरि', रावत पब्लिकेशन, २००१, पृ० ४७४-४७८.

६. डी. हेल्ड ऐण्ड जे. थॉम्पसन, (सम्पादित), 'सोशल थीऑरि ऑफ माडर्न सोसाइट्जि, अंथोनी गिडेन्स ऐण्ड हिज क्रिटिक्स', कैम्ब्रिज, कप, १९८९.

७. जोनाथन टर्नर, पूर्वोक्त.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

हिन्दू विवाह पर आधुनिकीकरण का प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ. ब्रजेश कुमार सिंह

भारतीय समाज में परिवर्ती सामाजिक-साँस्कृतिक परिस्थितियों तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप परिवार विवाह, धर्म, जाति आदि आधारभूत संस्थाएं परिवर्तन की तीव्र प्रक्रिया से गुजर रही हैं। प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत हिन्दू विवाह की संरचना एवं प्रकार्यों पर आधुनिकीकरण के प्रभाव को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

सामाजिक संस्थाएँ, समाज और उसके सदस्यों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अस्तित्व में आती हैं। कुछ सामाजिक संस्थाओं का निर्माण समाज की भौतिक जरूरतों के सम्बन्ध में उसके सदस्यों द्वारा व्यवस्थित रूप से किया जाता है जैसे- चिकित्सा, शिक्षा, प्रेस आदि। किन्तु कुछ सामाजिक संस्थाएं समय के साथ उद्विकासीय रूप से अस्तित्व में आती हैं जैसे- परिवार, विवाह, धर्म और जाति। मानव की विभिन्न प्राणिशास्त्रीय आवश्यकताओं में यौन सन्तुष्टि एक आधारभूत आवश्यकता है। इसी आवश्यकता ने विवाह नामक संस्था को जन्म दिया है। भारतीय समाज में यदि परिवार सबसे छोटी किन्तु महत्वपूर्ण इकाई है तो इसका अस्तित्व विवाह पर ही निर्भर रहता है। विवाह एक ऐसी संस्था है जो किसी न किसी प्रकार से प्रत्येक समाज में विद्यमान है। पति अथवा पत्नी को प्राप्त करने के प्रत्येक समाज में कुछ वैध तरीके होते हैं। इन तरीकों को समाज की स्वीकृति होती है। यह तरीके ही वस्तुतः विवाह कहलाते हैं, जिनका मूल है प्रजनन द्वारा मनुष्य जाति को बनाए रखना। आधुनिकीकरण ने भारतीय समाज के विभिन्न पक्षों को प्रभावित किया है, इसने हिन्दू विवाह के प्रेरकों, धर्म, प्रजा तथा रति में से धर्म और प्रजा को गौण बनाकर रति को प्रमुखता प्रदान की है, जिससे विवाह जैसी संस्था के प्रति लोगो में आस्था और विश्वास परिवर्तित हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दू विवाह की संरचना एवं प्रकार्य पर आधुनिकीकरण के प्रभाव को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

हिन्दू विवाह का उद्देश्य : हिन्दू समाज में विवाह एक धार्मिक संस्कार है तथा विवाह को धार्मिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक आवश्यक कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः हिन्दू विवाह का उद्देश्य केवल कामवासना को तृप्त करना नहीं है। हिन्दू धर्म शास्त्रों के अनुसार विवाह के तीन मुख्य प्रयोजन धर्म का पालन, सन्तान की प्राप्ति और रति है।[1] ।

भारत में विवाह के सम्बन्ध में के.एम. कपाड़िया (१६४७, १६५५), मजूमदार (१६४४, १६५०), दफ्तरी (१६४८), रामबली पाण्डेय (१६४६), एम.एन. श्रीनिवास (१६४२), पी.एन. प्रभु, पी.वी. काणे, आर.एन. सक्सेना, के.टी. मर्चेन्ट तथा इरावती कर्वे आदि ने सूक्ष्म अध्ययन किया है। प्रमुख समाजशास्त्री जॉनसन के अनुसार – "विवाह के सम्बन्ध में आवश्यक बात यह है कि यह एक स्थाई सम्बन्ध है, जिसमें कि एक पुरूष तथा एक स्त्री समाज में अपनी प्रतिष्ठा की हानि किए बिना संतान उत्पन्न करने की सामाजिक स्वीकृति पाते हैं।[2]

विवाह हिन्दू समाज की एक महत्वपूर्ण संस्था है। समाज की सत्ता, संरक्षण, सातत्य और वृद्धि इसी पर अवलम्बित है। इसे हिन्दू सामाजिक संस्थाओं की रीढ़ कहा जाए तो अनुचित न होगा। विवाह द्वारा मनुष्य सन्तानोत्पत्ति करता है तथा संतान के माध्यम से अपने को फैलाता और अमर बनाता है।

आधुनिकीकरण की संकल्पना : तात्विक अर्थ के दृष्टिकोण से आधुनिकता (Modernity) और आधुनिकीकरण (Modernization) दोनों दो बाते हैं। वस्तुतः समाज विज्ञान के प्राथमिक पाठक बिना किसी शंका में पड़े यह समझ सकते हैं कि आधुनिकता एक परम लक्ष्य या शाश्वत परिणाम है जिसे आधुनिकीकरण के माध्यम से पाते हैं। दूसरे शब्दों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से हम, हमारा समाज और उसकी संस्थाएँ आदि आधुनिकता को प्राप्त करती हैं। आधुनिकता एक ऐसी अवधारणा है जो इस बात पर बल देती है कि बौद्धिकता और तार्किकता के माध्यम से सामाजिक प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। यह अट्ठारहवीं शताब्दी के यूरोप में हुए ज्ञानोदय के गर्भ की उपज है जो बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक संकल्पना के रूप में अस्तित्व में आया। ज्ञानोदय के विचारकों का विश्वास था कि तर्क और बुद्धि के माध्यम से सामाजिक, बौद्धिक और वैज्ञानिक समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है।

❑ असोशिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

किन्तु जब हम सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं तो अलग बात सामने आती हैं। यह गलत धारणा है कि आधुनिकता पूरी तरह से आ गई है। बीसवीं सदी के अंत तक दुनिया का कोई समाज पूर्णतः आधुनिक नहीं हो पाया है। दुनिया के सभी समाजों में यहां तक कि पश्चिम के तथाकथित आधुनिक समाजों सहित सभी समाज आज भी जाति, नस्ल, वर्ग, लिंग-भेद, धार्मिक अंधविश्वास, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, क्षेत्रीयतावाद, पुराजातीयता जैसे परम्परागत विचारों से ग्रस्त्र हैं। यही कारण है कि हेबरमॉ ने कहा है कि आधुनिकता अभी एक अधूरी परियोजना (Unfinished Project) है।[३]

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बौद्धिक जगत में आज यह स्वीकार किया जा रहा है कि आधुनिकता, सांस्कृतिक, संरचनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से एक सापेक्ष प्रक्रिया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में भी सांस्कृतिक सापेक्षिता और इतिहासपरकता का तत्व आज वर्तमान है।[४] अतः आज वैश्वीकरण भी आधुनिकता का एक चर है।

इस प्रकार, आधुनिकता की अवधारणा में वैज्ञानिकता के साथ दो और मूल्य, पूँजीवाद तथा जनतंत्र जुड़ गए। कालान्तर में इक्कीसवीं शताब्दी तक उपरोक्त तीन मूल्यों के साथ एक अन्य चौथा मूल्य वैश्वीकरण भी जुड़ गया है। अब वे समाज आधुनिक माने जाने लगे हैं जहाँ धर्म सार्वजनिक जीवन को प्रभावित नहीं कर रहा हो और अब यह व्यक्तिगत आचरण का विषय बन गया हो (धर्मनिपेक्षता एवं धार्मिक स्वतंत्रता), समाज का स्वरूप पूँजीवादी हो गया हो (मुक्त व्यापार की स्वतंत्रता), राजनीतिक व्यवस्था जनतांत्रिक हो गई हो (नागरिक अधिकारों का विकास) और समाज वैश्वीकरण की प्रक्रिया से जुड़ा हो (खुला समाज)।

वस्तुतः आधुनिक युग में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन हुए हैं, परिणामतः सामाजिक और आर्थिक जीवन में भी अनगिनत परिवर्तन क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और विश्व स्तर पर निरन्तर हो रहे हैं। इन्हीं परिवर्तनों को स्पष्ट करने के लिए समाजवैज्ञानिकों ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को एक अवधारणा के रूप में प्रयोग किया है।

अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य हिन्दू विवाह की संरचना एवं प्रकार्यों पर आधुनिकीकरण के प्रभाव का पता लगाना है। इसके अन्तर्गत विवाह की प्रक्रिया, वैवाहिक सम्बन्ध, विवाह ढूँढ़ने की प्रक्रिया, जीवन साथी का चयन, दहेज प्रथा और दहेज के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधान, विधवा विवाह, तलाक की व्यवस्था, प्रेम विवाह, विवाह का पंजीयन, विवाह में वीडियो रिकार्डिंग, लिव-इन सम्बन्ध एवं जीवन साथी के चुनाव में संचार क्रांन्ति की भूमिका, ई-मैरिज आदि बिन्दुओं के माध्यम से हिन्दू विवाह की संरचना एवं प्रकार्य पर आधुनिकीकरण के प्रभावों को ज्ञात करना है।

अध्ययन पद्धति : अध्ययन का समग्र वाराणसी नगर है, जो कि व्यवस्थित विकास हेतु ९० वार्डों में विभाजित है। इन ९० वार्डों से प्रतिनिधि १० वार्डों का चयन ग्रिड प्रणाली द्वारा किया गया तत्पश्चात प्रत्येक वार्ड से २०-२० प्रतिनिधि इकाइयों का चयन सोदेश्यपूर्ण प्रतिदर्शन विधि द्वारा किया गया। इस प्रकार कुल २०० प्रतिनिधि इकाइयों पर इस शोध को स्थापित किया गया है। महिलाओं की कुल आबादी के लगभग ५० प्रतिशत को ध्यान में रखते हुए १०० महिला उत्तरदात्रियों को अध्ययन में शामिल किया गया है। इस प्रकार कुल १०० उत्तरदाता पुरूष तथा १०० उत्तरदाता महिलाएं हैं। प्रस्तुत शोध के उत्तरदाता चूँकि स्त्री-पुरूष, शिक्षित-अशिक्षित, युवा-वृद्ध एवं विभिन्न जाति समूह के लोग है, ऐसी स्थिति में उनसे प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची (Interview Schedule) का प्रयोग किया गया है। अध्ययन को व्यवस्थित करने के लिए तथा कारण एवं प्रभाव की जानकारी के सम्बन्ध में अन्वेषणात्मक अनुसंधान प्रारूप को आधार बनाया गया। लेकिन विवाह से सम्बन्धित अन्य पहलुओं की विस्तृत जानकारी हेतु, वर्णनात्मक शोध प्रारूप (Descriptive Research Design) का भी प्रयोग किया गया है।

अध्ययन की उपलब्धियाँ :

विवाह की मान्यता : हिन्दू विवाह पर आधुनिकीकरण का प्रभाव ज्ञात करने के क्रम में सर्वप्रथम विवाह की हिन्दू समाज में मान्यता से सम्बन्धित विचारों का विश्लेषण किया गया।

सारणी - १

विवाह जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है

विकल्प	लिंग		
	पुरूष	महिला	योग
हाँ	३८ (३८%)	३४ (३४%)	७२ (३६%)
नहीं	३१ (३१%)	४ (४%)	३५ (१७.५%)
कम से कम एक जन्म का है	३० (३०%)	६२ (६२%)	९२ (४६%)
कोई राय नहीं	१ (१%)	० (०%)	१ (०.५%)
योग	१०० (१००%)	१०० (१००%)	२०० (१००%)

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से पता चलता है कि ३६ प्रतिशत उत्तरदाता विवाह को हिन्दू धर्म के अनुसार ही जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध मानते हैं जबकि ४६ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि विवाह कम से कम एक जन्म का सम्बन्ध तो है ही। विवाह को एक जन्म का सम्बन्ध मानने वालों में महिला उत्तरदाताओं की संख्या सर्वाधिक ६२ प्रतिशत है। सम्बन्धों के मामले में जहाँ महिलाओं को भावुक समझा जाता था, अब ऐसा नहीं है, वे यथार्थवादी हो रही हैं।

जीवनसाथी का चयन : विवाह के पूर्व जीवनसाथी के चयन से सम्बन्धित विकल्पों पर विचार करने के उपरान्त उत्तरदाताओं ने निम्न निष्कर्ष ज्ञापित किए।

सारणी - २

जीवनसाथी का चयन किस प्रकार होना चाहिए

विकल्प	लिंग		
	पुरूष	महिला	योग
धार्मिक सीमाओं में	१८ (१८%)	१७ (१७%)	३५ (१७.५%)
अपनी जाति में	३९ (३९%)	५६ (५६%)	९५ (४७.५%)
योग्यता के अनुसार	१८ (१८%)	९ (९%)	२७ (१३.५%)
आपसी समझ के अनुसार	२५ (२५%)	७ (७%)	३२ (१६%)
कोई राय नहीं	० (०%)	११ (११%)	११ (५.५%)
योग	१०० (१००%)	१०० (१००%)	२०० (१००%)

जीवन साथी के चयन के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि सर्वाधिक ४७.५ प्रतिशत उत्तरदाता जीवन साथी के चयन में जाति को तथा १७.५ प्रतिशत उत्तरदाता धर्म को महत्वपूर्ण मानते हैं। पुरूष उत्तरदाताओं में से कुल ४३ प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो जीवन साथी का चुनाव योग्यता और आपसी समझ से करने के पक्ष में हैं, जबकि सिर्फ १६ प्रतिशत महिला उत्तरदाता ऐसी हैं जो जीवनसाथी के चयन में आधुनिक मूल्यों (योग्यता और आपसी समझ) को आधार बनाती हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि जीवन साथी के चयन में पुरूष अधिक यर्थाथवादी होते हैं।

जीवन साथी के चयन के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकड़ों को सरल सारणी एवं उनकी शिक्षा एवं जाति से क्रास सारणी बनाकर विश्लेषण किया गया। ३८.५ प्रतिशत उच्च शिक्षित तथा ३.५ प्रतिशत शिक्षित जीवन साथी के चयन में आधुनिक मूल्यों को महत्वपूर्ण मानते हैं। जाति समूह की जहाँ तक बात है, पिछड़ा और अनुसूचित जाति समूह के सर्वाधिक उत्तरदाता क्रमशः ७६.४ प्रतिशत और ५१.५ प्रतिशत जीवन साथी का चयन जाति में ही करना चाहते हैं। योग्यता और आपसी समझ जैसे मूल्यों के आधार पर जीवन साथी का चुनाव करने वाले उत्तरदाताओं में ३०.३ प्रतिशत सामान्य वर्ग, २०.६ प्रतिशत पिछड़ा वर्ग तथा ४८.५ प्रतिशत अनुसूचित जाति वर्ग से हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जीवन साथी के चयन में अभी उत्तरदाताओं में परम्परागत मूल्यों यथा जाति तथा धार्मिक सीमाओं (गोत्र, प्रवर, पिण्ड आदि) का प्रभाव ज्यादा है। उच्च शिक्षित और शिक्षित उत्तरदाताओं पर शिक्षा का प्रभाव दृष्टिगत होता है, जो जीवनसाथी के चयन में आधुनिक मूल्यों को आधार बनाते हैं। वहीं जाति समूह के मामले में संख्या को देखते हुए अनुसूचित जाति के उत्तरदाताओं में आधुनिक मूल्यों को जीवन साथी के चयन में आधार बनाया जाना यह स्पष्ट करता है कि अनुसूचित जाति समूह में सम्बन्धों को लेकर तार्किकता तुलनात्मक रूप से बढ़ी है।

लड़कियों एवं लड़कों के विवाह की आयु

सारणी - ३

लड़कियों का विवाह कब होना चाहिए

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
१८ वर्ष की आयु के बाद	६९	३४.५०
जब माता-पिता कहें	३९	१९.५०
जब पढ़ाई पूरी हो जाए	४३	२१.५०
जब अपने पैरों पर खड़ी हो जाएँ	४९	२४.५०
योग	२००	१००.००

सारणी - ४

लड़कों का विवाह कब होना चाहिए

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
२१ वर्ष की आयु के बाद	१४	७.०
जब माता-पिता कहें	५	२.५
जब पढ़ाई पूरी हो जाए	२२	११.०
जब अपने पैरों पर खड़े हो जाएँ	१५९	७९.५
योग	२००	१००.००

सारणी संख्या ३ में उत्तरदाताओं से प्राप्त सूचना के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि कुल उत्तरदाताओं में से ३४.५० प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि लड़कियों का विवाह १८

वर्ष के उपरान्त कर देना चाहिए, जबकि मात्र २४.५० प्रतिशत उत्तरदाता लड़कियों को अपने पैरों पर खड़ी होने तक इन्तजार करने के पक्ष में हैं। इसी प्रकार २१.५० प्रतिशत उत्तरदाता पढ़ाई पूरी होने पर लड़कियों के विवाह के पक्ष मे हैं तथा १६.५० प्रतिशत उत्तरदाता माता-पिता की जब इच्छा करे लड़कियों की शादी कर दें, इस पक्ष में है।

इसी प्रकार सारणी संख्या ४ से यह स्पष्ट होता है कि कुल उत्तरदाताओं में से ७६.५० प्रतिशत उत्तरदाता आज यह मानते हैं कि लड़के का विवाह उनके पैरों पर खड़ा होने के उपरान्त ही किया जाना चाहिए। ११ प्रतिशत पढ़ाई पूरी हो जाने पर, ७ प्रतिशत २१ वर्ष की आयु पूरी हो जाने पर तथा २.५ प्रतिशत जब माता-पिता कहे, तब विवाह कर देने के पक्ष में है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लड़कों के विवाह के सम्बन्ध में उत्तरदाता ज्यादा आधुनिक हुए हैं और वहीं लड़कियों के मामले में उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण परम्परागत बना हुआ है।

जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता

सारणी - ५

लड़की को जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	४८	२४.००
नहीं	१५१	७५.५०
कोई राय नही	१	०.५०
योग	२००	१००.००

सारणी - ६

लड़कों को जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	८७	४३.५०
नहीं	१०८	५४.००
कोई राय नही	५	२.५०
योग	२००	१००.००

सारणी संख्या ५ के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि कुल २०० उत्तरदाताओं में से मात्र २४ प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवारों में लड़कियों को जीवन साथी के चुनाव में स्वतंत्रता है जबकि ७५.५० प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में ऐसा नहीं है। सारणी संख्या ६ के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ४३.५० प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में लड़कों को जीवन साथी के चुनाव में स्वतंत्रता है जबकि वहीं ५४.०० प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में ऐसा नहीं है।

सारणी संख्या ५ एवं ६ के सम्यक् विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू समाज में जीवन साथी के चयन में स्वतंत्रता अभी नहीं है। इस मामले में लड़कों को थोड़ी छूट अवश्य है। साक्षात्कार के समय जब इस विषय पर एक बात यह सामने आई कि अभिभावक जीवन साथी तय करने के बाद एक बार लड़का-लड़की की सहमति अवश्य पूछते हैं और अगर ऐसी स्थिति में उनका विचार उचित तर्क के साथ प्रस्तुत किया जाता है तो उस पर अभिभावक विचार करते हैं। इसे हम एक तरह की 'सशर्त स्वतंत्रता' कह सकते हैं।

संतान द्वारा इच्छा के विरूद्ध विवाह करने की स्थिति में उत्तरदाताओं के विचार

सारणी - ७

सन्तान इच्छा के विरूद्ध विवाह करें तो

विकल्प	अशिक्षित	शिक्षित	उच्च शिक्षित	योग
घर से निकाल देंगे	0 (0%)	1 (3.6%)	17 (10.5%)	18 (9.0%)
उनको समझाएँगे	1 (11.1%)	24 (85.7%)	118 (72.8%)	143 (71.8%)
विवाह की अनुमति दे देंगे	8 (88.9%)	3 (10.7%)	27 (16.7%)	38 (19.0%)
योग	9 (100%)	28 (100%)	162 (100%)	199 (100%)

x^2 = 69.619, df = 4, Significant

सारणी संख्या ७ के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि संतान द्वारा अभिभावक की इच्छा के विरूद्ध विवाह करने की स्थिति में कुल १६६ उत्तरदाताओं में से ७१.८ प्रतिशत उत्तरदाता बच्चों को समझा-बुझा कर मामले को सामान्य करने की कोशिश करते हैं जबकि १६.० प्रतिशत उत्तरदाता ऐसी स्थिति में विवाह की अनुमति दे देते हैं मात्र ६.० प्रतिशत उत्तरदाता संतान द्वारा ऐसा करने पर उसे घर से निकाल देने के पक्ष में हैं। संतान द्वारा अभिभावक की इच्छा के विरूद्ध विवाह करने की स्थिति में अशिक्षित उत्तरदाताओं में से ८८.६ प्रतिशत विवाह हेतु सहमति दे देते हैं जबकि शिक्षित और उच्च शिक्षित क्रमशः ८५.७ प्रतिशत और ७२.८ प्रतिशत उत्तरदाता समझा-बुझाकर मामले को सामान्य करना चाहते हैं।

वर-वधू की तलाश

सारणी - ८

वर-वधू कैसे ढूँढ़ते हैं

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
वैवाहिक विज्ञापन द्वारा	२५	१२.५
इण्टरनेट द्वारा	१२	६.०
रिश्तेदारों द्वारा	१६१	८०.५
किसी एजेन्सी द्वारा	२	१.०
योग	२००	१००.०

सारणी संख्या ८ के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ८०.५ प्रतिशत उत्तरदाता आज भी विवाह ढूँढ़ने के परम्परागत तरीकों अर्थात् अपने रिश्तेदारों पर भरोसा करते हैं। १२.५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने वैवाहिक विज्ञापन द्वारा, ६ प्रतिशत इण्टरनेट द्वारा तथा १ प्रतिशत किसी वैवाहिक एजेन्सी द्वारा सहयोग लेने में सहमति दिखाई है।

दहेज के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

सारणी - ९

दहेज के संबंध में विचार

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
एक सामाजिक बुराई है	८६	४३.०
लड़की के पिता की स्वेच्छा है	५८	२९.०
दोनों पक्षों के अभिभावकों के बीच सहमति है	४८	२४.०
वर के घर में वधू की सुरक्षा एवं खुशी हेतु जरूरी है	८	४.०
योग	२००	१००.०

सारणी संख्या-९ के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि कुल उत्तरदाताओं में से ४३ प्रतिशत उत्तरदाता दहेज को एक सामाजिक बुराई मानते हैं जबकि २९ प्रतिशत उत्तरदाता दहेज को लड़की के पिता की स्वेच्छा मानते हैं। यह पूछे जाने पर कि क्या आप जानते हैं कि दहेज लेना अपराध है? तो कुल उत्तरदाताओं में से ९३.० प्रतिशत ने बताया कि उन्हें मालूम है कि यह अपराध है। केवल ७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में अपनी अनभिज्ञता प्रदर्शित की।

विवाह के सम्बन्ध में कुछ अन्य प्रश्नों पर उत्तरदाताओं के विचार :

आज विवाह की प्रक्रिया धार्मिक संस्कार से अधिक दिखावे की वस्तु हो गयी है : इस कथन के प्रति ६२.५ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्ण सहमत, २५.२ प्रतिशत उत्तरदाता आंशिक सहमत दिखाई पड़े अर्थात् लगभग ८७.७ प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत हैं कि विवाह की प्रक्रिया आज धार्मिक संस्कार की जगह दिखावा हो गई है। १० प्रतिशत उत्तरदाता आंशिक असहमत व २.२ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्ण असहमत दिखाई दिए। वस्तुतः आधुनिकीकरण की प्रक्रिया नई-नई संस्थाओं को जन्म देती है अर्थात् संस्थानीकरण (Institutionalization) को प्रोत्साहित करती है। ये संस्थाएँ परम्परागत कार्य को विशेषीकृत तरीके से अंजाम देती है, जिससे परम्पराओं का वृहद स्वरूप दिखाई पड़ता है।

विवाह पूर्व लड़के-लड़की का आपस में परिचय : उत्तरदाताओं से जब यह पूछा गया कि क्या विवाह पूर्व लड़का-लड़की का आपस में परिचय होना चाहिए तो ५३.५ प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से पूर्ण सहमत तथा ६.८ प्रतिशत उत्तरदाता आशिंक सहमत दिखे। १२.८ प्रतिशत उत्तरदाता आंशिक असहमत तथा १७ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्ण असहमत थे। यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि उत्तरदाताओं के परिवार में जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता बहुत कम है, फिर भी उत्तरदाता लड़का व लड़की के विवाह पूर्व परिचय के पक्ष में हैं। यही कारण है कि हिन्दू समाज में विवाह पूर्व 'लड़की देखाई' की रस्म आज प्रचलन में आ गई है।

बिना विवाह किए साथ-साथ रहने के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार : बिना विवाह किए साथ-साथ रहने के सम्बन्ध में सर्वाधिक ६८.२ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पूर्ण असहमत व्यक्त किया है तथा ७.८ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक असहमति व्यक्त की है। मात्र ५.२ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्ण सहमत तथा ८.८ प्रतिशत उत्तरदाता आंशिक सहमत दिखे, अतः यह कहा जा सकता है अधिकांश उत्तरदाता लिव-इन सम्बन्धों के पक्ष में नहीं है, तथा इसे समाज में अच्छे दृष्टि से नहीं देखा जाता।

लड़की जब नौकरी करती है तो पिता को दहेज की चिन्ता नहीं रहती है : कुल उत्तरदाताओं में से ४८.५ प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि जब लड़की नौकरी में होती है तब पिता को दहेज की चिन्ता नहीं रहती है। ३० प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से आंशिक सहमत हैं, जबकि मात्र ८.२ प्रतिशत उत्तरदाता इससे पूर्व असहमत तथा ९.८ प्रतिशत उत्तरदाता आंशिक असहमत हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण के कारण लोगों की सोच में बदलाव आने से लड़कियों को पढ़ा-लिखाकर नौकरी कराने में अब कोई संकोच नहीं होता।

अधिकांश प्रेम विवाह टूटते हैं : ३३.५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह बताया कि अधिकांश प्रेम विवाह टूटते हैं तथा २८.५ प्रतिशत उत्तरदाता इस कथन से आंशिक रूप से सहमत दिखे। २३.८ प्रतिशत उत्तरदाता इस कथन से आंशिक रूप से असहमत तथा ८.२ प्रतिशत पूर्ण असहमत दिखे। शेष ६ प्रतिशत उत्तरदाता कोई राय व्यक्त नहीं किये। अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण के द्वारा प्रेम विवाह तो हो रहे हैं किन्तु उनके स्थायित्व की संभावना कम होती है।

संचार क्रान्ति ने उपयुक्त जीवन साथी को चुनना सहज बनाया है : कुल उत्तरदाताओं में से २५ प्रतिशत पूर्णरूप से तथा २६.२ प्रतिशत उत्तरदाता आंशिक रूप से इस कथन से सहमत हैं कि संचार क्रान्ति ने उपुयक्त जीवन साथी चुनना सहज बनाया है। इस बात से मात्र १३ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णरूप से जबकि २४.५ प्रतिशत उत्तरदाता आंशिक रूप से असहमति व्यक्त करते हैं। इस प्रकार ऐसा कहा जा सकता है कि उत्तरदाता भले ही विवाह के चयन में रिश्तेदारों को महत्वपूर्ण मानते हों, किन्तु संचार क्रान्ति के प्रभाव से वह प्रेरित हो रहे हैं।

ई-मैरिज होना चाहिए : ६५.५ प्रतिशत उत्तरदाता ई-मैरिज जैसी प्रक्रियाओं से पूर्ण असहमत हैं जबकि १०.५ प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो ई-मैरिज के पक्ष में हैं और इससे पूर्ण सहमत हैं जबकि सिर्फ १ प्रतिशत उत्तरदाता इससे आंशिक सहमत हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आज भी अधिकतर संख्या में उत्तरदाता विवाह को एक संस्कार के रूप में ही स्वीकार करते हैं।

विवाह के पंजीकरण के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार : कुल उत्तरदाताओं में से २४ प्रतिशत उत्तरदाता विवाह के पंजीकरण के बारे में नहीं जानते हैं। २६.२ प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इससे स्त्री के अधिकार सुरक्षित होते हैं। १८.८ प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इससे बहु विवाह जैसी घटनाओं को रोकने में मदद मिलती है। जबकि ३१ प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि इससे विवाह को वैधानिक मान्यता मिलती है।

विवाह में वीडियो रिकार्डिंग के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार : जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि विवाह में आप वीडियो रिकार्डिंग क्यों करवाना चाहते हैं? तो १६.८ प्रतिशत उत्तरदाता विवाह में वीडियो रिकार्डिंग को अविस्मरणीय पलों को संजोने के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं जबकि ३४.२ प्रतिशत उत्तरदाता इसे प्रमाणित दस्तावेज मानते हैं एवं ४६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे फैशन माना है।

तलाक के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार : विवाह जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध है तथा तलाक की व्यवस्था होनी चाहिए के बीच द्विगुणित सारणी से पता चलता है कि कुल उत्तरदाताओं में से ३२.५ प्रतिशत उत्तरदाता विवाह को जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध मानते हैं। तलाक की व्यवस्था चाहने वाले कुल १५० उत्तरदाताओं में से २२.६ प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो मानते हैं कि विवाह जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है। तलाक की व्यवस्था के पक्षधर ५० प्रतिशत उत्तरदाता विवाह को कम से कम एक जन्म का सम्बन्ध मानते हैं। अतः उक्त निष्कर्ष हिन्दू समाज में विवाह की परम्परागत मान्यताओं और आधुनिकीकरण के मूल्यों के मध्य द्वन्द्वपरिलक्षित करता है।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निःसन्देह आधुनिकीकरण का हिन्दू विवाह की संरचना एवं प्रकार्यात्मकता पर प्रभाव पड़ा है, किन्तु यह भी सच है कि हिन्दू विवाह की बुनियादी संरचना और प्रतिमान में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। हिन्दू विवाह ने जहाँ एक ओर अपना तादात्म्य बनाये रखा है, वहीं दूसरी ओर उसने नूतनता को भी अंगीकार किया है। कुल मिलाकर विवाह को कम से कम एक जन्म का सम्बन्ध मानना, तलाक की व्यवस्था को स्वीकार करना, वीडियो रिकार्डिंग को प्रमाणित दस्तावेज मानना, विवाह के पंजीकरण सम्बन्धी जागरूकता, पुनर्विवाह को स्वीकारना आदि जहां एक ओर उत्तरदाताओं की वैज्ञानिक सोच को प्रदर्शित करते हैं वहीं विवाह को जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध मानना, जीवन साथी के चुनाव की स्वतंत्रता न होना, लड़कियों को अपने पैर पर खड़ा होने का पर्याप्त अवसर न देना, पुत्र की इच्छा से विवाह को स्वीकृति न देना, विवाह के परम्परागत क्रिया-कलाप, दहेज आदि परम्परागत समाज के लक्षण को भी दिखाते हैं।

सन्दर्भ

१. वेदालंकार, हरिदत्त, 'हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास', हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, १६७०, पृ. ६

२. Johnson, H.M.; "Sociology : A Systematic Introduction", Allied Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 1970. p. 146

३. उद्धृत रावत, हरिकृष्ण, उच्चतर समाजशास्त्रीय विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, २००६, पृ. ३१३

४. सिंह योगेन्द्र, 'भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण', (अनु.) अरविन्द कुमार अग्रवाल, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, २००६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

वृद्धावस्था के विविध आयाम, समस्याएँ एवं चुनौतियाँ

❑ डॉ. परेश द्विवेदी

वृद्धावस्था का सम्बन्ध लोगों की बढ़ती उम्र से है। यह मानव विकास की ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति की इन्द्रियाँ कमजोर होने के साथ उसकी बहुत सी क्षमताएँ घट जाती हैं। किसी भी समाज की जनसंख्या में वृद्धों का अनुपात उसके विकास को काफी हद तक प्रभावित करता है। वृद्ध होना एक जटिल और क्रमिक प्रक्रिया है जिसमें जैविक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आयाम होते हैं जो न तो एक दूसरे से मिलते हैं और न ही यह किसी व्यक्ति की काल क्रमिक आयु के अनुरूप होते हैं। आज दुनियाभर में नीति निर्धारकों के समक्ष एक जटिल चुनौती सामने खड़ी नज़र आ रही है, वह है वृद्धों की संख्या में सतत् वृद्धि।

अवधारणा : व्यवहार में उन लोगों को वृद्ध कहा जाता है जो जीवन की एक विशेष आयु को पूरा कर चुके होते हैं। भारत में इस आयु को साठ वर्ष माना गया है। इस अवधि को पूरा कर लेने वाले व्यक्तियों को वरिष्ठ नागरिक अथवा सीनियर सिटीजन की संज्ञा दी गई है। वास्तव में वृद्धावस्था उम्र सापेक्ष अवसर व जिम्मेदारियों में नाटकीय परिवर्तन की ओर संकेत करती है। इन परिस्थितियों का विधिवत अध्ययन जेरेन्टोलोजी (Gerontology) में किया जाता है।

जेरेन्टोलोजी एक ऐसा सामाजिक विज्ञान है जो अपने अध्ययन में वृद्धजनों की बढ़ती उम्र के न केवल भौतिक या जैविकीय पक्ष को सम्मिलित करता है वरन् उसके साथ उन सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का विश्लेषण भी करता है जो आयु वृद्धि के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों को प्रभावित करते हैं।[1]

समस्याएँ : भारत में वरिष्ठ नागरिकों अथवा वृद्धजनों की दो श्रेणियाँ विद्यमान हैं : वयोवृद्ध (८० वर्ष से अधिक) तथा वृद्ध। कई कल्याणकारी एवं रियायती, स्कीमों को वरिष्ठ नागरिकों के लिए भारत में लागू किया गया है। आयकर विभाग ने ६० वर्ष की आयु प्राप्त लोगों को ही आयकर में छूट दी हैं तथा भारतीय रेल विभाग ने ६० वर्ष से अधिक उम्र के लोगों को यात्री किरायों में ३० प्रतिशत की छूट दी है जो महिलाओं के लिए और भी कम उम्र पर लागू है। ८० वर्ष की उम्र पार करने वालों को पेंशन भुगतान में विशेष पेंशन भी दी जाती है तथा आयकर में भी अतिरिक्त छूट दी जाती है।

इन सभी उपायों से जहां वृद्ध एवं वयोवृद्ध लोगों को आर्थिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ तो सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं से प्राप्त होने लगी हैं किन्तु पारिवारिक स्तर पर व्यक्ति के लिए वृद्धावस्था एक अभिशाप होती जा रही है। उसके प्रति परिजनों की उदासीनता एवं उन्हें भार मानने की मनोवृति उनके लिये कष्टदायक होती जा रही है।

वृद्धजनों की समस्या का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति की ''वर्ग स्थिति'' से भी निर्धारित होता है। सामान्यतया गरीब या निम्न वर्गों में बहुत ही कम लोग ६० वर्ष की उम्र पार कर पाते हैं तथा स्वास्थ्य सेवाओं-सुविधाओं के अभाव में जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। वृद्धजनों की समस्याएँ अधिकांश रूप से मध्यम या उच्च्व मध्यम वर्गों में विद्यमान हैं। यह अनुसंधान का विषय है कि मध्यम / नवीन मध्यम वर्गों में वृद्ध तथा वयोवृद्ध लोगों की समस्या के कारणों एवं परिणामों को किस प्रकार जोड़ा जाये।

भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ अभी आर्थिक विकास और आधुनिकीकरण हो रहा है, वृद्धों की स्थिति अधिक बिगड़ रही है। भारत में वृद्धों का प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में अधिक रहा है। स्वास्थ्य की देखभाल के साथ उनकी आर्थिक एवं सामाजिक आवश्यकताएँ तेजी से बढ़ रही हैं। युवा निर्भरता अनुपात की तुलना में वृद्ध निर्भरता अनुपात बढ़ रहा है। जैसे-जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था मजबूत होती जा रही है वैसे-वैसे कार्य से हटने वाले वृद्धों का प्रतिशत

मानव जीवन में सतत् विकास की प्रक्रिया को व्यक्ति की बढ़ती उम्र के संदर्भ में देखा जा सकता है। बढ़ती उम्र की यह प्रक्रिया मुख्य रूप से बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था व वृद्धावस्था के पाँच सोपानों में प्रकट होती है। वृद्धावस्था इस क्रम में अन्तिम सोपान है, जो विविध सामाजिक कारकों से प्रभावित है। इस आलेख में वृद्धावस्था के साथ पूर्ववर्ती पीढ़ियों से वृद्धजनों के सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए वर्तमान में उनकी समस्याओं और चुनौतियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

❑ व्याख्याता, समाजशास्त्र, भूपाल नोबल्स स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)

और इनकी दूसरों पर निर्भरता बढ़ती चली जा रही है।

लिंगानुपात स्थिति (जेंडर) का भी प्रभाव वयोवृद्धि की प्रक्रिया पर देखने को मिलता है। प्रायः महिलाएँ वृद्धावस्था से वयोवृद्ध (८० वर्ष से अधिक) की स्थिति में पहुँचने का अवसर पुरुषों की तुलना में अधिक रखती हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि वयोवृद्ध पुरुषों की तुलना में वयोवृद्ध महिलाएँ किसी भी समाज में अधिक उपलब्ध है। यह शायद इस जैविकीय तथ्य का परिणाम है कि महिलाएँ जीवन प्रत्याशा में पुरुषों से कहीं आगे हैं।[२] यद्यपि वृद्ध पुरुष एवं वृद्ध स्त्रियों की समस्याओं में अन्तर पाया जाता है परन्तु समस्याओं के क्षेत्र लगभग समान हैं जिसमें पारिवारिक सामंजस्य व स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या के साथ आर्थिक साधनों का अभाव प्रमुख है । वृद्ध पुरुष कुछ सीमा तक अकेले रहते हैं जबकि वृद्ध महिलाएँ अपने बाल बच्चों या सम्बन्धियों के साथ रहती हैं। इन समस्याओं के कारण वृद्धजन मनौवैज्ञानिक सामन्जस्य नहीं बना पाते हैं और उन्हें मानसिक असुरक्षा का भय सदा बना रहता है। योगेन्द्र सिंह ने वृद्धजनों की समस्याओं को तीन श्रेणियों में विभजित किया है। पहली श्रेणी साधनविहीन लोगों की है। दूसरी श्रेणी मध्यमवर्गीय लोगों की है जिन्हें भावनात्मक सुरक्षा से अधिक जीने के लिये पहल करने वालों की जरूरत है। तीसरी श्रेणी समृद्ध बुजुर्गो की है जो परिवार के साथ सामन्जस्य स्थापित करने के लिये राजी नहीं होती।[३]

पीढ़ीगत अन्तराल से सम्बद्धता : पीढ़ीगत अन्तराल से तात्पर्य युवा एवं वृद्धों के मध्य दृष्टिकोण या समझ में अन्तर का है। पीढ़ीगत अन्तराल हमेशा रहा है किन्तु वर्तमान में यह विस्फोटक स्थिति में पहुँच गया है। जीवन में मूल्य एवं प्रतिमानों में वृहद परिवर्तन हुए हैं। आज प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर पर जीवनयापन एवं व्यवहार करना चाहता हैं। इस दृष्टिकोण ने पीढ़ीगत अन्तराल को और बढ़ाया है जिसे कम कर पाना सम्भव नहीं हो पा रहा है। वर्तमान में इस अन्तर ने पारिवारिक जीवन को पूर्णतः समाप्त सा कर दिया है। बड़े-बुजुर्ग अपने बच्चों की देखभाल एवं उन्हें ऊपर उठाने हेतु हर प्रकार से त्याग करते हैं इसलिए वे स्वाभाविक रूप से उन पर अपना अधिकार समझते हैं। वे चाहते है कि बच्चे उनके निर्देशों का पालन करें, जैसे कि उनसे वे अपेक्षा रखते हैं। लेकिन बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो वे उनकी सोच एवं क्रियाओं में पूर्णतः स्वतन्त्रता चाहते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश ये विचार एवं क्रियाएँ बुजुर्गों की अपेक्षाओं के विपरीत होती हैं। जब बुजुर्ग प्रतिबन्ध लगाते हैं तो बच्चे उनका विद्रोह कर देते हैं। परिणामस्वरूप परिवार टूट जाते हैं एवं समस्याएँ और विकराल रूप धारण कर लेती हैं। यद्यपि पीढ़ीगत अन्तराल एक प्रघटना है जो विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग होती हैं जो कि प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक विकास पर निर्भर करती है। इस वास्तविकता से कोई भी समाज, समूह या परिवार अछूता नहीं है।[४]

वृद्धों की चुनौतियां : वृद्धजनों की उक्त सभी समस्याओं के समाधान एवं उनसे मुक्ति पाने को लेकर कई गंभीर तो कई सामान्य चुनौतियां सामने आती हैं। इनमें से कुछ तो वैश्विक स्तर पर सभी देशों एवं समाजों में समान रूप से विद्यमान हैं चाहे वे वर्तमान सूचना तकनीकी या ज्ञान क्रांतियों से गुजर रहे हों अथवा विकासशील अवस्था में हों। वृद्धजनों की सबसे बड़ी चुनौती है उनकी निजता, स्वतंत्रता एवं गतिशीलता को बदस्तूर बनाये रखने की। जीवन के इस अंतिम पड़ाव की अवस्था में सभी मानव प्राणी दूसरे परिजनों अथवा पड़ोसियों, मित्रों आदि पर शारीरिक, भौतिक, मानसिक एवं भावनात्मक रूप से निर्भर होने लगते हैं। वे अपनी निजता के लिये छटपटाने लगते हैं। उनकी भावुकता, पसंद-नापसंद या स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं पर कोई सुनता नहीं है और वे स्वयं असहाय अवस्था में हो जाते है तथा मानसिक रूप से टूट से जाते हैं। इस स्थिति में वे अपने इष्टदेव या ईश्वरीय सत्ता से मृत्यु मांगते हैं और वह भी उनकी इच्छा से नहीं मिलती है।

सभी प्रकार की सामाजिक गतिविधियों में वृद्धजनों की सहभागिता लगभग समाप्त हो जाती है और व्यक्ति अपने आप को अकेला, पृथक एवं बोरियत भरे माहौल में जीवित रहने के लिये मजबूर सा रहता है। यह अकेलापन महिलाओं को अपनी वयोवृद्ध अवस्था में अधिक महसूस करना पड़ता है क्योंकि पुरूष वर्ग उनसे वैसे ही दूरी रखने लगता है और महिलाएँ परिवार में उपलब्ध नहीं रहती हैं।

एक अन्य चुनौती आध्यात्मिक प्रकृति की भी वृद्धों और वयोवृद्धों के समक्ष भारत में सामने आती है। मन, बुद्धि और आत्मा के स्तर पर तो व्यक्ति कभी वृद्ध नहीं होता है केवल उसका शरीर या भौतिक स्वरूप ही झरझरित होकर निस्तेज तथा क्षीण होता जाता है। इससे व्यक्ति नित्य कर्म, स्नान-शुद्धि, पूजा-पाठ आदि करने में भी अपने आप को असमर्थ पाने लगता है। वृद्धावस्था आने के उपरांत वह कभी जाती नहीं और न जीते-जी व्यक्ति को उसका कोई अंत ही दिखाई देता है। ऐसे में व्यक्ति ईष्वरीय भक्ति करे तो कैसे करें। अधिकांश कर्मन्द्रियाँ एवं ज्ञानेन्द्रियाँ अपने आप कार्य करना बंद कर देती

हैं तथा परिवार के अन्य सदस्य भी व्यक्ति को अकेला छोड़ देते हैं। ऐसी अवस्था में व्यक्ति न तो आध्यात्मिक ही रह पाता है और न स्वयं की देखभाल कर पाता है।

परिजनों के समक्ष भी वृद्धजनों की कभी न समाप्त होने वाली इच्छाओं एवं महत्वाकांक्षाओं की चुनौती खड़ी होती है। परिजन प्रायः इस पशोपेश में रहते है कि अपने ही परिवार के बुजुर्गो को वे किस प्रकार संतुष्ट करें। इस कारण कई परिवारों में वृद्धों को अपने ही घरों से निष्कासित होकर धार्मिक स्थानों (मंदिरों) आदि में जाकर शरण लेनी पड़ती है। कुछ लोग वृद्धाश्रमों में जाकर अपना शेष जीवन व्यतीत करते हैं।

वर्तमान में पश्चिमी देश तथा जापान आदि विकसित देश वृद्धजनों की बढ़ती संख्या को अनुभव कर रहे हैं। आने वाले कुछ दशकों में यहाँ बढ़ती उम्र अपने आप में एक समस्या भी बन सकती है। इस परिस्थिति को पीटरसन[५] ने ग्रे डॉन (Gray Dawn) की संज्ञा दी है। पीटरसन के अनुसार संसार में हर सात में से एक व्यक्ति पैंसठ वर्ष से अधिक उम्र का है। अगले दो दशकों में लगभग एक-चौथाई आबादी ऐसे वृद्धजनों की होगी।ऐसा अनुमान है कि अगले पाँच दशकों में वयोवृद्धों (८०+) की संख्या अभी जो है उससे छः गुनी बढ़ जायेगी।

ब्रिटेन के वृद्धज़नों पर किये गये एक सर्वेक्षण[६] में पाया गया कि तुलनात्मक रूप में पेंशनभोगी वृद्धज़नों की स्थिति मध्यमवर्गीय परिवारों में आरामदायक अवस्था में पायी गयी। जबकि दूसरी ओर गरीब तथा अति गरीब परिवारों में जहाँ पेंशन की सुविधाएँ नहीं उपलब्ध हैं, वृद्धज़नों की स्थिति अति दयनीय पायी गयी। सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि वयोवृद्ध लोगों की स्थिति तो और भी विकट होती हैं जहाँ जीवन की न्यूनतम सुविधाएँ भी कम ही उपलब्ध होती हैं। गंभीर बीमारी का इलाज़ कराने हेतु साधनों का अभाव होता है।

निष्कर्ष : वर्तमान में भारत की सवा अरब की आबादी में वृद्धजनों (६०+) की जनसंख्या लगभग १० करोड़ है जो कुल जनसंख्या का ८.३३ प्रतिशत है। इसमें भी वयोवृद्ध (८०+) के लोगों की संख्या पहले की तुलना में निरंतर बढ़ती जा रही है। उम्र के बढ़ने के साथ-साथ व्यक्ति और समाज दोनों के लिये कई चुनौतियां एवं समस्याएँ सामने आती हैं। किन्तु इनका समाधान भारतीय परंपरागत समाज में संस्थागत रूप से निकाला गया था। व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन को चार आश्रमों में इस प्रकार विभाजित किया गया था कि कोई भी आश्रम व्यक्ति और समाज दोनों के लिये समस्यामूलक न बने। पचास वर्ष की उम्र के बाद व्यक्ति को अपने गृहस्थ जीवन से मुक्ति लेकर वानप्रस्थी जीवनयापन की सलाह दी गई तथा ७५ वर्ष के बाद तो उसे सन्यासी की भांति अपना आध्यात्मिक जीवन जीने की सलाह दी गई थी। यद्यपि वर्तमान समय में आश्रम व्यवस्था को लागू करना संभव नहीं है फिर भी कुछ हद तक पारिवारिक संस्था को मजबूत करके ही वृद्धजनों की स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं कल्याणकारी व्यवस्था को लागू किया जा सकता है।

सन्दर्भ

१. Giddens, Anthony, Sociology; Polity Press, cambrige, 2001

२. The Times of India, Dated 22-12-2013

३. सिंह एस.पी. एवं सिंह, एम.एम., 'वृद्धजनों की समस्याएँ एवं समाधान', आधुनिक उच्चत्तर समाजशास्त्रीय निबन्ध, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली, २००८, पृ. १७८-१८५

४. Ram Chandra, 'Social Aspects of Generation Gap, Rajasthan Journal of Sociology, Oct-2013, Vol. -5, p. 35

५. Peter G. Peterson : Gray Pawn : 'How than coming age wave will transform america and the world', Random House, New York, 1999

६. Milne, A.E. Hat Zidimitradou and T. Harding, Later Life Style : A survey by help the aged and yours manazine : Hels the aged, London, 1999

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

1857 और पलामू के प्रमुख क्रांतिकारी योद्धा नीलाम्बर और पीताम्बर शाही

❑ डॉ० मथुरा राम उस्ताद

नीलाम्बर पीताम्बर, सैकड़ों गुमनाम शहीदों को छोड़ भी दें तो भी सरकारी रिकार्डवाले शहीदों की खून से लथपथ पलामू की धरती में जन्मे देश को आजाद कराने के लिए मर मिटनेवालों में से एक थे। पलामू के अमर शहीद नीलाम्बर पीताम्बर फिरंगियों से अपनी धरती की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देने में नहीं हिचके।

पलामू १८६८ ई० में सबडिवीजन बना। पहले इस स्थान को बिजराबाग कहा जाता था जिसका डाल्टन कमिश्नर के नाम से डालटनगंज नाम पड़ा। यह किंवदन्ती है कि पलामू में जब भी विद्रोह होता था तब शुरुआत यहीं से होती थी।[१] नवीन खोजों से स्पष्ट होता है कि पलामू का १८५७ ई० का विद्रोह जन-आन्दोलन था जो १८६० तक शांत न हुआ। इस जन-आन्दोलन के ही नेता थे नीलाम्बर-पीताम्बर, मातृभूमि की स्वातंत्रय वेदी पर ये वीर अपने गढ़, अपनी स्त्री, बाल-बच्चे परिवार, जागीरें तथा सम्बन्धियों को स्वाहा कर सहर्ष ही वीरगति को प्राप्त हुए। ऐसे पुरुष भारत के इतिहास में विरले हैं।

> पलामू १८६८ ई० में सबडिवीजन बना। पहले इस स्थान को बिजराबाग कहा जाता था जिसमें डाल्टन कमिश्नर के नाम से डालटनगंज नाम पड़ा। यह किंवदन्ती है कि पलामू में जब भी विद्रोह होता था तब शुरुआत यहीं से होती थी। नवीन खोजों से स्पष्ट होता है कि पलामू का १८५७ ई० का विद्रोह जन-आन्दोलन था जो १८६० तक शांत न हुआ। इस जन-आन्दोलन के ही नेता थे नीलाम्बर-पीताम्बर, मातृभूमि की स्वातंत्रय वेदी पर ये वीर अपने गढ़, अपनी स्त्री, बाल-बच्चे परिवार, जागीरें तथा सम्बन्धियों को स्वाहा कर सहर्ष ही वीरगति को प्राप्त हुए। ऐसे पुरुष भारत के इतिहास में विरले हैं। प्रस्तुत आलेख पलामू के प्रमुख क्रान्तिकारी योद्धा नीलाम्बर और पीताम्बर शाही की मातृभूमि की स्वतंत्रता के संघर्ष में अपने जन, जमीन, धन को स्वाहा करके धवल यश को प्राप्त करने की शौर्य गाथा को उजागर करने का एक प्रयास कहा जा सकता है।

चेरो राज्य के पतन के बाद रंका तथा चैनपुर के दीवानों का अंग्रेजों से घनिष्ठता चेरो और खेरवार सहन नहीं कर सकते थे। जगदीश नारायण सरकार ने अपने लेख में लिखा है कि खरवारों की प्रायः सारी जागीरें छीन ली गई थीं। इन खरवार जागीरदारों में एक भोगता शाखा के जागीरदार थे। एक सुरगुजा में जो कोयल नदी के तट पर दक्षिणी पश्चिमी पलामू के मध्य[२] में चेमू और सनेया की जागीरदारी थी।[३] इनके पिता से भी अंग्रेजों की नहीं पटती थी। पलामू में दो जनजातियों की संख्या सबसे अधिक थी वह चेरो और खरवार की थी।[४]

इनके जागीर की गाँव पहाड़ों और घाटों में स्थित थी जिसका दक्षिणी छोर सुरगुजा से मिलता था।[५] इनके पिता अंग्रेजों को कर देना नहीं चाहते थे इसी कारण इनके पिता को अंग्रेजों ने Out law और Maranding propensities कहा है। वे नाम मात्र का कर देते थे। इसी का अनुसरण दोनों भाइयों ने किया और अपनी जागीरें पहले जितना कर था उतना में और अधिक अंग्रेजों से लूटकर बढ़ा लिया था और यह अन्त तक चलता रहा जबतक वे जीवित रहे।[६]

१८५७ ई० जब बिहार में विद्रोह हुआ। उस समय छोटानागपुर की जनजातियों एवं यहाँ के निवासियों तथा अन्य जातियों के लोगों ने भी खुलकर भाग लिया था। वास्तव में यह विद्रोह जमींदारों की तबाही के विरोध में था या फिर खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिये थीं।[७]

विपरीत परिस्थितियों के बाद भी राँची के रामगढ़ बटालियन ने अगस्त १८५७ ई० में मुक्तिवाहिनी सेना का गठन जमीदार माधो सिंह की प्रेरणा से विश्वनाथ शाहदेव के नेतृत्व में गणपत राय एवं अन्य क्रांतिकारियों के सहयोग से एक नये युग की शुरुआत छोटानागपुर के इतिहास में हुई एक नया शासन विश्वनाथ शाहदेव के द्वारा राँची में शुरू हुआ। सभी लोगों को काफी रियायत दी जाने लगी।[८] उस समय पीताम्बर शाही राँची में मौजूद थे। उन्होंने अपनी आँखों से अंग्रेजों को भागते हुए देखा था। राँची किस तरह स्वतंत्र हो चुका था। उस समय उन्हें ऐसा लगा कि अंग्रेजों का शासन समाप्त हो गया। राँची में कई तरह की अफवाहें उड़ने लगी थीं कि अंग्रेजों का शासन समाप्त हो गया है। सभी कोई घबरा गये थे। सभी काम प्रतिदिन का रुक सा गया था। बनिया दुकान बंद कर दिये थे। मजदूर काम करना छोड़कर यह बातें करने लगे थे कि राँची से अंग्रेज राज्य खत्म

❑ विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, करमचन्द भगत महाविद्यालय, बेड़ो, राँची (झारखण्ड)

हो गया है। कचहरी जला दी गई थी। सभी बनिया बाजार से भाग गये।[९]

अंग्रेजी सत्ता का राँची में ह्रास होने के बाद पीताम्बर ने अपने भाई नीलाम्बर से परामर्श किया। इनसे पलामू को स्वतंत्र करने के लिए अंग्रेज भक्तों को हटना जरूरी था। रंका और चैनपुर के दो राजपूत जागीरदारों के सुदृढ़ गढ़ और फौज भी थी। इनको समूल नष्ट किये बिना ब्रिटिश सत्ता को पलामू में हटाया नहीं जा सकता था। इसी उद्देश्य से अपनी खोयी हुई ताकत एवं पुनः पलामू किला को पाना चाहते थे।[१०] इसी उद्देश्य से एक ही बार में चैनपुर, रंका और लेस्लीगंज पर आक्रमण कर समाप्त करना ही उचित समझा था। पत्र सं० १५६ तारीख ३० अगस्त १८६० में लिखा जो ए०आर० यंग बंगाल सरकार का पत्र नं० ४००५ तारीख २४ नवम्बर १८५७ दोनों में विद्रोह को कुचलने का आदेश है। इतना ही नहीं छत्तरपुर, मनिका और लेस्लीगंज में थाना को जलाने में वहाँ के निवासियों ने भी खुलकर साथ दिया था।

इन दोनों भाइयों का अपने क्षेत्र में काफी दबदबा था। सभी जनजातियों के लोकप्रिय चहेते नेता थे। इन पर पलामू के लोगों को पूर्ण आस्था एवं विश्वास था कि ये ही पलामू से ब्रिटिश शासन को समाप्त कर देंगे।[११] इस समय यहाँ पर सिर्फ एक अंगेज अधिकारी ही थे। वे बिना स्थानीय जागीरदारों की मदद के नहीं रह सकते थे। उनके पास ५० से अधिक सिपाही नहीं थे। इसी कारण इस समय यहाँ पर इन सेनानियों को भारी जनसमर्थन जनजातियों का मिला क्योंकि इन्हें भी अपना शासन चाहिए था। इस समय तक इन विद्रोहियों के पास ५०० के आसपास भोगता सैन्यबल हो चुका था। इसमें बहुत से भोगता एवं चेरो जागीरदार साथ आ गये थे। वे इस आशा के साथ आये थे कि चेरो राजा फिर से सत्ता पर आ जायेंगे। यहाँ के ठाकुराई रघुवर दयाल सिंह पहले से ही सावधान थे। उन्हें पहले ही खबर हो गई थी कि बड़ा आक्रमण हो सकता है इसलिए उन्होंने इन भोक्ता आक्रमणकारियों को सफल होने नहीं दिया। उन्होंने उन्हें पीछे हटने के के लिए बाध्य कर दिया। रघुवर दयाल सिंह के साथ भोक्ताओं की पुश्तैनी दुश्मनी थी।[१२] पुरानी शत्रुता कहें या अवसर, नीलाम्बर पीताम्बर के नेतृत्व में लगभग ५०० भोगता लोगों का दल चैनपुर के किला में संगठित हुआ। इस संगठित दल में चेरो और खेरवार जनजातियों के लोग भी साथ थे। इनलोगों ने राजपूत जागीरदारों का विरोध किया। यह विरोध पूरी तरह से पलामू के सभी तरफ फैलता ही गया।

नीलाम्बर पीताम्बर के नेतृत्व में चैनपुर में भोगताओं की सेना ने आक्रमण कर दिया। इनके बीच युद्ध चलता रहा। ठाकुराई रघुवर दयाल के भतीजे ठाकुराई किशन दयाल सिंह ने भी इस आक्रमण का बड़ी चतुराई से सामना किया। कुछ घंटों के युद्ध भारी प्रतिरोध एवं विरोध के कारण आक्रमणकारियों को भारी क्षति हुई। वहाँ हटने के बाद विद्रोही फिर संगठित होकर शाहपुर में भी आक्रमण किये।[१३]

शाहपुर गाँव दक्षिणी कोयल के किनारे डालटनगंज के विपरीत दिशा में स्थित है जहाँ १८वीं सदी के अंत में गोपाल राय पलामू के राजा ने एक महल बनवाया था।[१४] शाहपुर में चेरो आक्रमणकारियों की एक मीटिंग हुई जिसमें भोक्ता, खेरवार, चेरो भी सम्मिलित हुए। बकलैंड ने लिखा है कि बहुत से चेरो के जागीरदारों को अंग्रेजों ने छीनकर दूसरों को दे दिया था। विद्रोही चेरों को गद्दी प्राप्त करने की भी लालसा थी। इनमें संसाधन की कमी से आयी दरिद्रता से छुटकारा पाने एवं पतन को बचाने के लिए भी अंग्रेजों का विरोध किया गया था।[१५] विद्रोही चैनपुर से पीछे हटने के बाद शाहपुर की ओर बढ़े। वहाँ रखीं रानी की चार पुरानी बंदूकों को अधिकार में लिया। शाहपुर पर अधिकार करने के बाद उसी समय थाना को भी तोड़ डाला तथा सभी रखे रिकार्ड को तहस-नहस करने के बाद रात भर वहीं कैम्प करते रहे। नदी के दूसरे किनारे में गवर्नमेंट के थाना के बरकन्दाज को बन्दी बनाकर साथ में ले गये थे जहाँ उसका बलिदान इन बंदूकों को दिया गया।

दूसरे दिन २२ अक्टूबर १८५७ ई० को इन ५०० विद्रोहियों ने लेस्लीगंज पर आक्रमण करके लूटा। थाना को लाकर जला दिया। लेस्लीगंज का पुराना नाम घोरासी था। लेस्ली अंग्रेज के आने के बाद ही नया नामकरण हुआ जो पलामू का सबडिवीजन १८५२-६२ ई० तक बना रहा। कचहरी और तहसील को भी आग के हवाले कर दिया गया। वहाँ के सभी लोगों ने विद्रोहियों का साथ दिया था। उसके बाद २२ अक्टूबर को ही इन विद्रोहियों ने ५ अन्य गाँव को भी जलाकर ध्वस्त किया। उस समय तहसील पुलिस और अबकारी सेना जो लेस्लीगंज में स्थापित थे विद्रोहियों की पहुँच से दूर भाग गये थे। वे चैनपुर में रघुवर दयाल के यहाँ पहुँचे। वहाँ से आगे बढ़ना कठिन था। उनके सभी घर जला दिये गये। कार्यालय स्वाहा कर दिये गये, अनेक मारे गये। वे साथ में सरकारी खजाना लेते गये और बाबू चूरामन राय नवागढ़ के ५६ गाँव के जागीरदार ने ६० रामगढ़ बटालियन के आने तक इनको संरक्षण दिया था। जमींदार ने अपने घर को पूरी तरह से आक्रमण से सुरक्षित

किया था। ग्राहम के सभी सिपाही आशाहीन हो गये थे। लगातार एक महीने तक इसी घर में बंद रहे। यहाँ से निकलने में खतरा था क्योंकि ५०० से अधिक विद्रोही पूरे जिले को घेरे हुए थे।[१६]

इस समय ७ नवम्बर १८५७ तक विद्रोही छोटे-छोटे टुकड़ों में होकर अपने गाँव चले गये थे।[१७] भोक्ता सुरगुजा की पहाड़ियों पर पीछे हट गये थे। ७ नवम्बर १८५७ को ग्राहम राँची से ६० रामगढ़ के पैदल सैनिकों के साथ चैनपुर पहुँचा था। वह अकेला ब्रिटिश था। वह काफी निराश होकर प्रतिरोध कर रहा था।[१८] इधर भोक्ता वीरों के संगठन के कारण सारा पलामू सशस्त्र ब्रिटिश से लोहा लेने के लिए खड़ा हो गया था। क्योंकि अंग्रेजों से जीतने के लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता थी वे गाँवों में लौटकर अपनी संख्या बढ़ाकर पहले २००० और बाद में ६००० तक कर दी गई थी।[१९] तबतक लेफ्टीनेंट ग्राहम को सुरक्षित ठाकुराई के घर में ही रखा गया था।

इसी समय तक भोक्ताओं का दल विशाल हो गया था। २७ नवम्बर को विद्रोही भोक्ताओं के इस विशाल दल ने रजहरा के कोयले की खान अधिकारी ग्रडी और मलजर पर धावा बोल दिया जो उस समय अंग्रेज चार्ज में थे। वे रजहरा छोड़कर चालाकी से बचते हुए भाग निकले थे। इधर इन यूरोपियन विद्रोहियों ने सभी कारखानों में आग लगा दी एवं लूटकर तहस-नहस कर दिया था। इस प्रकार भोक्ताओं का राजहरा पर अधिकार हो गया।[२०]

पलामू किला के पास विद्रोहियों के प्रमुख नेता देवीबक्स राय पकड़ लिये गये। जब ग्राहम की सेना आगे बढ़ी तो विद्रोही पीछे हट गये और पलामू किला के पास के गाँवों को जला दिया। साथ में भिखारी सिंह का घर ध्वस्त कर दिया गया क्योंकि ये ही अंग्रेजों के बड़े मददगार थे।

दूसरी तरफ २ दिसम्बर १८५७ को मनिका के सरकारी थाना को जला दिया गया था। इसी समय उधर छत्तरपुर थाना को भी जलाकर राख कर दिया गया जिसमें सभी सरकारी दस्तावेज जलकर राख हो गये। कम्पनी को सहायता देने के लिए दो मिलिट्री कम्पनी सासाराम से ८ दिसम्बर को मेजर कोटर के साथ यूरोपियन सैनिक के साथ शेरघाटी होते हुए आईं। इसी समय अंग्रेजों के विश्वासी रॉयल जमींदार के साथ कुछ प्रशिक्षित बन्दूकधारी भी ग्राहम की सेना में जुड़ गये। यह संयोग से ठंढा का महीना था, डालटन जो गवर्नर जेनरल का एजेंट था १४० सिपाही मेजर मैकडोनाल्ड के नेतृत्व में मनिका पहुँचा जिसे ग्राहम ने कुछ दूर तक साथ दिया। क्योंकि शेरघाटी का रास्ता भी विद्रोहियों ने बंद कर रखा था। मेजर ग्राहम को सहायता के लिए भेजा गया और इसी सेना के आने के बाद भोक्ताओं की सेना घेराबंदी चैनपुर से हटी थी। इस प्रकार पलामू के विद्रोही अपने मकसद में कामयाब होते रहे। इसके बाद इन विद्रोहियों ने रंका पर भी आक्रमण किया पर सफल नहीं हो पाये।

भोक्ताओं के सैनिक संगठन में आगरा के ६७वाँ रेजिमेंट के नेटिभ आर्मी के सिपाही भी थे। जैसे रामदेनी सिंह, राम अर्जन सिंह, अयोध्या सिंह आदि।[२१] सूबेदार पर्थ सिंह और राम सिंह भी थे, सभी मिलाकर १००० लोग थे जो सोन नदी पार करके आये थे, २५ जनवरी को ही यहाँ पकड़े गये।

इस तरह पलामू के विद्रोह में नीलाम्बर पीताम्बर को साथ देने आये थे जिन्हें बाद में अंग्रेज इनको अनजान रास्ता के कारण पकड़ पाये थे जिन्हें बाद में फाँसी दे दी गई थी। फाँसी देने के पूर्व में अपने दिये गये बयान में ये बातें सामने आई थीं जिसका ट्रायल १२ फरवरी १८५६ को कोरण्डा सबडिविजन में हुआ था, वहीं इन्होंने कबूल किया था कि वे आगरा के ६७ रेजीमेंट के इन्फेंट्री के सिपाही थे जो आगरा होते हुए इनकी मदद के लिए पलामू आये थे।[२२]

ग्राहम अपने सिपाहियों के साथ २६ दिसम्बर को देव राजा के सैनिक सहायता के साथ लेस्लीगंज पहुँचकर कुछ भाग में अधिकार कर लिया।[२३] इस समय तक देव राजा के ६०० बन्दूकें वाली सेना के साथ-साथ १०० सवार साथ मिल गये थे। पाटन घाट को भी विद्रोही लोगों ने रोक रखा था जिसे देव राजा ने मुक्त किया था। इसी समय ग्राहम को सुरगुजा से भी ६०० लोगों की सैनिक सहायता मिली। तब जाकर वे चढ़ाई करने की स्थिति में पहुँचे थे। भोक्ताओं को पलामू से बाहर की सहायता रोकने के लिए कई पत्र लिखे गये थे ताकि इन विद्रोहियों की स्थिति और मजबूत न हो सके।

इसी बीच नीलाम्बर और पीताम्बर को कुदा के खेरवार नेता प्रेमानन्द इलाकादार से चार लड़ाकू और ७५ जवानों की मदद मिली थी। इस समय तक नीलाम्बर और पीताम्बर अपने संगठन को मजबूत कर रहे थे। ये सभी जंगल में ही रहते थे। दूसरों को आने का अवसर ही नहीं देते थे।

दूसरी ओर रीवा राज्य के सिंधरौली के सामंत ने भी नीलाम्बर की सहायता से सुरगुजा पर चढ़ाई कर दी थी।[२४] ८०० भोगता सुरगुजा के साथ मिर्जापुर के जिलों में सशस्त्र आक्रमण कर लूटकर अपने अधिकार में कर लिया।[२५] नीलाम्बर पीताम्बर की बढ़ती हुई शक्ति से अंग्रेज घबरा गये थे।[२६] अंग्रेजों के सभी

जागीरदारों को भोगताओं के विरुद्ध सैनिक सहायता देने के लिए बाध्य किया गया था। दूसरी तरफ विद्रोही भोगता सिंधुआ सिंह के नेतृत्व में ६०० बन्दूकों के साथ प्रवेश हो गये थे।[२७] इस समय चकला के चेरो जागीरदार रामबक्स राय और उसके पुत्र हरबक्स राय ने नीलाम्बर पीताम्बर का विद्रोह में साथ दिया था जिससे सभी ब्रिटिश कम्पनी चिन्तामग्न थी। लेकिन बाद में लेस्लीगंज में डालटन ने रामबक्स राय को बुलाकर नजरबंद करके मिला लिया था।[२८]

नीलाम्बर पीताम्बर भी अमर सिंह से सहायता के लिए प्रयत्नशील थे। भोज और भरत के नेतृत्व में भोगतों ने बरगढ़ थाना को जला दिया। बरगढ़ थाना की सशस्त्र पुलिस १८ नवम्बर १८५८ ई० को सुरगुजा में जाकर छिपी रही क्योंकि १८५८ के २४ नवम्बर तक अमर सिंह के नेतृत्व में भोगतों की सेना कोरंडा में ठहरी हुई थी। लेकिन सहायता प्राप्त करने में नीलाम्बर पीताम्बर असफल रहे फिर भी एक दल मिरजापुर पहाड़ी में नीलाम्बर पीताम्बर के दल में शामिल हुआ और १२ जनवरी को फिर से मिलकर कई गाँवों को लूटकर आग के हवाले कर दिया जो उनका साथ नहीं दिये थे।[२९]

उधर १६ जनवरी को कैप्टन डाल्टन १४० सिपाहियों के साथ पलामू के लिए चले और २१ जनवरी को मनिका पहुँचे। उसी रात ग्राहम भी मनिका पहुँच गये थे। ग्राहम के साथ मेजर मैकडोनाल्ड रामगढ़ बटालियन के कुछ सैनिकों एवं बंदूकची के साथ पिठौरिया के परगनैत जगतपाल सिंह के साथ २१ जनवरी को मनिका पहुँचे जिनका उद्देश्य दूसरे दिन ही २२ जनवरी को ग्राहम द्वारा पलामू किला पर आक्रमण की तिथि निश्चित की गयी। इस समय तक मनिका में उत्तर से देव राजा की फौज भी आ गयी थी जो लेस्लीगंज में पहले से ही विद्रोही सैनिकों को हटाकर रुकी हुई थी।[३०] पलामू गढ़ को इन विद्रोही भोगताओं से मुक्त करना था। विद्रोहियों का गढ़ पर अधिकार था। इन सम्मिलित सेनाओं ने तीन ओर से गढ़ पर आक्रमण किया जबकि भोगताओं के पास सैनिक संख्या अधिक थी। सीधे आक्रमण कर पार पाना कठिन था। इसलिए अचानक आक्रमण करके हराना था। २२ जनवरी को मेजर मैकडोनाल्ड के नेतृत्व में इन सम्मिलित सेना के साथ पलामू किला में आक्रमण किया गया। उस समय ब्रिटिश सेना के साथ में रघुवर दयाल सिंह हुरबोंगा थे, किशुनदयाल देवबक्स सिंह, भगवानदेव, भिखारी सिंह, देवनारायण सिंह भी थे।

भोगताओं ने कुछ देर तक भारी प्रतिरोध किया लेकिन बाद में पूरे किले को आग के हवाले करके गढ़ को खाली कर दिया। वे बन्दूकें, कारतूस, गोली-बारूद, मवेशी और खाने का सामान छोड़ते चले गये। गढ़ में अंग्रेजों ने मृत विद्रोहियों की संख्या १० ही बतलाई है लेकिन किंवदन्ती के अनुसार यह संख्या २०० से अधिक है। जबकि दूसरी ओर अंग्रेजों के सिर्फ हवलदार मारा गया था और दो सिपाही घायल हुए थे।

पलामू गढ़ पर अधिकार कर लेने के बाद कमिश्नर लेस्लीगंज में १८ फरवरी तक रुककर लोगों को इकट्ठा करके अन्तिम लड़ाई की तैयारी कर रहे थे। लोगों के बीच यह संदेश दे रहे थे कि हमलोगों के पास २००० सैनिक हैं तो नीलाम्बर पीताम्बर के पास मात्र १००० ही हैं।[३१] यह मनोवैज्ञानिक दबाव अपने जागीरदारों पर बना रहे थे ताकि सभी विद्रोही जागीरदार का साथ दें। इसके लिए सभी ब्रिटिश समर्थक जागीरदारों को पत्र लिखकर एवं संदेश भेजकर बुलाकर अपने पक्ष में करने का प्रयास करते रहे। एक बाबू भवानीबक्स राय चेरो परिवार के मुख्य जागीरदार थे। कैप्टन डालटन के विरोध में बड़ी सेना तैयार कर रहा था। वह उसके बुलाने पर भी नहीं गया था। लेकिन बाद में वह डालटन से मिला और उसे अपने पक्ष में करने के लिए राँची ले आये, वे साथ में ही राँची में रहे। उधर डाल्टन नीलाम्बर पीताम्बर के गढ़ चेमूक और सेनया पर आक्रमण के लिए तैयारी हो रही थी। इसी बीच भोगताओं का देश दक्षिण में ही बचा था। डाल्टन ने बाघमारा घाट और टुंगड़ीघाट पर आक्रमण करके अधिकार में कर लिया। यहाँ भी अंग्रेजों को विरोध का सामना करना पड़ा लेकिन अधिकार में करने के बाद कुछ लोगों को पकड़ लिया था। हरी नामक गाँव के तीन लोगों को पकड़कर बंदी बना लियें इन तीनों में से दो को फांसी दे दी गई और एक को जानकारी देने के लिए भेदिया बनाकर रखा गया।[३२]

उधर नीलाम्बर पीताम्बर के नेतृत्व में विरोध चल रहा था। विद्रोही आसपास के गाँवों को लूट रहे थे। जब यह खबर ग्राहम को मिली तो वह पकड़ने के लिए व्याकुल हो गया था। इसीलिए गाँव के लोगों को पशुओं के साथ पकड़कर रखा था ताकि नीलाम्बर पीताम्बर पर मानसिक दबाव बनाया जा सके। कोयल नदी के किनारे ही नीलाम्बर पीताम्बर के मुख्य गढ़ थे। यहाँ अंग्रेजों के लिए अधिक समय तक रहना कठिन था क्योंकि पहाड़ी क्षेत्र जो पूरे छोटानागपुर का था वहाँ अधिक दिनों तक सुरक्षित रह पाना कठिन था क्योंकि छोटानागपुर की प्राकृतिक बनावट ही ऐसी है कि किसी के लिए भी अभेद्य दुर्ग जैसा था जहाँ विद्रोही पीछे हट जाते थे और फिर छिपकर सैनिक टुकड़ी पर आक्रमण कर देते थे। यही कारण था कि

प्रत्येक हार के बाद फिर से विद्रोह शुरू हो जाता था। इसलिए डाल्टन ने अन्तिम विजय का प्रयास कभी नहीं किया कि जीत के बाद कानून व्यवस्था फिर से सुचारू रूप से चलती रहेगी। नीलाम्बर पीताम्बर उसी में से एक थे जो अन्तिम हार के लिए तैयार नहीं थे और लगातार समय-समय छिप-छिपकर अंग्रेजों के ऊपर आक्रमण करते रहे। इसी उद्देश्य से १८५६ ई० में मुख्यालय लेस्लीगंज लाया गया जहाँ चार वर्षों तक १८६१ में डालटनगंज को चुना गया तथा १८६१ ई० में पलामू को लोहरदगा से अलग करके जिला बना दिया गया जहाँ आजतक जिला मुख्यालय है।[३३]

नीलाम्बर पीताम्बर को पकड़ने के लिए इनाम घोषित किया था।[३४] इसी बीच डाल्टन बीमार होकर राँची लौट गया। पलामू का विद्रोह जनआन्दोलन था। यहाँ के निवासी चेरो, खेरवार, भोक्ता, पलामू के निवासी थे सभी एक साथ अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। यह विरोध १८६० ई० तक जारी रहा। नीलाम्बर पीताम्बर १८६० तक पलामू के जंगल में छिपकर रहते रहे तथा छापामार युद्ध करते रहे जिससे उन्हें खोज पाना किसी अंग्रेज के वश में नहीं था। अंग्रेजों द्वारा पकड़ नहीं पाना यह दर्शाता है कि पलामू की जनता उनसे अगाध प्रेम करती थी।

राँची गजेटियर के पी० राय चौधरी के लेख के अनुसार इन दोनों क्रांतिकारी को पकड़ लिया गया और लेस्लीगंज में छोटी सुनवाई के बाद फाँसी दे दी गई।[३५] लेकिन कोई अन्य प्रमाण अभी तक नहीं मिल पाये हैं कि नीलाम्बर पीताम्बर को फाँसी दे दी गई या नहीं पकड़े जा सके क्योंकि यह किंवदन्ती है कि चेमू और सनेया पहाड़ी की गुफा में ही जीवन गुजरे। इसी आशय से आज भी इन पहाड़ियों की गुफा में इनकी पूजा की जाती है।[३६] यह विद्रोह अन्य विद्रोह से भिन्न था। यहाँ की जनजाति चेरो-खरवार, भोगता एक साथ अंग्रेजों एवं अन्य जागीरदारों के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे।

इस तरह इन रणबांकुरो ने अपनी धरती की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देकर मातृभूमि की स्वतंत्रता लड़ाई में अपने जन, जमीन, धन को स्वाहा करके धवल यश को प्राप्त कर लिया है जो युग-युग तक अमर रहेगा।

संदर्भ

१. पाण्डेय रामदीन, 'पलामू का इतिहास', बेनी माधव प्रेस, राँची पृ० १४८
२. वही पृ० ६
३. जे०बी०आर०एस० भो० XLI पार्ट ४, पृ० ५५२
४. बकलैंड, बंगाल अंडर लेटीनेंट गवर्नर १, ११८ मिनट बुक पारा ३, पत्र में, पूर्वोक्त पृ० ५५६
५. बकलैंड, पूर्वोक्त पृ० ५६१
६. वही, पृ० २६१ पारा ३६, सब नोट ६
७. ब्रिज, टी० डब्ल्यू०, फाईनल रिपोर्ट ऑफ दि सर्वे सेटलमेंट आरिजिन्स इन दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ पलामू १६१३-१६२ पटना, १६२१
८. जर्नल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री, राँची विश्वविद्यालय, भो० XXV जनवरी २६, १६८३, पृ० २
६. ब्रेडलीबर्ट एफ० बी०, 'छोटानागपुर लिटिल नोन प्रोभिन्स ऑफ दि इम्पायर', लंदन, १६१० पृ० २८१
१०. पाण्डेय रामदीन, पूर्वोक्ट पृ० १२३
११. जे०बी०आर०एस०, पूर्वोक्त पृ० ५६२, पारा ११
१२. वही, पृ० २६२
१३. बकलैंड पूर्वोक्त, पृ० ११८
१४. गजेटियर १८०
१५. जे०बी०आर०एस०, पूर्वोक्त पृ० ५६४
१६. ब्रेडलीबर्ट, पूर्वोक्त पृ० २२४
१७. वही, पृ० ५६४
१८. ब्रेडलीबर्ट, पूर्वोक्त, पृ. २२५
१६. वही, फुटनोट्स ६, पृ. ५६४
२०. वही, पृ. ५६६
२१. आर यंग एस्कयर, 'सेक्रेटरी टू दि गवर्नमेन्ट ऑफ बंगाल', नं. ५५/१६ फरवरी, १६५६ ने स्पेशल कोर्ट कमिश्नर लोहरदगा डिवीजन नं.१, १८५६
२२. बेस्ट बंगाल स्टेट आर्काइव्ज कोलकाता दीनबन्धु लेन पलामू रिवोल्ट १८५७-५८ फार सीनियर असिस्टेंट कमिश्नर ऑफ लोहरडागा डिवीजन एण्ड कमिश्नर अंडर एक्ट XIV ऑफ १८५७ टू सेक्रेटरी टू दि गवर्नमेन्ट ऑफ बंगाल नं. ५५ दिनांक १६ फरवरी १८५६।
२३. बकलैंड, पूर्वोक्त, पृ० ११८
२४. झारखण्ड पास्ट एण्ड प्रेजेंट २००२ (जनरल ऑफ हिस्ट्रिकल रिसर्च, भो० XLIII No. १.२) पृ० रोल ऑफ पलामू इन द फ्रीडम मूवमेंट बी०डी० इव० पृ० ६६
२५. पाण्डेय रामदीन, पूर्वोक्त, पृ० १२५
२६. राय पी०सी०, पलामू गजेटियर पृ० ८०
२७. कमिश्नर कोरंडा के २४ दिसम्बर १८५८, पं० सं० २८-२६
२८. पाण्डेय रामदीन, वही, पृ० १३०
२६. जे०बी०आर०एस० पूर्वोक्त, पृ० ५६६
३०. वही, पृ० २६५
३१. बकलैंड, पूर्वोक्त, पृ० १२० (फुटनोट ०५ जेबीआरएस पृ० ५६७)
३२. पलामू गजेटियर, पृ० ८६
३३. डालटन पत्र सं० २५२, दिसम्बर २२, १८५८
३४. ब्रेडलीबर्ट, पूर्वोक्त, पृ० २२७
३५. ब्रेडलीबर्ट, पूर्वोक्त, पृ० २२६
३६. गजेटियर, पृ. ८३

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 16 अंक 1, जनवरी–जून 2014**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

समलैंगिकताः अपराध या मानवाधिकार– एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ **डॉ. जी. एल. शर्मा**

समलैंगिकता आजकल एक चर्चित सामाजिक एवं वैधानिक विषय है। हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय (११ दिसम्बर, २०१३) में समलैंगिक यौन सम्बन्धों को पुनः अपराध ठहराकर भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३७७ को संवैधानिक रूप से सही करार दिया है। उल्लेखनीय है कि दिल्ली उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय (२ जुलाई, २००९) में भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३७७ को असंवैधनिक ठहराया था। भारतीय दण्ड संहिता (IPC) की धारा ३७७ में प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध इन्द्रियभोग (Carnal Intercourse against the Order of Nature) के अपराध के लिए आजीवन कारावास तक की सजा का प्रावधान किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में समलैंगिकता को लेकर समसामयिक, सामाजिक एवं वैधानिक विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में दिए अपने निर्णय में समलैंगिक यौन सम्बंधों को पुनः अपराध ठहराकर देश भर में एक नई बहस को जन्म दिया है। ११ दिसम्बर, २०१३ को जस्टिस जी.एस. सिंघवी एवं जस्टिस एस.जे. मुखोपाध्याय की खंडपीठ ने २ जुलाई, २००९ को दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय को अमान्य कर दिया।[1] अब समलैंगिक संबंध बनाना फिर अपराध हो गया है क्योंकि दिल्ली हाईकोर्ट के निर्णय के बाद पिछले करीब चार साल से ऐसा नहीं था और लोग अपनी सहमति से समलैंगिक सम्बंध बना सकते थे। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने इस ऐतिहासिक निर्णय में कहा है कि भारतीय दण्ड संहिता (IPC) की धारा ३७७ सवैधानिक रूप से सही है।[2]

उल्लेखनीय है कि २८ जनवरी, २०१४ को माननीय सुप्रीम कोर्ट ने समलैंगिक सम्बन्धों को अपराध घोषित करने के अपने फैसले (११ दिसम्बर, २०१३) पर फिर से विचार की याचिका (पुनर्विचार याचिका, Review Petition) को खारिज कर दिया है। केन्द्र सरकार और गैरसरकारी संगठन नाज़ फाउण्डेशन समेत कई संगठनों ने पुनर्विचार की अपील की थी।

समान लिंग वाले व्यक्तियों (पुरूष-पुरूष या महिला-महिला) के बीच यौन संबंध समलैंगिक संबंध (Homo-Sexual Relations) कहलाते हैं। ऐसी प्रवृत्ति को समलैंगिकता (Homosexuality) कहा जाता है। पुरूष-पुरूष के बीच संबंधों को गे (Gay) तथा महिला-महिला के मध्य सम्बंधों को लेस्बियन (Lesbian) कहा जाता है। समलैंगिक लोगों के अधिकारों की रक्षा करने और उन्हें वैधनिक मान्यता दिलाने के लिए एल.जी.बी.टी (LGBT- Lesbian, Gay, Bi-sexual and Transgender) नामक समुदाय विश्व स्तर पर एक स्वैच्छिक संगठन के रूप में सक्रिय हैं। ऐसा माना जाता है कि भारत में करीब २५ लाख लोग समलैंगिक हैं।

समलैंगिकता की अवधारणा उतनी ही पुरानी है जितनी मानव सभ्यता। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा माना जाता है कि रोमन साम्राज्य में राजा नीरो के भी अपने एक दास के साथ समलैंगिक सम्बंध थे। वैज्ञानिक अध्ययन बताते हैं कि जानवरों में भी समलैंगिक संबंध पाए जाते हैं।

सैद्धांतिक दृष्टि से कुछ वैज्ञानिक समलैंगिकता को एक जैविकीय प्रवृत्ति मानते हैं तो कुछ इसे मानसिक विकृति या मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि का परिणाम मानते हैं। इटेलियन अपराधशास्त्री एवं अपराधशास्त्र के जनक सिसरे लोम्ब्रोसो के अनुसार अपराधी जन्मजात होते हैं। इसी प्रकार अगर समलैंगिक आकर्षण की प्रवृत्ति जन्मजात होती है, तो यह एक मानवाधिकार से जुड़ा प्रश्न हो सकता है। लेकिन अगर समलैंगिकता एक सीखा हुआ व्यवहार है, जैसा कि अपराध के मामलों में सदरलैण्ड मानते हैं, तो इससे एक बीमारी की भाँति निपटा जा सकता है। समलैंगिकों का इलाज करके उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाया जा सकता है। योग गुरु बाबा रामदेव भी कहते हैं कि समलैंगिकता एक मानसिक विकार है तथा उनके आश्रम में इसका सफल इलाज किया जा रहा है।

भारतीय दण्ड संहिता, १८६० (१८६१ से लागू) की धारा ३७७ में समलैंगिक सम्बंधों को आपराधिक कृत्य की श्रेणी में रखा गया है। जिसके लिए आजीवन करावास तक की सजा का प्रावधान है। धारा ३७७ के अनुसार प्रकृति विरुद्ध अपराध - "जो कोई स्वैच्छापूर्वक किसी पुरूष या महिला या जीवजन्तु के साथ प्रकृति की व्यवस्था के विरूद्ध स्वेच्छया इन्द्रियभोग (कारनल संभोग) करेगा वह आजीवन कारावास या १० वर्षों तक के

❑ मुख्य सम्पादक (अवैतनिक), पैनासीआ इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल, जयपुर (राज)

कारावास एवं जुमनि से दंडनीय होगा।" (Unnatural Offences- Whoever, Voluntarily has carnal intercourse against the order of nature with any man, woman or animal, shall be punished with imprisonment for life, or with imprisonment of either description for a term which may extend to ten years and shall also be liable to fine.)[३] यह प्रावधन केवल प्रकृति विरुद्ध संभोग को अपराध मानता है। इस प्रकार धारा ३७७ में समलैंगिकता शब्दावली के सम्बंध में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं लिखा हुआ है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)

समलैंगिकता की प्राचीनता एवं इसके सामाजिक निहितार्थो का वर्णन हम प्राचीन समय से ही देख सकते हैं। कानूनी व्याख्याओं से इतर समलैंगिकता आदिकाल से हमारे बीच एक सामाजिक समस्या के रूप में विद्यमान रही है तथा इसे लेकर विरोधाभासी रुझान मिलते रहे हैं। परंपरागत एवं प्रत्यक्ष रूप से प्रायः सभी समाजों में भले ही समलैंगिकता को प्रोत्साहित न किया जाता रहा हो, किंतु समाज के भीतर इसकी स्वीकार्यता भी बनी रही। सच तो यह है कि समलैंगिकता का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना की मानव का अस्तित्व। अनेक प्राचीन भारतीय ग्रन्थ समलैंगिकता के उल्लेखों व दृष्टांतों से भरे पड़े हैं। वात्स्यायन रचित प्राचीन ग्रंथ 'कामसूत्र' (२.८) में तो इस विषय पर विस्तार से चर्चा की गई है। खुजराहो के शिल्प में भी समलैंगिकता का चित्रण है। इससे ध्वनित होता है कि भारतीय परिवेश में संबंधों की सामाजिक बुनावट में समलैंगिकता का अस्तित्व रहा है।[४]

वैसे जहां तक भारतीय समाज का प्रश्न है, तो इसमें स्त्री-पुरुष के मध्य प्रजननमूलक यौन-क्रिया के अलावा कुछ अलग प्रकार के यौन संबंध भी बनते रहे हैं, जिनमें से समलैंगिकता भी एक है। यद्यपि हमारे समाज में ऐसे यौन संबंधों को कभी भी खुले तौर पर सामाजिक रूप से स्वीकार नहीं किया गया। लेकिन अनेक ग्रंथों में इसका वर्णन अवश्य मिलता है। प्रसिद्ध ग्रंथ 'मनुस्मृति' (८.३६७-३७०) में समलैंगिकता को दंडनीय माना गया है। 'नारंद स्मृति' नामक प्राचीन भारतीय ग्रंथ में समलैंगिक पुरुषों के विवाह को वर्जित ठहराकर इस यौन प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया गया है।

उल्लेखनीय है कि 'नारद स्मृति' या 'मनुस्मृति' जैसे प्राचीन ग्रंथों में सीधे-सीधे समलैंगिकता को जायज नहीं ठहराया गया है, किंतु सूक्ष्म निरीक्षण करने पर यह पता चलता है कि तत्कालीन प्राचीन भारतीय समाज में समलैंगिकता की जड़ें न सिर्फ गहरी थीं, बल्कि इसके प्रति भारतीय समाज सहज और सहिष्णु भी था। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्जनाओं, विरोधाभासों के बावजूद समलैंगिकता के प्रति भारतीय समाज में जागरूकता अवश्य बनी हुई थी। इसे आधुनिक भारतीय समाज में पश्चिम से आयातित विचारधारा से और बल मिला। मानवाधिकारों एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बढ़ी वैश्विक चेतना के बाद तो भारत में समलैंगिकता को लेकर बहस तेज हुई है। इस प्रकार इसका समस्यात्मक पक्ष आज तक कायम है।

वैश्विक स्थिति (Global Scenario) : विश्व में ७७ देशों में समलैंगिक सम्बंधों को अप्राकृतिक मानते हुए इन्हें अपराध की श्रेणी में शामिल कर रखा है। यहां तक कि ईरान, सऊदी अरब, यमन, सुडान, नाइजीरिया एवं सोमालिया जैसे देशों में समलैंगिक सम्बंधों के लिए मौत की सजा तक का प्रावधान है। यद्यपि विश्व के ११४ देश समलैंगिकता को अपराध नहीं मानते हैं। समलैंगिक सम्बंधों को सर्वप्रथम १८११ ई. में नीदरलैण्ड द्वारा मान्यता प्रदान की गई थी। १९७२ में ट्रांसजेण्डर्स को सेक्स परिवर्तन करने की अनुमति देने वाला स्वीडन पहला देश था। नीदरलैण्ड ने २००१ में समलैंगिक विवाह (Homosexual Alliance) को मान्यता देकर एक नई पहल की। वर्तमान में १३ देशों में समलैंगिक जोड़ों को मान्यता मिली हुई है जिनमें नीदरलैण्ड, बेल्जियम, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, स्पेन, पुर्तगाल, आइसलैण्ड, अर्जेण्टीना, कनाडा एवं अमेरिका के कुछ राज्य शामिल हैं। यद्यपि आस्ट्रेलिया के केनबरा हाईकोर्ट ने समलैंगिक विवाह की अनुमति देने वाले आस्ट्रेलिया राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के कानून को असंवैधनिक घोषित कर दिया है। गौरतलब है कि वहाँ अक्टूबर, २०१३ में ही एक विधेयक पारित कर समलैंगिक विवाह की अनुमति दी गई थी, जिसके बाद कुछ समलैंगिक जोड़ों ने वहाँ विवाह कर लिया था। लेकिन अब उनकी शादी भी अवैध हो गई है।

नाज फाउण्डेशन (संस्थापिका-अंजलि गोपालन), एल.जी.बी.टी. एवं मानवाधिकारवादी कई गैर-सरकारी संगठन समलैंगिकों के अधिकारों के लिए आन्दोलनरत हैं। इन्होंने पिंक पेजेज नामक एक ऑनलाइन मैगजीन प्रारम्भ की है जो समलैंगिकों में खासी लोकप्रिय है। गुजरात की राजपीपला रियासत के राजकुमार मानवेन्द्र सिंह गोहिल ने २००५ में खुलेआम स्वयं को समलैंगिक घोषित किया था। विश्व के सबसे लोकप्रिय रियलिटी शो "द ओपरा विन्फ्रे शो" (The Oprah Winfray Show) में २४ अक्टूबर, २००७ को यह खुलासा किया गया। मानवेन्द्र ने

खुलेआम समलैंगिक सम्बंधों का समर्थन किया। बॉलीवुड अभिनेत्री सेलिना जेटली ने भी समलैंगिकता का समर्थन करते हुए १६ अप्रैल, २००६ को बोम्बे दोस्त नामक गे-मैगजीन का उद्घाटन किया था।

दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा २ जुलाई २००६ को समलैंगिक सम्बंधों को वैधनिक मान्यता प्रदान करने तथा धारा ३७७ को असवैधानिक घोषित किए जाने के बाद दिल्ली, बैंगलुरू, भुवनेश्वर एवं मुम्बई में गे-परेडों का आयोजन किया गया। मुम्बई में २०१० में कशिश क्वीर फिल्म फेस्टिवल (एल.जी.बी.टी. फिल्म फेस्टिवल) का आयोजन भी किया गया। भारत में समलैंगिक सम्बंधों को लेकर बॉलीवुड़ की कई फिल्मों का निर्माण किया गया है। इनमें से कुछ विवादों में भी रही हैं। फायर, फैशन, आई एम, माई ब्रदर निखिल, हनीमून ट्रेवन्स प्रा.लि., गर्ल फ्रैन्ड, बॉम्बे टॉकीज, दुनों में ना जाने क्यों, दोस्ताना, बोमगे इत्यादि फिल्में समलैंगिक दुनिया के विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्त करती हैं।

अविभाजित भारत में समलैंगिकता से जुड़ा प्रथम प्रकरण-'खानू बनाम सम्राट, १९२५' न्यायालय के समक्ष आया था, जिसमें यह फैसला दिया गया कि यौन संबंधों का मूल उद्देश्य संतानोत्पत्ति है, जो कि अप्राकृतिक यौन संबंधों से संभव नहीं है। मशहूर कथाकार इस्मत चुगताई की चर्चित कथा कृति 'लिहाफ' तथा लोककथाकार विजयदान देथा की कहानी 'तीजा-बीजा' में समलैंगिक संबंधों का चित्रण है। प्रसिद्ध लेखक राज राव का उपन्यास 'द ब्वायफ्रेन्ड (२००३) भी समलैंगिक संबंधों पर केन्द्रित है। केन्द्र सरकार सर्वोच्च न्यायालय को यह तथ्य पेश कर चुकी है कि भारत में समलैंगिकों की संख्या लगभग २५ लाख है, जिनमें से लगभग ७ प्रतिशत (१.७५ लाख) एचआईवी एड्स संक्रमित हैं। वैज्ञानिकों ने आनुवांशिकता और वातावरण को समलैंगिकता के कारकों के रूप में चित्रित किया है।

प्रसिद्ध फिल्म निर्माता श्रीधर रंगायन की चर्चित फिल्में 'द पिंक मिरर' एवं 'योर्स इमोशनली' समलैंगिक संबंधों पर केन्द्रित हैं। सेंसर बोर्ड की आपत्ति के कारण 'द पिंक मिरर' भारत में प्रदर्शित नहीं हो सकी। इसे विदेशों में प्रदर्शित किया गया। कुछ समय पूर्व मुंबई (महाराष्ट्र) में समलैंगिक संबंधों पर आधरित 'कशिश' नामक फिल्म फेस्टिवल का आयोजन किया गया था, जिसमें २५ देशों की ११० फिल्में प्रदर्शित की गई थीं। 'बाम्बे दोस्त' भारत की पहली 'गे' मैगजीन है जिसकी शुरूआत वर्ष १९९० में पत्रकार अशोक राव द्वारा की गई थी। अशोक राव समलैंगिक संबंधों की पैरोकारी करने वाले पत्रकार हैं तथा मेल सेक्सुअल हेल्थ से संबंधित एनजीओ 'हमसफर ट्रस्ट' के संचालक भी हैं।

समलैंगिकता दरअसल बहुपक्षीय एवं गंभीर विषय है जिस पर खुले दिमाग से बहस एवं विमर्श किए जाने की आवश्यकता है। जब हम इसके नैतिक एवं धार्मिक पक्ष को देखते हैं तो यह हमारी सनातन संस्कृति एवं संस्कारों पर कुठाराघात लगता है। समलैंगिक प्रवृतियाँ विवाह, परिवार एवं नातेदारी जैसी सामाजिक संस्थाओं को चुनौती देती नजर आ रही हैं। इस परिप्रेक्ष्य में समलैंगिकता को प्रकृति विरूद्ध पाशविक जीवन शैली का परिणाम माना जाता है। मानव के जीवन में हिन्दू-दर्शन के अनुसार चार पुरूषार्थों के रूप में चार लक्ष्य बताए गए हैं-धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इनकी प्राप्ति के लिए समाज-सम्मत एवं स्वीकृत साधनों के प्रयोग की बात की गई है। यहाँ तक कि वात्सायन ने भी कामसूत्र में सावधान किया है कि काम भी धर्म से संचालित होना चाहिए।

आधुनिक मानव की उत्पत्ति एवं उद्भव डार्विन के अनुसार होमो-सेपियन्स से हुआ है। मानव एवं पशु में अन्तर को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध मानवशास्त्री लेस्ली व्हाइट ने मानव की पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है- (१) सीधे खडे रहने की क्षमता (सीधी रीढ की हड्डी) (२) विकसित मस्तिष्क (३) स्वतंत्रतापूर्वक घूमने वाले हाथ (४) केन्द्रित की जा सकने वाली दृष्टि एवं (५) प्रतीकों की क्षमता अर्थात् भाषा एवं संस्कृति। वास्तव में संस्कृति ही मानव को अन्य प्राणियों से प्रथम एवं श्रेष्ठ बनाती है। इसीलिए अरस्तु कहते हैं कि मानव एक सामाजिक पशु है।[६]

एल.जी.बी.टी. समुदाय तथा नाज फाउण्डेशन समलैंगिक सम्बंधों को वैधता प्रदान करने की मांग कर रहे हैं। लेकिन इसकी वैधता की आवश्यकता कहाँ है? दिल्ली उच्च न्यायालय ने समलैंगिकों के बीच यौन सम्बंधों को अपराध के दायरे से मुक्त करते हुए व्यवस्था दी थी कि एकांत में दो वयस्कों के बीच सहमति से स्थापित यौन सम्बंध अपराध नहीं होंगे। अब पुनः सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पश्चात् धारा ३७७ के अनुसार अप्राकृतिक यौन सम्बंधों को अपराध घोषित किया जा चुका है। लेकिन जब तक पीड़ित व्यक्ति कोई शिकायत या परिवाद दायर नहीं करता तब तक आपराधिक प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं होती और दोषी को सजा नहीं मिलती। धारा ३७७ भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत आज तक करीब २०० मामले दर्ज हुए हैं। वे भी अधिकांश नाबालिगों से जुड़े हुए मामले हैं। आज भी हमारे देश में करीब २५ लाख लोग समलैंगिक सम्बंधों के साथ जी रहे हैं लेकिन अगर इसे वैधता प्रदान की गई तो फिर पशुवत जीने का अधिकार भी मिल जाएगा। सहमति से सम्बंध तो वैसे ही वैध हो जाते हैं क्योंकि असहमति ही बलात्कार है। धार्मिक संगठनों का

तर्क है कि क्या कानूनी मान्यता देने से सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य बदल जायेंगे? क्या लोग इन अप्राकृतिक सम्बंधों को स्वीकार कर इन्हें इज्जत देना शुरू कर देंगे? क्या इन्हें एच.आई.वी. एड्स होना बन्द हो जाएगा?

उल्लेखनीय है कि दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले को ऑल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड, उत्कल क्रिश्चियन काउन्सिल, अपॉस्टलिक चर्चेज अलायंस जैसे सामाजिक एवं धार्मिक संगठनों एवं भाजपा के नेता बी.पी. सिंघल ने सुप्रीम कोर्ट में चुनौती की थी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने इस नवीनतम फैसले (११ दिसम्बर २०१३) में कहा है कि ऐसे संबंध संविधान के अनुच्छेद १४,१५ एवं २१ का उल्लंघन करते हैं क्योंकि अनुच्छेद २१ व्यक्ति को सम्मान से जीने का अधिकार देता है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि संसद के बनाए कानूनों को आँख मूंद कर विदेशी कानूनों से बदला नहीं जा सकता। विदेशी न्यायालयों के फैसले एवं विदेशी नीतियाँ सूचनात्मक हो सकती हैं, लेकिन इन्हें यहाँ लागू नहीं किया जा सकता। विधायिका ने भारतीय दण्ड संहिता में ३० से भी अधिक संबोधन किए हैं लेकिन धारा ३७७ में कोई बदलाव नहीं किया। इससे यह पता चलता है कि संसद भी इस धारा में संशोधन करने की पक्षधर नहीं है।

हमारे देश के सामाजिक एवं धार्मिक पैरोकारों के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले से भारतीय समाज के संस्कारों और सामाजिक ताने-बाने (फैब्रिक) की श्रेष्ठता की पुष्टि की है। इससे विवाह एवं परिवार जैसी सनातन सामाजिक संस्थाओं का मान बढ़ा है। ये सारी व्यवस्थाएं प्रकृति सम्मत सृष्टि विकास का ही आवश्यक हिस्सा हैं। प्रकृति विरूद्ध कृत्य तो पतन की ओर ले जाते हैं। वंश वृद्धि ही विवाह संस्था का अकेला आधार नहीं हैं। गृहस्थ में पुरूषार्थ करते हुए जीवन का सर्वोच्य लक्ष्य प्राप्त करना ध्येय होता है। स्त्री और पुरूष इस काम में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। प्रकृति ने दोनों की भूमिका भी निर्धारित की है। प्रकृति से लय होकर ही आनन्द की प्राप्ति होती है, प्रकृति से विपरीत व्यवहार विध्वंश का कारण हो सकता है।[८]

भारतीय सभ्यता की विशिष्टता में ज्ञान और संस्कार ही तो वे सुदृढ़ आधर रहे जिससे भारत को विश्व गुरु माना जाता था। हमारे लोकाचार इन्हीं गौरवमय संस्कारों का प्रभाव हैं। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि समलैंगिक सम्बंधों के परिणामस्वरूप एच.आई.वी. एड्स अधिक फैलता है। यह भी तथ्य है कि देश में करीब २५ लाख समलैंगिकों में से सात प्रतिशत से अधिक लोग एच.आई. वी. से संक्रमित हैं और मौत के साये में हैं। ऐसे भयावह परिणामों के परिप्रेक्ष्य में तो यही कहा जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने देश की सभ्यता संस्कृति एवं जनस्वास्थ्य की जनभावनाओं के अनुरूप निर्णय दिया है। यह विचार रूढिवादी एवं अप्रगतिशील अवश्य प्रतीत होता है। लेकिन यह समलैंगिकता को एक मानसिक विकार मानते हुए उनके उपचार को उपयुक्त समाधन मानता है।

दूसरी ओर मानवाधिकारवादी दृष्टिकोण से देखने पर समलैंगिकता पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय आधुनिक उदार भारत के साथ अन्यथा प्रतीत होता है। क्योंकि मामला व्यक्तिगत आजादी के साथ-साथ संविधान के उदार-मूल्यों और आज के आधुनिक दौर की भावना के साथ जुड़ा हुआ है। समलैंगिकता विरोधी कानून ब्रितानी उपनिवेशवादी नीति का नतीजा है। आधुनिक समकालीन भारतीय समाज में समलैंगिकता के प्रति अधिक खुलापन है। माननीय न्यायालय अपने निर्णयों में लिव-इन-रिलेशन्स की प्रवृत्तियों को भी मान्यता दे चुके हैं। लेकिन समलैंगिकता पर चूँकि विधायिका ने अपना रूख स्पष्ट नहीं किया इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इसे संसद पर छोड़ दिया है, चाहे तो वह कानून बनाकर धारा ३७७ में संशोधन कर सकती है।

अतः समलैंगिकता का मसला अत्यंत संवेदनशील, गंभीर एवं नाजुक है इसलिए इस पर विस्तृत एवं गंभीर सामाजिक-सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, वैधानिक एवं राजनीतिक चर्चा, मंथन एवं विमर्श की महती आवश्यकता है।

संदर्भ

१. नाज फाउन्डेशन बनाम एनसीटी देहली, २००६ दिल्ली हाईकोर्ट
२. एनसीटी देहली बनाम नाज फाउन्डेशन इण्डिया ट्रस्ट २०१३ सुप्रीम कोर्ट
३. भारतीय दंड संहिता, १८६० धारा ३७७
४. जी एल शर्मा, 'होमोसैक्सुअलिटी : सोशियो-लीगल डिस्कर्स', पैनासीआ इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आई एस एस एन २३४७-३६६ग, अंक-१, न.१, जुलाई-सितम्बर २०१३, पृ. १७
५. टाइम्स ऑफ इंडिया, १७ अप्रैल, २००६
६. माइकल फूको, 'द हिस्ट्री ऑफ सैक्सुअलिटी', पैंथन बुक्स, १६८६, पृ. १८६
७. भारत का संविधान, अनुच्छेद २१
८. नारायण अरविन्द, 'बिकॉज आई हैव ए वॉयस : क्वीर पॉलिटिक्स इन इण्डिया', योदा प्रेस, २००६, पृ. ८८

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

प्राचीन भारतीय समाजार्थिक व्यवस्था में नगरों का महत्व

❑ शानुल इस्लाम मलिक
○ डॉ. राकेश कुमार

प्राचीन भारत की सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों में नगरों के योगदान को तत्कालीन राजनीतिक, समाजिक व धार्मिक ग्रन्थों, प्राचीन अभिलेखों, शिलालेखों, विदेशी विवरणों, विभिन्न प्रकार के सिक्कों व स्थापत्य कला के साक्ष्यों सहित समाज की आर्थिक गतिविधियों के प्राचीन भारतीय भूसम्पदाओं, आर्थिक उत्पादों के आदान-प्रदान के साथ-साथ औद्योगिक उत्पादों के विनिमय में भारी योगदान को चिन्हित करके किया जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण भारत विशेषकर उत्तरी भारत में प्रसिद्ध नगरों का त्वरित विकास सम्भव हुआ जिससे समाज की संरचना भी प्रभावित हुई। नगरों के उत्थान की परिस्थितियों ने भारतीय विकासवादी व्यवस्था की पुष्टि की। प्राचीन भारतीय समाजिक और आर्थिक व्यवस्था के विकास को नगरों के विकास में सहायक तत्वों के संदर्भ में विकासवादी स्वरूप में अध्ययन सम्भव जान पड़ता है।

प्राचीन भारत की सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था का मुख्य आधार भारत के नगर और बन्दरगाह थे, जिनका मुख्य पोषक तत्व भारत की प्रचुर प्राकृतिक सम्पदा से युक्त ग्रामीण परिक्षेत्र था। नगरीकरण की विशिष्ट आवश्यकताओं व विशेषताओं का विविध रूप था जो तात्कालिक सामाजिक संस्थाओं को बनाये रखने में आर्थिक आधार प्रदान करता रहा। भारतीय सामाजिक व आर्थिक संस्थाओं को गतिशील बनाये रखने में भारत की बौद्धिक सम्पन्नता की पुष्टि विभिन्न धर्मों का जन्म स्थल होने से होती है। प्रचुर प्राकृतिक सम्पदाओं के प्रति प्राचीन भारतीय समाज का सौहार्दपूर्ण व्यवहार व मानवीय दृष्टिकोण आधुनिक समाज की समस्याओं के समाधान का आधार प्रस्तुत कर सकता है।

नगरों के विकास की परिस्थितियों ने भारतीय विकासवादी धारणा को आगे बढ़ाया। प्राचीन भारत के इतिहास में दीर्घावधि तक शासन करने वाले राजवंशों ने सुदृढ़ आर्थिक नीति का पालन किया हो इसके पुष्ट साक्ष्य प्राप्त नही हुए हैं।, किन्तु प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की अपूर्णता के उपरान्त भी प्राचीन लेखन इतिहास के महत्वपूर्ण समाज के उत्थान और पतन को वर्णित करता है तथा धर्म, कला, साहित्य और सामाजिक जीवन के समान ही राजनीतिक संगठनों, भारतीय शासनव्यवस्था के शक्तिशाली तथा कमजोर स्वरूपों के विकास के तत्वों के संदर्भ प्रस्तुत करने में सक्षम है।[२]

मौर्यकाल व उत्तर मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था को जानने के स्रोतों में कौटिल्य का अर्थशास्त्र[३] सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत है। अर्थशास्त्र में वर्णित विस्तृत केन्द्रीय कृत शासन व्यवस्था, भारी संख्या में उपलब्ध सिक्के, सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था की पुष्टि करते हैं। किन्तु अर्थशास्त्र में वर्णित विभागों का व्यवहारिक शासन व्यवस्था में प्रयोग संदिग्ध ही जान पड़ता है।[४] दर्शन शास्त्र, राज्य-पद्धति या राजनीति पर वाद-विवाद के बजाय शासन के दृष्टिकोण को अधिक गंभीरतापूर्वक लिया गया जिसमें राजनीतिज्ञों को १८ महत्वपूर्ण विभागों की ओर ध्यान देने को कहा गया है जो कि राज्य व्यवस्था के सुचारू संचालन में महत्वपूर्ण है। नगर प्रशासन की देख-रेख करने वाले प्रशासकों को अर्थशास्त्र में नगराध्यक्ष कहा गया है। अर्थशास्त्र भारत की विकसित सामाजिक व धार्मिक अवस्था को भी परिलक्षित करता है। स्पष्टतः आर्थिक प्रबन्धन समाज की वैदिक संरचना का भी महत्वपूर्ण अंग नगर व्यवस्था के विवरण को मेगस्थनीज, मौर्य साम्राज्य में नियुक्त यवन राजदूत, ने भी विस्तृत रिपोर्ट तैयार की। मेगस्थनीज की 'इण्डिका' से उद्धृत विवरण यूनानी लेखकों के विवरणों में प्राप्त होते हैं। इस उद्धरणों के माध्यम से ही मौर्य शासन काल तथा तत्कालीन संस्थाओं के सूक्ष्म वर्णन व विश्लेषण किया जा सकता है।[५] अर्थशास्त्र और 'इण्डिका' के विवरणों के तुलनात्मक विश्लेषण से उच्चीकृत संगठित प्रशासनिक व्यवस्था की पुष्टि होती है जिसके द्वारा समस्त आर्थिक जीवन को नियंत्रित और संचालित किया जाता था जिसमें सभी वर्गों और समूहों के प्रतिनिधि के रूप में मंत्रियों अथवा नागरिकों का योगदान प्राप्त किया जा सकता था।[६] सिक्के और अभिलेख आर्थिक प्रबंधन के

❑ शोध अध्येता, इतिहास विभाग, गुलाब सिंह हिन्दू महाविद्यालय, चान्दपुर बिजनौर (उ.प्र.)
○ असोशिएट प्रोफेसर इतिहास विभाग, गुलाब सिंह हिन्दू महाविद्यालय, चान्दपुर बिजनौर (उ.प्र.)

साथ-साथ सामाजिक विशिष्टताओं को भी प्रदर्शित करते थे। **पुरातत्वविदों** के व्यापक उत्खननों के द्वारा प्राचीन नगरों के उद्गम, विकास और पतनको स्पष्टतः समझा जा सकता है। नगरीकरण के संकेत भवनों की गलियों, नालियों, औजारों, बारीक मिट्टी के बर्तनों, परिमार्जित और छोटे आकारों की बारीक मिट्टी की मूर्तियों, अनागारों, विभिन्न शिल्पीय वस्तुओं, सिक्कों के सांचों इत्यादि से युक्त सघन इमारतों से मिलता है। प्राचीन भारत में इमारतों के उत्थान और पतन में लौह युग के आर्थिक परिवर्तनों ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिवर्तनों की अभिव्यक्तियां भी अनेक रूपों में प्रस्तुत कीं। ये परिवर्तित परम्पराएं पूर्वकालिक सामाजिक परम्पराओं का विकसित व सुधरा हुआ रूप थीं।[७] इसमें बहुत सी पुरातन संस्थाओं व विचारों को अधिगम्य (आत्मसात) किया हुआ था। लौहयुग से अस्त्र-शस्त्रों के द्वितीय नगरीकरण का उद्भव और विकास को बहुमुखी महत्व प्राप्त हुआ। समाज के विभिन्न कार्यक्षेत्रों से सम्बद्ध सामान्य किसानों/जनता को भी इस परिवर्तनशील प्रक्रिया में महत्व प्रदान कर दिया। शक्तिशाली राजतंत्र की शक्ति के स्रोत को सुदृढ़ अर्थव्यवस्था ने आधार प्रदान किया तथा व्यक्ति व समाज की समस्या ने एक और अनेक रूपों में मुख्य स्थान ग्रहण कर लिया था। लौह युगीन दर्शन ने प्रकृति को भी भागों में उसी प्रकार बांट दिया जैसे समुदाय का व्यक्तियों में और नगर की भूमि को व्यक्तिगत धृत क्षेत्रों तथा जागीरों में बांट दिया था।[८]

मौर्य साम्राज्य की एकीकृत व्यवस्था में आर्थिक गतिविधियों के केन्द्र के रूप में नगरों का विकास सम्भव हुआ। साहित्य में वर्णित समृद्ध नगरों के अस्तित्व की पुष्टि उत्खनन और अन्वेषण से हुई। बौद्ध नगरों की चीनी यात्रियों के वृतांत के विवरणों से भारत के नगरीकरण की छवि और गम्भीर हुई। भौतिक संस्कृति के उदय एवं विकास में भारतीयों की सर्जनात्मक क्षमता में सन्देह व्यक्त किया गया और जिसकी पुष्टि भारत के नगरों पर लिखते हुए स्टुअर्ट पिगाट ने भारतीयों की अपरिवर्तनशील प्रथाओं और भौतिक संस्कृति का विलेषण किया है। पिगांट के अनुसार "भारतीय इतिहास में प्रगति का न कोई अन्तर्निहित तत्व है और न हमे ढूंढना चाहिए... बढ़ती हुई मानवीय आवश्यकताओं के अनुरूप संस्थाओं का कोई जीवन्त उदविकास नहीं दिखाई देता, भौतिक संस्कृति में कोई प्रगति नही मालूम पड़ती और निरन्तर बढ़ती हुई आबादी के अनुपात में उच्चतर जीवन स्तर का क्रमिक प्रसार नहीं दृष्टिगोचर होता।"[९] किन्तु भारतीय प्राचीन साहित्य में तत्कालीन नगरों का बहुआयामी महत्व भारतीय समाज की गतिशीलता की अभिव्यक्ति का माध्मय है। औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व नगरों की आवश्यकताओं की पूर्ति एक दुःसाध्य कार्य थी।[१०] शहरवासी शिल्प-विशेषज्ञों की उपस्थिति और उत्पादकों से कर के रूप में प्राप्त अधिशेष का नगरीकरण में विशेष महत्व था।[११] भारतीय समाज की गतिशीलता सिन्धु सभ्यता के शहरीकरण से स्पष्ट है। शहर की वास्तविक पहचान भौतिक जीवन की गुणवत्ता और शिल्प विशेषज्ञों की शिल्प की विशेषताओं से होती है जिसमें उसका आकार और आबादी का महत्व कमतर हो जाता है।[१२] सभी वर्गों की आबादी और बहुसंख्यक शिल्पियों अथवा शिल्प-विशेषज्ञों से युक्त जनसंख्या संकेंद्रण (बस्तियों) को स्थापत्य विषयक ग्रन्थों में निगम अथवा शहर के रूप में परिभाषित करना उचित ही माना जा सकता है।[१३]

सिन्धु घाटी के नगरों से प्राप्त चिह्न आरम्भिक ऐतहासिक काल के नगरों का होना स्पष्ट करते हैं। सुपढ़य मोहरों और अभिलेखों से ऐतिहासिक शहरों में संगठित तथा वैयक्तिक सौदागरों और शिल्पियों की जानकारी उपलब्ध होती है। धातु मुद्रा के सिक्के वस्तु विनिमय का सुगम माध्यम उपलब्ध कराते हैं। तीन दर्जन आरम्भिक स्थलों से सिक्के ढालने के सांचे मिले हैं।[१४] जहाजी मालगोदामों तथा मालघाटों से नगर बन्दरगाहों से होने की पुष्टि होती है। कावेरी पत्तनम[१५] व अरिकमेडू[१६] नामक नगर बन्दरगाह इसका उदाहरण है। नगरीय विशेषताओं में अधिशेष खाद्यानों को संचित करने हेतु गोदामों, भण्डारगृहों का अत्यधिक महत्व है। दक्खन भारत में अनेक स्थलों पर कोठार और अन्नभण्डार मिले हैं। गोदामों से नगरों को खाद्यान्न की आपूर्ति की जाती थी किन्तु खाद्यान्नों की प्राप्ति का स्वरूप राज्य के कर अथवा अनाज सौदागरों द्वारा संचित किया जाता रहा होगा। गोदामों से प्राप्त सिक्कों से आनाज के क्रय-विक्रय की पुष्टि होती है जो कि नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताओं सुनिश्चित करने का गम्भीर प्रयास था। स्पष्टतः इन भण्डारों के माध्यम से नगरों का गांवों पर निर्भरता का तथ्य प्राप्त होता है।[१७] इस प्रकार नगरों के स्वरूप के लिए आवश्यक विशेषताओं का परीक्षण किया जा सकता है उनके अस्तित्व विकास और पतन की सजीव कल्पना की जा सकती है। भारतीय समाज की आन्तरिक गतिकी की विशेषताअें के आधार पर ही नगरीकरण ओर विनगरीकरण के तथ्यों की व्यापक प्रक्रिया को समझने के लिए उसकी आध्यात्मिक तथा बौद्धिक गतिकी को भी विश्लेषित किया जा सकता है।

नगरों के विकास में बहुआयामी तत्वों, भौगोलिक, राजनीतिक,

आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक वैज्ञानिक आदि का समावेश रहा। नगरों के द्वारा समाज की गतिशीलता को वास्तविक स्वरूप प्राप्त होकर विभिन्न संस्थाओं, परम्पराओं, रीति-रिवाजों के रूप में पोषित होकर बौद्धिक चेतना के रूप में प्रस्फुटित हुआ। नगर विकास के ये सभी कारक सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण ढांचा हैं जो कि अपनी आर्थिक राजनीतिक रूप से सुदृढ़ होकर विकास के माध्यम से नगरों के अस्तित्व तथा विकास की प्रक्रिया में संस्कृति व सभ्यता का परिदृश्य निर्मित करता हुआ मानवीय विकास की अवस्थाओं को परिलक्षित करता है। नगरीकरण के माध्यम से समाज बौद्धिक चेतना तथा तत्जनित विचारों से समाज के विकास को गति प्रदान करता है। भारतीय नगरों का स्वरूप परिवर्तित होता रहा किन्तु भारतीय समाज और समता का सनातन स्वरूप निरन्तरता के साथ अक्षुण बना हुआ है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सनातन स्वरूप का आधार प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता रही है। प्रकृति की परिधि में भारतीय समाज स्वयं को बनाये रखने हेतु आंशिक योगदान का ही श्रेय ले सकता है क्योंकि प्राकृतिक आपदाओं से समाज स्वयं को संरक्षित करने के प्रयासो में आध्यात्मिक विचारों को मूर्त रूप प्रदान करने लगा जिसके परिणाम स्वरूप वैदिक साहित्य का उच्च आध्यात्मिक स्वरूप तथा बौद्ध धर्म और जैन धर्म का मानवीय मूल्यों में असीमित योगदान रहा जिसका मूल भारतीय प्राकृतिक सम्पदाएं ही रहीं। भारतीय समाज अपनी इस विशिष्टता के कारण भी मिस्र, मेसोपोटामिया और यूनानी सभ्यताओं के विपरीत अपना सनातन स्वरूप और मूल्यों को बनाये रखते हुए[१८] विकास के पथ पर अग्रसर है। सम्पूर्ण संसार को मनुष्य के मनुष्य से तथा मनुष्य के राज्य से संबंधों का मानवीय स्वरूप प्राचीन भारत के अनुरूप नहीं हो सका।[१९] विश्व की घृणीत दास संस्था का अस्तित्व भी भारत में अल्पतम था जिसे अन्य सभ्यताओं की तुलना में दासों को अधिक संरक्षण प्राप्त था।[२०] इसके अतिरिक्त विश्व की सभ्यताओं में कोई भी विधि निर्माता युद्ध में प्रयुक्त होने वाले नियमों का निर्माण नियमोचित ढंग से नही कर सका।[२१] प्राचीन भारत में निहत्थे युवकों, जनता के नरसंहार का उदाहरण अपवाद रूप में ही हो सकता है। नरसंहार अथवा क्रूरता के ये उदाहरण प्रारम्भिक संस्कृति और सभ्यताओं की तुलना में नगण्य ही रहेंगे। प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष अथवा लक्षण उसका मानवीय स्वरूप है।[२२] जिसकी आज आधुनिक विश्व में और भी अधिक आवश्यकता है।

आधुनिक विश्व को विकराल समस्याओं के समाधान हेतु भारतीय संस्कृति के प्राचीन मूल्यों का आधुनिकता के संदर्भ में परिवर्तित कर समायोजित करना होगा इसके लिए नगरों के स्वरूप को औद्योगीकरण तथा बौद्धिक विविधताओं के मध्य प्रकृति के अनुकूल तथा मानवीय बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए मनुष्य के मनुष्य से तथा मनुष्य के राज्य के प्रति व्यवहार के आदान-प्रदान में सामाजिक विविधताओं के संदर्भ में व्यवहारिकता के लाने की आवश्यकता है इसके लिए प्राचीन भारत में भारतीयों की प्रकृति के प्रति मित्रतापूर्ण मानवीय व्यवहार एक आदर्श सिद्ध हो सकता है।

सन्दर्भ

१. आध्येय जी.एल. , 'अर्ली इण्डियन इकोनॉमिक्स', दिल्ली, १९६६ भूमिका
२. बाशम ए.एल, 'दा वन्डर देट वाज इण्डिया', दिल्ली १९६६, पृ. ४४-४५
३. शामाशास्त्री आर. (अनु.) 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र', तीसरा संस्करण, मैसूर, १९२९
४. आध्येय जी. एल., पूर्वोक्त, भूमिका
५. मेक्रिण्डल जे. डब्ल्यू., 'एसोसिएट इण्डिया एन डिसक्राइवड बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन', लंदन १८७७,
६. बाशम ए.एल., पूर्वोक्त, पृ. ५१
७. चाइल्ड गार्डन, 'इतिहास का इतिहास', चण्डीगढ़ १९८८, पृ. ६-७
८. वही, पृ. २१८
९. पिगॉट स्टुअर्ट, 'सम एन्शिएण्ट सिटीज ऑफ इण्डिया', ऑक्सफोर्ड १९४५, पृ. १-२
१०. शर्मा राम शरण, 'भारत के प्राचीन नगरों का पतन', दिल्ली २०००, पृ. १७
११. चाइल्ड गार्डन, पूर्वोक्त, पृ. १२-१७
१२. शर्मा रामशरण, पूर्वोक्त, पृ. १८
१३. पाणिनि पर कैय्यद का भाष्य-८, ३१४
१४. शर्मा रामशरण, पूर्वोक्त, पृ. १९
१५. इण्डियन एन्टिक्विटी, वाल्यूम-८, पृ. ४०
१६. एन्शियेन्ट इण्डिया-२, १९४६, पृ. १२४
१७. अग्रवाल आर.एस., 'ट्रेड सेन्टर्स एण्ड रूट्स इन नार्दन इण्डिया', दिल्ली १९८२
१८. बाशम ए. अल., पूर्वोक्त, पृ. ३-४
१९. वही, पृ. ६
२०. अर्थशास्त्र, पृ. १२५ एफ
२१. मनुस्मृति, पृ. १२६.
२२. ए.एल. बाशम, पूर्वोक्त, पृ. ६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

छात्र-छात्राओं की परिवर्ती मनोवृत्ति एवं जीवन-शैली : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ श्वेता श्रीवास्तव
❍ डा० उदय भान सिंह

आधुनिक भारत में शिक्षा, औद्योगीकरण, नगरीकरण, धर्मनिरपेक्षवाद, संवैधानिक प्रयासों, नवीन मूल्यों के स्थापन आदि के फलस्वरूप युवजनों के मूल्यों एवं मनोवृत्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे जा रहे हैं जो पुरानी पीढ़ी से भिन्न हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत महाविद्यालयी छात्र-छात्राओं की इसी परिवर्ती मनोवृत्ति एवं जीवन शैली को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

आज भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये हैं जिससे व्यक्ति की सोच में बदलाव आया है और यह बदलाव पहले कि अपेक्षा अधिक जटिल है जिसने व्यक्ति और समाज का रिश्ता भी कमजोर कर दिया है। ऐसे कठिन समय में जो आशा की किरण दिखाई देती है वह युवाओं में ही है क्योंकि आज के युवाओं में इतनी शक्ति और बुद्धि है कि वह समाज के सभी क्षेत्रों में अपना योगदान दे रहे हैं, बस आवश्यकता है तो सही दिशा देने की। गाँधी जी ने ऐसे ही भयावह समय के लिए ही लिखा है कि“यह सच है कि अपनी योजनाओं और उन्हें कार्यान्वित करने के तौर तरीकों की असली परीक्षा तब ही होती है जब सामने दिखाई देने वाला क्षितिज सबसे ज्यादा अंधकारमय हो”। यह वैसा ही अंधकारमय समय है जिसमें युवाओं की असली परीक्षा है जिसमें राजनीति, समाज, भारतीय मन, सांस्कृतिक, बाजार, आर्थिक नीतियाँ, सिनेमा, साहित्य, शिक्षा व्यवस्था आदि ऐसे बिन्दु हैं जिसके आलोक में युवा वर्ग के परिवर्तनगामी स्वरूप को समझा जा सकता है। पारम्परिक व्यवहार शैली पर आधुनिकीकरण के कारण युवजनों के मूल्यों एवं मनोवृत्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे जा रहे हैं जो कि पुरानी पीढ़ी से भिन्न हैं।[1] धर्म, जातीय प्रतिमान, परिवार एवं विवाह के सन्दर्भ में कार्य करने के परम्परागत तरीकों, यन्त्रोपकरणों के उपयोग आदि के आधार पर जो संचयी जीवन शैली बनती है उसमे द्विपक्षीय मिश्रण इतना अधिक है कि उसके आधार पर किसी अभिवृत्ति की घोषणा नही की जा सकती फिर भी परम्परा से जुड़ी तमाम वर्जनाओं के बीच परिवर्तन का आधुनिक स्वरूप झलकने लगा है जिससे छात्र-छात्राओं का सर्वाधिक प्रभावित होना लाजमी है।

भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक महत्तपूर्ण विषय धर्म है जो कि मानव की उत्पत्ति के समय से ही अस्तित्व में रहा है। आधुनिकीकरण के इस युग में आज व्यक्ति भाग्य पर कम विश्वास करने लगा है। जिसके साथ-साथ धार्मिक क्रियायें एवं विश्वास दोनो ही कमजोर हुये हैं।[2] आज युवा वर्ग कष्ट में ही भगवान को याद करता है वहीं दूसरी तरफ आज की युवा पीढ़ी ज्योतिष, अंकशास्त्र, फेंगशुई ,वास्तुशास्त्र की ओर भी आकर्षित हो रही है। मनोवांछित लक्ष्य को प्राप्त करने की अभिलाषा युवाओं को पूजा पाठ की ओर प्रेरित कर रहीं है तथा परम्परा एवं ग्रामीण पूजा पाठ का नगरीकरण हो रहा है। भारतीय समाज में आज भी जाति का एक महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिकता के दौर में भी लोग सबसे पहले अपनी जाति का ही सम्पर्क ढूंढते हैं चाहे वह विवाह जैसे पवित्र बन्धन हो या वोट बैंक बढ़ाने की बात हो। भारतीय जाति व्यवस्था शाताब्दियों से देश में स्तरीकरण की एक ठोस आधारशिला रही है।[3]

आधुनिक भारत में शिक्षा, औद्यौगीकरण, धर्मनिरपेक्षवाद, संविधान के प्रयासों व नवीन मूल्यों के स्थापन से परम्परागत जाति व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन आये हैं। परिवार एवं विवाह भारतीय समाज के सन्दर्भ में दो महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थायें हैं। ये दोनों संस्थायें समाज को संगठित बनाये रखने का कार्य करती हैं तथा इन्ही से नई संस्थाओं का निर्माण होता है।[4] आज जहाँ समय एवं परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ समाज की आवश्यकताओं में परिवर्तन हो रहा है वहीं परिवार एवं विवाह के प्रतिमान भी परिवर्तित हो रहे हैं। इसका सर्वाधिक प्रभाव युवा वर्ग पर पड़ रहा है।

आधुनिकता की संरचना में परम्परा की भूमिका को कभी भी

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, फिरोज गाँधी कॉलेज, रायबरेली (उ.प्र.)
❍ अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, फिरोज गाँधी कॉलेज, रायबरेली (उ.प्र.)

नजरअंदाज नहीं किया जा सकता क्योंकि भारतीय समाज में आज जो भी आधुनिकता है, उसका बहुत बड़ा निर्धारण यहाँ की परम्पराओं ने किया है। जब किसी समाज में आधुनिकता का सूत्रपात होता है, तो वह सूत्रपात शून्य में नहीं होता, समाज की परम्पराओं में होता है। भारतीय समाज में बहु-समूह हैं, और प्रत्येक समूह की अपनी-अपनी परम्परायें हैं, इन सभी परम्पराओं का आधुनिकीकरण होता है।[५] प्रस्तुत अध्ययन में यही जानने का प्रयास किया गया है कि पारम्परिक व्यवहार शैली और आसन्न परिवर्तनों ने महाविद्यालीय छात्र एवं छात्राओं को कितना और किस सीमा तक प्रभावित किया है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध में रायबरेली जनपद के महाविद्यालयों को चुना गया है। चूँकि सभी महाविद्यालयों का अध्ययन करना सम्भव नही था इसलिए समानुपातिक दैव निदर्शन पद्धति द्वारा कुल ६ महाविद्यालयों का चयन किया गया है। प्रत्येक महाविद्यालय से स्नातक, परास्नातक एवं परास्नातक से अधिक के ५० छात्र-छात्राओं को निदर्शन में स्थान दिया गया है। कुल ३०० के निदर्शन में युवको व युवतियों का अनुपात १:१ है अर्थात १५० युवक और १५० युवतियां । आँकड़ो को एकत्रित करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में छात्र-छात्राओं से आज के युग में धर्म की भूमिका पूजा-पाठ या व्रत/उपवास रखने, शिक्षा एवं नौकरी में जाति आधारित आरक्षण, बेरोजगारी और आरक्षण, चुनाव में मत देने के आधार, परिवार पर व्यक्तिगत पसंद, पारिवारिक निर्णयों, जीवन-साथी के चुनाव तथा अर्न्तजातीय विवाह के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण जानने का प्रयास किया गया है।

तालिका १

आधुनिक युग में धर्म की भूमिका के आधार पर छात्र-छात्राओं का विवरण-

भूमिका	**छात्र**	**छात्रायें**	**कुल योग**
सकारात्मक	११० (४८.८६) (७३.३३)	११५ (५१.११) (७६.६७)	२२५ (१००) (७५.००)
नकारात्मक	२५ (५५.५६) (१६.६७)	२० (४४.४४) (१३.३३)	४५ (१००) (१५.००)
कोई भूमिका नहीं	१५ (५०.००) (१०.००)	१५ (५०.००) (१०.००)	३० (१००) (१०.००)
कुल योग	**१५० (५०.००) (१००)**	**१५० (५०.००) (१००)**	**३०० (१००) (१००)**

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि आधुनिक युग में धर्म की भूमिका सकारात्मक मानने वाले २२५ (६५ प्रतिशत) छात्र-छात्राओं में ४८.८६ प्रतिशत छात्र ऐसे हैं जो आधुनिक युग में धर्म की भूमिका को सकारात्मक मानते है जबकि छात्राओं का यह प्रतिशत ५१.११ है। धर्म की भूमिका को नकारात्मक मानने वाले ४५ (१५ प्रतिशत) छात्र-छात्राओं में से छात्रों का प्रतिशत ५५.५६ जबकि छात्राओं का प्रतिशत ४४. ४४ है, तथा धर्म की कोई भूमिका नही मानने वाले ३० (१० प्रतिशत) छात्र-छात्राओं में ५० प्रतिशत छात्र एवं ५० प्रतिशत छात्रायें इस पर अपना कोई मत नहीं देना चाहते है। इस प्रकार कुल ३०० छात्र-छात्राओं में ७५ प्रतिशत युवजन ऐसे मिले जो आधुनिक युग में धर्म की भूमिका को सकारात्मक मानते हैं जबकि १५ प्रतिशत युवजन ऐसे है जो यह मानते है कि आधुनिक युग में धर्म की भूमिका नकारात्मक है तथा १० प्रतिशत युवजन इस पर अपना कोई मत नहीं देना चाहते है।

तालिका - २
पूजा-पाठ या व्रत/उपवास रखने के आधार पर छात्र-छात्राओं का विवरण

विचार	छात्र	छात्रायें	कुल योग
हाँ	११५ (४८.३२) (७६.६७)	१२३ (५१.६८) (८२.००)	२३८ (१००) (७९.३३)
नहीं	३५ (५६.४५) (२३.३३)	२७ (४३.५५) (१८.००)	६२ (१००) (२०.६७)
कुल योग	**१५० (५०.००) (१००)**	**१५० (५०.००) (१००)**	**३०० (१००) (१००)**

उपर्युक्त तालिका के आधार पर स्पष्ट है के पूजा-पाठ और वृत रखने वाले २३८ (६६.३३ प्रतिशत) छात्र-छात्राओं में से ४८.३२ प्रतिशत छात्र एवं ५१.६८ प्रतिशत छात्राऐं ऐसी है जो पूजा-पाठ और व्रत रखते हैं तथा पूजा-पाठ और व्रत न रखने वाले ६२ (२०.६७ प्रतिशत) छात्र-छात्राओं में से ५६.४५ प्रतिशत छात्र एवं ४३.५५ प्रतिशत छात्रायें है। कुल छात्र एवं छात्राओं में ७९.३३ प्रतिशत छात्र-छात्रायें पूजा-पाठ और व्रत रखते हैं तथा २०.६७ प्रतिशत छात्र-छात्रायें ऐसा नहीं करते हैं।

तालिका - ३
शिक्षा एवं नौकरियों में जाति आधारित आरक्षण के प्रति छात्र-छात्राओं का विवरण-

पक्ष	छात्र	छात्रायें	कुल योग
इसके विरोध के पक्ष में है।	११२ (५०.६८) (७४.६७)	१०९ (४९.३२) (७२.६७)	२२१ (१००) (७३.६७)
इसके समर्थन के पक्ष में है।	३० (५७.७०) (२०.००)	२२ (४२.३०) (१४.६७)	५२ (१००) (१७.३३)
तटस्थ	०८ (२९.६३) (५.३३)	१९(७०.३७) (१२.६७)	२७(१००) (९.००)
कुल योग	**१५० (५०.००) (१००)**	**१५० (५०.००) (१००)**	**३०० (१००) (१००)**

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि शिक्षा एवं नौकरियों में जाति आधारित आरक्षण का विरोध करने वाले २२१ छात्र-छात्राओं में ५०.६८ प्रतिशत छात्र एवं ४९.३२ प्रतिशत छात्रायें हैं, जबकि शिक्षा एवं नौकरियों में जाति आधारित आरक्षण का समर्थन करने वाले ५२ छात्र-छात्राओं में ५७.७० प्रतिशत छात्र एवं ४२.३० प्रतिशत छात्रायें हैं। शिक्षा एवं नौकरियों में जाति आधारित आरक्षण पर अपना कोई विचार न व्यक्त करने वाले २७ छात्र-छात्राओं में २९.६३ प्रतिशत छात्र व ७०.३७ प्रतिशत छात्रायें हैं। इस प्रकार कुल ३०० छात्र-छात्राओं में ७३.६७ प्रतिशत युवजन शिक्षा एवं नौकरियों में जाति आधारित आरक्षण का विरोध करते हैं १७.३३ प्रतिशत समर्थन करते हैं तथा ९ प्रतिशत इस मद पर अपना कोई विचार नहीं देना चाहते हैं।

तालिका - ४
बेरोजगारी और आरक्षण के मुद्‌दों पर माननीय पहलू से विचार के प्रति छात्र-छात्राओं का विवरण

विचार	छात्र	छात्रायें	कुल योग
सहमत	१०१(५०.५०) (६७.३३)	९९ (४९.५०) (६६.००)	२०० (१००) (६६.६७)
असहमत	३४ (६९.३९) (२२.६७)	१५ (३०.६१) (१०.००)	४९ (१००) (१६.३३)
तटस्थ	१५ (२९.४१) (१०.००)	३६(७०.५९) (२४.००)	५१(१००) (१७.००)
कुल योग	**१५० (५०.००) (१००)**	**१५० (५०.००) (१००)**	**३०० (१००) (१००)**

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि बेरोजगारी और आरक्षण जैसे मुद्दों पर मानवीय पहलू से विचार करने का समर्थन करने वाले कुल २०० छात्र - छात्राओं में ५०.५० प्रतिशत छात्र एवं ४९.५० प्रतिशत छात्रायें हैं जबकि ४९ छात्र-छात्रायें इस विचार से असहमत हैं जिनमें ६९.३९ प्रतिशत छात्र एवं ३०.६१ छात्रायें हैं। इस पर अपना कोई विचार न व्यक्त करने वाले ५१ छात्र-छात्राओं में २९.४१ प्रतिशत छात्र एवं ७०.५९ प्रतिशत छात्रायें हैं। अतः कुल ३०० छात्र-छात्राओं में से ६६.६७ प्रतिशत युवजन इस विचार से सहमत हैं, १६.३३ प्रतिशत असहमत हैं तथा १७.०० प्रतिशत इस पर अपना कोई विचार नहीं देना चाहते हैं।

तालिका - ५
चुनाव में मत देने के आधार पर छात्र-छात्राओं का विवरण -

आधार	छात्र	छात्रायें	कुल योग
जाति के आधार पर	०५ (६२.५) (३.३३)	०३ (३७.५) (२.००)	०८ (१००) (२.६७)
क्षेत्र के आधार पर	०३ (६०) (२.००)	०२ (४०.००) (१.३३)	०५ (१००) (१.६७)
योग्यता व कर्मठता के आधार पर	१३६ (५०.१८) (९०.६७)	१३५(४९.८१) (९०.००)	२७१(१००) (९०.३३)
परिचय के आधार पर	०६ (३७.५) (४.००)	१० (६२.५) (६.६७)	१६(१००) (५.३३)
कुल योग	**१५० (५०.००) (१००)**	**१५० (५०.००) (१००)**	**३०० (१००) (१००)**

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि चुनाव में अपनी जाति के उम्मीदवार को मत देने वाले ०८ छात्र-छात्राओं में ६२.५ प्रतिशत छात्र एवं ३७.५ प्रतिशत छात्रायें हैं तथा क्षेत्र के आधार पर मत देने वाले ०५ छात्र-छात्राओं में ६० प्रतिशत छात्र एवं ४० प्रतिशत छात्रायें हैं जबकि योग्यता व कर्मठता के आधार पर मत देने वाले सर्वाधिक २७१ छात्र-छात्राओं में ५०.१८ प्रतिशत छात्र एवं ४९.८१ प्रतिशत छात्रायें हैं। तथा १६ छात्र-छात्राओं में ३७.५ प्रतिशत छात्र व ६२.५ प्रतिशत छात्रायें परिचय के आधार पर मत देते हैं। इस प्रकार कुल छात्र-छात्राओं में सर्वाधिक ९०.३३ प्रतिशत छात्र-छात्रायें चुनाव में अपना मत योग्यता व कर्मठता के आधार पर देना चाहते हैं।

तालिका - ६
परिवार पर अपनी व्यक्तिगत पसंद के आधार पर छात्र-छात्राओं का विवरण -

पसंद	छात्र	छात्रायें	कुल योग
संयुक्त परिवार	२८ (३५.४४) (१८.६७)	५१ (६४.५६) (३४.००)	७९ (१००) (२६.३३)
एकाकी परिवार	८८ (५६.७७) (५८.६७)	६७ (४३.२३) (४४.६७)	१५५ (१००) (५१.६७)
विस्तृत परिवार	३४ (५१.५२) (२२.६६)	३२(४८.४८) (२१.३३)	६६(१००) (२२.००)
कुल योग	**१५० (५०.००) (१००)**	**१५० (५०.००) (१००)**	**३०० (१००) (१००)**

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जहाँ तक परिवार के विषय में व्यक्तिगत पसंद का प्रश्न है ७६ छात्र-छात्राओं में से ३५.४४ प्रतिशत छात्र एवं ६४.५६ प्रतिश्त छात्रायें संयुक्त परिवार मे रहना पसंद करते हैं, जबकि १५५ छात्र-छात्राओं में से ५६.७७ प्रतिशत छात्र एवं ४३.२३ प्रतिशत छात्रायें एकाकी परिवार में तथा ६६ छात्र-छात्रायों में ५१.५२ प्रतिशत छात्र एवं ४८.४८ प्रतिशत छात्राऐं विस्तृत परिवार में रहना पसंद करते है। इस प्रकार ३०० छात्र-छात्राओं में से १५५ छात्र-छात्रायें जिनका प्रतिशत ५१.६७ है एकाकी परिवार में रहना पसंद करते हैं।

तालिका - ७

परिवारिक निर्णयों में प्रभावी भूमिका के प्रति छात्र-छात्राओं का विवरण -

प्रभावी भूमिका	**छात्र**	**छात्रायें**	**कुल योग**
केवल पिता	१५ (४२.८५) (१०.००)	२० (५७.१४) (१३.३३)	३५ (१००) (११.६७)
केवल माता	०३ (३७.५) (२.००)	०५ (६२.५) (३.३३)	०८ (१००) (२.६६)
माता-पिता दोना	२० (५५.५५) (१३.३३)	१६(४४.४४) (१०.६७)	३६(१००) (१२.००)
माता-पिता एवं बच्चों द्वारा सम्मिलित रूप सें	११२ (५०.६७) (७४.६७)	१०६(४६.३२) (७२.६७)	२२१(१००) (७३.६७)
कुल योग	**१५० (५०.००) (१००)**	**१५० (५०.००) (१००)**	**३०० (१००) (१००)**

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पारिवारिक निर्णयों में प्रभावी भूमिका के प्रति ३५ छात्र-छात्राओं में ४२.८५ प्रतिशत छात्र एवं ५७.१४ प्रतिशत छात्रायें वे हैं जिन्होंने पिता की भूमिका को प्रभावी बताया है जबकि ३७.५ प्रतिशत छात्र एवं ६२.५ प्रतिशत छात्रायें माता की भूमिका को प्रभावी मानते हैं। ५५.५५ प्रतिशत छात्र एवं ४४.४४ प्रतिशत छात्रायें माता-पिता दोनों के ही द्वारा लिये गये निर्णयों को प्रभावी मानते हैं। वहीं २२१ छात्र-छात्राओं में से ५०.६७ प्रतिशत छात्र एवं ४६.३२ प्रतिशत छात्रायें परिवार में माता-पिता एवं संतानों के द्वारा सम्मिलित रूप से लिये गये निर्णयों को प्रभावी बताते हैं। अतः कुल ३०० छात्र-छात्राओं में से ७३.६७ प्रतिशत छात्र-छात्रायें माता-पिता एवं बच्चों द्वारा सम्मिलित रूप से लिये गये परिवारिक निर्णयों के पक्षधर हैं।

तालिका - ८

जीवन साथी के चयन में प्रभावी भूमिका के प्रति छात्र-छात्राओं का विवरण -

प्रभावी भूमिका	**छात्र**	**छात्रायें**	**कुल योग**
केवल माता-पिता द्वारा	०५ (४१.६७) (३.३३)	०७ (५८.३३) (४.६६)	१२ (१००) (४.००)
चयन में स्वतन्त्रता	६६ (४६.००) (६६.००)	१०३ (५१.००) (६८.६७)	२०२ (१००) (६७.३३)
माता-पिता एवं सन्तान दोनो के द्वारा	४६ (५३.४६) (३०.६७)	४०(४६.५१) (२६.६७)	८६(१००) (२८.६७)
कुल योग	**१५० (५०.००) (१००)**	**१५० (५०.००) (१००)**	**३०० (१००) (१००)**

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि १२ छात्र-छात्राओं में से ४१.६७ प्रतिशत छात्र एवं ५८.३३ छात्रायें माता-पिता के द्वारा जीवन साथी के चयन को प्रभावी मानते हैं जबकि २०२ छात्र-छात्राओं में से ४६ प्रतिशत छात्र एवं ५१ प्रतिशत छात्रायें जीवन साथी के चयन में स्वतन्त्रता के पक्षधर हैं। ८६ छात्र-छात्रायों में से ५३.४६ प्रतिशत छात्र एवं ४६.५१ प्रतिशत छात्रायें ये मानते हैं कि जीवन साथी का चयन माता-पिता एवं संतान की सम्मिलित राय से किया जाना चाहिए। अतः कुल ३०० छात्र-छात्राओं में सर्वाधिक ६७.३३ प्रतिशत छात्र-छात्रायें जीवन साथी के चयन में स्वतन्त्रता के पक्षधर हैं।

तालिका - ६

अन्र्तजातीय विवाह के सम्बन्ध में छात्र-छात्राओं का विवरण

मनोवृत्ति	छात्र	छात्रायें	कुल योग
स्वीकृति	१०० (५१.५४) (६६.६७)	६४ (४८.४५) (६२.६७)	१६४ (१००) (६४.६६)
अस्वीकृति	४० (४७.०५) (२६.६६)	४५ (५२.६४) (३०.००)	८५ (१००) (२८.३३)
तटस्थ	१० (४७.६१) (६.६७)	११(५२.३८) (७.३३)	२१(१००) (७.००)
कुल योग	**१५० (५०.००) (१००)**	**१५० (५०.००) (१००)**	**३०० (१००) (१००)**

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अन्र्तजातीय विवाह के सम्बन्ध में ५१.५४ प्रतिशत छात्र एवं ४८.८५ प्रतिशत छात्रायें स्वीकृति प्रदान करते हैं जबकि ४७.०५ प्रतिशत छात्र एवं ५२. ६४ प्रतिशत छात्रायें इसे अस्वीकृत करते हैं। वहीं ४७.६१ प्रतिशत छात्र एवं ५२.३८ प्रतिशत छात्रायें इस सम्बन्ध में तटस्थ हैं। अतः स्पष्ट है कि ३०० छात्र-छात्राओं में (अधिसंख्यक ६४.६६ प्रतिशत) छात्र-छात्रायें अन्र्तजातीय विवाह को स्वीकृति प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में भी धर्म की भूमिका सकारात्मक है, यानि धर्म के प्रति लोगों का दृष्टिकोण आज भी सकारात्मक है। आज भी भारतीय जन मानस ईश्वर में अटूट विश्वास रखता है और पूजा-पाठ, व्रत को अपने लिए उचित मानता है। आज पारम्परिक प्रतिमानों के क्षरण की प्रक्रिया में जातीय प्रतिमान भी शिथिल हो रहे हैं और शिक्षा तथा नौकरियों में जाति आधारित आरक्षण का विरोध हो रहा है जो परिवर्तन को दर्शाता है। बेरोजगारी तथा आरक्षण जैसे मुद्दों पर मानवीय पहलू से विचार के पक्ष में सहमति आज पारम्परिक व्यवहार शैली में परिवर्तन का संकेत है। चुनाव में मत देने के आधार में जो परिवर्तन आज देखने को मिला है उससे सूदूर भविष्य में जाति बंधन के समाप्ति की कुछ प्रत्याशा की जा सकती है। आज का युवा वर्ग एकाकी परिवार में रहना पसंद करता है जो कि पारम्परिक व्यवहार शैली में आये परिवर्तन को दर्शाता है। वर्तमान समय में पारिवारिक बजट, पारिवारिक व्यय तथा बच्चों की शिक्षा सम्बंधी अनेक निर्णयों में पत्नी तथा बच्चों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हुई है। आज के युवजन जीवन-साथी के चयन में स्वतन्त्रता के पक्षधर हैं तथा अन्र्तजातीय विवाह के सम्बंध में छात्र-छात्राओं की स्वीकृति परम्परागत स्वरूप में होने वाले परिवर्तनों को दर्शाता है।

सन्दर्भ

१. रोनाल्ड पीटर, संजय कुमार, संदीप शास्त्र, 'इंडियन यूथ इन ए ट्रांसफारमिंग वर्ल्ड-एटीट्यूड्स एण्ड परसेप्शन', सेज इंडिया, २००६, पृ. ६४

२. दोषी एस.एल., 'भारतीय समाज ! संरचना एवं परिवर्तन'-, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, २००६, पृ. ५५

३. सिंह योगेन्द्र, 'योगेन्द्र सिंह का समाजशास्त्र', रावत पब्लीकेशन, नई दिल्ली, २००५, पृ. ६४

४. रूहेला एस.पी., 'सोशियोलॉजी ऑफ यूथ कल्चर इन इंडिया', इण्डियन पब्लीकेशन, २००१, पृ. ३३

५. खण्डेला मानचंद्र, 'आधुनिक एवं भारतीय समाज', आविष्कार पब्लीकेशन, जयपुर, २००६, पृ. २०

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

विकास योजनाओं का जनजातीय जीवन पर प्रभाव

(हरदा जिले की गोंड एवं कोरकू जनजातियों के विशेष संदर्भ में)

❑ **डॉ० कलावती कोरी**

मध्यप्रदेश के सम्पूर्ण क्षेत्रफल के ४०.६३ प्रतिशत क्षेत्र पर जनजातियों को निवास है जिसमें ३३.६ प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र को महामहिम राष्ट्रपति द्वारा अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया गया है। यद्यपि पूरे प्रदेश में कमोवेश जनजातियों का फैलाव है परन्तु इनका मुख्य संकेंदण कुछ जिलों में अधिक है, जिसमें झाबुआ, बड़वानी, डिण्डोरी, मण्डला तथा धार हैं।

गोंड़ जनजाति : गोंड़ जनजाति से संबंधित साहित्य यह स्पष्ट करते हैं कि प्रागैतिहासिक काल से भारत में जनजातियाँ जनसंख्या का प्रमुख हिस्सा रही हैं। यहाँ के निवासियों को विद्वानों द्वारा चार प्रजातियों में विभाजित किया गया है- प्रोटोआस्ट्रोलॉयड, मंगोलॉयड, द्राविड़ियन एवं आर्य। प्रथम तीन प्रजातीय समूहों की अपेक्षा आर्य सबसे बाद में भारत आये, उन्होंने यहाँ पहले से रह रहे इन तीन समूहों को दस्यु नाम दिया।

प्राचीन भारतीय साहित्य जैसे वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, रामायण एवं महाभारत में इन दस्युओं का अलग-अलग नाम से उल्लेख मिलता है। इस प्रकार प्राचीन वैदिक संस्कृति में दस्यु अनार्य थे, जो शारीरिक संरचना के आधार पर मुख्यतः दो प्रकारों में विभाजित थे एक कोलारियन और दूसरा द्राविड़ियन। ये दोनों दो विपरीत दिशाओं में फेले। कोलारियन पूर्व से उत्तर पूर्व तक एवं द्राविड़ियन उत्तर-पश्चिम में। इस प्रकार द्राविड़ियन मुख्यतः दक्षिण के पठार से ढके विध्य प्रदेश में निवास करने लगे। कालांतर में ये दक्षिण तक फैल गये। गोंड़ इसी द्राविड़ियन परिवार की जनजाति है। विद्यार्थी एवं राय के अनुसार 'गोंड़ एवं कोंड प्रमुख द्राविड़ियन जनजाति हैं। मध्य काल में, मध्यभारत के गढ़ा (जबलपुर) का गोंड़ शासकों की राजधानी के तौर पर उल्लेख मिलता है, जिसके लिये उन्हें मुगल एवं मराठा शासकों से संघर्ष करना पड़ा।'[१]

> भारत की कुल जनसंख्या के लगभग ८.२ प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व जनजातियां करती हैं। जनजातियों का जीवन समाजार्थिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक दृष्टि से अतिशय पिछड़ा रहा है। इसलिए उनके विकास तथा उन्हें सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में लाने के लिए सवैधानिक प्रावधानों के साथ-साथ केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा अनेकानेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों को संचालित किया है। इन विकास योजनाओं ने आदिवासियों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन पर किस तरह का प्रभाव डाला है एवं इनके फलस्वरूप उनके जीवन में क्या-क्या परिवर्तन आ रहे हैं, इसकी गंभीरता से जानकारी प्राप्त करना प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य रहा है।

यद्यपि इस जनजाति की ५० से अधिक (५३) उपजातियाँ हैं परंतु मुख्य रूप से इसकी दो उपजातियाँ मारिया एवं मुरिया हैं, जिनसे स्वतंत्र होकर अन्य उपजातियाँ बनती गईं। मारिया एवं मुरिया से अपेक्षाकृत उच्च सामाजिक- आर्थिक स्थिति वाले परिवारों ने अपने आपको राजगोंड़ नाम से एक स्वतंत्र शाखा के रूप में विकसित किया। विद्यार्थी एवं राय ने गोंड़ जनजाति को ५३ उपजातियों का समूह मानते हैं। उनके अनुसार प्रत्येक उपजाति अपने आप में पूर्ण है।[२]

गोंड़ जनजाति की उपजातियों को क्षेत्रीय एवं वंशानुगत आधार पर एक-दूसरे से पृथक किया जा सकता है। गोंड़ उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले के आदिलाबाद से लेकर आंधप्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र तक फैले हुये हैं। अलग-अलग स्थानों पर इनकी अलग-अलग उपजातियों की बहुलता है, और उन स्थानों के नाम के साथ इन उपजातियों को जाना जाता है। जैसे मण्डला के गोंड़, बस्तर के मुरिया एवं मारिया, आदिलाबाद के राजगोंड़, बारंगल के कोयास, छत्तीसगढ़ के अमत गोंड़, धुर गोंड़ एवं ओरिया गोंड़ तथा इसी प्रकार अन्य स्थानों के गोंड़।

वंशानुगत आधार पर ये अपने आप को मुख्यतः कुल एवं वंश, दो आधारों पर वर्गीकृत करते हैं। ये कुल प्रायः दो के जोड़े में होते हैं। विद्यार्थी के अनुसार 'गोंड़ जनजाति के सामाजिक संगठन की प्रचरना में वर्गीकरण का सबसे प्रमुख आधार कुल का दोहरा संगठन होना है। एक कुल कुछ गोत्रों से मिलकर बनता है जिसे ये भ्रात गोत्र कहते हैं।'[३] ग्रिगसन के अनुसार 'पहाड़ी मारिया एवं अबूझमारिया दोनों कुलों में क्रमशः ६६ एवं ६० गोत्र हैं।'[४] कुछ अन्य गोंड़ अपने आपको बहुत से वंशों के आधार पर वर्गीकृत करते हैं। दुबे के अनुसार 'आदिलाबाद के राजगोंड़ के चार वंश हैं जिनके

❑ सहायक प्राध्यापक 'समाजशास्त्र', शासकीय नवीन कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, भोपाल (म०प्र०)

नाम येरूवेन सागा, सारूवेन सागा, सिवेन सागा एवं नालवेन सागा हैं। इनमें से प्रत्येक के सात, छः, पाँच और चार भ्रातृ गोत्र हैं।'[५]

विद्यार्थी के अनुसार 'एक गोत्र के लोग उस स्थान से जहाँ से उनकी उत्पत्ति जुड़ी हुई है (गृह स्थान), लगाव महसूस करते हैं, जिसे वे भूम कहते हैं।[६] इनके बीच विवाह अपने ही समुदाय में एवं गोत्र के बाहर होता है। परिवार पितृसत्तात्मक एवं ज्यादातर एक विवाही होते हैं यद्यपि इनमें बहुपत्नी विवाह प्रचलित है। परिवार ऐतिहासिक रूप से एकांकी स्वरूप के होते हैं, परंतु गैर-जनजातीय समुदायों के प्रभाव के परिणामस्वरूप यदा-कदा संयुक्त परिवार भी देखे जा सकते हैं।

कोरकू जनजाति : मध्य प्रदेश के विभिन्न जिलों में निवास करने वाले ४२ प्रकार की अनुसूचित जनजातियो में से कोरकू भी एक है जो जनसंख्या की दृष्टि से गोण्ड, भील व कोल के पश्चात् चौथी सबसे बड़ी जनजाति है। कोरकू मध्यप्रदेश में मुख्यतः बैतूल, पूर्वी निमाड़ (खण्डवा), हरदा, देवास, छिन्दवाड़ा, होशंगाबाद और सीहोर जिलों मे निवास करते हैं। कोरकू कोलीय अथवा मुण्डा जनजाति समूहों के अंतर्गत आने वाली जनजातियों में से एक है। कोरकू और कोल शब्द भी समानार्थी हैं। कोरकू शब्द दो शब्दों 'कोरो' और 'कू' से मिलकर बना है। 'कोरो' शब्द का कोरकू बोली में अर्थ 'मनुष्य' होता है जबकि 'कू' बहुवचन बोधक है, इस प्रकार कोरकू का अर्थ है ''मनुष्यों का समूह'। कोरकू के समान ही कोल का अर्थ भी मनुष्य ही होता है। मध्यप्रदेश की कोरवा जनजाति एवं उसके संस्तरों के लिये भी इसी से मिलते-जुलते शब्द जैसे कोरा, कोराकू तथा संथाली के हाड़, हाड़कू, होर, होरो आदि प्रयुक्त किये जाते हैं। यह शब्द कोर, कोरो एवं कोरकू शब्द के न केवल पर्याय हैं बल्कि उससे मिलते-जुलते भी हैं।

कोरवा, खैरबार, खारिया आदि विस्थापित होकर अन्यत्र स्थान पर जाने लगे। छिन्दवाड़ा, बैतूल, होशंगाबाद, हरदा आदि जिलों में आज भी कोरकू गोण्डों के साथ निवास करते हैं। यहाँ गोंडों की तुलना में कोरकूओं की संख्या कम है। इसलिये इन जिलों में गोंडों का प्रभुत्व अधिक है तथा कोरकू संस्कृति का गोड़ों पर प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। यहाँ से ही बड़ी संख्या में कोरकू पूर्वी निमाड़, अकोला, अमरावती व वर्धा जिलों के वन प्रांतरों में विस्थापित हुए।

कोरकू के दो मुख्य भाग हैं, जिन्हें राजकोरकू और पोतड़िया कोरकू कहा जाता है। राज कोरकू को जमीदार वर्ग में गिना जाता है। इस वर्ग के व्यक्ति का छुआ पानी ब्राह्मण ग्रहण कर लेते हैं। कोरकूओं की दंत कथा अनुसार राजदूत वंश का कोई उपभाग इस प्रकार विभाजित हुआ जो आगे जाकर उसका एक भाग राजकोरकू कहलाया और दूसरा भाग पोतड़िया। पोतड़िया कोरकू के बारे में यह कहा जाता है कि परम्परागत रूप से वे कुछ गंदी आदतों (जैसे शौच क्रिया के बाद पानी का उपयोग ना करना) के आदी थे। पोतड़िया कोरकू राजकोरकू को अपना संबंधी नहीं मानते। इनका कहना है कि वास्तविक कोरकू तो पोतड़िया ही है क्योंकि राजकोरकूओं का संबंध राजपूतों से है। इस प्रकार राज एवं पोतड़िया कोरकू में कई विरोधाभासों के साथ-साथ समानता भी है। दोनों में पवार, बाछेड़ा, डेरा, मोड़राना, कलम, नागबेल, बुसारिया, डेडवाल, राठौर इत्यादि टोटम पाये जाते हैं। विरोधाभासों के भी कुछ तथ्य मिलते हैं, जैसे राज कोरकूओं की स्त्रियाँ शरीर पर गोदना नहीं गुदवाती। ये कोरकू भाषा का उपयोग न करके निमाड़ में रहने वाले निमाड़ी भाषा बोलते हैं। वे कोरकू बोली नहीं जानते। इनका भोजन, वेश-भूषा, खान-पान आदि निमाड़ी संस्कृति से प्रभावित है। इनमें संयुक्त परिवार प्रचलित हैं। मेपनाथ तथा सिंदूरी की रस्में इनमें नहीं पायी जाती। लमझना प्रथा भी नहीं पायी जाती हैं। ये लोग मूलतः हिन्दू संस्कृति मूलक त्यौहारों को ही मानते हैं, जबकि पोतड़िया आज भी मूलतः कोरकू हैं और कोरकू संस्कृति के पोषक हैं। राज कोरकू में आने वाला यह परिवर्तन संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का परिणाम है।[७] प्रस्तुत अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्य निम्नांकित हैं:

१. उत्तरदाताओं की सामान्य जानकारी प्राप्त करना;
२. उत्तरदाताओं की पारिवारिक संरचनाओं की जानकारी प्राप्त करते हुए परिवार में होने वाली अंतः क्रियाओं को जानना;
३. जनजातीय क्षेत्र की विकास योजनाओं के प्रभाव क्षेत्र में आर्थिक एवं सांस्कृतिक पक्षों में हो रहे परिवर्तनों के संबंध में जानना;
४. विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयासों की जानकारी प्राप्त करना तथा इन प्रयासों का जनजातीय सहभागिता एवं उनके जीवन में आ रहे परिवर्तनों के संबंध में जानना; और
५. जनजातियों में इन योजनाओं के पड़ने वाले प्रभावों के कारण सामाजिक संबंधों में अंतर्द्वंद्वों का अध्ययन करना।

विभिन्न विकास योजनाएं : सामाजिक परिपेक्ष्य में भारत में अन्य समुदायों की तरह जनजातीय समुदाय भी परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। किन्तु दूरदराज क्षेत्रों में रहने के कारण इनमें विकास की प्रक्रिया अपेक्षाकृत धीमी गति से पहुँच सकी है।

अतः इनको राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा से जोड़ने एवं इनका विकास करने के लिये समय समय पर किये गये कार्यों को हम जनजातीय विकास के नाम से संबोधित करते हैं।

हरदा जिले में निवास कर रहे अनुसूचित जनजाति के गोंड और कोरकू लोगों के लिये राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित होने वाली योजनाएं निम्न हैः-

केन्द्र की योजनाएं : पोस्ट मैट्रिक योजना में छात्रवृत्ति, पुस्तक कोष योग्यता में उन्नति, छात्र-छात्राओं के छात्रावासों के निर्माण संबंधी योजना, आदिवासी उपयोजना क्षेत्र में आश्रम विद्यालय स्थापित करना, अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण, शैक्षणिक व्यवस्था से लड़कियों में साक्षरता का विकास, एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय, राजीव गांधी राष्ट्रीय छात्रवृत्ति, विदेश में उच्च शिक्षा हेतु राष्ट्रीय छात्रवृत्ति आदि।

राज्य की योजनाएं : शैक्षणिक शालाएं, क्रीड़ा परिसर, आवासीय संस्थाएं, उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्र, पोस्ट मैट्रिक छात्रावासों में आगमन भत्ता, पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्ति, विदेशों में शिक्षा हेतु छात्रवृत्ति, छात्रगृह योजना, मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम, छात्रावासों में पुस्तकालय व्यवस्था, प्रावीण्य छात्रवृत्ति, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय कार्यक्रम, आश्रम शाला आदि।

सरकारी योजनाओं के सामाजिक परिणाम : अध्ययन हेतु चयनित ६ गाँवों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। मुख्य सड़क के दो गाँव चंदरखाल तथा कमरूप है। मुख्य सड़क के अंदर के दो गाँव कायदा और जाड़खाऊ है। जबकि अंदरूनी इलाके के गाँव बोरपानी और मालेगाँव हैं।

तालिका १

अध्ययन के ग्रामों में संचालित होने वाली योजनायें

योजना/कार्यक्रम का नाम	चंदरखाल	कमरूप	कायदा	जाड़खाऊ	बोरपानी	मालेगाँव	कुल
कुल परिवार	१३८	१०२	८०	६५	१०१	१८२	६७८
गरीबी रेखा के नीचे के परिवार (२००३ के गणनानुसार)	१०६	८०	५५	११	४१	२५	३१८
राशन कार्ड की जानकारी							
बी.पी.एल.	७८	५६	३१	११	७०	२०	२६६
ए.पी.एल.	६६	२३	५५	५६	३८	१७६	४१७
अन्त्योदय	३०	२६	२४	४	१७	५	१०६
शौचालयों की संख्या							
ए.पी.एल. परिवार	२३	०	५	१८	२०	६५	१६१
बी.पी.एल. परिवार	६५	२७	२७	१०	३०	०	१५६
इंदिरा आवास							
नवीन आवास		०	२		२	१	५
उन्नयन आवास		०	१		१	०	२
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना	१२	२६	११		१४	५	७१
सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना	६			४	२	७	१६
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय विधवा/निराश्रित पेंशन योजना			३	४	१	१	६
विकलांग सहायता योजना	२						२
राष्ट्रीय परिवार सहायता योजना (२०११-१२)	१	१		१			३
स्व-सहायता समूह की संख्या	१		१	१		१	४
मुख्यमंत्री मजदूर सुरक्षा योजना के हितग्राहियों की संख्या	२१		१५	३	६	२५	७०

तालिका २
योजनाओं के लाभ की स्थिति

जवाब	मुख्य मार्ग के ग्राम	मध्यम दूरी के ग्राम	दूरस्थ क्षेत्र के ग्राम	कुल	प्रतिशत
हाँ	५६	४८	२३	१२७	४२.३३
नहीं	४४	५२	७७	१७३	५७.६७
कुल	१००	१००	१००	३००	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कुल उत्तरदाताओं में से ४२.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने किसी न किसी प्रकार की शासकीय योजनाओं से लाभ लिया है, जबकि शेष ५७.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पिछले ५ वर्षों के दौरान किसी भी शायकीय योजनाओं से कोई लाभ नहीं लिया है। यदि इसे और विश्लेषित करें तो पाते हैं कि जो ग्राम मुख्य मार्ग के निकट हैं उस ग्राम के चयनित उत्तरदाताओं में से ५६ उत्तरदाताओं ने किसी न किसी प्रकार की शासकीय योजना का लाभ लिया है, वहीं ४४ उत्तरदाता ऐसे हैं जिन्होंने किसी भी योजना का लाभ नहीं लिया है। मध्यम दूरी के ग्राम में योजनाओं से लाभ की स्थिति देखें तो जहाँ ४८ उत्तरदाताओं ने किसी न किसी योजना का लाभ लिया वहीं ५२ उत्तरदाताओं ने किसी भी योजना का लाभ नहीं लिया है। मुख्य मार्ग से दूर स्थित गाँवों में योजना से लाभ की स्थिति देखें तो मात्र २३ उत्तरदाताओं ने योजना का लाभ लिया है जबकि ७७ उत्तरदाताओं ने किसी भी योजना का लाभ नहीं लिया है। अर्थात् यदि समग्र रूप में देखें तो पाते हैं कि जो गाँव मुख्य सड़क के नजदीक है वहाँ के लोगों का योजनाओं का लाभ लेने का प्रतिशत अधिक है और जैसे-जैसे दूर होते जाते हैं वैसे-वैसे लाभ ग्रामीणों द्वारा लाभ लेने का प्रतिशत कम होता जाता है।

तालिका ३
योजनाओं से लाभ का स्त्रोत

जवाब	मुख्य मार्ग के ग्राम	मध्यम दूरी के ग्राम	दूरस्थ क्षेत्र के ग्राम	कुल	प्रतिशत
लागू नहीं	४४	५२	७७	१७३	५७.६७
ग्राम पंचायत	३७	३२	१७	८६	२८.६७
मित्र/रिश्तेदार से	१२	९	६	२७	९
जनपद कार्यालय से	७	७		१४	४.६६
कुल	१००	१००	१००	३००	१००

यदि योजनाओं की जानकारी के स्त्रोत को समग्रता में देखें तो अनौपचारिक के स्थान पर औपचारिक स्त्रोत का महत्व उत्तदाताओं में अधिक रहा।

योजनाओं का प्रभाव :

उत्तरदाताओं के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पड़ने वाले प्रभाव को निम्नांकित रूप में बताया जा सकता है।

१. आर्थिक स्थिति : अध्ययन क्षेत्र के गाँवों के चयनित उत्तरदाताओं में से ४२.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने किसी न किसी योजना का लाभ लिया है। इन उत्तरदाताओं द्वारा योजनाओं से लिए गए लाभ का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक स्थिति पर पड़ा है। योजनाओं का लाभ लेने के पूर्व तथा योजनाओं का लाभ लेने के बाद दोनों स्थितियों की आर्थिक स्थिति की तुलना करने पर उत्तरदाताओं ने बताया कि योजनाओं का लाभ मिलने से पहले उनकी आर्थिक स्थिति योजना का लाभ लेने के बाद की स्थिति से निम्न थी। उत्तरदाताओं जिन्होंने किसी न किसी योजना का लाभ लिया है उनमें से ३८.८ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि योजना का लाभ लेने के बाद उनकी आर्थिक स्थिति में थोड़ा बदलाव आया है।

२. रहन-सहन का स्तर : अध्ययन क्षेत्र के गाँवों में चयनित उत्तरदाताओं में से जिन उत्तरदाताओं ने किसी न किसी योजना का लाभ लिया है उनमें से अधिकांश (७६ प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके रहन-सहन के स्तर में कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। आज भी उनके रहन-सहन का स्तर वैसा ही है जैसा कि योजना का लाभ लेने से पहले था।

३. खान-पान का स्तर : योजनाओं का लाभ लेने के बाद भी किसी भी उत्तरदाता के खान-पान के स्तर में कोई परिवर्तन नहीं देखा गया। उनके खान-पान का स्तर वहीं है जो

योजना का लाभ लेने से पहले था।

४. स्वास्थ्य : योजनाओं का लाभ लेने के बाद उत्तरदाताओं के स्वास्थ्य की स्थिति में सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

५. शिक्षा : आर्थिक तथा स्वास्थ्य लाभ के साथ-साथ उत्तरदाताओं से उनके अथवा उनके बच्चों के शिक्षा के क्षेत्र में लाभ की बात पूछी गई, जिसमें योजनाओं का लाभ लेने वाले उत्तरदाताओं में से ८४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने योजनाओं से लाभ लेने से शिक्षा की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन पाया। उत्तरदाताओं ने बताया कि न केवल उनके बच्चों को मध्याहन भोजन का लाभ मिल रहा है बल्कि लड़कियों को माध्यमिक शिक्षा में नामांकन के बाद साईकिल की सुविधा मिली। साथ ही उत्तरदाताओं के बच्चों को निःशुल्क पुस्तकों के साथ-साथ गणवेश भी प्राप्त हुआ। इस तरह से उन्हें योजनाओं के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने में सुविधा मिली। इससे उनमें साक्षरता की स्थिति में वृद्धि हुई। साथ ही शेष उत्तरदाताओं, जिन्होंने योजनाओं का लाभ लेने के क्रम में शिक्षा की स्थिति में परिवर्तन में लाभ की बात नहीं कही, उसके पीछे यह कारण दिया गया कि उनके परिवार में कोई छोटा बच्चा नहीं है और न ही उन्होंने स्वयं शिक्षा से संबंधित किसी योजना का लाभ लिया है।

६. पास-पड़ोस, मित्रों एवं रिश्तेदारों से संबंध : पड़ोसियों से उनके साथ वैसे ही संबंध है जैसे पहले थे। अर्थात् योजनाओं का लाभ लेने के पहले तथा बाद में उत्तरदाताओं पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। किसी भी उत्तरदाता ने योजनाओं का लाभ लेने के बाद मित्रों से संबंध पर प्रभाव को रेखांकित नहीं किया।

निष्कर्ष : संक्षेप में, यदि देखा जाए तो अध्ययन के गाँवों में जनजाति विकास हेतु कई कार्य किए गए हैं तथा वर्तमान में किए जा रहे हैं। अध्ययन के गाँवों में ग्रामीण विकास की योजनाओं से लेकर जनजाति विकास की योजनाओं के अंतर्गत भी विकास कार्य किया गया है। ११वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत विकास कार्य के अतिरिक्त मनरेगा के अंतर्गत भी अध्ययन के गाँवों में विकास कार्य किया गया है। ये सभी विकास कार्य शासकीय सहायता से किए गए हैं। कोई भी कार्य सामुदायिक अथवा गैर-सरकारी संगठन के माध्यम से नहीं किया गया है। साथ ही अध्ययन के गाँवों में जो भी शासकीय योजना अथवा कार्यक्रम संचालित किए गए हैं वे "ऊपर से नीचे" की ओर अवधारणा को ध्यान में रखकर किये गये हैं। अध्ययन के गाँवों में इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि विकास योजनाओं का क्रियान्वयन "नीचे से ऊपर" की ओर अवधारणा को ध्यान में रखकर किया जाए। अध्ययन के गाँवों में विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के बाद भी अधिकांश परिवार गरीबी रेखा के नीचे अथवा इससे थोड़ा ही ऊपर ही जीवनयापन कर रहे हैं। अतः शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन में यह ध्यान देने योग्य बात है कि जनजाति विकास की योजनाओं का जो भी क्रियान्वयन किया जाए उसमें "नीचे से ऊपर की ओर" अवधारणा को अपनाकर कार्य किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, योजनाओं का लाभ लेने बाद उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति में काफी सकारात्मक प्रभाव पड़ा तथा सामाजिक स्थिति पर मिश्रित प्रकार का प्रभाव पड़ा। खान-पान, रहन-सहन, शिक्षा तथा स्वयं की कार्यक्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। साथ ही पास-पड़ोस, मित्र तथा रिश्तेदारों से संबंध पर भी कोई प्रभाव नहीं देखा गया।

संदर्भ

१. Vidyarthi, L.P. and B.K. Rai, 'The Tribal Culture of India', New Delhi, 1985 Concept, P.160.

२. Ibid.

३. Ibid

४. Grigson, W.G., 'The Maria Gond of Bastar', Oxford University Press, London, 1939, P.306.

५. दुबे, एस.सी., 'मानव और संस्कृति', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७१, पृ. ११७

६. विद्यार्थी, पूर्वोक्त,

७. शर्मा, श्रीनाथ, 'जनजातीय समाजशास्त्र', भोपालः मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, २००७ पृ. २३८

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

एण्टी मनी लाण्ड्रिंग एवं के.वाई.सी बैंकिंग कार्य प्रणाली

❑ डॉ० ज्योति खरे

आज बैंकिंग लगातार समृद्ध और परिवर्तित हो रही है। इसमें सतत् नए क्षेत्र जुड़ रहे हैं। बैंकिंग के इस क्षेत्र में बहुत सी नयी सुविधाओं जैसे ई-बैंकिंग, मोबाइल बैकिंग, ए.टी.एम., गिफ्ट कार्ड, आदि विषयों का समावेश हो रहा है और जब से सूचना प्रोद्यौगिकी का विकास हुआ है पेपर रहित बैंकिंग को बढ़ावा मिला। सूचना प्रोद्यौगिकी एवं कम्प्यूटर तो जैसे तकनीकी की ओर से मानव सभ्यता को एक उपहार है जिसमें ब्रिक एंड मोर्टर बैंकिग अर्थात शाखा बैंकिंग का स्थान अब वर्चुअल बैंकिंग (शाखा रहित बैंकिंग) ने ले लिया है। इस ई-बैंकिंग से आर्थिक लेन-देन और भी सरल हो गया है। किन्तु पिछले लगभग डेढ़ दशक से जी.डी.पी. की कमी, बढ़ती महंगाई दर, आतंकवाद, बेरोजगारी, अमीरी-गरीबी की बढ़ती खाई आदि भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए सोचनीय है। इन सबका जिम्मेदार भारतीय भ्रष्टाचार को मानते हैं जो कि अर्थ (धन) व आर्थिक लेन-देन के दुरूपयोग के कारण उत्पन्न होता है।पेपर रहित बैंकिंग के दौर में फण्ड ट्रांसफर तथा किसी भी प्रकार का आर्थिक लेन-देन मनीलाण्ड्रिंग की क्रियाओं को भी सुगम अवसर प्रदान कर सकता है जो कि देश की अर्थव्यवस्था के लिए खतरा उत्पन्न करता है।

सूचना प्रौघोगिकी के विकास के साथ बैंकिंग लगातार समृद्व और परिवर्तित हो रही है। पेपर रहित बैकिंग के दौर मे फण्ड ट्रासंफर तथा किसी भी प्रकार का आर्थिक लेन-देन मनीलॉण्ड्रिंग की क्रियाओं को सुगम अवसर प्रदान करता है और अर्थव्यवस्था के लिये खतरा उत्पन्न करता है। मनीलॉण्ड्रिगं का अर्थ अवैध ढंग से अर्जित आय को विधि संगत बनाना होता है। अतः बैंक की कार्य प्रणाली पर ध्यान देकर उसमे परिवर्तन करना आवश्यक है। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी उदेश्य से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बनाये गये के. वाई.सी.(Know your customer/client अर्थात ग्राहक को जानिए) सम्बन्धी दिशा निर्देश व धन-शोधन निवारण अधिनियम(एण्टी मनीलाण्ड्रिंग एक्ट) के सम्बन्ध मे बैंकिग कार्य प्रणाली पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

उसे किसी भी कीमत पर समाप्त करने के प्रयास में सरकार, बैंको की रेगुलेटरी आथोरिटी अर्थात भारतीय रिजर्व बैंक तथा आमजन सभी लगे हुए हैं। इस को ध्यान में रखते हुये के. वाई.सी. संबंधी दिशा निर्देश तथा धनशोधन निवारण अधिनियम बनाए गये जो सभी तरह के आर्थिक लेन-देन के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। इसका मुख्य उद्देश्य ‘‘मनीलाड्रिंग’’ की क्रियाओं को हतोत्साहित करना है।

मनीलाण्ड्रिंग(धनशोधन) क्या है?:- आम बोलचाल की भाषा में मनीलाड्रिंग का अर्थ गंदी मुद्रा को साफ करना होता है अर्थात अवैध ठंग से अर्जित आय को विधि संगत बनाना होता है। ब्लैकस् लेक्जिकन[1] के अनुसार, लाण्ड्रिग का अर्थ ठगी, संवेदनशील संव्यवहारों एवं अवैध साधनों से अर्जित आय को विधिसम्मत बनाने के लिए इस प्रकार निवेश अथवा अन्तरित करना, जिससे उसके पुराने स्रोत की जानकारी न हो सके। धनशोधन निवारण अधिनियम, २००२ की धारा ३ के अनुसार, ‘‘यदि कोई व्यक्ति अपराधिक राशि प्राप्त करने एवं उससे विधिसम्मत सम्पत्ति निर्मित करने अथवा इसकी प्रक्रिया में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से लिप्त होने का प्रयास करता है या जानबूझ कर सहायता करता है अथवा जानबूझ कर इसका पक्षकार बनता है तो वह धन-शोधन के संबंध में दोषी होगा।”[2]

इसका अर्थ यह हुआ कि बैंक अपने ग्राहक को जाने अर्थात उसके कारोबार, उसकी आय के स्रोत एवं उसके नैतिक आधार के बारे में जानकारी होनी चाहिए। ऐसा इसीलिए कहा जाता है, क्योंकि बैंक का वर्तमान ग्राहक भावी ग्राहक का परिचय देता है। उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है, यद्यपि वह ग्राहक व बैंक दोनों को जानता है। यदि इस संबंध में किसी प्रकार की लापरवाही बैंक के पक्ष में पायी जाती है तो बैंक को पराक्रम्य विलेख अधिनियम १८८१ की धारा १३१ के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त नहीं होता है।[3]

भारत में काले धन को वैध बनाने की प्रक्रिया का प्रारम्भ निःसंदेह हवाला के द्वारा किया गया। हवाला का अर्थ है बिना धन का प्रयोग किए एक देश से दूसरे देश को भुगतान किया जाना। प्रभावी लागत, समक्षता एवं विश्वसनीयता आदि विशेषताओं के कारण हवाला लोकप्रिय हुआ। नौकरशाही, दस्तावेज की जांच में कमी व कर चोरी आदि लोकप्रिय होने के अन्य दूसरे कारण हैं। परक्राम्य विलेखों के कम उपयोग के

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर, चमोली (उत्तराखण्ड)

कारण भी हवाला अधिक लोकप्रिय हुआ क्योंकि इसमे गोपनीयता अधिक रहती है।

हवाला प्रेषण के समय सूचना प्रोद्यौगिकी का इतना विस्तार नहीं हुआ था और न हीं आतंकी क्रियाएं इतनी सक्रिय थीं। समय बीतने एवं तकनीकी विकास के बाद धन शोधन (मनीलाण्ड्रिंग) का प्रादुर्भाव हुआ जो अधिक जटिल एवं उन्नत किस्म का है। धन शोधन में गैर कानूनी तरीके से अर्जित राशि को विधि- सम्मत बनाया जाता है। सी.डबल्यू.जी. घोटाला, काला धन घोटाला आदि द्वारा विदेशों में जमा धन ७२८००० करोड़ रुपये का था। इसमें मनीलाड्रिंग का जबरदस्त प्रयोग किया गया। विदेशों में काला धन कितना है इस विषय में सुप्रीम कोर्ट में दायर अनिल दीवान की याचिकानुसार ७० लाख करोड़, सी.बी.आई. निदेशक ए.पी. सिंह के अनुसार २५ लाख करोड़, स्विस बैंकर्स ऐसोसिएशन के अनुसार ७५ लाख करोड़ भाजपा के अनुसार २५ लाख करोड और बाबा रामदेव के अनुसार यह काला धन ४०० लाख करोड़ रुपये का हैं।[४] इससे स्पष्ट होता है कि किस कदर हमारे देश में मनीलाड्रिग की क्रियाएं सक्रिय हैं। सरकार द्वारा इससे निपटने के लिए कानून व नीति बनाकर निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं।

मनीलाण्ड्रिग के क्षेत्रः- सरकार द्वारा जारी श्वेत पत्र में बताया गया कि रियल स्टेट, शेयर बाजार, सोने, सर्राफा, आभूषण बाजार, सार्वजनिक खरीदारी और विदेशी व्यापार सरीखे में सबसे ज्यादा काला धन बनाया जाता है और मनीलाण्ड्रिग की जाती है।[५]

पूर्व वित्त मंत्री जसवंत सिंह के अनुसार यदि यह काला धन जो विदेशों में जमा है भारत में वापस आ जाए तो तीन चौथाई आंतरिक कर्ज चुकाया जा सकता है, मनरेगा जैसी ६० से अधिक योजनाऐं चलाई जा सकती हैं और हर महत्वपूर्ण क्षेत्र में एम्स जैसे अस्पताल खोले जा सकते हैं।[६]

इस कथन से स्पष्ट है कि देश के धन का जिस पर देश की जनता का अधिकार(विकास के रूप में) होना चाहिए वह विदेशी बैंकों में जमा कर विदेशों को अपने देश की मुद्रा का लाभ पहुंचाया जा रहा है तथा इसमें ई-बैंकिंग (पेपर रहित) का बड़ी सक्रियता से प्रयोग किया जा रहा है।

पेपर रहित बैंकिंग के दौर में के.वाई.सी. के मापदण्डों का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि आर०टी०जी०एस० से फण्ड ट्रांसफर जून २००८ में 0.79% (Rs. 259.8 खरब) था जो कि मार्च २०१३ में बढकर 7.29%/(774.1खरब) हो गया है। वहीं एन०ई०एफ०टी० से फण्ड ट्रांसफर जून २००८ मे 1.90%(Rs.1.1 खरब) था, वह फरवरी २०१३ मे 38.29%(Rs.25.60 खरब) हो गया।[७] ग्राहकों को बढ़ती हुई संख्या तथा आर.टी.जी.एस व.एन.ई.एफ.टी. से फण्ड ट्रांसफर की प्रक्रिया का बढ़ता चलन को देखते हुए सतर्कता बरतने के साथ ग्राहकों की पहचान निर्धारित करना बैंकों के समक्ष एक चुनौती है। भारत मे अबतक १४३७८ केस[८] मनीलाण्ड्रिग की जांच हेतु रजिस्टर हुए हैं। एक पोर्टल,कोबरा पोस्ट नें मार्च २०१३ में एक स्टिंग ऑपरेशन तीन बैकों के कर्मचारियों पर किया जो रेगुलेटरी आथोरिटी द्वारा निर्मित दिशा निर्देशों और नियमों को ताक पर रखकर कार्य कर रहे थे।[९] ये देश के निजी क्षेत्र के अग्रणी बैंक आई.सी. आई.सी. आई., एच.डी.एफ.सी., एवं एक्सिस बैंक हैं[१०] जिन पर कोबरा पोस्ट ने मनीलाण्ड्रिग की क्रियाओं में लिप्त होने की बात कही है। स्पष्ट है कि बैंक की कार्य प्रणाली पर ध्यान देना एवं उसमें परिवर्तन करना आवष्यक है। अरविन्द केजरीवाल (AAP) ने मुकेश अम्बानी पर वार करते हुए उन पर ६५३० करोड़ रूपये की मनीलाण्ड्रिगं क्रियाओं मे शामिल होने का आरोप लगाया है।[११]

अतः सरकार ने इस प्रकार की क्रियाओं पर शिकंजा कसने के लिए मापदण्डों के अनुपालन में सभी बैंकों एवं वित्तीय संस्थानों के लिए एण्टी मनीलाण्ड्रिग एक्ट २००२ बनाया और एण्टी मनीलाण्ड्रिग धनशोधन निवारण पर गठित वित्तीय मामलों के कार्य दल (एफ.ए.टी.एफ.) की सिफारिशों के आधार पर १६ अगस्त २००२ में भारतीय रिजर्व बैक द्वारा के.वाई.सी. संबंधी मापदण्डों को लागू किया जिन्हें २००४ में संशोधित किया गया।

के.वाई.सी. दिशा निर्देशों का उद्देश्यः- के.वाई.सी. का मुख्य उददेश्य बैंकों को अपराधिक तत्वों द्वारा धन शोधन एवं आतंकी वित्तीयन गतिविधियों से रोकना है जिसे वे जानबूझकर करते हैं अथवा अनजाने में शामिल हो जाते हैं। के.वाई.सी. संबंधी दिशा निर्देश बैंकिंग नियमन अधिनियम १६४६ की धारा ३५ए. के अंतर्गत जारी किए गए, जिनके अनुपालन न किए जाने पर दण्डों का भी प्रावधान किया गया है। अतः के.वाई.सी. का उद्देश्य है कि बैंक अपने ग्राहक के साथ-साथ उनमें वित्तीय संव्यवहारों को जाने और समझे जो उन्हें जोखिम प्रबंधन में सहायक हों।

के.वाई.सी. मापदण्डों का प्रारूपः- के.वाई.सी. के मुख्यतः दो हिस्से हैं। पहचान और पता चूंकि ग्राहक का पता बदलता रहता है इसीलिए संस्थानों को समय-समय पर अपडेट

करते रहना चाहिए। मनीलाण्ड्रिग निवारण अधिनियम की धारा ७ के अनुसार वित्तीय संस्थाओं को के.वाई.सी. के नियमों का पालन करना जरुरी है अथवा उन पर सख्त कार्यवाही भी की जा सकती है। बैंकिंग नियमन में भी के.वाई.सी. को काफी अहम दर्जा प्राप्त है। बैंकों को समय-समय पर ग्राहक के.वाई.सी. नियमों का सत्यापन का अधिकार है जिससे वह संतुष्ट हो सके कि एकांउट का इस्तेमाल किसी गैर कानूनी काम के लिए नहीं हो रहा। बैंक को बिना के.वाई.सी. नियमों वाले एकांउट को बंद करने का पूरा अधिकार है।[१२]

के.वाई.सी. नीति में ग्राहक को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:-[१३]

१. व्यक्ति या संस्था, जिसका बैंक में खाता हो अथवा बैंक से कारोबारी संबंध हों।
२. अन्य किसी ओर से खाता चलाया जा रहा हो। (अर्थात् लाभ के लिए स्वामी)
३. पेशेवर मध्यस्थों के द्वारा किए गए संव्यवहारों के हितग्राही जैसे स्टॉक ब्रोकर, सनदी लेखाकार आदि जैसा विधिसम्मत हो।
४. व्यक्ति एवं संस्था, जो ऐसे वित्तीय संव्यवहार से संबंधित हों, जिनकी प्रतिष्ठा महत्व रखती है अथवा जहां बैंक को जोखिम है, जैसे कि एक संव्यवहार के अंतर्गत तार अंतरण अथवा बड़ी राशि का डिमांड ड्राफ्ट।

के.वाई.सी. नीति में निहित तत्व[१४] : के.वाई.सी. मापदण्डों के तत्वों मे निहित निम्न चार दिशा निर्देश जो कि भारतीय रिर्जव बैंक द्वारा सुनिश्चित किए गए हैं,

१. ग्राहक स्वीकार्य नीतिः- केंद्रीय बैंक के अनुसार इस ग्राहक स्वीकार्य नीति तत्व के अनुसार किसी भी बैंक द्वारा गुमनाम अथवा काल्पनिक खाता नहीं खोला जाए, ग्राहक की कारोबारी गतिविधि की प्रकृति, निवास स्थान, ग्राहक की भुगतान प्रणाली, कारोबार की मात्रा, सामाजिक एवं वित्तीय स्तर का पता लगाएँ तथा बैंकों द्वारा जोखिम के आधार पर दस्तावेज व अन्य सूचनाएँ एकत्र करना चाहिए। बैकों द्वारा जॉच बिन्दु इस प्रकार होने चाहिए कि जिससे नया खाता खोलते समय अपराधिक पृष्ठभूमि के ग्राहक की पहचान हो सके तथा प्रत्येक नए ग्राहक की प्रोफाइल जांच हो सके। यदि बैंक सावधानी उपाय लागू करने में स्वयं को असमर्थ पाती है तो उन परिस्थितियों में न तो नया खाता खोला जाए, न ही विधमान खाता बन्द किया जाए। भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा निर्देश के अनुसार बैंकों द्वारा ग्राहक स्वीकृति नीति का कार्यान्वन इतना कठोर नहीं होना चाहिए कि आम जनता विशेषकर वित्तीय एवं सामाजिक रुप से कमजोर व्यक्ति बैंकिंग सुविधाओं से ही वंचित हो जाए।

२.ग्राहकों की पहचान प्रक्रियाः- बैंकों के बोर्ड द्वारा अनुमोदित ग्राहक की पहचान प्रक्रिया स्पष्ट होनी चाहिए। ग्राहक पहचान का अर्थ विश्वसनीय, स्वतंत्र दस्तावेजी माध्यमों, डाटा अथवा सूचनाओं के माध्यम से उसका और उसकी पहचान का सत्यापन करना होता है। यह सत्यापन विधिक स्तर पर उचित एवं संबंधित दस्तावेजों के माध्यम से हो। खाता खोलने के बाद आवधिक रुप से ग्राहक की पहचान को अद्यतन करने की पद्धति लागू करनी चाहिए जिसमें फोटो प्राप्त करना भी शामिल है। कम जोखिम मामलों में यह अवधि ५ वर्ष तथा मध्यम अथवा उच्च जोखिम के मामले में २ वर्ष होनी चाहिए।

पहचान के दस्तावेजः-[१५] पासपोर्ट, पैनकार्ड, ड्राईविंग लाइसेंस, मतदाता पहचान-पत्र, किसी संस्थान का पहचान पत्र, (जो बैंकों को संतुष्ट कर सके) आधार कार्ड।

पते के लिए दस्तावेजः[१६]**-** टेलीफोन बिल, बिजली का बिल, राशन कार्ड, बैंक एकाउंट स्टेटमेंट, किसी संस्थान का ऑथोरिटी लेटर (जो बैंकों को संतुष्ट कर सके)।

३. संव्यवहारों की निगरानीः- यह कार्य बैंकों के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। प्रभावी के.वाई.सी. प्रक्रिया के लिए लगातार निगरानी करना आवश्यक तत्व है। इससे जोखिम को नियंत्रित करके उन्हें कम कर सकते हैं। अनियमित व असामान्य लेन-देनों पर विशेष ध्यान दिया जाए। बैंक इस संबंध में लेन-देनों की राशि सीमा निर्धारित कर सकता है। बैंक के.वाई.सी. की प्रकिया को फिर से पूरी करने के लिए कह सकता है, तब जब ग्रहक के एकाउंट मे जमा राशि मे बड़ा बदलाव आया हो या फिर लम्बे समय से कोई बदलाव नहीं आया हो।[१७]

४. जोखिम प्रबंधनः भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार बैंक के निदेशक मण्डल को सुनिश्चित करना चाहिए कि मण्डल के दिशा निर्देशों के आधीन बैंक अपने विद्यमान एवं नए ग्राहकों की जोखिम प्रोफाइल तैयार करते हैं। के.वाई.सी. नीतियों एवं प्रक्रिया के अनुपालन में बैंक के आंतरिक ऑडिट एवं अनुपालन प्रणाली की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बैंक को खाते की जोखिम आधारित आवधिक समीक्षा की प्रणाली प्रारंभ करनी चाहिए जो ६ माह में कम से कम एक बार अवश्य होनी चाहिए।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किए गए नीतिगत प्रयासः- १. भारतीय रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर के.सी. चक्रवर्ती ने कहा कि केंद्रीय बैंक जरूरत पड़ने पर के.वाई.सी. नियमों में बदलाव कर सकता है ताकि बैंकों के काम-काज के स्तर पर होने वाली त्रुटियों को टाला जा सके।[१८]

२. भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार बैंकों को अपने जोखिम के आधार पर ग्राहकों की ताजा सूचना फिर से इकठ्ठी करनी अनिवार्य है। खासतौर से जब ग्राहक के एकाउंट के जमाराशि में कुछ बड़ा बदलाव आया हो या फिर लम्बे समय से कोई बदलाव नहीं आया हो।[१९]

३.केंन्द्रीय बैंक ने फण्ड ट्रांसफर की प्रक्रिया को और भी ज्यादा सुरक्षित बनाने की दृष्टि से बैंकों को दिशा निर्देश दिये हैं कि ग्रहक ने जिसको फंड ट्रासंफर किया है, उसकी एक संख्या को भी निश्चित किया जाए ।[२०]

४. केंन्द्रीय बैंक ने सभी बैंकों से यह भी कहा कि अलर्ट की ऐसी व्यवस्था की जाए जिसमें उपयोगकर्ता को फण्ड ट्रांसफर होने या राशि पाने वाले के नाम शामिल किए जाने पर एस. एम.एस. अलर्ट मिले। (कुछ बैंक पहले से ही ऐसी सुविधाऐं दे रहे हैं।)[२१]

५.भारतीय रिजर्व बैक ने धन शोधन निवारण अधिनियम (एंटी मनीलाण्ड्रिग एक्ट) / के.वाई.सी. दिशा निर्देश सम्बन्धी नियमों का पालन न करने पर २२ बैकों को ४६ करोड़ रूपये से दण्डित किया। इन बैकों में स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,पंजाब नेशनल बैंक व यस बैंक सहित २२ निजी व सरकारी बैंक शामिल हैं।[२२]

बैंकिंग कार्य प्रणाली में के.वाई.सी. संबंधी तीन मुख्य बातें[२३]

१. के.वाई.सी. में ग्राहक की पूरी जानकारी गोपनीय रखी जाती है।
२. डेबिट/क्रेडिट एवं स्मार्ट कार्ड के लिए के.वाई.सी. जरुरी।
३. कोई भी बैंक ग्राहक के.वाई.सी. के नियमों के पालन करने से मना नहीं कर सकता ।

टेलीफोन एवं ई-बैंकिंग के प्रारंभ के साथ बैंकों में ग्राहकों के खातों की संख्या बढ़ रही है। पेपर रहित बैकिंग प्रणाली मे ग्प्रहकों को बैंक की शाखाओं में आने की आश्यकता नहीं है। ऐसे में ग्राहकों की पहचान प्रक्रिया के अतिरिक्त संस्थानों के खातों की उचित पहचान के लिए सावधानी पूर्ण प्रक्रिया होनी आवश्यक हो जाती है। अतः बैंकिंग कंपनी को ग्राहक के खातों की सूचनाओं को सुरक्षित रखने एवं सूचित करने के संबंध में धन-शोधन निवारण अधिनियम २००२ की धारा १२ में जो भी दिशा निर्देश दिए गए हैं एवं निहित के.वाई.सी मापदण्डों का अनुपालन अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए। यदि ग्राहक विदेशी है तो शाखाओं को ऐसी परिस्थिति मे तीसरे पक्ष से परिचय प्रमाणित कराने की आवश्यकता है। तीसरे पक्ष वह पर्यवेक्षी संस्था है जहां के.वाई.सी. प्रणाली लागू है। अतः बैंकों को धन-शोधन (मनीलाण्ड्रिंग) निवारण अधिनियम २००२ के प्रावधान एवं उसके निहित नियमों के.वाई.सी. का अध्ययन तथा सभी उपाय किए जाने चाहिए, ताकि देश की अर्थव्यवस्था को खतरे से बचाया जा सके और देश का विकास हो सके।

सदंर्भ

१. उद्धृत, श्रीवास्तव अरूण व नीरा प्रसाद, 'संव्यवहार बैकिंग-विविध आयाम' यूनियन बैकं आर्फ इडिया, २०१०, पृ. १६० ।
२. वही, पृ. १६०
३. वही, पृ. १६१
४. अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र ,२२ मई २०१२।
५. वही, २२ मई २०१२।
६. वही, २२ मई २०१२।
७. हिन्दुस्तान,दैनिक समाचार पत्र, २५ अप्रैल २०१३ ।
८. गूगल सर्च- मनीलॉण्ड्रिगं।
९, गूगल सर्च- कोबरा पोस्ट ऑन लाइन मैग्जीन।
१०. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, २४ अप्रैल २०१३ ।
११. इकोनोमिक टॉइम ,समाचार पत्र, २८ फरवरी २०१४,।
१२. दैनिक जागरण दैनिक समाचार पत्र, ६ मई २०१३ ।
१३, उद्धृत, श्रीवास्तव अरूण व नीरा प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. १६२
१४. उद्धृत, श्रीवास्तव अरूण व नीरा प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. १६२
१५. दैनिक जागरण दैनिक समाचार पत्र, ६ मई २०१३ ।
१६. वही, ६ मई २०१३।
१७. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, २६ अप्रैल २०१३ ।
१८. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, २४ अप्रैल २०१३ ।
१९. वही, २६ अप्रैल २०१३।
२०. वही, २५ अप्रैल २०१३।
२१. वही, २५ अप्रैल २०१३।
२२. द हिन्दू, दैनिक समाचार पत्र,१५ जुलाई २०१३।
२३. दैनिक जागरण दैनिक समाचार पत्र, ६ मई २०१३।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

गढ़वाल के लोकगीत -'एक सांस्कृतिक अध्ययन'

❑ डॉ० रजनी गुसांई

हिमालय के पांच खण्डों में एक खण्ड केदारखण्ड माना गया है। यही केदार खण्ड आधुनिक गढ़वाल है। यह प्राचीन साहित्य में ब्रहमपुर, उत्तराखण्ड आदि नामों से प्रसिद्ध रहा है। गढ़वाल के इतिहास, लोक विश्वासों और लोक संस्कृति में कोल, भील किरात, किन्नर, यक्ष, गंधर्व नाग, खस शंक, द्रविड़, आर्य आदि अनेक जातियों की संस्कृति का समावेश है।

लोक गीत केवल जीवन के बीच से उपजते हैं, वे बनाये नहीं जाते। लोक गीत केवल व्यक्ति विशेष के नहीं होते वरन् वे उन असंख्य कंठों के हो जाते हैं, जिनके द्वारा वे एक साथ हजारों स्थान पर गाए जाते हैं।

> लोकगीत बनाये नहीं जाते अपितु लोक जीवन के बीच उपजते हैं। लोकगीत किसी व्यक्ति विशेष के नहीं होते हैं प्रत्युत उनका संबंध उन असंख्य कंठों से होता है जिनके द्वारा वे एक साथ हजारों स्थानों पर गाये जाते हैं। प्रस्तुत अध्ययन का संबंध गढ़वाल की लोक संस्कृति से है जो लोकगीतों में अभिव्यक्त होती है। जीवन के विविध पक्षों में विभिन्न रूपों में लोक संस्कृति अपनी अभिव्यक्ति ढूंढती है इसलिए गढ़वाली लोक संस्कृति के अंतर्गत विविध प्रकार के लोक गीत प्रचलित हैं। प्रस्तुत लेख इन्हीं को प्रकाशित करने का एक प्रयास कहा जा सकता है।

गीतों का नामकरण धर्म, संस्कार, ऋतु, नृत्य, अनुष्ठान आदि के आधार पर हुआ है। विभिन्न गीतों के नामकरण के पीछे विभिन्न तत्वों की प्रमुखता दिखाई देती है।[1] उदाहरण के लिए चौफुला, थाड़या चांचर, झूमैलो, छोपती आदि गीतों का नामकरण उनसे संबंधित नृत्यों के कारण हुआ है। चौफुला, चतुष्फुल्ल से बना है जो एक मण्डलाकार नृत्य होता है। इसी प्रकार थाड़ अर्थात आंगन में संपादित नृत्य थाड़या कहलाता है।[2] चांचर बहुत प्राचीन नृत्य है। इसी प्रकार बसंत के अवसर पर झूम-झूम कर नाचा जाने वाला स्त्री-नृत्य झुमैलो कहलाता है।[3] इन नृत्यों के साथ गाए जाने वाले गीत भी इन्हीं संज्ञाओं से लोक में अभिहित हैं। दूसरी ओर बसंती, चैती, बारामासी, होली, हरियाली आदि गीतों का नामकरण ऋतु के आधार पर हुआ है।[4] मांगल संस्कारों से सम्बन्धित गीत के आधार पर हुआ है। इसी प्रकार देवी-देवताओं की नृत्यमयी उपासना के गीत जागर कहलाते हैं।[5] अनिष्ट शक्तियों, भूत भैरवों तथा आछरियों की मनौती के गीत रांसो नाम से प्रसिद्ध हैं। दूसरी ओर तंत्र-मंत्र जादू टोना विषयक गीत रखवली तथा ओंजों, झाड़ों ताड़ों के अर्न्तगत आते हैं।[6]

शोध प्रारूप :- प्रस्तुत अध्ययन हेतु लघु शोध रिपोर्ट, शोध ग्रन्थ, शोध पत्र, पत्र-पत्रिकायें, समाचार पत्र, लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य से सम्बन्धित पुस्तकें आदि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य :- अध्ययन का उद्देश्य गढ़वाल की लोक संस्कृति से है जो लोक गीतों में अभिव्यक्त होती है। कई रूपों में अपनी अभिव्यक्ति ढूंढती है। लोकगीत, लोक साहित्य के अंश का प्रतिनिधित्व करते हैं।

गढ़वाल में निम्न प्रकार के लोकगीत पाये जाते हैं-

१. धार्मिक आनुष्ठानिक गीत :- भावना और विश्वास लोक जीवन की अभिव्यक्ति के दो प्रमुख तत्व हैं, इन्हीं दोंनों के समन्वय से धर्म का जन्म हुआ।

क. प्रकृति पूजा :- इसमें प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की पूजा के लोकगीत आते हैं। जैसे-अग्नि, गंगा, खेत, ऋतुओं, पर्वतों, वृक्षों, फलों, वनस्पतियों तथा पक्षियों आदि। शिव और पार्वती हिमालय से संबद्ध होने के कारण भी पर्वतों के प्रति देवत्व का भाव स्वाभाविक है। गढ़वाली लोकगीतों में फूलों के प्रति अपार ममता और पवित्रता का भाव व्यक्त हुआ है। वृक्षों के साथ देवत्व अथवा अलौकिक तत्व का समावेश बहुत प्राचीन विश्वास है। ऋतु सम्बन्धी अनेक त्यौहार पेड़-पौधों की पवित्रता को प्रकट करते हैं। इनमें हरियाली नवरात्र तथा माघ पंचमी प्रमुख हैं।

ख. यक्ष और नाग पूजा के लोक गीत :- गढ़वाल में लोकगीतों में यक्ष तथा नाग-पूजा के गीत भी मिलते हैं।

ग. जागर :- जागर को जागरण देवगाथाएं भी कहते हैं। इन देवताओं के गीतों में विभिन्न संप्रदायों का प्रभाव मिलता है। इन गीतों के साथ देवता नचाने की प्रथा है। यह निम्न प्रकार के होते हैं:-

१) प्रबन्ध गीत रूप में :- इनमें राधा कृष्ण, शिव-पार्वती, रूकमणी-चन्द्रावल, कृष्ण-रूकमणी तथा देवी के अनेक रूप हैं।

२) चरित गीत रूप में :- इसमें विनसर (शिव), नागर्जा

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय नई टिहरी, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

(कृष्ण), नरसिंह (विष्णु), भैरों (भैरवनाथ) आदि रूप हैं।

३) वार्ता रूप में :- पाण्डवों को देवता मानकर समस्त पाण्डवों की कथा को जागर रूप में गाना।

४) भूत-प्रेत तथा आछरियों की मनौती के गीत :- इन अनिष्टकारी शक्तियों में भूत, भैरव, मांत्री, आछरी, ऐडी, भराड़ी आदि का उल्लेख कई लोकगीतों में मिलता है।

५) तंत्र-मंत्र के लोकगीत :- जादू-टोना और तंत्र मंत्र आदिम प्रवृत्ति के द्योतक हैं। रोग निवारण, सांप, वशीकरण, घात, मारण, उच्चाटन आदि के मंत्रों में आज भी उस परम्परा के दर्शन किये जा सकते हैं। हिमालय में प्राचीन काल में जादू-टोने को बहुत महत्त्व दिया जाता था। गढ़वाल-कुमाऊं में तंत्र-मंत्र सम्बन्धी बहुत सा साहित्य विद्यमान था जो बाद में नष्ट कर दिया गया। इसमें तंत्र-मंत्रों का विशेषज्ञ, गीत के साथ अन्य क्रियाओं को भी करता है।

६) स्थानीय मेले, त्यौहार और लोकगीत :- गढ़वाल में सभी प्रमुख त्यौहार मनाये जाते हैं- जैसे फूल संक्राति, विषुवत संक्राति (विखोत) मंकर संक्राति, रक्षाबन्धन, नंदाष्टमी, जन्माष्टमी, शिवरात्री, नवरात्र, दिवाली, बंसत पंचमी आदि मुख्य हैं। इन अवसरों पर भी लोकगीत गाने की परम्परा है।

२. संस्कार गीत :- जीवन के मांगलिक पक्ष और संस्कारों से सम्बद्ध सभी लोकगीत कभी गढ़वाल में मांगल कहलाते थे। अतः सोलह संस्कारों के गीत मांगलों के अन्तर्गत आते हैं। इसमें निम्न संस्कार गीत शामिल हैं।

क. जन्म के गीत :- ये गीत मुख्यतः आदिम मानव की भाव-प्रवणता, विस्मय, चिंता और उल्लास भावना को व्यक्त करते हैं। गढ़वाली गीतों में पुत्री-पुत्र को देवताओं का जाया' कहा जाता है। हर मां के लिए पुत्र नारायण होता है। वह उसके तप की सबसे बड़ी सिद्धि और मातृत्व की सबसे बड़ी निधि होता है।

ख. नामकरण :- यह संस्कार प्रायः समृद्ध जनों द्वारा किया जाता है। नामकरण बहुधा देवताओं, महीनों, नक्षत्रों आदि के आधार पर होते हैं। इस दिन गणपति आदि के गीत गाये जाते हैं।

ग. चूड़ाकर्म :- चूड़ाकर्म के अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं, उनमें गणेश स्तुति के साथ सुफल की कामना मुख्य होती है। इसके अतिरिक्त नाई से शिशु को पीड़ा न पहुंचाने के लिए भी प्रार्थना की जाती है।

घ. विवाह गीत :- सामान्यतः विवाह गीत मांगल कहलाते हैं। प्रत्येक शुभकार्य एवं विवाह आदि मांगल कार्यो में सौभाग्यवती स्त्रियां देवताओं से शुभ कामनाओं हेतु प्रार्थना करती है। गढ़वाल के मांगल गीत विवाह की विभिन्न क्रियाओं और अनुष्ठानों से सम्बन्धित होते हैं तथा वर और वधु दोनों के घर पर गाये जाते हैं। गायिकाएं या तो कुलवधुएं होती हैं या मंगल्यानी होती हैं। ये मांगल गीत बेदी बनाते समय, पूजा करते समय, चौक पूरते समय, मंगल स्नान करते समय, बारात का स्वागत तिलक लगाते समय फेरे फेरते समय, वधू को गृह प्रवेश कराते समय गाये जाते हैं। इन मांगल गीतों में सूर्य, गणेश, देवी, शिव, विष्णु आदि की स्तुति की जाती है। मंगल स्नान को बांध देना कहते हैं। इसमें वर अथवा कन्या का स्नान कराने के लिए मां, चाची, भाभी तथा सखियों को आमंत्रण दिया जाता है और उन्हें लाख बरस की आशीष दी जाती है। उसके बाद वस्त्र धारण करते समय, बारात आगमन के समय, कन्यादान के समय आदि अवसरों पर भी लोक गीत गाये जाते हैं।

ड. मृत्यु संस्कार सबन्धी गीत :- मृत्यु के उपरान्त वह व्यक्ति पितर कहलाता है। श्राद्ध पक्ष में उनको अपने लोक गीत में बुलाकर नवान्न समर्पित किया जाता है, तथा तर्पण दिया जाता है और उनको आहूत किया जाता है, लोक गीत के माध्यम से।

३. ऋतु गीत :- ऋतुगीतों की परम्परा बहुत प्राचीन है। ऋतु काव्य की एक स्वतन्त्र परम्परा भी थी जिसका मूल उत्स लोकगीतों में ही प्रतीत होता है। ऋतु काव्य ऋतु पर्वों और ऋतु गीतों की लोक परम्परा से प्रेरित होकर ही रचा गया है। गढ़वाल में सर्वाधिक प्रचलित ऋतु-पर्वों में वे पर्व ही मुख्य रूप से आते हैं जो बसंत, वर्षा, शरद आदि ऋतुओं से सम्बद्ध हैं। इनमें निम्न प्रकार गीत प्रमुख हैं-

क. वसंती गीत :- इन गीतों का मुख्य विषय लता, वृक्ष फूल एवं वन्य शोभा होती है। वसंत लोक जीवन में उठते यौवन और फलते-फूलते दाम्पत्य सुख का प्रतीक है। फूलों का त्यौहार पूरे महीने भर चलता है।

ख. झुमैलो :- अविवाहित लड़कियां अथवा मायके आयी हुयी नव विवाहिताएं मण्डल बनाकर नृत्य मुद्रा में झूमते हुए गीत गाती हैं।

ग. खुदेड़ गीत :- करूणतम शैली के गीत खुदेड़ कहलाते हैं। खुदेड़ गीतों में आत्मिक क्षुधा का बाहुल्य होता है। अपने प्रियजनों के वियोग में उनसे मिलने की आत्मिक क्षुधा अथवा क्षुब्ध कर देने वाली उत्कंठ सामान्यतः खुद कहलाती है।

घ. चैत गीत :- इस पूरे महीने औजी,, वादी आदि जातियां,

ढोल दमांऊ बजाते हुए सवर्णों के गृह-द्वारों पर नाचते-गाते चैती-पसारा मांगते थे।

ड. सावन-भादों या चौमास गीत :- हिमालय की गोद में बसे गढ़वाल में वर्षा ऋतु का सौन्दर्य निराला होता है। इसमें नदी-नालें पर्वत आदि का विषय वर्णन होता है।

च. बारहमासा गीत :- बारह महीनों के रंग रंगीले परिवर्तन के साथ, नारी हृदय पर क्या प्रतिक्रिया होती है, बारहमासा का वर्णन विषयक होता है।

छ. होली गीत :- होली के गीतों में कृष्ण की लीलाओं तथा राम एवं शिव को भी होली के प्रसंग में सहज स्वाभाविक रूप में सम्मिलित किया गया है।

४. नृत्य, मेलों और त्यौहारों के गीत :- मेलों और त्यौहारों पर नृत्य करते हुए निम्न गीत गाये जाते हैं।

क. चौंफुला नृत्य गीत :- इस गीत को स्त्री-पुरूष गोल दायरे में घूमकर गाते हैं तथा आगे पीछे के साथ गुणाकर होकर तालियां बजाते हैं, कभी-कभी डंडो का भी प्रयोग किया जाता है। यह गुजरात के गरबा नृत्य के समान है।

ख. थड़्या नृत्य गीत :- बसन्त पंचमी से लेकर विषुवत संक्रान्ति तक गांव-गांव में गायक-गायिकाएं गोल घेरे में तीन कदम आगे तथा तीन कदम पीछे लौटकर एक दूसरे के कमर में हाथ डालकर नाचते तथा गाते हैं। यह गीत नृत्य एवं गाथा प्रधान होते हैं।

ग. चांचर नृत्य गीत :- यह भी नृत्य प्रधान गीत है जो स्त्री-पुरूषों द्वारा गाया जाता है।

घ. तांदी नृत्य गीत :- यह भी नृत्य प्रधान गीत हैं, इसमें स्त्री तथा पुरूष गोलधेरे में गीत गाते हुये नृत्य करते हैं।

ड. माघ गीत :- यह विशेषतः रवांई-जौनपुर क्षेत्र में मनाया जाता है। यह नृत्यगीत भोजनोपरान्त रात्रि में होते हैं, युवक तथा युवतियों द्वारा टोली बनाकर किया जाता है।

५. प्रणय गीत :- प्रणय गीत, प्रणय और श्रृंगार की अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं। यह निम्न प्रकार के होते हैं-

क. बाजूबंद :- बाजूबंद प्रणय की मादक शैली है। इसमें दो स्त्री-पुरूषों का संवाद होता है। यह गीत प्रायः वनों में गाया जाता है।

ख. लामण :- बाजूबंद की तरह लामण भी प्रेम गीत है। इसमें गीत का प्रेम से भरा कथानक होता है।

ग. छोपती :- छोपती नृत्य प्रधान गीत है, इसमें स्त्री-पुरूष मण्डलाकार नृत्य करते हैं। यह गीत मुख्यतः रवांई-जौपपुर में गाये जाते हैं। इसमें पहले और तीसरे का हाथ दूसरे की कमर के पीछे और दूसरे तथा चौथे के तीसरे की कमर के पीछे जाता है और इस प्रकार वृत्ताकार श्रंखला के साथ नर्तक कंधे से कंधा मिलते हुए, दो कदम आगे और एक कदम पीछे पैरों को गति देकर नृत्य करते हैं।

घ. जीवन के प्रेम गीत :- जीवन की प्रेमपूर्ण उक्तियां भी अनेक गीतों में आती हैं। यह प्रेम पति का पत्नी के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, देवर-भाभी, जीजा-साली आदि के लिए होता है।

६. लोक गाथाएं :- लोक गाथाएं प्रायः अवसर विशेष से सम्बन्धित होती हैं। यह निम्न प्रकार की होती हैं-

क. जागर या धार्मिक गाथाएं :- इसमें धार्मिक गाथाएं आती है जैसे-रूकमणी की गाथा, कुसुमा कोलिन की गाथा, निरंकार की गाथा, गोरील देवता की गाथा आदि।

ख. वीर गाथाएं या पंवाडे :- यह गढ़वाली लोक साहित्य के मौखिक महाकाव्य तथा खण्डकाव्य हैं, वे वीरगाथा काल के समान ही गीत हैं। यह तीन रूपों में मिलते हैं। ऐतिहासिक पंवाडे जैसे-राजा मानशाह, अजयपाल, मालूशाही और प्रीतमदेव आदि। अनैतिहासिक पंवाड़े जैसे - सूरज कुवंर, कफ्फू चौहान, कालू, भण्डारी, रणू, झंकारू आदि। वीरागंनाओं के पंवाडें जैसे-तीलू रौतेली, जोतरमाला, नौरंगी राजुला और सरूकुमैण आदि।

ग. प्रणय गाथाएं :- जैसे जीतू बग्डवाल की गाथा, फ्यूंली की गाथा, जसी की गाथा आदि हैं।

७. विविध गीत :- विविध गीतों मे निम्न प्रकार के गीत होते हैं -

क. छूड़ा :- इसमें चरवाहों की रसिक वृत्ति का ही चित्रण हुआ है। जैसे गजू तथा सलारी-मलारी/यह सूक्ति पूर्ण नीतिगीत होते हैं।

ख. बालगीत :- ये बच्चों के गीत होते हैं जो बच्चों के लिए लोरी रूप में भी गाये जाते हैं।

ग. श्रम गीत :- यह गीत श्रमशील परिस्थितियों की उपज हैं। यह कोई भी गीत हो सकता है।

घ. कूलाचार :- गढ़वाल के औजी,ढोल-दमाऊं वादक अपने ठाकुरों की वंश प्रशस्ति हेतु गाते हैं।

ड. हास्य-व्यंग के गीत :- गढ़वाल में हास्य और व्यंग के गीतों का भी प्रमुख स्थान है।

च. सामयिक गीत :- यह समय-विशेष की घटनाओं के संबन्ध में लिखे गये गीतों से है। जैसे रवांई-तिलाड़ी कांड से सम्बन्धित गीत।

सन्दर्भ

१. चातक गोविन्द, 'गढ़वाली लोकगीत', जुगुल किशोर एण्ड ब्रदर्स, देहरादून, १६५४, पृ. १४-१६
२. चातक गोविन्द, 'गढ़वाल लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन', विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, १६७३, पृ. ४६-५२
३. चातक गोविन्द, 'लोक संस्कृति का संदर्भ-मध्य हिमालय', तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, १६६०, पृ. ६०-६२
४. चातक गोविन्द, 'लोक गाथाएं, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, १६६६, पृ. ६४-१००
५. चातक गोविन्द, 'गढ़वाली लोकगीत-विविधा', तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, २००१, पृ. ५०-५५
६. चातक गोविन्द, 'गढ़वाली लोकगीत-एक सांस्कृतिक अध्ययन', तक्षशिला प्रकाशन, २००३, पृ. ३३-३५
७. वही, पृ. ४२-४६
८. सिंह वीरेन्द्र, 'उत्तराखण्ड सामान्य ज्ञान', अरिहन्त पब्लीकेशन, मेरठ, २००८, पृ. ७३
६. वही, पृ. ७३
१०. वही, पृ. ७३
११. चातक गोविन्द, २००३, पूर्वोक्त, पृ. १५-१७
१२. वही, पृ. ७६-७७
१३. सिंह वीरेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ७३
१४. वही, पृ. ६३
१५. वही, पृ. ६४
१६. चातक गोविन्द, २००३ पूर्वोक्त, पृ. ४०-४६
१७. वही, पृ. १५१-१५२
१८. सिंह वीरेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ७३

Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

बलात्कार : एक सामाजिक विकृति-कारण एवं निवारण

❑ डा० रश्मि

○ डा० मीना शुक्ला

वर्तमान समाज में बलात्कार रूपी कोढ़ गहराई तक घुस चुका है। दिसम्बर २०१२ दिल्ली में हुई गैंग रेप की घटना दिल दहलाने वाली थी। उसके बाद से न केवल दिल्ली, एन०सी०आर० बल्कि पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, बिहार, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल तथा भारत के उत्तरी राज्यों में मिलाकर देश के दूसरे भागों में भी बलात्कार की घिनौनी व मानवता को शर्मसार करने वाली घटनाओं की तो जैसे बाढ़-सी आ गई है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य बलात्कार के कारणों पर प्रकाश डालना है। इसका मूल कारण भारतीय पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था, आधुनिक भौतिकवादी युग की परिवर्ती सामाजिक व पारिवारिक दशायें, नैतिक मूल्य व संस्कारों का विलुप्त होना, बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार व शिथिल कानून व्यवस्था, औद्योगीकरण व नगरीकरण की बढ़ती प्रक्रिया आदि महत्वपूर्ण हैं। शोध पत्र में बलात्कार से निपटने के लिए कुछ सुझाव भी दिये गये हैं।

जिस प्रकार से मानव शरीर में कोढ़ रोग एक बार शुरू हो जाता है तो फैलता ही जाता है इसी प्रकार भारतीय समाज रूपी शरीर में बलात्कार रूपी कोढ़ लग चुका है। इससे बचने के जितने कानून व नियम बनाये जा रहे हैं, विरोध किया जा रहा है, यह रोग उतना ही विकाराल रूप लेता जा रहा है। समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम ने इस स्थिति को सामाजिक संरचना में नियमहीनता कहा है और धीरे-धीरे यह सामाजिक व्याधिकी बन जाती है अर्थात् सामाजिक संरचना में रोग ग्रस्तता। दिल्ली गैंग रेप दिसम्बर, २०१२ की दिल दहलाने वाली घटना[१] के बाद देशव्यापी आन्दोलन इस घटना के प्रति राष्ट्रीय स्तर पर-जागरूकता की अभिव्यक्ति निस्संदेह ही रहा हो लेकिन यह भी सत्य है कि न केवल दिल्ली, एनसीआर बल्कि पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र, बिहार और भारत के उत्तरी राज्यों में मिलाकर देश के दूसरे भागों में भी बलात्कार की घिनौनी व मानवता को शर्मसार करने वाली घटनाओं की जैसे बाढ़-सी आ गयी हो।

दिल्ली गैंग रेप की घटना के छः आरोपियों में से एक मुख्य आरोपी ने आत्महत्या की, एक अपराधी को नाबालिग होने के आधार पर तीन वर्ष की सजा और बाकी चार आरोपियों को फांसी की सजा सुनायी गई। देश ने कोर्ट के इस फैसले का स्वागत किया तथा भारी जनाक्रोश के बाद न केवल नाबालिग की उम्र को लेकर बहस छिड़ी बल्कि सरकार को महिलाओं की सुरक्षा का कानून भी बदलना पड़ा। भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३७६ के अनुसार बलात्कार एक दण्डनीय अपराध है। जिसमें अपराधी को आजीवन कारावास तथा Criminal Law (Amendment) Act २०१३ अप्रैल के अनुसार महिलाओं का यौन शोषण, उनका पीछा करना, उन पर फबतियां कसना (Voyeunism) तथा बलात्कार और सामूहिक बलात्कार को भी इसमें शामिल किया गया है।[२]

१. इस तरह का अपराध गैर जमानती होगा।

२. बलात्कार के दोषी को कम से कम २० वर्ष की सजा और इससे भी अधिक आजीवन कारावास की सजा होगी। इस तरह के अपराधियों को पुनः दोषी पाये जाने पर फांसी की सजा भी हो सकती है।

उपर्युक्त कठोर कानून के बावजूद भी ऐसा प्रतीत होता है कि इस तरह की मानसिकता वाले लोगों पर इस कानून का प्रभाव है ही नहीं।

वर्ष २०१२-१३ के आँकड़े बताते हैं कि प्रत्येक तीस मिनट पर एक बलात्कार किया जाता है। आयु के आधार पर सबसे अधिक बलात्कारी घटनाएं १६-१८ वर्ष के बीच लगभग ६४.१ प्रतिशत, दूसरे स्थान पर १०-१६ वर्ष के बीच लगभग २०.५ प्रतिशत, इसके बाद तीस से अधिक आयु समूह में १२.८ प्रतिशत और सबसे कम १० वर्ष से कम आयु समूह में लगभग २.६ प्रतिशत पायी गई है।[३]

परिवार, पड़ोस, सार्वजनिक स्थानों के अतिरिक्त गरीब एवं मध्यम वर्ग की महिलाओं के साथ-साथ जेल में कैदी महिलाओं, संदिग्ध महिलाओं के साथ पुलिस अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा महिला मरीजों के साथ, भिखारिन, गूंगी, बहरी, अंधी, पागल एवं छोटी बच्चियाँ बलात्कार की शिकार बनती हैं। महती आवश्यकता है बलात्कार के बढ़ते कारणों को जानने की क्योंकि पिछले कुछ दशकों में ही इस समस्या ने विकराल रूप

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वी०एम०एल०जी० कॉलिज, गाज़ियाबाद (उ.प्र.)

○ असोशिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, वी०एम०एल०जी० कॉलिज, गाज़ियाबाद (उ.प्र.)

लिया है। यदि भारतीय समाज का सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास देखा जाए तो पता चलता है कि वैदिक तथा उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के समान थी। घर में कन्या का जन्म उत्साह व खुशी प्रदान करने वाला बताया गया है। अधिकार की दृष्टि से भी वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल में स्त्री को पुरुष के समान आर्थिक, राजनीतिक तथा शैक्षिक अधिकार प्राप्त थे। यहां तक कि स्त्री को विवाह करने या न करने का निर्णय लेने का भी अधिकार प्राप्त था। यद्यपि मनुस्मृति के अनुसार "यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमते तत्र देवताः" का उल्लेख मिलता है तथापि धर्मशास्त्र काल में स्त्रियों के अधिकार कम किये जाने लगे थे। स्मृतिकारों ने निर्देश दिये कि स्त्री को किसी भी स्थिति में स्वतंत्र नहीं रहने देना चाहिए। यह वह समय था जब स्त्रियों पर पुरुषों का पूर्ण नियंत्रण, स्त्री अधिकारों में कमी, विधवा पुर्नविवाह का निषेध, सती प्रथा आदि से स्त्रियों की स्थिति निम्न होने लगी और सबसे निकृष्ट स्थिति तो स्त्रियों की मध्यकाल में हुई-बाल विवाह, कन्या हत्या, पर्दा प्रथा, अशिक्षा, चरित्रहीन, कामुक, नासमझ और उन्हें विश्वास के अयोग्य समझा जाने लगा।

आज के युग में जबकि यह मान लिया जाता है कि स्त्री को हर तरह से समाज में सम्मान व अधिकार प्राप्त हैं तब उसके साथ बलात्कार जैसा कुकृत्य किया जाता है। स्त्री चाहे वह छः माह की अबोध हो, छः वर्ष की छोटी मासूम बच्ची हो, दस वर्ष से लेकर २० वर्ष या ४५-५० वर्ष से भी अधिक आयु की क्यों न हो, समाज में सुरक्षित नहीं है। ऐसा नहीं कि सभी पुरुष प्रधान समाजों में स्त्रियां इतनी ही असुरक्षित हैं फिर क्या कारण हैं कि भारत जैसे परम्परागत मूल्यों की धरोहर प्रधान समाज में पुरुष मानसिकता इतनी विकृत हो गई है कि कहीं पिता तो कहीं चाचा, पड़ौसी, भाई, दोस्त जानकार या अनजान पुरुष जो १५ वर्ष, २० वर्ष, ३० वर्ष, ५० वर्ष या इससे भी अधिक आयु का हो सकता है बलात्कारी के रूप में चिन्हित होता है। इस समस्या के कारणों पर विचार किया जाए तो इसका मूल कारण है-भारतीय पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था। पिता, पति, भाई और पुत्र के रूप में पुरुष स्वयं को स्त्री से सर्वोपरि ही मानता है और इस मनोवृत्ति से वह स्वयं को अलग नहीं कर पा रहा है।

इस समस्या का दूसरा महत्वपूर्ण कारण है पारिवारिक दशाएं-आज के भौतिकवादी युग की भाग-दौड़ भरी जिन्दगी में परिवार अपने दायित्वों का निर्वाह नहीं कर पा रहा है। परिवारों के एकाकी होने से नियंत्रण की व्यवस्था शिथिल पड़ी है और नैतिक मूल्य व संस्कार आज जैसे विलुप्त होते जा रहे हैं। पति-पत्नी के बीच तनाव, असन्तोष का सीधा प्रभाव बच्चों पर प्रतिकूल रूप से पड़ रहा है। दादी-नानी की मूल्यपरक कहानियां आज बच्चों के लिए टी०वी० सिनेमा की बातें रह गई हैं। परिणामस्वरूप बच्चे सही गलत के बीच फर्क नहीं कर पाते और संवेदनहीनता के कारण बलात्कार जैसा कृत्य भी उन्हें कुछ असामान्य बात नहीं लगती। तीसरा कारण है-समाज में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार व कानून व्यवस्था का कमजोर पड़ना। अपराधी को कानून का भय नहीं है, न्याय व्यवस्था से जुड़ी विलम्ब प्रक्रिया अपराधियों को अपराध करने के लिए प्रेरित व उत्साहित करती है। यह सत्य है कि सभी अपराध रिपोर्ट नहीं होते और जो रिपोर्ट होते हैं उनमें न्याय प्रक्रिया इतनी धीमी व लम्बी होती है कि उससे न्याय प्रभावित होता है। गवाहों का मिटाना, रिपोर्ट के साथ छेड़छाड़, पीड़िता को मारना, धमकाना और भय दिखाना आदि से बलात्कार जैसे अपराधों में लम्बित न्याय का कोई अर्थ नहीं रह जाता, जो अपराधियों को दण्ड के भय से मुक्त रखता है। राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार व राजनीतिक अपराधीकरण तथा पुलिस तन्त्र में पाया जाने वाला भ्रष्टाचार, घूसखोरी बलात्कारियों को भय मुक्त करता है। बलात्कार के लिए चौथा महत्वपूर्ण कारण फिल्मों में दिखाई जाने वाली हिंसा व अपराध, शराब का सेवन युवाओं में उत्तेजना उत्पन्न करता है। प्रमुख अपराधशास्त्री सदरलैंड के अपराध से जुड़े शोध इस तथ्य का समर्थन करते हैं। सदर लैंड ने अपराधों के वर्गीकरण में बलात्कार को जघन्य अपराध की श्रेणी में रखा है।[४]

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बलात्कार की घटनाएं गांवों में कम और नगरों में बहुत अधिक घटित हो रही हैं तथा औद्योगिक नगरों में इनकी संख्या बहुत अधिक रिपोर्ट हुई हैं। इसका सीधा सम्बन्ध नगरीकरण व औद्योगीकरण की प्रक्रिया से है। औद्योगिक नगरों में दूरस्थ गांवों से, दूसरे राज्यों से श्रमिक रोजगार के लिए आते हैं चूंकि उनका परिवार उनके साथ नहीं होता है, रोजगार मिलने के बाद खाली समय या अवकाश के समय अपनी यौन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ये श्रमिक बलात्कार जैसे अपराध करते हैं। इनमें ड्राईवर, फैक्ट्री में काम करने वाला मजदूर, बढ़ई, चौकीदार, कूलर, गीजर, ए०सी० मिस्त्री आदि छोटी बच्चियों को, अपाहिजों को अपनी हवस का शिकार बनाते हैं।

बलात्कार के सम्बन्ध में अधिकांश लोगों की मानसिकता यह है कि स्त्रियों की पोशाक उनका पहनावा (छोटे व टाइट कपड़े)

पुरुष को बलात्कार के लिए प्रेरित करता है लेकिन जहाँ परिवार में ही अबोध बच्ची का पिता, चाचा या पड़ोसी ही ऐसी अमानवीय घटनाओं को जन्म देते हैं वहाँ स्त्रियों की पोशाक का बहाना कर पुरुष मानसिकता का पक्षधर होना तर्कहीन है। **बलात्कार** की कुछ ताजा घटी घटनाओं का वर्णन करना यहाँ प्रासंगिक होगा-दिल्ली देश की राजधानी के निकट उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में ६ वर्ष की बच्ची के साथ बलात्कार कर हत्या कर दी गई।[५] बुलन्दशहर में ही मार्च २०१३ में घटित बलात्कार की घटना १० वर्षीय दलित बच्ची के साथ बर्बरता और क्रूरता की पुनरावृत्ति है।[६] पुलिस स्टेशन पहुंचने पर न तो उनकी रिपोर्ट लिखी गई और अमानवीयता की हद यहाँ तक हुई कि पीड़िता तथा उसकी माँ को रात भर जेल में रखा गया और मीडिया, टी०वी० व समाचार पत्र के प्रयासों से जब घटना प्रकाश में आई तो राजधानी लखनऊ में पुलिस अधिकारी हरकत में आये तथा सर्वोच्च न्यायालय ने मामले में दखल दिया। इसके बावजूद भी बलात्कारी पीड़ित परिवार को मुंह न खोलने की धमकी देते रहे, पीड़ित परिवार को गांव छोड़ने को विवश करते हैं लेकिन ये अपराधी पुलिस की पकड़ से दूर हैं। इस स्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य में कानून/पुलिस व्यवस्था अत्यन्त ही लचर है, और उल्लेखनीय बात यह कि अब इस घटना के प्रति लोगों में उस तरह का विरोध भी नहीं है जैसा कि दिल्ली गैंग रेप की घटना के समय दिल्ली समेत पूरे देश में जाग उठा था। माह अगस्त २०१३ में मुम्बई में मीडियाकर्मी रिपोर्टर २३ वर्षीय युवती का पाँच युवकों द्वारा सामूहिक बलात्कार किये जाने की घटना ने पुनः बलात्कारियों के बुलन्द हौंसले का परिचय दिया।[७] माह जनवरी २०१४ में पश्चिम बंगाल में वीर भूमि जिले के एक आदिवासी गाँव की पंचायत द्वारा एक महिला के खिलाफ फरमान जारी किया गया चूँकि उसका सम्बन्ध एक गैर आदिवासी लड़के के साथ है, इसलिए उसके परिवार को २५,०००/- रुपये का दंड भरना होगा, गरीब परिवार के लिए यह रकम जुटाना सम्भव नहीं था, तो पंचायत ने सजा के तौर पर महिला के साथ सामूहिक बलात्कार करने की सजा सुनाई। १२ लोगों ने (जोकि उसके पिता, चाचा आदि के उम्र के थे) पूरे गाँव के सामने बलात्कार किया। उपरोक्त तथ्य अविश्वसीन प्रतीत होता है लेकिन यह हमारे समाज में पुरुष मानसिकता को स्पष्ट करता है।[८] वास्तविकता यह है कि आज बलात्कारियों को न तो कानून का भय है और न ही समाज द्वारा बहिष्कृत किये जाने का डर। दिल्ली गैंग रेप केस स्पष्ट करता है कि इंसानियत की सारी हदें पार कर जिस क्रूरता का परिचय उन छः बलात्कारियों ने दिया उसके बाद भी वकालत के पेशे से जुड़े लोग सिर्फ पैसा कमाने के लिए ही तो इन बलात्कारियों के केस अदालत में लड़ते हैं। ऐसे बलात्कारियों को बचाने अथवा निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास इन लोगों में अमानवीयता के पक्षधर और संवेदनहीनता को ही सिद्ध करते हैं। यदि सम्पूर्ण समाज (उनका अपना परिवार, पड़ोस, दोस्त, रिश्तेदार) ऐसे बलात्कारियों का बहिष्कार कर दें तो सही मायने में अपराधी को आत्मग्लानि होगी, अपराध-बोध होगा और पूरे समाज में मानसिक रूप से वह अपने आपको अकेला व अलग-थलग महसूस करेगा। यह अपराध-बोध उसे आत्महत्या करने के लिए बाध्य करेगा जो एक अपराधी के लिए आजीवन कारावास और फांसी से भी बड़ी सजा होगी। लेकिन सच्चाई इसके विपरीत है। बलात्कारियों के सम्बन्ध प्रभुत्ता एवं शक्ति सम्पन्न व्यक्ति अथवा बड़े नेता, मन्त्री आदि से होते हैं जिसके प्रभाव में आकर ये लोग ऐसे कृत्य करते हैं। उ० प्र० की राजनीति में ऐसी घटनाओं के ताजे उदाहरण देखे जा सकते हैं। कानून चाहे जितना भी कठोर क्यों न बन जाएं ऐसे अपराध तब तक नहीं रोके जा सकेंगे जब तक कानून व्यवस्था को न सुधारा जाए। कानून व्यवस्था को सुधारने वाले लोग, कानून बनाने की जिम्मेदारी लिए हुए लोग स्वयं जो संसद तथा विधान सभाओं में बैठे हैं अपराधी पृष्ठभूमि व अपराधी प्रवृत्ति के हैं। ऐसी स्थिति में कानून व्यवस्था को सुधारने की, अपराध रोकने की, बलात्कारियों को सजा दिलाने की और समाज को अपराध मुक्त करने की कल्पना निरर्थक ही होगी। यहाँ उ० प्र० के एक महत्वपूर्ण राजनैतिक दल के मुखिया का हाल ही में कहा गया कथन आश्चर्यचकित कर देने वाला है, जिस समय पूरा देश इस बात की खुशी मना रहा था कि मुम्बई के सामूहिक बलात्कारियों को तीन-चार माह में ही सजा सुना दी गई है ठीक उसी मौके पर उक्त राजनेता ने अपनी एक आम सभा में इसकी आलोचना करते हुए कहा कि लड़कों से कुछ गलतियाँ हो ही जाती हैं इसकी इतनी बड़ी सजा नहीं दी जानी चाहिये। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी कहा कि अगर उन्हें मौका मिला तो वह बलात्कार के कानून की सख्त धाराओं को संशोधित करेंगे।[९] टी०वी० समाचारों तथा समाचार पत्रों के आंकड़े बताते हैं कि कोई दिन ऐसा नहीं जाता जिस दिन देश में बलात्कार, सामूहिक बलात्कार की घटना घटित न होती हो।

अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संगठन एमनेस्ट्री इन्टरनेशनल (लन्दन) महिलाओं के खिलाफ हो रहे अपराधों पर लगाम

लगाने के लिए मृत्यु दण्ड से सहमत नहीं हैं। संगठन का सुझाव है कि मृत्यु दण्ड के स्थान पर अपराधियों में सुधार लाना अधिक कारगर है।[१०] ये अपराधी बलात्कार के अपराधी भर नहीं हैं, एक लड़की के साथ जबरदस्ती करना, उसका बलात्कार करना बीमार अपराधी का चेहरा होता है लेकिन एक लड़की को योजनापूर्वक जाल में फँसा कर उसे निरूपाय कर उसकी शारीरिक मर्यादा को विछिन्न करते हुए उससे दुर्व्यवहार करना और उसकी हत्या कर डालने की नृशंसता दिखाना बीमार अपराधी का चेहरा नहीं हत्यारे का चेहरा है। एक स्त्री के साथ बलात्कार कर उसकी हत्या कर फेंक देना, यह स्त्री की हत्या नहीं मानवता की हत्या है। यह कैसे मान लिया जाए कि एक लड़की के साथ इतना अमानवीय कृत्य करने वाले एक नहीं, दो नहीं बल्कि छः बीमार मानसिकता के लोग एक साथ मिल गये, यह तो असम्भव संयोग ही हो सकता है। आज इस घिनौने एवं अमानवीय कृत्य ने न केवल स्त्रियों को ही अपितु पिता, भाई एवं पति के रूप में पुरुष को भी झकझोर कर रख दिया है और जिसने बेटी, बहन तथा पत्नी की सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

गाँधी जी का कथन है-''मानवता पर हमेशा भरोसा रखना चाहिए, क्योंकि यह ऐसा सागर है जिसमें कुछ बूँदें भले ही दूषित हो जाएं, समुद्र दूषित नहीं होता।''[११] समय के साथ सामाजिक मूल्य खत्म होते जा रहे हैं यह बीमार समाज की पहचान है। यह विकृति इतनी तेजी से क्यों पनप रही है?आज लोगों में मूल्यों व मान्यताओं के प्रति न तो निष्ठा बची है और न ही भय रह गया है। आवश्यकता है सामाजिक संगठन, सामाजिक चेतना विकसित करने और आम लोगों को दिशा दिखाने के लिए आगे आने की। जब तक सरकार जिम्मेदार और पुलिस संवेदनशील नहीं होगी, मीडिया समस्या की तह तक नहीं जाएगा और समाज लोगों की चेतना विकसित करने की जिम्मेदारी नहीं लेगा, तब तक फाँसी जैसा कानून भी बलात्कार की बढ़ती घटनाओं पर शायद ही अंकुश लगा पाये।[१२]

प्रश्न यह है कि समाज बदलेगा कैसे? इस प्रश्न का सीधा-सा उत्तर यह है कि समाज तब बदलेगा जब पुरुष की मानसिकता बदलेगी। स्त्री के प्रति पुरुष में सम्मान की भावना होगी। इसके अतिरिक्त कानून में होने वाले बदलाव से, स्त्रियों के प्रति हिंसा, दुर्व्यवहार के लिए मिलने वाली सजा जब व्यावहारिक रूप से लागू होगी अर्थात् स्त्रियों को न्याय मिलेगा। अपराधी कड़ी सजा पायेगें। मृत्यु दण्ड अपराधी को मिलेगा तो निश्चित ही इस अपराध के लिए अपराधियों में यह धारणा विकसित होगी कि कानून से बचना उनके लिए असम्भव है, तो अवश्य ही अपराधों में कमी आयेगी। कोर्ट द्वारा दिल्ली गैंग रेप के चार आरोपियों को फांसी की सजा सुनाने पर देश ने कोर्ट के फैसले का दिल से स्वागत किया। माह अगस्त २०१३ में मुम्बई में मीडियाकर्मी रिपोर्टर २३ वर्षीय युवती का पाँच युवकों द्वारा सामूहिक बलात्कार केस में अप्रैल २०१४ में मुम्बई सैशन कोर्ट ने अपने निर्णय में तीन दोषियों को सजा-ए-मौत दी है। देश में ये पहला केस है जिसमें पीड़िता के जिंदा रहते हुए फांसी की सजा दी गई है तथा एक आरोपी को उम्र कैद की सजा सुनाई गई है।[१३] माह अप्रैल २०१४ में ही सूर्यनेल्ली गैंग रेप में लगभग १८ वर्ष बाद केरल हाईकोर्ट ने मुख्य आरोपी धर्मराजन को उम्रकैद की सजा सुनाई है जबकि अन्य २३ की सजा को बरकरार रखा गया है। यह केस जनवरी १९९६ में केरल के इडुकी जिले के सूर्यनेल्ली से जुड़ा है इसमें १६ वर्ष की किशोरी को अगवा कर ४० दिन तक केरल और तमिलनाडु के अलग-अलग हिस्सों में ले जाकर ४२ लोगों ने किशोरी को अपनी हवस का शिकार बनाया। १८ वर्ष बाद कोर्ट के फैसले में आरोपी को सजा देना प्रशंसनीय होने के साथ-साथ महिलाओं के प्रति हुई हिंसा के प्रति संवेदनशीलता को भी व्यक्त करता है।[१४] दण्ड का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि दण्ड की मात्रा इतनी हो कि दण्ड से मिलने वाला दुख/तकलीफ अपराध से मिलने वाले सुख से अधिक हो।

नारी सशक्तिकरण की बात समाज व राज्य के विकास के लिए जोर-शोर से कही जाती है लेकिन समाज में असुरक्षित नारी किस प्रकार सशक्त हो सकती है?जहाँ उसके अस्तित्व व प्रस्थिति पर ही प्रश्न लगा हो वहाँ परिवार समाज या राष्ट्र के समग्र व सन्तुलित विकास में महिला की भागीदारी व सक्रियता सम्भव ही नहीं है। महिलाओं की सुरक्षा को लेकर सरकार या समाज कुछ भी दावे क्यों न करे, नौकरी व राजनीति में स्त्रियों की भागीदारी के आँकड़े भले ही विकसित भारतीय समाज की सकारात्मक तस्वीर क्यों न प्रस्तुत करती हो किन्तु यथार्थ इसके विपरीत है। स्त्री चाहे ग्रामीण हो या शहरी, साक्षर हो या निरक्षर, बाल्यावस्था में हो या युवावस्था में उसकी दशा हेय है। वह महाभारत की द्रौपदी हो या आज की आधुनिका निर्भया, है तो वह असुरक्षित ही। उसे संरक्षण की सदैव आवश्यकता बनी रहती है।

स्त्री जो सम्पूर्ण सृष्टि की सृजनकर्ता है, उसी के साथ पुरुष

यौन शोषण व बलात्कार कर उसकी आत्मा का हनन कर रहा है। पुरुष को विचार करना होगा कि एक स्त्री के साथ बलात्कार केवल उसकी शारीरिक या सामाजिक हानि ही नहीं है अपितु उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व व आत्मा और अस्तित्व पर एक अमिट व असहनीय मानसिक-आत्मिक पीड़ा देकर उसे झकझोर कर रख दिया जाता है। दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई बलात्कार की घटनाओं ने नारी को एक जीवित विसंगति बना दिया है। बलात्कार से पीड़िता एक जीवित विडम्बना है, एक व्यथा है। स्त्री जिस पुरुष को माँ, बहन या पत्नी प्रत्येक रूप में प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, ममता व समर्पण का सुख देती है वही पुरुष अपनी मानवीयता खोकर शोषित व पीड़ित कर उसे अपमानित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य जितना सभ्य हुआ है, मानवता से उतना ही दूर होता जा रहा है। इस दिशा में सरकार, कानून, महिला आयोग अथवा न्याय व्यवस्था क्या कर रही है यह तो महत्वपूर्ण है ही साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि हम सब एक ऐसे समाज का निर्माण व विकास करें जिसमें आने वाली पीढ़ियाँ मानवीय व चारित्रक मूल्यों से पूर्ण हों। आज पुरुष को अपनी मानसिकता बदलने की आवश्यकता है-पुरुष को यह स्वीकारना होगा कि स्त्री को सम्मान व समानता का दर्जा देकर ही एक स्वस्थ सन्तुलित समाज का निर्माण किया जा सकता है अन्यथा भारतीय समाज एक बीमार समाज की श्रेणी से कभी ऊपर नहीं उठ पायेगा। बालकों में संस्कार व मानवीय नैतिक मूल्य विकसित कर ही आने वाले समय में स्त्रियों को सम्मान व रक्षण दिया जा सकता है। सशर्त कि यह प्रयास आज से ही मिलकर सतत् रूप से किया जाए।

संदर्भ

१. नव भारत टाइम्स, देहली, १७ दिसम्बर, २०१२
२. A Criminal Law (Amendment) Act, 2013
३. Crime in India, 1988, New Delhi
४. Sutherland, 'Principles of Criminolgoy' Journal Hali, A Division of Rowman Publications, England, 1992, p. 167
५. नव भारत टाइम्स देहली, ८ अप्रैल, २०१३
६. दैनिक जागरण, नई दिल्ली, २० अप्रैल, २०१३
७. दैनिक जागरण, नई दिल्ली, २३ अगस्त, २०१३
८. सम्पादकीय, 'महिलाओं के खिलाफ हिंसा क्यों नहीं है मुद्दा', अमर उजाला, १८ अप्रैल, २०१४, नई दिल्ली।
९. सम्पादकीय, 'महिलाओं के खिलाफ हिंसा क्यों नहीं है मुद्दा', अमर उजाला, १८ अप्रैल, २०१४, नई दिल्ली।
१०. टी०वी० न्यूज चैनल, आज तक, नई दिल्ली, २२ दिसम्बर, २०१२
११. सम्पादकीय, अमर उजाला, २२ अप्रैल, २०१३, नई दिल्ली
१२. अहमद इम्तियाज, 'बीमार समाज के अपराधी' अमर उजाला, २२ अप्रैल, २०१३
१३. सम्पादकीय, 'तीन को सजा-ए-मौत एक को उम्रकैद', अमर उजाला, ५ अप्रैल, २०१४, नई दिल्ली।
१४. सम्पादकीय, 'आखिर मिला इंसाफ', नवभारत टाइम्स, ५ अप्रैल, २०१४, नई दिल्ली।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 1, जनवरी–जून 2014
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

भारतीय शासन व्यवस्था में सूचना–अधिकार की स्थिति एवं भावी अपेक्षायें

❑ डॉ० रेखा बहुगुणा

लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में सही अर्थों में सत्ता लोक अथवा जनता के हाथों में होती है। इस सम्बन्ध में लार्ड ब्राइस ने कहा है कि 'जनतंत्र एक ऐसी सरकार है जिसमें शासन करने की शक्ति किसी वर्ग अथवा व्यक्ति के हाथों में न रहकर समस्त जनता के हाथों में सामूहिक रूप से होती है।[१] इस शासन व्यवस्था में जनहित सर्वोपरी है। जनहित की सुरक्षा के लिए संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गयी है। जन साधारण के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करना ही लोकतंत्रीय शासन का मुख्य दायित्व हैं इसे सुशासन की संज्ञा दी गयी हैं। सुशासन का अर्थ सार्वजनिक कार्यों में पारदर्शिता, जवाबदेही, जन सहभागिता, जन आकांक्षाओं के प्रति संवेदनशीलता और समदृष्टि का होना है।

भारतीय संविधान देश में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय विचार व अभिव्यक्ति की स्वतत्रंता और सभी नागरिकों को प्रतिष्ठा अवसर की समानता व आजीविका की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। यह तभी संभव है जब देश में संवैधानिक व्यवस्था सुचारु रूप से कार्यरत हो। जनतंत्र जनता की सरकार है।[२] जनता सरकार चुनती है और उसे सरकारी कार्यकलापों से सम्बन्धित सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार है जो उनके जीवन से किसी भी प्रकार प्रभावित हैं। वैसे भी सरकार के सभी कार्यों का सम्पादन कर के रूप में जनता द्वारा दिये गये धन से ही होता है। अतः करदाताओं से प्राप्त धन के उपयोग को लेकर सरकार की जनता के प्रति जवाबदेही बनती है और आम आदमी का उसके द्वारा दिये गये करों के सही उपयोग की सूचना प्राप्त करने का अधिकार बनता है।

सरकार के कामकाज के तौर-तरीके गोपनीयता के पर्दे से ढँके होने के कारण जन साधारण को यह मालूम नहीं होता कि उनके द्वारा चुनी हुई सरकार जनता से किये गये वायदों पर अमल कर रही है या नहीं। सरकारी कर्मचारियों द्वारा राजस्व के हिस्से को न हड़पना असम्भव है, जिस प्रकार यह पता लगाना कठिन है कि मछली पानी पी रही है या नहीं उसी प्रकार सरकारी कर्मचारियों से भ्रष्टाचार का पता लगाना कठिन है। ऐसा इसलिए कि कानून में कोई भी व्यक्ति तब तक बेगुनाह माना जाता है जब तक उसका अपराध प्रमाणित न हो जाये। कानून कहता है कि मछली ने तब तक पानी नहीं पिया जब तक कि प्रमाणित न हो जाये कि मछली ने पानी पिया है।[३] सरकार की जनता के प्रति इस जवाबदेही को सुनिश्चत करने के लिए ही सूचना का अधिकार अधिनियम या कानून बनाया गया है।

> देश के नागरिकों को जनसूचना की उपलब्धता सुनिश्चित करने, जन प्रशासन में पारदर्शिता करने तथा उसको उत्तरदायित्वपूर्ण बनाने के उद्देश्य से सूचना का अधिकार अधिनियम २००५ प्रख्यापित कर लागू किया गया। इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य सरकार की जनता के प्रति जवाबदेही को सुनिश्चित करना है। आज लगभग एक दशक बीत जाने पर यह जानना आवश्यक हो जाता है कि सूचना का अधिकार अधिनियम अपने उद्देश्यों की संपूर्ति में कहाँ तक सफल हो रहा है, वर्तमान में अधिनियम की स्थिति एवं समस्याएं क्या हैः- प्रस्तुत आलेख यही जानने की दिशा में एक प्रयास कहा जा सकता है।

सूचना का अधिकार विधेयक १० मई २००५ को संसद के पटल पर पेश किया गया है और १२ मई को लोकसभा तथा १३ मई को राज्यसभा ने विधेयक पारित कर दिया। तत्पश्चात १५ मई २००५ को महामहिम राष्ट्रपति जी की स्वीकृति मिलने पर सूचना का अधिकार अधिनियम २००५ अस्तित्व में आया। इसमें लोक सूचना अधिकारी व सहायक लोक सूचना अधिकारी सूचना देने में ३० दिन से अधिक विलम्ब व अन्य अनियमितता तथा अपूर्ण व भ्रामक सूचना की दशा में अधिनियम की धारा २० के अन्तर्गत सूचना आयोग २५०/- रु० प्रतिदिन के विलम्ब की दर से अधिकतम २५०००/-रु० आर्थिक दण्ड सहित अन्य सभी दण्डात्मक प्राविधान उन पर लागू कर सकते हैं। सूचना के अधिकार की प्रमाणिकता के लिए अनुरोध करते समय १० रु० आवेदन शुल्क, अभिलेख की छायाप्रति के लिए २ रु० प्रति पृष्ठ लोक सूचना अधिकारी कार्यालय में निरीक्षण हेतु एक घण्टे के पश्चात ५ रु० प्रति १५ मिनट डिस्केट/फ्लॉपी पर सूचना मांगने पर ५० रु० प्रति फ्लापी डिस्केट शुल्क किसी मुद्रित प्रकाशन हेतु उसका निर्धारित मूल्य, सैम्पल/मॉडल प्राप्ती हेतु उसकी वास्तविक लागत अतिरिक्त शुल्क देय है। आवेदन

❑ असिस्टेन्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र, बालगंगा महाविद्यालय सेन्दुल केमर, टिहरी गढ़वाल, (उत्तराखण्ड)

या अतिरिक्त शुल्क का भुगतान चैक, बैंक ड्राफ्ट पोस्टल आर्डर, नान ज्यूडिशियल स्टाम्प पेपर ट्रेजरी चालान या नगद किया जा सकता है। भुगतान सम्बन्धित लोकसूचना अधिकारी के नाम होना चाहिए। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों के लिए निशुल्क सूचना प्राप्ति का प्राविधान है। इसमें ग्राम पंचायत या नगर पंचायत पालिकाओं में विद्यमान परिवारों की गरीबी रेखा की सूची की क्रमसंख्या के साथ पंचायत के प्रधान या ग्राम विकास अधिकारी या क्षेत्र विकास अधिकारी या नगर पलिका के प्रशासनिक अधिकारी का प्रमाण पत्र संलग्न करना चाहिए जिन व्यक्तियों ने गरीबी रेखा से नीचे आय के राशन कार्ड की छायाप्रति संलग्न की उन्हें किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं हैं। अनुरोध पत्र पंजीकृत डाक से भेजना चाहिए यदि ई-मेल से भेंजे तो शुल्क का प्रमाण (ट्रेजरी चालान, पोस्टल आर्डर, बैंक ड्राफ्ट जिस रूप में हो पंजीकृत डाक से अलग से) उसकी संख्या, तिथि व अन्य विवरण भी ई-मेल द्वारा सूचित किया जा सकता है। अनुरोध पत्र स्वयं जमा किया जा सकता है। अनुरोध पत्र स्वयं जमा किया गया हो तो ट्रेजरी फार्म ३८५ पर प्रमाणिकता हेतु अवश्य प्राप्त करनी होती है। यदि लोक सूचना अधिकारी बेवजह से सूचना का अनुरोध पत्र लेने से मना करता है तो उसकी शिकायत प्रमाण के साथ सूचना आयोग को करनी चाहिए। सूचना आयोग की धारा १८ (१) (६) के अन्तर्गत इसकी जांच कर दोषी अधिकारी के विरुद्ध उचित दण्डात्मक कार्यवाही कर सकता है।[४]

आजाद भारत में औपनिवेशिक कानून और उससे उपजी मानसिकता का असर विद्यमान है। शासकीय गोपनीयता कानून १९२३ की तमाम खूबियों पर असर रखे हुए हैं। हालांकि इसको सीमित करने के लिए बढ़ते जन दबाव में केन्द्र सरकार को सूचना अधिकार कानून लाना पड़ा। मात्र ६ अध्याय ३१ अनुच्छेदों और दो अनुसूचियों वाले इस छोटे व सरल कानून के साथ पिछले सालों में हुए अनुभव ने साबित कर दिया कि राजनीतिक मंसा न तो इस कानून को सक्षम बनाना चाहती है और न ही नौकरशाही ने देश की लोकतांत्रिक भावनाओं का सम्मान करने का चरित्र ही विकसित किया है। अलग से लोकसूचना अधिकारी नियुक्त करने की जगह विभागों के शीर्षस्थ नौकरशाही पर गोपनीयता का प्रशिक्षण इतना मजबूत है कि ग्राम पंचायत अधिकारी से लेकर प्रमुख सचिव के कार्यालय तक सूचनाओं के जबाव देने में लोक सूचनाओं को आधा अधूरा देना, तय समय में सूचना न देना, सूचना देते समय जानकारी को शब्दों के जाल में उलझा देने या कार्यालय से संबद्ध नहीं है, कहते हुए सूचना को वापस कर देने जैसे उदाहरणों की संख्या बेहिसाब है। नवम्बर २००७ में बहराइच के जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी कार्यालय से जून २००६ के बाद रिटायर्ड हुए अध्यापकों की पेंशन की जानकारी के लिए आर०टी०आई० का प्रयोग किया गया। सबसे पहले जन सूचना अधिकारी ने तय समय सीमा ३० दिन में कोई जबाव नहीं दिया। पहली अपील के बाद लगभग ६० दिन से ज्यादा समय बीत जाने पर आधी-अधूरी जानकारी दी गयी। मामला आयोग तक पहुंचा तो जन सूचना अधिकारी ने तो सूचना का बंटाधार किया ही, यू०पी० राज्य सूचना आयोग भी इसमें पीछे नहीं रहा। आयोग ने १२ मार्च २००८ को दूसरी अपील करने के बाद करीब आठ महीने ज्यादा समय बाद सुनवाई की तिथि तय की गई जिसकी जानकारी साधारण डाक से सुनवाई की तारीख बीतने के बाद मिली थी।[५] दूसरा उदाहरण हरिद्वार नगर पालिका परिषद सूचना के अधिकार कानूनों का खुलकर मजाक उड़ा रही है। अधिकारी पहले तो सूचना प्रार्थना पत्र लेने में ही आना-कानी करते हैं। प्रार्थना पत्र लेने के बाद भी वे भ्रामक व अधूरी सूचनाएं ही उपलब्ध करा रहे हैं। यही नहीं नगरपालिका के मुख्य द्वार के बाहर लगे सूचना पट भी लोगों को गलत जानकारी दे रहे हैं। सूचना अधिकारी पालिका ने अनिवार्य १७ सूत्रीय बिन्दुओं पर सूचना पट नहीं लगाए होटलों व कर निर्धारण के बारे में जानकारी मांगने पर डेढ़ माह बाद भी अधूरी जानकारी दी गयी।[६]

हमारे देश की शासन व्यवस्था में गोपनीयता की संस्कृति को बढ़ावा दिया गया है। यह व्यवस्था अपनी जवाबदेही को लेकर भी गंभीर नही है। काफी हद तक यह व्यवस्था उपनिवेशवाद की उत्पत्ति है जहां सरकार अपने नागरिकों को साम्राज्य का हिस्सा नहीं मानती है। यही कारण है कि वर्तमान कानून अभी तक इस व्यवस्था उखाड़ नही सका है। लेकिन इस कानून से आशा अवश्य बंधी है कि आगे आने वाले समय में यह अत्यधिक सक्रिय भूमिका निभा सकता है। देशभर में इस कानून को लेकर सकारात्मक पहल देखने को मिल रही है।

कुल मिलाकर बात जनता के सूचित होने और व्यवस्था के स्तर पर सरलता की है। लेकिन एक जानकारी के लिए सूचना आवेदन जवाब का इन्तजार, अमल न होने पर शिकायत पर सुनवाई का इन्तजार और फिर आयोग का आदेश संतुष्ट न होने की हालात में हाईकोर्ट में याचिका डालने जेसी मैराथन प्रक्रिया पैदा कर दी गयी है। यदि किसी आवेदनकर्ता को दो-दो

सालों तक इन्तजार करना पड़ता है, तो इसे सिर्फ मजाक ही कहना सही होगा। हालांकि इस अधिकार से जन जागरूकता हेतु कई सेमिनारों को आयोजित कर कहा जाता है कि आर०टी०आई० का तीर जब कमान से निकलता है तो समुद्र की गहराई हो या पर्वत की ऊंचाई वह अपने लक्ष्य तक तक जरूर पहुंचता है।[७] अभी भी आवश्यकता है शहरी एवं दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्र की जनता तक सूचना का अधिकार अधिनियम की जानकारी पहुंचाकर इसके सकरात्मक उपयोग से भ्रष्टाचार को समूल नष्ट करना है।[८]

निष्कर्ष : जनता के लम्बे संघर्ष से बने सूचना के अधिकार कानून (आर०टी०आई०) को लागू करने के लिए कई लोगों ने अपनी जान तक दे दी। इस दृष्टि से यह जनता के पसीने से बना हुआ कानून है जिसकी रक्षा व सफल क्रियान्वयन के लिए खून जनता का ही बह रहा है। लोकतांत्रिक एवं शान्तिपूर्वक तरीके से पारदर्शिता स्थापित करने के प्रयासों के लिए सूचना के अधिकार की रोशनी में की जा रही जनता (जिसे सामाजिक अंकेक्षण कहा जाता है) आज सबसे ज्यादा चर्चित और संभावनाओं से युक्त शब्द बन चुका है।

समीक्षा करें तो तमाम बाधाओं के बाद भी सूचना के अधिकार को एक सफल कानून कहा जा सकता है क्योंकि जिस तेजी से यह लोकप्रिय हुआ है वह अभूतपूर्व हैं। इसमें अभी दो स्पष्ट चुनौतियां है पहली सूचना आयोग की कुर्सी को राजनीतिक कृपा के साये से मुक्त करना। दूसरी सत्ता में बैठे लोगों का इस कानून के प्रति वैमनस्य भाव। इस कानून के प्रावधानों में फेरबदल कर गोपनीयता बनाए रखने के कड़े प्रावधान भी लाये जा रहे हैं। बावजूद इन सबके इस कानून से काफी उम्मीदें हैं, एक तो लोग इस कानून को गम्भीरता से ले रहे हैं। दूसरी बात यह कि कमोबेस सभी राजनीतिक दलों में इसे मजबूत करने की इच्छा है। इससे यह कानून आने वाले दिनों कही ज्यादा प्रभावी होगा। देश की सभी संस्थाओं को जवाबदेह बनाया जा सकता है, जिम्मेदारियों का एहसास कराया जा सकता है। इन कानून से सरकार और आम लोगों के सम्पर्क को मजबूत किया जा सकता है। देश को व्यवस्थागत भ्रष्टाचार से मुक्त किया जा सकता है।

संदर्भ

१. चतुर्वेदी शिल्पा, 'उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक', आर० एल० बुक डिपो, मेरठ, २०११, पृ० ४२७.

२. वही, पृ० ४२७

३. मैथानी, वी०पी०, 'सुशासन के लिए सूचना का अधिकार', हिमशैल प्रिन्टर्स, देहरादून, २००६, पृ० ४.

४. वही, पृ० २७

५. सिंह, ऋषि कुमार, 'गोपनीयता के दल दल में सूचना का अधिकार', हस्तक्षेप राष्ट्रीय सहारा, देहरादून, २३ अक्टूबर, २०१०, पृ० ३.

६. हिन्दुस्तान (दैनिक), अधूरी सूचनाएं दे रही पालिका, देहरादून, ७ अक्टूबर, २०१०

७. दैनिक जागरण, दूसरी आजादी जैसा है सूचना का अधिकार, देहरादून, १८ नवम्बर, २०१०, पृ०३.

८. अमर उजाला, आर०टी०आई० से खत्म होगा भ्रष्टाचार, देहरादून, १८ नवम्बर, २०१०, पृ०५

९. भलीन, अनीश, 'सूचना के अधिकार एवं भ्रष्टाचार निवाण से संबंधित महत्वपूर्ण शब्दावली' (अंतर्राष्ट्रीय विधि लेख) प्रतियोगिता दर्पण हिन्दी मासिक जनवरी २०१३, पृ. ८७७

मौलाना अबुल कलाम आजाद का पत्रकारिता में योगदान

❑ डॉ० तारा कुमारी

भारत में सर्वधर्म समभाव की संस्कृति को जन्म देने के लिए मौलाना अबुल कलाम आजाद को सदैव याद किया जायेगा। वह एक महान स्वतंत्रता सेनानी, कवि, लेखक, पत्रकार, क्रान्तिकारी, शिक्षा विशेषज्ञ, समाज सुधारक एवं हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रवल समर्थक थे। वह उर्दू, हिन्दी, फारसी, अरबी तथा अंग्रेजी भाषा में महारत प्राप्त थी। इनकी लेखनी में एक जादू था जिसका प्रयोग उन्होंने आजादी के आन्दोलन के लिए किया। उनके द्वारा प्रकाशित अखबार 'अल-हलाला' का मुख्य उद्देश्य मुस्लिम युवकों को क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रति प्रोत्साहित करना तथा अंग्रेजों के विरूद्ध देशवासियों में राष्ट्रीय भावना को जागृत करना था। प्रस्तुत आलेख में पत्रकारिता में मौलाना आजाद के योगदान को उजागर किया गया है।

मौलाना अबुल कलाम आजाद या अबुल कलाम मोहिउद्दीन (११ नवम्बर १८८८ - २२ फरवरी, १९५८) एक प्रसिद्ध भारतीय मुस्लिम विद्वान थे। वे १४ वर्ष की आयु में कवि, लेखक, पत्रकार और शिक्षक थे।[1] भारत की आजादी के बाद वे एक महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञ रहे। वे महात्मा गांधी के सिद्धान्तों का समर्थन करते थे।

उन्होंने १६ वर्ष की आयु में ही ईरान, इराक, मिस्र तथा सीरिया इत्यादि मुस्लिम देशों की यात्राएं कीं। मिस्र की राजधानी कैरो मे रहकर सैय्यद जमालउद्दीन, अफगान (१८३८-१८९८) तथा शेख मोहम्मद अबदुहू के साथ रहकर उनके कार्यो से बहुत प्रभावित हुए।[2]

आजाद ने क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेना आरंभ किया और उन्हें श्री अरविन्दो और श्यामसुन्दर चक्रवर्ती जैसे क्रांतिकारियों से समर्थन मिला। आजाद की शिक्षा उन्हें एक दफ्तर (किरानी) बना सकती थी पर राजनीति के प्रति उनके झुकाव ने उन्हें पत्रकार बना दिया।

अंग्रेजी भाषा की एक लोकप्रिय कहावत है कि कलम तलवार से अधिक शक्तिशाली है। मानव इतिहास में इस बात की पुष्टि उन अनगिनत चिंतकों से हुई जो अपने लेखन से अपने समय की जनता के जीवन और चिन्तन में चमत्कारी परिवर्तन लाये। इसकी कई मिसालें हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन में देखने में आईं जिनमें पत्रकारिता ने खास भूमिका का प्रदर्शन किया।

उन्होंने नैरंगे-आलम का १९०१ ई. में प्रकाशन शुरू किया जिसमें उस समय के कवियों की रचनाएं शामिल होती थी। १९०१ ई. में पहली किताब आईन-ए-हक का प्रकाशन शुरू किया। १७ मई में उनका लेख प्रसिद्ध जर्नल मकजन (लाहौर) से छपा था। साथ ही साथ असानुर अखबार कलकत्ता और मराक-ए-आलम हरदोय से प्रकाशित हुआ था।[3] उन्होंने सितम्बर १९०३ ई. में अपना अखबार 'लिसानुस-सिदक' निकाला जो बहुत ही लोकप्रिय हुआ जो मुसलमानों में सुधार से संबंधित था। इन सभी लेखन कार्यों की सराहना बड़े-बड़े मूर्धन्य विद्वानों जैसे मुहम्मबद इकबाल, मौलवी नाजिर अहमद, मौलाना हाली तथा खान बहादुर अब्दुल कादिर ने भी की। १९०४ में मौलाना ने 'अलमिस्बाह' नामक एक साप्ताहिक शुरू किया और साथ ही 'मखजन' और 'अहसनुल-अखबार' में उनके निबन्ध छपने लगे।

१ जून, १९१२ में उन्होंने 'अल हिलाल' नामक साप्ताहिक उर्दू अखबार का प्रकाश प्रारम्भ किया। इस अखबार में उन्होंने अपने प्रगतिशील विचार, कुशल तर्क और इस्लामी जनश्रुतियाँ और इतिहास के प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रकाशित किया। उन्होंने 'अल-हिलाल' इसलिए जारी किया ताकि उसके माध्यम से मुसलमानों में क्रान्ति की विचारधारा प्रचलित हो। इसमें उन्होंने जातिवादी व्यवस्था के विरूद्ध आवाज बुलन्द की। मौलाना की पत्रकारिता इतनी लोकप्रिय थी कि तीन महीनों के अन्दर ही 'अल हिलाल' के सभी पिछले एडीशनों को दोबारा छापना पड़ा क्योंकि इस समाचार पत्र का हर नया खरीददार, हर एडीशन को रखने का इच्छुक था। यह अख़बार भारत और विदेशों में इतना प्रसिद्ध हो गया कि आज यह बात एक चमत्कार ही लगती है। कुछ ही दिनों में अल-हिलाल की २६,००० प्रतियां बिकने लगीं। लोग एकत्र होकर उस अखबार के हर शब्द को ऐसे पढ़ते या सुनते जैसे वह स्कूल में पढ़ाया जाना वाला कोई पाठ हो।[4] कुछ ही दिनों में उस अखबार ने न सिर्फ मुसलमानों में बल्कि उस समय के उर्दू पढ़ने वाले बहुत से लोगों में जागृति की एक लहर उत्पन्न कर दी।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने डिस्कवरी ऑफ इण्डिया में लिखा है कि अबुल कलाम आजाद द्वारा शुरू की गई अलहिलाल साप्ताहिक पत्रिका से लेखक की मात्र २४ वर्ष के आयु में इतनी तेजस्वी फारसी और अरबी में विद्वता दर्शायी कि रूढ़िवादी व्यक्तियों ने तर्क पर आधारित इस्लाम और इतिहास के बारे में प्यार और आध्यात्म को तार्किक ढंग से नई दिशा दी है। अबुल

❑ समाजशास्त्र विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

कलाम आज़ाद ने अपनी साप्ताहिक पत्रिका अलहिलाल के माध्यम से मुसलमानों में एक नई भाषा, नई सोच, नई पहुंच, अन्य विचारों से अलग नई विचारधारा लाने का प्रयास किया जो फारसी आधार पर कठिन थे क्योंकि पुराने कट्टरपंथी मुस्लिमों नेताओं ने इनका साथ नहीं दिया। सबको आलोचना करते हुए अपनी नई विचार और नई पहुंच नयी चिन्तन से समाज को अवगत कराया।[५]

उन्होंने दूसरी साप्ताहिक पत्रिका अलहिलाल के बंद होने के बाद १२ नवम्बर १६१५ ई. 'अल बलघ' नामक साप्ताहिक पत्रिका प्रारम्भ की। अंग्रेज सरकार पिछले अनुभवों की रोशनी से सूझ गयी कि मालौना पर प्रेस एक्ट के प्रावधानों का कोई प्रभाव पड़ने वाला नही है। इसलिए उसने डिफेन्स ऑफ इण्डिया एक्ट (१) के तहत २२ मार्च १६१६ में मौलाना को कलकत्ते से बाहर जाने को कहा। पंजाब, यूपी दिल्ली और मुम्बई की सरकारों ने इसी कानून के तहत मौलाना के प्रवेश पर रोक लगा दी।[६] अब बिहार ही एक सूबा था जहाँ मौलाना जा सकते थे। परन्तु जब मौलाना रांची पहुंचे ही थे कि उन्हें नज़रबन्द कर दिया गया। १६१६ में आज़ाद के गिरफ्तार होने के बाद 'अल बलघ' नामक पत्रिका भी बन्द हो गई।

मौलाना आजाद के विचारो को सुनने के लिए जनता लालायित हो गई क्योंकि १६१२ ई. में बालकान के युद्ध के कारण इस्लाम को यूरोप की ईसाई शक्ति से खतरा महसूस होने लगा था। भारतीय मुसलमान अंग्रेजों और ईसाइयों के विरूद्ध और तुर्की के समर्थक थे। इसी समय मौलाना आजाद का विचार साम्राज्यवाद के विरूद्ध था। इसलिए मौलाना आजाद की साप्ताहिक पत्रिका ब्रिटिश सरकार के आंखों का किरकिरी बन गयी क्योंकि इस पत्रिका के माध्यम से यूरोपीय शक्ति की भर्त्सना करने लगे थे और भारतीय सरकार ने अलहिलाल पत्रिका की जमानत जब्त करके फिर से १०,००० की नयी जमानत देने के लिए कहा। परिणामस्वरूप मौलाना आजाद ने अलहिलाल पत्रिका को छपवाना बंद कर दिया।[७]

गांधी जी को मौलाना के सशक्त लेखों के बारे में पता था। मौलाना जब रांची के जेल में थे तब गांधी जी उनसे मुलाकात करना चाहते थे। लेकिन सरकार ने इसकी स्वीकृति नहीं दी। उसके तुरन्त बाद जनवरी १६२० में रिहा होने के बाद उनकी दिल्ली में हकीम अजमल खां के घर गांधी जी से भेंट हुई।

नेहरू जी ने लिखा है कि वह एक नई भाषा में लिखते हैं, यह न सिर्फ विचारों और दृष्टिकोण में ही एक नई भाषा है बल्कि इसकी शैली भी भिन्न थी।

नजरबन्दी का सिलसिला ३१ दिसम्बर १६१६ तक रहा। आजाद चार वर्षों तक जेल में रहे। पहली जनवरी १६२० को मौलाना रिहा कर दिये गये। जेल से छूटकर भी उन्होंने लेखन का कार्य जारी रखा। जेल से बाहर आने पर उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल किया गया।

१६२१ में मौलाना आजाद ने पैग़ाम नाम का एक साप्ताहिक शुरू किया, जिस पर अंग्रेज सरकार ने उसी वर्ष प्रतिबन्ध लगा दिया और मौलाना को कुछ समय के लिए हिरासत में ले लिया। १६२७ में मौलाना आजाद ने दोबारा 'अल-हिलाल' का प्रकाशन शुरू किया और ये सिलसिला उस वर्ष की समाप्ति तक जारी रहा।

एक पत्रकार और समाज सुधारक के रूप में मौलाना आज़ाद ने कई सफलताएं प्राप्त कीं। उन्होंने उर्दू पत्रकारिता को पहली बार अच्छी लिथोग्राफिक छपाई और हाफटोन चित्रों से परिचित किया। उन्होंने अपने समाचार पत्रों से पूरे देश की जनता को विशेष रूप से मुसलमानों को स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति जागृत किया जिसके कारण उन्हें जेल की मुसीबतें झेलनी पड़ी थीं। स्वतंत्र भारत में वे पहले शिक्षामंत्री बने। शिक्षा मंत्री के रूप में मौलाना आजाद ने कई काम किए। वैज्ञानिक शिक्षा को प्रोत्साहन, कई विश्वविद्यालयों की स्थापना, उच्च शिक्षा और खोज को प्रोत्साहन मौलाना के समय में ही व्यापक स्तर पर शुरू हुआ। हालांकि २२ फरवरी, १६५८ को उनका देहांत हो गया। भारत रत्न मौलाना अबुल कलाम आजाद हिन्दू-मुस्लिम एकता के परिचायक बने रहेंगे। उन्होंने देश में एकता को बढ़ाने के लिए जो भी काम किए उन्हें यह देश हमेशा याद रखेगा। मौलाना अबुलकलाम आजाद के जन्म दिन को राष्ट्रीय शिक्षा दिवस के रूप में घोषित किया जाना और हैदराबाद में उनके नाम पर मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी स्थापित होना राष्ट्र की ओर से एक स्वतंत्रता सेनानी, क्रान्तिकारी, पत्रकार, समाज सुधारक, शिक्षा विशेषज्ञ तथा अभूतपूर्व शिक्षा मंत्री को भेंट की जाने वाली सच्ची श्रृद्धांजली है।

सन्दर्भ

१. देसाई महादेव, 'मौलाना अबुल कलाम आजाद', नई दिल्ली प्रकाशन, १६८२, पृ. ११
२. हसन मुहम्मद, 'ए न्यू एपरोच टू इकबाल', गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, १६८७, पृ.२३
३. सियानी अरसमाल, 'अबुल कलाम आजाद', नई दिल्ली, १६८०, पृ.११
४. वही, पृ. १२
५. नेहरू जहवाहर लाल, 'दि डिस्कवरी ऑफ इण्डिया', नई दिल्ली, ऑक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ३४७-४८
६. पाठक एस.एम, 'मौलाना अबुल कलाम आजाद इन रांची', जरनल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, इतिहास विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची, १६६२, पृ. ११
७. सियानी अरसमाल, पूर्वोक्त, पृ. ११

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

मिलों के बंद होने का श्रमिकों के समाजार्थिक जीवन पर प्रभाव (इंदौर शहर के विशेष संदर्भ में)

❑ डॉ. वर्षा पटेल

वर्तमान समय में जहां एक ओर उदारीकरण, निजीकरण व औद्योगीकरण के आइने में समाज को देखा जाता है, वहीं सामंजस्य न होने से कुछ विवाद उत्पन्न हो जाते हैं। आधुनिकीकरण या विवेकीकरण की प्रक्रिया को अपनाये जाने के कारण औद्योगिक क्षेत्र में जहां एक ओर नए-नए कारखाने लगाये जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर पुराने उद्योग इस प्रतिस्पर्धा का सामना करने में असमर्थ हो रहे हैं, जिस कारण ये तीव्र गति से बंद हो रहे हैं, इनके बंद होने से उसमें कार्यरत श्रमिकों को स्थायी रूप से क्षति पहुंची है व उनमें बड़े पैमाने पर बेकारी उत्पन्न हुई है। यह बेकारी अपना व्यग्र रूप दिखा रही है। श्रमिकों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। श्रमिकों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं की उपेक्षा करते हुए उद्योगों को बंद किया जा रहा है। रोजगार छिन जाने से उनके सामाजिक संबंध कमजोर पड़ते जा रहे हैं व आर्थिक स्तर गिरने से जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी विकल्प नहीं हैं। इन सभी समस्याओं पर विचार करने के बाद यह एक गंभीर समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है मिलें क्यों बंद हो रही हैं? मिलों के बंद होने से निष्कासित श्रमिकों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? निष्कासित श्रमिकों के पुर्नवास में क्या समस्यायें आ रही हैं? सरकार द्वारा इन समस्याओं के निराकरण के लिये क्या उपाय अपनाये जा रहे हैं? इन सभी उभरती हुई समस्याओं का अध्ययन निश्चित रूप से समाज वैज्ञानिकों के लिये अध्ययन का क्षेत्र बन गया है।

आधुनिकीकरण या विवेकीकरण की प्रक्रिया को अपनाये जाने के कारण औद्योगिक क्षेत्र में जहां एक ओर नए-नए कारखाने लगाये जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर पुराने उद्योग इस प्रतिस्पर्धा का सामना करने में असमर्थ हो रहे हैं, जिस कारण ये तीव्र गति से बंद हो रहे हैं, इनके बंद होने से बड़े पैमाने पर बेकारी उत्पन्न हुई है। श्रमिकों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। श्रमिकों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं की उपेक्षा करते हुए उद्योगों को बंद किया जा रहा है। प्रस्तुत लेख मिलों के बंद होने से श्रमिकों के समाजार्थिक जीवन पर पड़नेवाले प्रभावों को उजागर करने का एक प्रयास है।

समस्या की प्रासंगिकता : इस अध्ययन से उद्योगों के बंद होने से श्रमिकों के समक्ष आ रही समस्यायें उभरकर सामनें आयी हैं। समाज, सरकार व उद्योगपतियों के समक्ष श्रमिकों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को समझने व उन्हें दूर करने के लिए क्या नीतियां बनाई जा सकती हैं? इनके रोजगार के अवसर किस प्रकार जुटाये जा सकते हैं व उन्हें समाज में पुर्नवासित किस तरह किया जाए यह विचार योग्य है। इसके साथ ही ऐसा प्रयास होना चाहिए कि उद्योगों के बंद होने के जो कारण हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए उद्योगों का प्रबंधन किया जाए ताकि उद्योगों के बंद होने की नौबत ही न आए।

अध्ययन के उददेश्य :

१. मिलों के बंद होने से निष्कासित श्रमिकों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन।

२. मिलों के बंद होने के कारणों एवं श्रमिकों को मिलने वाले सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों का अध्ययन।

३. निष्कासित श्रमिकों के जीवन निर्वाह के साधनों एवं पुर्नवास की समस्याओं का अध्ययन।

शोध प्रारूपः प्रस्तुत अध्ययन हेतु इंदौर शहर को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चुना गया। अतः अध्ययन का समग्र इंदौर शहर की बंद मिलों से निष्कासित श्रमिक हैं तथा अध्ययन की इकाई निष्कासित श्रमिक हैं।

निदर्शन प्रविधि के रूप में अध्ययन में स्नोबाल सेंपलिंग को अपनाया गया। प्रविधि के अंतर्गत अनुसंधानकर्त्ता कुछ उत्तरदाताओं के साथ शोध प्रारंभ करता है, जो ज्ञात एवं उपलब्ध होते हैं। तदन्तर वे उत्तरदाता शोध के मापदंड के अनुसार दूसरे उत्तरदाता का नाम बताते हैं। यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक कि पर्याप्त संख्या में साक्षात्कार के लिए उत्तरदाता उपलब्ध न हो जायें। अतः शोधकर्त्ता द्वारा सर्वप्रथम मालवा मिल सहकारी साख संस्था से मिल में कार्यरत रह चुके श्रमिकों की सूची प्राप्त की। उस सूची की मदद से कुछ

❑ समाज विज्ञान अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर (म.प्र.)

उत्तरदाताओं से साक्षात्कार लिया व उनकी मदद से अन्य निष्कासित श्रमिकों की जानकारी प्राप्त कर उनसे साक्षात्कार लिया। इस प्रकार यह प्रक्रिया तब तक चली जब तक साक्षात्कार के लिए ५० उत्तरदाता श्रमिक प्राप्त हुए। इन ५० निष्कासित श्रमिकों में इंदौर की ६ बंद मिलों में कार्यरत रह चुके श्रमिकों को शामिल किया गया हैं। इस प्रकार निदर्शन में ४६ प्रतिशत श्रमिक मालवा मिल के, २६ प्रतिशत हुकुमचंद मिल के, १४ प्रतिशत कल्याण मिल के, ६ प्रतिशत स्वदेशी मिल के तथा ४ प्रतिशत राजकुमार मिल के श्रमिकों को सम्मिलित किया गया। इन में ८६ प्रतिशत श्रमिक स्थाई रूप से कार्यरत थे अर्थात् ये श्रमिक मिलों में लंबे समय से कार्यरत थे। ४ प्रतिशत श्रमिक अस्थाई रूप से कार्यरत थे, व १० प्रतिशत श्रमिक बदली श्रमिक के रूप में कार्यरत थे अर्थात् मिल में किसी श्रमिक के अनुपस्थित रहने की दशा में इन्हें काम पर लगाया जाता था। इस प्रकार अधिकतर श्रमिक स्थाई रूप से कार्यरत थे।

निष्कासित श्रमिकों की पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक स्थिति :

पारिवारिक स्थिति- भारत में राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आंकडों के आधार पर १९९२-९३ में औसत पारिवारिक संरचना ३.९ थी जो २००१ के आंकड़ों के अनुसार ३.३ हो गयी है। वहीं पारिवारिक संरचना के आधार पर निष्कासित श्रमिकों के ७२ प्रतिशत परिवार संयुक्त हैं व २८ प्रतिशत परिवार एकाकी हैं। निष्कासित श्रमिकों में परिवारों की औसत पारिवारिक संरचना ६.१६ प्राप्त हुई जो राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आंकडों की तुलना मे काफी अधिक है। **प्रत्येक** समाज में व्यक्ति के रहने का अत्यधिक महत्वपूर्ण केंद्र परिवार है। परिवार सामाजिक जीवन का प्रथम सोपान है। कपाड़िया का मत है कि तीन महत्वपूर्ण कारणों से संयुक्त परिवार आज भी व्यक्तियों को आकर्षित करता है-[2]

१. परिवार का आर्थिक बोझ सभी के द्वारा वहन किया जाता है।

२. सामाजिक सुरक्षा की यह एक मात्र व्यवस्था है।

३. वह व्यक्ति में वांछित गुणों का विकास करता है।

आर.पी. देसाई का भी यह मत है कि सामाजिक सेवा की यह महत्वपूर्ण संस्था है और आज भी व्यक्ति बीमारी, बेरोजगारी और बुढ़ापे में इसकी ओर सहायता के लिये देखता है।[3] अधिकांश श्रमिकों के संयुक्त परिवार होने से, श्रमिकों का कहना है कि, पहले जब मिल बंद हुई तब बेरोजगारी की स्थिति में परिवार ही हमारा सहारा था। परिवार के सहयोग से ही बेरोजगारी की विकट परिस्थिति में अपने परिवार के सहयोग के बल पर ही अपने को उबारा है। बच्चों की पढ़ाई छूट गई उन्हें कम उम्र में ही काम पर लगाना पड़ा। आज वे ही हमें सहारा दे रहे हैं।

सामाजिक स्थिति- निष्कासित श्रमिकों की सामाजिक स्थिति में भी अंतर आया है। व्यवसाय भी व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति निर्धारित करता है। अतः श्रमिकों को मिलों से निष्कासित होने से अर्थात् व्यवसाय छिन जाने से निश्चित तौर पर बेकारी की स्थिति में उनकी पारिवारिक व सामाजिक प्रस्थिति में अंतर अवश्य ही दृष्टिगोचर होता है। व्यक्ति जब कमाकर लाता है तो परिवार व समाज वाले उसे प्रतिष्ठित नजरों से देखते हैं, परंतु रोजगार छूटने पर रिश्तेदारों व समाज में उनकी प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। उनका कहना है कि अब उम्र अधिक होने की वजह से कोई दूसरा कार्य भी नहीं कर सकते अब तो हमें दूसरों पर ही निर्भर रहकर जीवन बिताना है जो कुछ श्रमिक दोबारा दूसरे कामों में लगे हैं वहां वे मजबूरीवश कार्य कर रहे हैं।

शैक्षणिक स्थिति- जीवन मे शिक्षा का बहुत महत्व है। प्रस्तुत अध्ययन के श्रमिक साक्षर तो हैं, उनमें से अधिकतर प्राथमिक स्तर व न्यूनतम स्नातक स्तर तक शिक्षित हैं। परंतु मिलों के बंद होने से उनके बच्चों की शिक्षा अवश्य ही प्रभावित हुई है। मिलें जब बंद हुई तब श्रमिक इस हालत में नहीं थे कि वे बच्चों की शिक्षा को आगे जारी रख सकें। इसलिए बीच में पढ़ाई छोड़कर उन्हें काम धंधे से लगाना पड़ा।

आर्थिक स्थिति - इंदौर में संगठित क्षेत्र में कपड़ा मिलों के बंद होने से उसमें कार्यरत श्रमिकों को बेकारी की स्थिति से जूझना पड़ रहा है। अधिकांश श्रमिकों की उम्र अधिक हो चुकी है उन्हें उनकी उम्र के अनुसार काम नहीं मिल पा रहा है।कई श्रमिक असंगठित क्षेत्रों में मजदूरी करने पर विवश हैं। जहां रोज कमाने व रोज खाने की स्थिति है। आज मिलों के बंद होने के ५-६ वर्षों बाद भी अधिकांश श्रमिक बेकार हैं, कुछ ठेला चला रहे हैं,कुछ मजदूरी कर रहें हैं तथा कुछ नौकरी कर रहे है। रोजगार के अभाव में मजबूरी में कई श्रमिकों को मिल द्वारा आवास योजना के अंतर्गत मिले मकान तक बेचने पड़े, मकान बेचकर कई श्रमिक प्रवासित हो गये हैं जबकि कई किराये के मकान में रह रहे हैं। उन्हें जो भी काम मिला उसमें लगना पड़ा। वे अपने काम से संतुष्ट नहीं हैं, उन्हें मजबूरीवश अपना व अपने परिवार का पालन पोषण करने के लिये कार्य

करना पड़ रहा है।इस प्रकार श्रमिक अनेकानेक समस्याओं से जूझ रहे हैं।

श्रमिकों के समक्ष प्रमुख समस्यायें :

१. वैकल्पिक रोजगार प्राप्त करने में कठिनाई,

२. प्राविडेण्ड फंड में जमा राशि प्राप्त करने में कठिनाई

३. पुर्नवास भत्ता न मिलना,

४. बच्चों की शिक्षा बाधित होना।

मिल के बंद होने के बाद श्रमिकों की समस्याओं का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि सभी श्रमिकों के जीवन निर्वाह के साधन छिन जाने से बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हुई, इससे उनके बच्चों की पढ़ाई छूट गई, पढ़ाई छोड़कर उन्हें भी काम से लगाना पड़ा, कई श्रमिकों को तो मिल द्वारा आवास योजना के अंतर्गत दिये गये मकान बेचकर रोजगार की तलाश में अन्यत्र प्रवासित होना पड़ा, कई श्रमिक मकान बेचकर किराये के मकान में रह रहे हैं, पारिवारिक जिम्मेदारियों जैसे बच्चों की सगाई, शादी, परिजनों के बीमार होने, परिवार में किसी की मृत्यु होने आदि की स्थिति में श्रमिकों को कर्ज भी लेना पड़ा, अधिकांश श्रमिकों द्वारा बेरोजगारी की स्थिति में अपने घर का खर्च चलाने हेतु भी कर्ज लेना पड़ा। कई श्रमिक आज तक बेरोजगारी की स्थिति से जूझ रहे हैं।

निष्कासित श्रमिकों के मिल से मिलने वाले आखिरी वेतन का विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि ६८ प्रतिशत श्रमिकों को २००० रूपये से कम वेतन मिलता था जबकि ३२ प्रतिशत श्रमिकों को २०००-४००० रूपये के बीच वेतन मिलता था। अर्थात् अधिकांश श्रमिकों की मासिक आय २००० से कम ही थी। विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि ६८ प्रतिशत श्रमिकों की बचत मिल में कार्य करते समय कुछ भी नहीं थी जबकि बहुत कम लोग ही ५०० रूपये से कम बचत करते थे। अधिकांश श्रमिकों की मासिक आय इतनी कम थी कि बचत करना अत्यंत मुश्किल कार्य था।

मिल में कार्यरत श्रमिकों को आवास योजना के तहत मकान दिये गये थे, वर्तमान में ७४ प्रतिशत श्रमिक निजी मकान में रह रहे हैं, इनमें से भी कई ने अपना आधा मकान बेच दिया व बचे हुए आधे मकान में वे रह रहे हैं। अधिकांश श्रमिक तो मकान बेचकर प्रवासित हो गये हैं। व बाकी किराये के मकान में रह रहे हैं।

श्रमिकों पर कर्ज का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि ७१ प्रतिशत श्रमिकों के ऊपर ३०,०००-६०,००० रूपए कर्ज है। उनके लिये कर्ज की यह राशि बहुत अधिक है। मिलों से निष्कासित होने के पश्चात् ५८ प्रतिशत श्रमिक वर्तमान में भी ऋणग्रस्त हैं, ४२ प्रतिशत श्रमिकों पर वर्तमान में कर्ज नहीं है, कर्ज तो सभी श्रमिकों द्वारा लिया गया था परंतु मिल से वी. आर.एस., पी.एफ. का रूपया प्राप्त होने पर कर्ज चुकाया गया। स्पष्ट है कि मिलों से निष्कासित होने के पश्चात अधिकांश श्रमिकों ने कर्ज लिया।

मिलों के बंद होने के कारण एवं श्रमिकों को मिलने वाले सामाजिक सुरक्षा प्रावधान : हड़ताल एवं तालाबंदी से मिल बंद होने के कारणों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि बोनस एवं मंहगाई भत्ता, न्यूनतम मजदूरी, काम के घंटे, काम की असंतोषजनक दशायें, श्रमिकों की छंटनी, प्रबंधकों द्वारा श्रमिकों के प्रति अमानवीय दृष्टिकोण, श्रमिक वर्ग की अशिक्षा, राजनीतिक वातावरण, श्रम संघों के आपसी विवाद, मिलों का आधुनिकीकरण के अभाव में घाटे में जाना, मिल मालिकों की मिलों को चालू न रखने की इच्छा आदि महत्वपूर्ण कारण सामने आये हैं।

तथ्यों से स्पष्ट है कि मिलों से निष्कासित श्रमिकों में से ६८ प्रतिशत श्रमिकों को ही वी. आर. एस. मिला, वी. आर. एस.(वालेंट्री रिटायरमेंट स्कीम) से तात्पर्य यह है कि जब मिल बंद होने के कगार पर रहती है है तब वह श्रमिकों को वी. आर. एस. देती है जिसके अंर्तगत श्रमिकों को उनका बाकी सेवाकाल का पैसा एक साथ देकर उन्हें सेवानिवृति प्रदान कर दी जाती है। ३२ प्रतिशत श्रमिकों को वी. आर. एस. भी नहीं दिया गया। अर्थात् उन्हें बिना कोई सुविधा के ऐसे ही निकाल दिया गया उनकी मेहनत व हक का पैसा भी उन्हें नहीं प्राप्त हो सका। मिलों से निष्कासित श्रमिकों में से ६१.८ प्रतिशत श्रमिकों ने प्रबंधक की इच्छा से वी. आर. एस. लिया। ३८.२ प्रतिशत श्रमिकों ने अपनी इच्छा से वी. आर. एस. लिया, ताकि उनकी सेवा का पैसा उन्हें एकमुश्त मिल जाये, यदि वे वी.आर.एस.नहीं लेते व मिल बंद हो जाती तो उनका सारा पैसा अटका रह जाता। परंतु सभी का मत था कि वी.आर. एस. लेना एक मजबूरी थी।

तथ्यों से स्पष्ट है कि मिलों से निष्कासित जिन श्रमिकों ने वी. आर.एस. लिया। उनमें से २६.४ प्रतिशत श्रमिकों को वी. आर.एस. राशि ०-५०००० रूपये प्राप्त हुई, २३.५ प्रतिशत श्रमिकों को वी.आर.एस. राशि ५००००-१००००० रूपये प्राप्त हुई, १७.६ प्रतिशत श्रमिकों को वी.आर.एस. राशि १०००००-१५०००० रूपये प्राप्त हुई, ११.८ प्रतिशत श्रमिकों को वी.आर.एस. राशि १५००००-२००००० रूपये प्राप्त हुई,

८.८ प्रतिशत श्रमिकों को वी.आर.एस. राशि २०००००-२५०००० रूपये प्राप्त हुई, ५.६ प्रतिशत श्रमिकों को वी.आर.एस. राशि २५००००-३००००० रूपये प्राप्त हुई, ३ प्रतिशत श्रमिकों को वी.आर.एस. राशि ३०००००-३५०००० रूपये प्राप्त हुई, अर्थात् अधिकांश श्रमिकों को १००००० रूपये से कम राशि ही प्राप्त हुई।

विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि ६८.८ प्रतिशत श्रमिकों को भविष्य निधि राशि प्राप्त करने में १ वर्ष, १६.७ प्रतिशत श्रमिकों को ३ वर्ष का समय लगा, १४.५ प्रतिशत श्रमिकों को ही तुरंत यह राशि प्राप्त हुई। अर्थात् बहुत कम लोगों को ही सरलता से अपना रूपया प्राप्त हुआ। श्रमिकों को अपना रूपया प्राप्त करने में १-३ वर्ष तक चक्कर काटने पड़े। इस संबंध में यह भी ज्ञात हुआ है कि अधिकतर (६६ प्रतिशत) श्रमिकों को ही २००००-६०००० रूपये के बीच भविष्यनिधि राशि प्राप्त हुई। इससे अधिक राशि प्राप्त करने वालों का प्रतिशत काफी कम था।

निष्कासित श्रमिकों में से ६४ प्रतिशत श्रमिकों को पेंशन नहीं मिल रही है। मात्र २४ प्रतिशत श्रमिकों को ही पेंशन सुविधा प्राप्त हो रही है, जिन्हें पेंशन मिल रही है, उनमें से भी ७५ प्रतिशत लोगों को मात्र २००-८०० रूपये के बीच पेंशन मिल रही है, जो कि अत्यंत कम है। इतनी कम राशि में एक परिवार की बात तो दूर मंहगाई को देखते हुए एक व्यक्ति के खर्च की पूर्ति भी नहीं होती।

निष्कासित श्रमिकों के जीवन निर्वाह के साधन एवं पुर्नवास की समस्याएं : निष्कासन के पश्चात् ४६ प्रतिशत श्रमिक आज भी कुछ नहीं कर रहे हैं जबकि १० प्रतिशत मजदूरी व शेष अन्य कार्यो जैसे ठेला चलाना, नौकरी, दुकान आदि व्यवसाय से लगे हुए हैं। अर्थात् सर्वाधिक लोग आज भी बेरोजगार हैं उन्हें उनकी उम्र व इच्छानुसार कार्य नहीं मिल सका।

मिल से निष्कासन के पश्चात जो श्रमिक रोजगार से लगे हैं उनमें से सर्वाधिक ५५.५ प्रतिशत श्रमिकों को पुनः रोजगार प्राप्त करने में १-२ वर्ष का समय लगा, उसके पश्चात् भी मजबूरी में जैसा कार्य मिला उस कार्य से लग गये, जबकि ११ प्रतिशत श्रमिकों को रोजगार प्राप्त करने में ५-६ वर्ष का समय भी लगा। निष्कासन के पश्चात् जो श्रमिक रोजगार से लगे हैं उनमें से सर्वाधिक ७४ प्रतिशत श्रमिक अपने वर्तमान कार्य से संतुष्ट नहीं हैं।

मिल से निष्कासन के पश्चात् मजदूरों के पुर्नवास में कई तरह की समस्यायें आई, उन्हें प्रबंधक व सरकार की ओर से तुरंत कोई आर्थिक सहायता प्रदान नहीं की गई, न ही कोई रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये गये, और न ही अन्यत्र कहीं रोजगार उपलब्ध कराने में मदद की गई।

श्रमिकों को पुर्नभत्ता भी प्रदान नहीं किया गया। यहां तक कि श्रमिकों को अपनी भविष्य निधि राशि प्राप्त करने के लिये भी काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा। सरकार द्वारा उन्हें जिला उद्योग व्यापार केंद्र से स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण प्रदान किया गया व लोन देने की योजना भी थी परंतु श्रमिकों को इसका कोई लाभ नहीं हुआ, उनके अनुसार प्रशिक्षण बहुत कम समय के लिये दिया गया व लोन लेने की प्रक्रिया बहुत जटिल है संपूर्ण औपचारिकतायें पूरी करने के बाद भी लोन प्राप्त नहीं हो सका।

श्रमिकों के पुर्नवास की समस्याओं का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उद्योगों द्वारा उन्हें बेरोजगारी की अवस्था में किसी भी प्रकार की आर्थिक सहायता प्रदान नहीं की गई। मिल मालिक, सरकार व श्रम संगठन द्वारा भी रोजगार दिलाने में किसी प्रकार की मदद नहीं की गई। मात्र ४ प्रतिशत लोगों को श्रम संगठन की मदद से रोजगार प्राप्त हुआ। वह भी उनके व्यक्तिगत संबंधों के कारण उन्हें यह मदद प्राप्त हुई। ६० प्रतिशत श्रमिक कर्मचारी संगठन के सदस्य हैं, उसी की मदद से उन्हें मिल से अपना रूपया प्राप्त करने में सहायता प्राप्त हुई।

सुझाव :

१. मिलों को बंद कर श्रमिकों को पैसा देने के स्थान पर मिल को आधुनिक मशीनों के द्वारा पुर्नजीवित करना चाहिये ताकि श्रमिक बेरोजगार न हों।

२. मिलों के बंद होने की स्थिति में निष्कासित श्रमिकों को अन्यत्र कार्य पर लगाना चाहिये, तथा उनकी सेवाओं में किसी प्रकार का गतिरोध उत्पन्न नहीं होने देना चाहिए।

३. विवेकीकरण के फलस्वरूप छंटनी किये जाने पर श्रमिकों को अन्य कार्य दिये जाने का यथायंभव प्रयास किया जाना चाहिये। अन्य उद्योगों में जाने के लिये प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ने पर उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। प्रशिक्षण कार्यक्रम सरकार, नियोजक और श्रमिक द्वारा सम्मिलित रूप से बनाये जाने चाहिये।

४. केवल अधिनियम बनाना ही काफी नहीं है, वरन् आवश्यकता इस बात की है कि इनको ठीक प्रकार से लागू किया जाए जिससे कि भारत में औद्योगिक संस्थानों से औद्योगिक विवादों का कारण ही समाप्त हो जाये।

५. सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे को इस प्रकार से समायोजित करने का प्रयत्न करना चाहिये कि हर श्रमिक को इस बात का आश्वासन हो जाये कि उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं की संतुष्टि होती रहेगी, उसके रोजगार की सुरक्षा रहेगी, यदि बेरोजगारी हो भी जाये तो इस अवधि में उसको कोई और रोजगार मिलने की व्यवस्था होगी तथा ऐसी मजबूरी में जबकि वह काम करने के अयोग्य हो जाये, उसका निर्वाह होता रहेगा।

६. प्रबंधकों को इस बात के लिये उत्साहित किया जाना चाहिये कि वे एक ऐसी बेरोजगारी सहायता निधि की स्थापना करें, जिसमें से नौकरी से निकले हुए मजदूरों को उनके सेवाकाल को ध्यान में रखते हुए, अवकाश प्राप्ति धन प्रदान किया जाये। इस निधि में स्थानीय सरकारों को भी अंशदान देना चाहिये जिसकी राशि, बेरोजगारी और नौकरी से निकले हुए श्रमिकों को जो सहायता प्रदान की जाये, उसके बराबर हों।

७. श्रम कानूनों के प्रशासन में समानता होनी चाहिये विधान को लागू करने में सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्र में भेद नहीं किया जाना चाहिये।

८. श्रम क्षेत्र में कार्य करने के मार्ग में एक बड़ी बाधा यह है कि श्रम से संबंधित सूचनायें बहुत अपर्याप्त हैं इसलिये सरकार को पर्याप्त आंकड़े प्राप्त करने के लिये अनेक सर्वेक्षण योजनाओं को मंजूरी देना चाहिये।

९. श्रमिकों में उचित शिक्षा और श्रम जीवी वर्ग में उचित प्रचार होना चाहिये ताकि श्रमिक अपने अधिकारों के बारे में ही न सोचें वरन् अपने कर्त्तव्यों की ओर भी ध्यान दें।

१०. श्रमिक एवं उत्पादक को अत्यधिक त्याग की भावना से कार्य करना चाहिये।

११. औद्योगिक विवादों की समस्या मनोवैज्ञानिक भी हैं दोनों पक्षों का एक दूसरे के प्रति अविश्वास है। यदि मालिक श्रमिकों को उत्पादन में बराबर का साथी समझने लगे और उनसे दूर -दूर रहने की वर्तमान प्रवृत्ति को छोड़ दें तो श्रमिकों का असंतोष काफी सीमा तक दूर हो जायेगा और औद्योगिक शांति भी स्थापित होगी।

१२. मजदूरी की दर में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना होगा जो मूल्य स्तर के अनुसार बढ़े, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को लागू करना होगा, रोजगार के स्तर को भी ऊंचा और स्थिर बनाना होगा, कार्य एवं रहने की दशाओं में सुधार लाना होगा।

१३. बेरोजगार हुये श्रमिकों को स्वरोजगार मूलक प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिये। साथ ही स्वरोजगार चालू करने हेतु लोन लेने की प्रक्रिया को सरल बनाया जाना चाहिये।

१४. मिलों से निष्कासित श्रमिकों को पुर्नवास भत्ता दिया जाना चाहिये जो उनके पुर्नवास हेतु पर्याप्त होना चाहिये।

१५. मिलों से निष्कासित श्रमिकों को बच्चों की शिक्षा प्रभावित न हो, इसके लिये सरकार द्वारा उनके बच्चों की शिक्षा का भार उठाया जाना चाहिये।श्रमिकों को उनका जमा पैसा भविष्यनिधि, पेंशन आदि की राशि तुरंत उपलब्ध कराई जरनी चाहिये, ताकि उन्हें आवश्यकता पड़ने पर कर्ज लेने की जरूरत न पड़े।

१६. श्रमिकों को कर्मचारी राज्य बीमा निगम से उपचार की सुविधा भी चालू रखना चाहिये इसका कुछ अंशदान श्रमिकों से भी लिया जा सकता है।

सन्दर्भ

१. कपाड़िया एस.सी., 'औद्योगिक संबंध तथा सामाजिक सुरक्षा', आर.बी.एस. पब्लिशर्स, जयपुर, १९९०, पृ. २३४-२५४।

२. देसाई आई.पी., 'भारत में सामाजिक सुरक्षा', के.नाथ एण्ड कं., मेरठ, १९९०, पृ. ११०-११३

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

मलिन बस्ती में परिवार नियोजन का सामाजिक अध्ययन

❑ डॉ. सारिका दीक्षित

साप्रंत भारत में जनसंख्या जिस गति से बढ़ रही है वह एक गंभीर एवं चिन्तनीय विषय है। जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में भारत का दूसरा स्थान है। जनसंख्या वृद्धि के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं किन्तु इसे शीघ्रता से कम करने का यदि कोई उपाय है तो वह है जन्म दर में कमी लाना इसके लिए आज देश में परिवार नियोजन का सर्वत्र प्रचार हो रहा है। मलिन बस्तियों में जनसंख्या की समस्या और भी विकराल है इसलिए वहाँ परिवार नियोजन की महती आवश्यकता है। प्रस्तुत अध्ययन मलिन बस्तियों में निवास करने वाले महिलाओं व पुरूषों में परिवार नियोजन के प्रति जागरूकता का अध्ययन करने का एक प्रयास है।

मलिन बस्ती का सामान्य अर्थ प्रत्येक तरह की जर्जर आवास व्यवस्था और गंदगी युक्त वातावरण से है। मलिन बस्ती को अनेक नामों से जाना एवं पहचाना जाता है, जैसे तंग बस्ती, गंदी बस्ती आदि। मलिन बस्ती की सामान्य परिभाषा करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि प्रत्येक देश की आर्थिक स्थिति के अनुरूप ही मलिन बस्ती स्थापित होती है। मलिन बस्तियॉं झोपड़ी, सरॉय, छोटी – छोटी कोठरियॉं, खपरेलों और बॉस से बने हुऐ कच्चे मकान, टीन के शेड से निर्मित मकान, लकड़ी के छोटे छोटे केबिन आदि से स्थापित हो जाती है। एक स्थान पर सैकड़ों ऐसे मकान जो निर्धनता के कारण बनते हैं। यही आगे चलकर मलिन बस्ती का रूप धारण कर लेते है।

विश्व की जनसंख्या की दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है। वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या निम्नवत है:-

कुल जनसंख्या	१,२१,०१,९३,४२२
महिला	५८.६५ करोड़
पुरूष	६२.३७ करोड़
कुल जनसंख्या में ग्रामीण	७४,१६,६०,२३६
शहरी	२८,५३,५४,६५४
विकास दर	२१.५४ प्रतिशत

जनसंख्या वृद्धि के लिए किसी सीमा तक एक धार्मिक एवं सामाजिक मान्यता भी उत्तरदायी है। काम इच्छा यद्यपि शारीरिक भाव है, परन्तु संतान उत्पति को धार्मिक एवं सामाजिक आधार प्रोत्साहन देता है। हमारे देश की धार्मिक मान्यता यह है कि अगर पुत्र नही हुआ तो मरने के बाद पिण्डदान कौन करेगा। पुत्र के द्वारा ही वंश का नाम बढ़ता है पुत्र ही माता पिता को स्वर्ग प्राप्त कराता है। पुत्रहीन व्यक्ति निसंतान के समान है। सामाजिक आधार है कि पुत्र ही वृद्धवस्था का सहारा होता है। हमारे धर्म में कहा गया है कि पुत्री की कमाई खाना पाप है और उसकी अल्पायु में विवाह कर देना ही योग्य है। आज भी समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसके पुत्रों की संख्या से ऑकी जाती है।

इसके अतिरिक्त गर्म जलवायु रजोदर्शन की आयु में शीघ्रता लाती है। जिसके कारण १५ वर्ष की आयु से प्रजनन कार्य प्रारंभ हो जाता है। यह तथ्य इस ओर संकेत करता है कि जनसंख्या का करीब आधा भाग पुनरूत्पादक है, जो जन्मदर को बढ़ने में सहायक है। उत्तम स्वास्थ्य व सफाई सुविधा के कारण शिशु मृत्युदर कम हो गयी है।

इसके अलावा अशिक्षा भी एक मुख्य कारण है। अशिक्षा के कारण व्यक्ति की विचार शक्ति कम होती है वह अपनी लाभ हानि का मापदण्ड नही बना पाता है। इसी से अधिक बच्चों से हानि व कम बच्चों से लाभ की बात औसत भारतीयों दिमाग में नही उतरती है और जन्मदर बढ़ती रहती है। २००१ की जनगणना में महिलाओं का साक्षरता का प्रतिशत ५४.६ प्रतिशत है व ग्रामीण महिलाओं का साक्षरता और भी कम है।

इसके अलावा बाल विवाह का होना भी जन्मदर को बढ़ाने में सहायक है। विधवा पुनर्विवाह को मान्यता मिलने कारण भी हमारे देश की जनसंख्या में वृद्धि हुई है।

भारत में जन्मदर एवं मृत्युदर[२]

वर्ष	जन्मदर	मृत्युदर
१८९१–१९००	४५.८	४४.४
१९०१–१९१०	४६.२	४२.६
१९११–१९२०	४८.१	४७.६
१९२१–१९३०	४६.४	३६.३
१९३१–१९४०	४५.२	३१.२
१९४१–१९५०	३९.९	२७.४
१९५१–१९६०	४१.७	२२.४
१९६१–१९७०	४१.२	१९.०
१९७१–१९८०	३७.२	१५.०
१९८१–१९९०	३०.२	६.७

❑ अतिथि व्याख्याता, स्कूल ऑफ सोशल साइन्स, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

१९९७	२१.२	८.९
२०००	२१.०	१४
२०११	२०	११

उपर्युक्त आधारों से स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि के कई कारण हैं और उनमें से किसी एक कारण को हम सर्वोपरी नही मान सकते। परन्तु इसे कम करने का कोई उपाय जो शीघ्रता से लागू हो सके वह है जन्मदर मे कमी लाना। अन्य कारणों को हल करना भी यद्यपि आवश्यक है परन्तु इसके लिए पर्याप्त अवधि की आवश्यकता होगी। निर्धनता को दूर करना इतना आसान नही है यहाँ पिछले ५० वर्षों में देख चुके हैं। बाल विवाह पर रोक लगाना भी कठिन है क्योकि कानून के भी यह संभव नही हो पा रहा है। देश की सामाजिक कुरीतियॉ मनुष्य की प्रवृत्ति मे अन्तर लाने पर ही दूर हो सकती हैं। कानून बनाकर साक्षरता लाना भी एक लम्बी योजना के द्वारा ही संभव हो सकता है। यह सब उपाय जिनके द्वारा जनसंख्या में कमी लायी जा सकती है काफी लम्बी अवधि के बाद क्रियान्वित हो सकेगें।

मध्य प्रदेश में मलिन बस्तियाँ

शहर का नाम	मलिन बस्तियॉ	आबादी
इन्दौर	५९९	७,९७,५७४
जबलपुर	३९८	२,९८,१३३
ग्वालियर	२४३	२,००,९४४
सागर	५८	४२,९८७

परिवार नियोजन का परिचय : आज हर स्थान पर एवं हर परिवार में बड़े बड़े बालक सभी के मुह से एक ही चर्चा सुनने में आती है वह है परिवार नियोजन। आज भारत के हर गॉव, हर कस्बे, हर क्षेत्र में परिवार नियोजन का प्रचार हो रहा है। जहॉ पर भी जाओं परिवार नियोजन के पोस्टर देखने को मिलते हैं। ''आपकी सुख समृद्धि के लिए परिवार नियोजन'' ''हम दो हमारे दो'' ''दो या तीन बच्चे होते हैं घर में अच्छे'' ''छोटा परिवार सुखी परिवार'' इस तरह अनेक प्रकार से इनका प्रचार हो रहा है। आज के समय मे बड़े तो क्या बच्चे भी इसके नाम से परिचित है। बस इसके बारे में विस्तृत जानकारी लोगों तक पहुँचना बाकी है। परन्तु परिवार नियोजन के इस व्यापक कार्यक्रम व प्रचार के कारण शिक्षित सभी वर्ग के लोग प्रभावित हुऐ है।

हमारे देश की जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ रही है। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि सर्वसाधारण जनता को संतान नियत्रंण की महत्ता का ज्ञान नही था तथा उसे उसके नवीन तरीकों के बारे मे भी नही पता है। इसके अलावा इस विषय में संकोचवश प्रश्न भी नही पूछा जाता है। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या एक गंभीर समस्या बन गयी है। जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण भारत की जनता निर्धनता, भुखमरी व अभाव भरी जिन्दगी जी रही है। आज भारत मे विघटन के कारणों को देखा जाये तो उसमें आर्थिक स्थिति मुख्य समस्या होती है क्योंकि जनसंख्या बढ़ने से खाद्यान्न की कमी, आवास की समस्या, न्यूनतम आय, बेरोजगारी, बेकारी, आदि समस्याऐं उत्पन्न हुई। रोटी कपड़ा मकान यह एक मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है जिसे सरकार अपनी पंचवर्षीय योजना मे भी हल नहीं कर पायी।

अध्ययन की प्रांसगिकता : प्रस्तुत अध्ययन की प्रांसगिकता सर्वप्रथम शोधार्थी के लिए है, इससे शोधार्थी को सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त होगा। द्वितीय अनुसंधान के विभिन्न चरणों, प्रक्रियाओं आदि का ज्ञान प्राप्त होगा। साथ ही मलिन बस्ती में परिवार नियोजन का सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, सामुदायिक विकास में परिवार नियोजन के साधन किस प्रकार सहायक सिद्ध हुऐ हैं का ज्ञान प्राप्त होगा। परिवार नियोजन के साधनों से दाम्पत्य जीवन पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ा है एवं हमारे दैनिक व सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है का ज्ञान प्राप्त होगा।

अध्ययन का उद्देश्य -

१ मलिन बस्तियों में निवास करने वाले महिलाओं व पुरूषों को परिवार नियोजन के प्रति जागरूकता का अध्ययन।

२ परिवार नियोजन हेतु चलाये जा रहे कार्यक्रमों से लाभ का अध्ययन।

शोध प्रारूप - प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र इन्दौर जिले के अंर्तगत मयूर नगर (मूसाखेड़ी) लिया गया। प्रस्तुत शोध में इन्दौर जिले की एक मलिन बस्ती की महिलाओं को सम्मिलित किया गया। २१ से ४० वर्ष की विवाहित महिलाओं को अध्ययन की इकाई माना गया। निदर्शन हेतु चयनित क्षेत्र मयूर नगर (मूसाखेड़ी) इन्दौर के अंतर्गत ११ वार्डों मे से १०-१० परिवारों का दैव निदर्शन की लाटरी विधि द्वारा चयन कर निदर्शन का आकार (११ वार्ड १० परिवार ११०) निर्धारित किया गया। सूचनादात्रियों से सूचनाओं के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया।

उपलब्धियाँ : इन्दौर की बस्तियों में शोधकर्ता ने शोध के द्वारा महिलाओं में परिवार नियोजन के संबंध मे प्राप्त जानकारियों के आधार पर जो निष्कर्ष प्राप्त किया है वह निम्न है -

मयूर नगर मे गंदी बस्ती मे परिवारों की संख्या ६०० दर्शाया गयी है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कुल ११० उत्तरदाताओं में से २०-२५ वर्ष आयु वर्ग के सर्वाधिक ५१.८१ प्रतिशत, एवं

२५-३० वर्ष आयु वर्ग के ३२.७२ प्रतिशत, ३०-३५ वर्ष आयु वर्ग के ०२.७२ प्रतिशत एवं ३५-४० आयु वर्ग की न्यूनतम ०२.७२ प्रतिशत महिलाएं पाई गई। अतः २०-२५ वर्ष आयु वर्ग की संख्या सर्वाधिक ५१.८१ प्रतिशत हैं।

कुल ११० महिलाओं में से सर्वाधिक ४६.०६ प्रतिशत महिलाएं निरक्षर हैं एवं ३२.७२ प्रतिशत महिलाएं हाईस्कूल या इससे कुछ अधिक शिक्षित पाई गईं। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त महिलाओं का प्रतिशत ११.८१ था, जबकि ०६.३६ प्रतिशत महिलाएं माध्यमिक शिक्षा प्राप्त पाई गई हैं।

कुल ११० महिलओं में से ६४.५४ प्रतिशत महिलाएं हिन्दू धर्म को मानने वाली थीं जबकि २.७२ प्रतिशत महिलाएं मुस्लिम धर्म से संबंधित थीं। सिक्ख धर्म को मानने वाली १.८१ प्रतिशत थीं जबकि ईसाई धर्म को मानने वाली मात्र ०.६० प्रतिशत थीं। मलिन बस्ती में कुल ११० महिलाओं में से सर्वाधिक ८२.७२ प्रतिशत अनुसूचित जनजाति से संबंधित थीं। १०.०० प्रतिशत महिलाएं अनुसूचित जाति की पाई गईं। ४.५४ प्रतिशत महिलाएं अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित थीं जबकि मात्र २.७२ प्रतिशत महिलाएं ही सामान्य वर्ग से संबंधित थीं।

कुल ११० महिलाओं में से सर्वाधिक ५६.३६ प्रतिशत महिलाएं मजदूरी करने जाती हैं। ३०.६० प्रतिशत महिलाएं पास के सम्पन्न क्षेत्रों जैसे पिंक सिटी, न्यू पंचशील कॉलोनी, ब्रजेश्वरी एक्सटेंशन आदि में झाड़ू/पोंछा करती हैं। जबकि न्यूनतम ०७.२७ प्रतिशत महिलाएं कुछ अन्य कार्य जैसे फेरी लगाना, छोटी किस्म की दुकान, ठेला लगाना, या कुछ अन्य ऐसे ही निम्न आय वाले कार्यों में काम करती हैं जबकि के ०५.५४ प्रतिशत महिलाएं दुकान चलाती हैं।

कुल ११० महिलओं में से सर्वाधिक ६१.८१ प्रतिशत महिलाएं सामाजिक विवाह को प्राथमिकता देती हैं जबकि प्रेम विवाह का प्रतिशत ८.१८ है।

कुल ११० परिवारो में से सर्वाधिक एकाकी परिवारों का प्रतिशत ६० है जबकि संयुक्त परिवारों का प्रतिशत ४० है।

वर्तमान समय में बढ़ी हुई महंगाई के कारण बड़े परिवारों का जीवन निर्वाह कठिन होता जा रहा है इसलिए व्यक्ति स्वयं अपने परिवार को सीमित करता जा रहा है। अध्ययन में सर्वाधिक ६०.६० प्रतिशत परिवारों की सदस्य संख्या २ से ४ तथा ३८.१८ प्रतिशत परिवारों की सदस्य संख्या ४ से ६ है मात्र एक ६ से ८ सदस्य संख्या वाले परिवारों की संख्या ०.६० प्रतिशत है।

वर्तमान समय में बढ़ी हुई महंगाई के कारण बड़े परिवारों का जीवन निर्वाह कठिन होता जा रहा है, इसलिए व्यक्ति स्वयं का घर बनाने मे समर्थ नहीं। स्पष्ट है कि सर्वाधिक ७७.२७ प्रतिशत परिवार किराये पर रहते हैं एवं १६.०६ प्रतिशत परिवार स्वयं के मकान मे रहते हैं और ०२.०७ परिवार रिस्तेदारों के यहां रहते हैं जबकि ०.६०६ सरकारी मकान मे रहते हैं। सर्वाधिक ५१.८१ प्रतिशत कच्चे मकान मे रहते हैं तथा ४०.६० प्रतिशत अर्द्धपक्के मकान मे रहते हैं तथा ०७.२७ पक्के मकान मे रहते हैं।

मलिन बस्तियों में सर्वाधिक ६१.८१ प्रतिशत विवाह २१ वर्ष मे होते हैं जबकि ०८.१८ प्रतिशत विवाह २५ वर्ष मे होते हैं। ३० से ३५ वर्ष मे कोई भी विवाह नही होते हैं अतः स्पष्ट होता है कि अधिकांश विवाह (६१.८१ प्रतिशत) विवाह मलिन बस्तियों में २१ वर्ष मे हो जाते हैं।

मलिन बस्तियों में ८०.६० प्रतिशत महिलाएं परिवार नियोजन के समस्त साधनों के बारे मे बहुत कम जानती हैं, १२.७२ प्रतिशत महिलाएं परिवार नियोजन के बारे मे सामान्य जानती हैं जबकि ०६.३६ प्रतिशत महिलाएं परिवार नियोजन के समस्त साधनों के बारे मे सम्पूर्ण जानकारी रखती हैं।

मलिन बस्तियों में जागरूकता अभियान आंगनवाड़ी द्वारा चलाया गया जिससे ७२.७२ प्रतिशत महिलाएं लाभान्वित हुई तथा स्वास्थ्य केन्द्र द्वारा १७.२७ प्रतिशत महिलाएं लाभान्वित हुईं साथ ही टी.वी. द्वारा ०५.४५ प्रतिशत एवं एनजीओ द्वारा ०४.५४ प्रतिशत महिलाओं को लाभ हुआ। अतः स्पस्ट होता है कि जागरूकता अभियान मे सर्वाधिक ७२.७२ प्रतिशत महिलाएं ऑगनवाड़ी द्वारा लाभान्वित हुईं।

मलिन बस्तियों में परिवार नियोजन के साधनों का उपयोग हमेशा सर्वाधिक ५२.७२ प्रतिशत परिवारों द्वारा किया जाता है। ४४.५४ परिवारो द्वारा कभी - कभी उपयोग जबकि ०२.७२ परिवारों द्वारा साधनों का उपयोग कभी नही किया गया।

मलिन बस्तियों में सर्वाधिक ४७.२७ प्रतिशत महिलाऐं परिवार नियोजन के लिए नसबंदी करवाती हैं, ३८.१८ प्रतिशत महिलाऐं कण्डोम का उपयोग करती हैं, १०.६० प्रतिशत महिलाऐं कॉपर-टी का उपयोग करती हैं, ३.६३ प्रतिशत महिलाऐं उपरोक्त सभी का उपयोग करती हैं।

मलिन बस्तियों में परिवार नियोजन से स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव ८०.६० प्रतिशत रहा तथा १०.६० प्रतिशत प्रतिकूल प्रभाव रहा जैसे कि स्वास्थ्य पर कुप्रभाव, कमजोरी, मानसिक तनाव, मासिक घर्म मे आदि। ०५.४५ प्रतिशत कोई परिवर्तन नहीं हुआ तथा २.७२ प्रतिशत परिवारों को पता नही।

मलिन बस्तियों में परिवार कल्याण के लिए चलाई जा रही

योजनाओं में ८३.६३ प्रतिशत नसबंदी तथा १०.०० प्रतिशत कण्डोम का इस्तेमाल करते हैं। लाडली लक्ष्मी योजना मे ६.३६ प्रतिशत महिलाओं को कल्याणकारी योजनाओं का लाभ हुआ।

मलिन बस्तियों में परिवार नियोजन का प्रभाव विशेष कर बच्चों के अन्तर में देखा गया जो कि ४३.६३ प्रतिशत है तथा ३५.४५ प्रतिशत उपरोक्त सभी जैसे कि बच्चों में अन्तर, माता के स्वास्थ्य में परिवर्तन, बच्चों का संपूर्ण पोषण आदि तथा १६.३६ प्रतिशत ने बताया कि माता के स्वास्थ्य में परिवर्तन आया है और ०४.५४ प्रतिशत ने बताया कि बच्चो में संपूर्ण पोषण हुआ है।

मलिन बस्तियों में साधनों का उपयोग सर्वाधिक ७५.४५ प्रतिशत परिवारों मे पुरूषों द्वारा किया जाता है और ४४.५४ प्रतिशत परिवारों द्वारा कभी - कभी साधनों का उपयोग किया जाता है जबकि ०२.७२ परिवारों द्वारा साधनों का उपयोग कभी नही किया गया। अतः स्पस्ट होता हे कि मलिन बस्तियों में भी साधनों का उपयोग सर्वाधिक ५२.७२ प्रतिशत तक किया गया।

७५.४५ प्रतिशत महिलाओं के स्वास्थ्य पर अधिक कुप्रभाव पड़ा। जिसका सबसे बडा कारण बार-बार गर्भपात, कमजोरी, मानसिक तनाव आदि बताया गया। एंव २१.८१ प्रतिशत महिलाओं पर मानसिक तनाव होता है एवं १.८१ प्रतिशत महिलाए बार-बार गर्भपात न चाहते हुऐं भी परिवार वालों के दबाव में गर्भपात करवाती है जिसके कारण ००.६० प्रतिशत महिलाओं में कमजोरी आती है।

मलिन बस्तियों में जागरूकता अभियान एन.जी.ओ. द्वारा चालाया जाता है जिससे ६३.६३ प्रतिशत लाभान्वित हुए तथा ३० प्रतिशत महिलाएं उपरोक्त सभी द्वारा लाभांवित हुई। परिवार द्वारा ५.४५ प्रतिशत तथा टी.वी.द्वारा ०.६० प्रतिशत लाभांवित हुई।

परिवार नियोजन को अपनाने से ६८.१८ प्रतिशत तक परिवारों का आकार सीमित हुआ एवं १३.६३ प्रतिशत परिवारो को उपर्युक्त सभी प्रकार के लाभ हुआ ७.२७ प्रतिशत परिवारो के स्वास्थ्य स्तर मे सुधार आया तथा १.८१ प्रतिशत परिवारो को यौन रोगों से मुक्ति मिली।

मलिन बस्तियों में साधनो की उपलब्धता स्वास्थ्य केन्द्र पर ६४.५४ प्रतिशत परिवारो को प्राप्त हुई और ३१.८१ प्रतिशत परिवारों को अन्य स्थानो जैसे मेडिकल द्वारा, एन.जी.ओ. आदि द्वारा एंव ३.६३ प्रतिशत परिवारो को बहुत आसानी से साधनो की उपलब्धता हो जाती है। अतः स्पस्ट होता हे कि मलिन बस्तियों में भी साधनो की उपलब्वता बहुत आसान है।

मलिन बस्तियों में आयरन की गोलियों के इस्तेमाल से ७२.७२ प्रतिशत महिलाओं मे खून की मात्रा बढ़ी एवं २५.४५ प्रतिशत महिलाओं मे उपर्युक्त सभी लाभ हुए। ०.६० प्रतिशत महिलाओं पर कोई प्रभाव नही हुआ तथा ०.६० प्रतिशत महिलाओं ने मोटा होने के लिए आयरन की गोलियों का इस्तेमाल किया।

मलिन बस्तियों में ३४.५४ प्रतिशत महिलाओं द्वारा बच्चों को १ वर्ष तक स्तनपान कराया गया एवं ३२.७२ प्रतिशत महिलाओं ने बच्चों को २ वर्ष तक स्तन पान कराया एवं २२.७२ प्रतिशत महिलाओं ने ६ माह तक और १०.०० प्रतिशत महिलाओं ने ३ माह तक स्तनपान कराया गया जिसका कारण दूध ना आना एवं काम पर जाना बताया गया।

मलिन बस्तियों में साधनों के उपयोग से सर्वाधिक उपरोक्त सभी प्रकार की समस्या ८७.२७ प्रतिशत एवं ०८.१८ प्रतिशत शारीरिक समस्या बताइ गयी एवं ०२.७२ प्रतिशत द्वारा मानसिक जबकि लैंगिक समस्या ०१.८१ परिवारों द्वारा बताई गयी। अतः स्पस्ट होता हे कि मलिन बस्तियों में भी साधनो के उपयोग से उपरोक्त सभी प्रकार की समस्या सर्वाधिक ८७.२७ प्रतिशत परिवारों को हो रही है।

मलिन बस्तियों में परिवार नियोजन के साधनो से होने वाली शारीरिक समस्याओं में उपर्युक्त सभी कारण ८७.२७ प्रतिशत रहे। ६.०६ प्रतिशत मासिक घर्म में समस्याओं २.७२ प्रतिशत मोटापा होना, तथा ०.६० प्रतिशत कमजोरी होने का कारण परिवार नियोजन के साधनों को मानते हैं ।

मलिन बस्तियों में परिवार नियोजन के साधनों से होने वाली मानसिक समस्याओं मे उपरोक्त सभी कारण ८३.६३ प्रतिशत रहे १०.०० प्रतिशत चिड़चिड़ापनं ४.५४ प्रतिशत चिंता तथा १.८१ प्रतिशत आलस्यता का कारण इन साधनों को मानते हैं।

मलिन बस्तियों में परिवार नियोजन के साधनो से होने वाली लैंगिक समस्याओं मे उपर्युक्त सभी कारण ८१.८१ प्रतिशत रहे। ६.०६ प्रतिशत मूत्राशय में जलन, ४.५४ प्रतिशत रक्त स्त्राव होना तथा .५४ प्रतिशत सफेद पानी जाने का कारण इन साधनों को मानते हैं।

मलिन बस्तियों में परिवार नियोजन के साधनों से ६६.०६ प्रतिशत दाम्पत्य जीवन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ जबकि २०.६० प्रतिशत महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव देखा गया। १० प्रतिशत महिलाओं पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया।

मलिन बस्तियों में कुल निरक्षर महिलाएं ५४ प्रतिशत पायी गयी। उसमे से ४३.६३ प्रतिशत महिलाएं बहुत कम जानकारी रखती है एवं २.७२ प्रतिशत महिलाएं सामान्य जानकारी रखती हैं तथा २.७२ प्रतिशत महिलाएं समस्त जानकारी रखती हैं।

मलिन बस्तियों में कुल ८३ पुरूषों द्वारा साधनो का उपयोग किया गया जिसमे से ३.६३ प्रतिशत पुरूषों मे शारीरिक समस्या तथा ०.६० प्रतिशत पुरूषों में मानसिक समस्या पायी गयी। ०.६० प्रतिशत पुरूषो मे लैंगिक समस्या पायी गयी। ७० प्रतिशत पुरूषो मे सभी प्रकार की समस्यायें पायी गयीं।

मलिन बस्तियों में कुल ६ महिलाओ द्वारा साधनो का उपयोग किया गया जिसमे से १.८१ प्रतिशत महिलाओं में शारीरिक समस्या पायी गयी एवं ०.६० प्रतिशत महिलाओं में मानसिक समस्या पायी गयी एवं ०० प्रतिशत महिलाओ मे लैंगिक समस्या पायी गयी एवं ५.४५ प्रतिशत महिलाओं में उपर्युक्त सभी प्रकार की समस्या पायी गयीं।

सुझाव : भारत में जनसंख्या एक प्रमुख समस्या है जो कि एक महत्वपूर्ण मुद्दा बना हुआ है और जब बात मलिन बस्ती की हो तो स्थिति और विकट रूप मे सामने आती है। इसका मुख्य कारण हर व्यक्ति व महिला की परिवार नियोजन के प्रति जागरूकता का अभाव है। शोधकर्ता ने शोध के दौरान यह निष्कर्ष निकाला कि यदि परिवार नियोजन की पूर्ण जानकारी वृह्द स्तर पर सभी जगह हर बस्ती हर गॉव में दी जाये तो इस समस्या को दूर किया जा सकता है और भारत के विकास में सहयोग कर सकते हैं। इस हेतु कुछ सुझाव अग्रलिखित है -

१. स्कूल शिक्षा में यौन शिक्षा को भी जोड़ा जायें।
२. शिक्षा का प्रचार किया जायें।
३. लिंग से संबंधित भेदभाव को दूर किया जाये या समाप्त किया जाये।
४. जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाई जायें।
५. लड़की को भी उत्तराधिकारी का अधिकर दिया जाये।
६. कम उम्र मे विवाह के प्रति सख्त कार्यवाही की जाये।
७. स्त्री पुरूषों के साथ ही किशोर किशोरिकाओं को भी परिवार संबंधित जानकरी दी जाना चाहिए।
८. सरकारी सेवाओं का प्रचार इस प्रकार से किया जाये की आम जनता भी उससे परिचीत हो सके।
९. सरकारी योजनाओं में लगे अधिकारियों का सहयोगपूर्ण रवैया होना चाहिए।
१०. स्वयं सेवी संगठनों को भी सेवाकार्यो मे लगाना चाहिए।
११. स्त्री शिक्षा को भी बढ़ावा दिया जाना चहिए।
१२. मलिन बस्तियों में अस्थाई प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र को स्थापित करना चाहिए।
१३. मलिन बस्तियों के निर्माण पर रोक लगाना चाहिए।
१४. हर व्यवसाय में यह जरूरी कर देना चाहिए की वह अपने यहॉ कार्य कर रहे श्रमिकों की रहने की उचित व्यवस्था करें।
१५. मलिन बस्तियों की स्त्रियों में परिवार नियोजन के बारे मे जो भ्रांति है उसे कार्यकर्ताओं के द्वारा मिलकर वार्ता के माध्यम से दूर करना चाहिए।
१६. मलिन बस्ति मे निवास कर रहे लोगों को सरकारी अनुदान पर आवास उपलब्ध करना चाहिए।
१७. मलिन बस्ती में निवास कर रहे लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने वाले कार्यक्रमों को बढ़ावा देना चाहिए।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

बाल अपराधियों में दुश्चिंता तथा आक्रामकता का तुलनात्मक अध्ययन

❑ डा० विजय कुमार

प्रायः सभी समाजों में कुछ ऐसे लोग पाये जाते हैं जिन्हें सामाजिक नियमों और कानूनों के विरुद्ध आचरण करने में आनन्द मिलता है। ऐसा करने से उनके भीतर समाज विरोधी प्रवृत्ति अंकुरित होने लगती है और कुछ समय बाद वे अपराधी व्यवहारों में लिप्त हो जाते हैं। जब कोई प्रौढ़ व्यक्ति नियमों का उल्लंघन कर समाज विरोधी व्यवहार करता है तो उसके आचरण को अपराध की संज्ञा दी जाती है। परन्तु जब ऐसे व्यवहार अल्प आयु वालों अर्थात् बालकों द्वारा किया जाता है तो उसे बाल-अपराध कहा जाता है। बाल अपराधी सामाजिक नियमों और कानूनों के विरुद्ध बिना समझे-बूझे और अपनी तात्कालिक इच्छा पूर्ति से प्रेरित होकर अवांछित आचरण करते हैं। परन्तु उनके समाज विरोधी आचरण समाज को कभी-कभी बहुत गम्भीर क्षति पहुंचाते हैं।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किशोरावस्था को तूफान, शारीरिक-मानसिक परिवर्तनों, उपद्रवों व तनाव की अवस्था कहा है और इसी अवस्था में किशोर प्रौढ़ों की तरह परिपक्वता की ओर बढ़ते हैं। इस अवस्था में किशोरों में कई प्रकार की दुश्चिंता, तनाव आदि की मात्रा बढ़ जाती है। यद्यपि उनमें आक्रामकता व दुश्चिंता का स्तर अलग-अलग होता है। प्रस्तुत अध्ययन बाल अपराधी बालकों तथा बालिकाओं में दुश्चिंता तथा आक्रमकता का तुलनात्मक अध्ययन का एक प्रयास है।

किशोरावस्था बालक के विकास क्रम में आने वाली वह अवस्था है जिसमें प्रविष्ट हो जाने पर बालक न तो बालक ही रह जाता है और न उसे प्रौढ़ कहा जा सकता है। इस अवस्था में बाल्यावस्था की प्रायः सभी शारीरिक और मानसिक विशेषताओं का लोप हो जाता है। उनके स्थान पर नवीन गुणों का अविर्भाव होने लगता है विशेष रूप से किशोरों के भीतर शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा मानसिक चार प्रकार के परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। किशोरावस्था महत्वपूर्ण परिवर्तनों की अवस्था है और इस अवस्था में पहुंचकर बालक तेजी से विकास की पूर्णता की ओर बढ़ने लगता है। 'Adolescence' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के Adolescere से हुई है जिसका अर्थ ''परिपक्वता की ओर बढ़ना है।'' आधुनिक युग में किशोरावस्था के अन्तर्गत भौतिक परिपक्वता के साथ-साथ मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक परिपक्वता का अध्ययन किया जाता है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से किशोरावस्था १३-१४ वर्ष से लेकर १६-१७ वर्ष तक की मानी गयी है। किशोरावस्था शारीरिक, मानसिक, व सामाजिक परिवर्तन की वह अवस्था है जो बालक के विकास पर सीधा प्रभाव डालती है। तेजी से बढ़ना, आवाज में परिवर्तन, यौन परिपक्वता आदि का बालक के जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। शारिरिक परिवर्तन के साथ मानसिक परिवर्तनों की शुरूआत हो जाती है चाहें वे प्रत्यक्ष हों या अप्रत्यक्ष। इस अवस्था में यदि बालक अपनी योग्यता और क्षमता को सही से अर्जित नहीं कर पाता है तो वह अपने अन्दर हीन भावना महसूस करता है। बालकों का सामाजिक विकास बहुत कुछ उनके स्वास्थ्य व शारीरिक रचना पर निर्भर करता है। अस्वस्थ, कुरुप और कुंठित विकास वाले बालकों की अपेक्षा स्वस्थ व सुन्दर बालकों का विकास सामान्य रूप से होता है। परिवार की सामाजिक और आर्थिक स्थिति उसका आकार, आस-पड़ोस, विद्यालय आदि का प्रभाव भी बालक के सामाजिक विकास पर पड़ता है। स्वस्थ व स्वच्छ वातावरण व संतुलित व्यवहार का अभाव बालक के जीवन पर नकारात्मक प्रभाव डालता है उसके भीतर अनेकों असामाजिक प्रवृतियां उत्पन्न हो जाती हैं और वे झूठ बोलना, चोरी करना, झगड़ा, अपराध आदि की ओर उन्मुख हो जाते हैं। लड़कियों में यह अवस्था १३ वर्ष की आयु से प्रारम्भ होती है और लड़को में लगभग एक वर्ष बाद अर्थात् १४ वर्ष से प्रारम्भ होती है।

जर्सील्ड के अनुसार-''किशोरावस्था वह समय है जिसमें विकासशील व्यक्ति बाल्यावस्था से परिपक्वता की ओर बढ़ता है।''[१] हरलॉक के अनुसार- ''प्रारम्भिक किशोरावस्था आँधी और तनाव की अवस्था है। इस अवस्था में संरक्षकों, मित्रों और अध्यापकों से अनेक प्रकार से अनबन होती है तथा इस अवस्था का किशोर पहले की अपेक्षा अधिक संवेगात्मकता का अनुभव करता है। किशोर एक भिन्न प्रकार का व्यक्ति होता है।''[२]

सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए कुछ कानून होते हैं इन कानूनों का पालन करना सबके लिए अनिवार्य होता है चाहें

❑ प्रवक्ता मनोविज्ञान, त्रिलोक चंद्र डिग्री कालेज, चिटौली, फतेहगंज पश्चिमी, बरेली (उ.प्र.)

वह वयस्क हो या बालक। अगर वयस्क उन कानूनों की अवेहलना करके समाज विरोधी कार्य करता है तो उसका कार्य अपराध की श्रेणी में आता है यदि बालक या किशोर इस प्रकार का कार्य करता है तो उसका यह कार्य बाल अपराध या किशोर अपराध कहलाता है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के महानगर बरेली में स्थित किशोर सुधारगृह के बाल अपराधी बालक बालिकाओं पर आधारित है। किशोर गृह से दैव निदर्शन विधि द्वारा ३० बालक तथा ३० बालिकाएं कुल ६० का चयन किया गया। साक्षात्कार अनुसूची माध्यम से सूचनाओं का संकलन किया गया।

किशोर अपराध की कानूनी परिभाषा - ओहियो कोड-यू. एस.ए. ने किशोर अपराध की परिभाषा इस प्रकार दी है "किशोर अपराध वह है जो कानून भंग करता है, आवारागर्दी करता है, आज्ञा का उल्लंघन करने में अभ्यस्त है जिसके व्यवहार से उसका अपना तथा दूसरों का नैतिक जीवन खतरे में पड़ता है अथवा जो अपने माता-पिता या अभिभावकों की अनुमति के बिना विवाह करने की कोशिश करता है।"[३]

किशोर अपराध की भारत में निम्न आयु ७ वर्ष और अधिकतम आयु १६ वर्ष निश्चित है। ये अधिनियम उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, मद्रास,बम्बई, मैसूर, दिल्ली, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा व पूर्वी पंजाब में बनाये जा चुके हैं। जिन राज्यों में किशोर अधिनियम नहीं बना है या लागू नहीं हुआ है उनमें १८९७ का रिफारमेंटरी स्कूल अधिनियम लागू है। इसमें किशोर अपराधी की अधिकतम आयु १५ वर्ष निश्चित की गई है।

अपराधी की मनोवैज्ञानिक परिभाषा : हैकरवाल के अनुसार "सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध या किशोर अपराध व्यक्ति का ऐसा व्यवहार है जो उन मानवीय सम्बन्धों की व्यवस्था में बाधा डालता है जिनको समाज अपने अस्तित्व की मौलिक दशा मानते हैं।"[४] इस तरह अगर अपराधी निश्चित आयु से कम है तो वह किशोर अपराधी कहा जायेगा और अगर कानून द्वारा निश्चित आयु से अधिक है तो वह अपराधी कहा जायेगा।

दुश्चिन्ता- दुश्चिन्ता प्रतिक्रिया के प्रत्यक्ष कारण के न होते हुए भी व्यक्ति में आशंका की ऐसी स्थिति का बोध होता है कि जिससे व्यक्ति में आन्तरिक रूप से तनाव उत्पन्न होता है। जिसे कम करने के लिए व्यक्ति तीव्र शारीरिक क्रियाओं का सहारा लेता है इससे व्यक्ति का तंत्रिका तंत्र भी एक तरह की तनाव की स्थिति में ही बना रहता है और इसी कारण ऐसी स्थिति में व्यक्ति कई असंगत क्रियाएं भी करते देखे जाते हैं। बहुत बार दुश्चिन्ता इतनी बढ़ जाती है कि वह व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने लगती है।

आक्रामकता- आक्रामक व्यवहार ऐसा व्यवहार है जो मनुष्य अथवा पशु दोनों में पाया जाता है। बस के अनुसार "आक्रामकता ऐसी अनुक्रिया है जो दूसरे श्रेणी को एक अनिष्टकर उद्दीपन प्रदान करता है।"[५] मेयर्स के अनुसार "आक्रामकता एक ऐसा शारीरिक या शाब्दिक व्यवहार होता है जिसका उद्देश्य दूसरों को चोट पहुँचाना होता है।"[६]

किशोर एवं किशोरियों के आक्रामक व्यवहार में अन्तर- मैकोवी एवं जैकलिन के अनुसार "लड़के-लड़कियों की तुलना में अधिक आक्रामक व्यवहार करते देखे जाते हैं। लड़के और लड़कियों के आक्रामक व्यवहार के स्वरूप में एक और भिन्नता पायी जाती है। लड़कियों की तुलना में लड़कों में आक्रमण के बाद बदला लेने की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। जब किसी लड़के द्वारा आक्रमण किया जाता है तब आक्रामकता के घटित होने की सम्भावना अधिक रहती है, अपेक्षाकृत उस समय जब किसी लड़की द्वारा आक्रमण किया जाता है। महिला एवं पुरुष दोनों के संदर्भ में आक्रामकता को सापेक्षित रूप से स्थायी पाया जाता है। वास्तव में, आक्रामकता बुद्धि की ही तरह स्थिर है। दोनों लिंगों के लिये, न्यूनतम समय अवधि के लिये स्थिरता अधिक पायी जाती है। जैसे-जैसे मूल्यांकन समय बढ़ता जाता है स्थिरता में कमी आती जाती है।"[७] केगंन एवं मॉस के अनुसार ने एक प्रारम्भिक दीर्घकालिक अध्ययन में लड़कों के आक्रामक व्यवहार में अधिक मात्रा में स्थिरता प्राप्त की। सम्भवतः परिवर्तित सामाजिक मूल्यों के कारण वर्तमान में लड़कियों की आक्रामकता में भी अधिक स्थिरता पायी जाती है।"[८]

आक्रामकता के विकास में अनेक जैविक एवं वातावरणीय तत्व प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं जैसे परिवार, संचार, माध्यम। बचपन और किशोरावस्था मनुष्य के विकास की एक निश्चित प्रतिमान पर संयोजित होने की अवस्था है जिसके दौरान उन्हें सामाजिक एवं वैयक्तिक आकार प्रदान किया जाता है और वह सामाजिक मानकों को ग्रहण करता है जिसका प्रभाव उसके विचारों, मनोभावों एवं क्रियाओं पर पड़ता है। यह औपचारिक रूप से सामाजिक मूल्यों की शिक्षा प्रदान करने का प्रमुख समय है। ये मूल्य व्यक्ति के सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहारों को प्रभावित करते हैं और उनके सभी प्रयत्नों पर दूरगामी प्रभाव छोड़ते हैं।[९] प्रधान मूल्य लोगों के विश्वास एवं अभिवृत्तियों को प्रभावित करते हैं तथा उनके व्यवहार एवं जीवनशैली में प्रतिबिम्बित होते हैं।[१०] बाल्यकाल में हमें अपने आस-पास की

दुनिया से अनेक प्रकार की सकारात्मक एवं नकारात्मक सूचनायें प्राप्त होती हैं और हमारे ज्ञान का हिस्सा बनती हैं। जिनके अपने तरह के सकारात्मक एवं नकारात्मक परिणाम होते हैं। जनसंचार माध्यमों से संतृप्त विश्व में आज लोग जीवन-यापन कर रहे हैं। संचार माध्यम हमारे दैनिक जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं और बच्चे सप्ताह में लगभग ३५-३५ घण्टे प्रति सप्ताह संचार माध्यमों के अलग-अलग स्वरूपों के सम्पर्क में होते हैं।[११] अनुसंधान बताते हैं कि असंगठित एवं बिना देखरेख की गतिविधियों में गुजरने वाले बच्चों का ज्यादातर समय उन्हें समाज विरोधी मूल्यों से सम्बद्ध होने का अवसर उपलब्ध कराता है, जिसके परिणाम स्वरूप आगे चलकर बाल अपराध का विकास होता है।[१२]

बाल अपराधी बालकों तथा बाल अपराधी बालिकाओं में दुश्चिंता का तुलनात्मक अध्ययन करने पर प्राप्त हुये मध्यमान, मानक विचलन व टी.मान।

तालिका नं. १

श्रेणी	संख्या	मध्यमान	मानक विच.	टी.मान
बालक	३०	२६.३३	१६.४३	४.२६
बालिकाएं	३०	४५.६३	१३.००८	

०.१ विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक

तालिका नं. १ का विश्लेषण करने पर दोनों समूहों का टी. मूल्य ४.२६ प्राप्त हुआ जो कि ०.०१ विश्वसनीयता स्तर से अधिक है। अतः हम निष्कर्ष स्वरूप यह कह सकते हैं कि दोनों समूहों में दुश्चिन्ता में सार्थक अन्तर है। जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना की अस्वीकृति होती है जिससे यह स्पष्ट होता है कि दोनों समूहों के बीच दुश्चिन्ता का स्तर समान नहीं है। दोनों समूहों के मध्यमानों के आधार पर कह सकते हैं कि बाल अपराधी बालिकाओं में बालकों की अपेक्षा दुश्चिन्ता का स्तर अधिक पाया गया। मेयर्स तथा उनके सहयोगियों के अनुसार भीषिका विकृति की दर पुरुषों में (०.७ प्रतिशत) पायी गयी तथा महिलाओं में १.० प्रतिशत पायी गयी। यह अध्ययन इस परिणाम को समर्थित करता है।

बाल अपराधी बालकों तथा बाल अपराधी बालिकाओं में आक्रामकता का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् प्राप्त मध्यमान, मानक विचलन व टी.मान।

तालिका नं. २

श्रेणी	संख्या	मध्यमान	मानक विच.	टी.मान
बालक	३०	४८.७७	३.५६६	५.५६
बालिकाएं	३०	४४.०७६	२.६०६	

०.१ विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक

तालिका नं. २ का विश्लेषण करने पर दोनों समूहों का टी. मूल्य ५.५६ प्राप्त हुआ जो कि ०.०१ विश्वसनीयता स्तर से अधिक है। दोनों समूहों में आक्रामकता में सार्थक अन्तर है। जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है जिससे स्पष्ट होता है कि दोनों समूहों के बीच आक्रामकता का स्तर समान नहीं है। दोनों समूहों के मध्यमान के आधार पर पता चलता है कि बाल अपराधी बालकों में बालिकाओं की अपेक्षा आक्रामकता का स्तर अधिक पाया गया।

तालिका नं. ३

आक्रामकता की एग्ज्यूल्ट विमा का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	संख्या	मध्यमान	मानक विच.	टी.मान
बालक	३०	६.७	१.५	०.२७
बालिकाएं	३०	६.६	१.४	

०.०५ विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक

तालिका नं. ३ का विश्लेषण करने पर दोनों समूहों का टी. मूल्य ०.२७ प्राप्त हुआ जो कि ०.०५ के विश्वसनीयता स्तर से कम है। अतः हम कह सकते हैं दोनों समूहों में आक्रामकता की एग्ज्यूल्ट विमा पर कोई सार्थक अन्तर नहीं है। जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना की स्वीकृति होती है अतः दोनों समूहों के मध्यमानों के आधार पर कह सकते हैं कि दोनों समूहों में एग्ज्यूल्ट विमा का स्तर समान है।

तालिका नं. ४

आक्रामकता की अप्रत्यय विमा का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	संख्या	मध्यमान	मानक विच.	टी.मान
बालक	३०	४.७	२.१६	१.०
बालिकाएं	३०	५.८	१.७	

०.०५ विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक

तालिका नं. ४ में टी. मूल्य १ प्राप्त हुआ जो ०.०५ विश्वसनीयता स्तर से कम है अतः दोनों समूहों में अप्रत्यय आक्रामकता का स्तर समान है।

तालिका नं. ५

आक्रामकता की चिड़चिड़ाहट विमा का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	संख्या	मध्यमान	मानक विच.	टी.मान
बालक	३०	५.७	१.४६	०.५
बालिकाएं	३०	५.६	१.२३	

०.०५ विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक

तालिका नं. ५ के विश्लेषण से पता चलता है टी. मूल्य ०.५ प्राप्त हुआ जो ०.०५ विश्वसनीयता स्तर से कम है अतः स्पष्ट है दोनों समूहों में चिड़चिड़ाहट विमा का स्तर समान है।

तालिका नं. ६

आक्रामकता की नकारात्मकता विमा का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	संख्या	मध्यमान	मानक विच.	टी.मान
बालक	३०	३.२	१.२४	१.६
बालिकाएं	३०	३.७	१.०८	

०.०५ विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक

तालिका नं. ६ के विश्लेषण से पता चलता है टी. मूल्य १.६ प्राप्त हुआ जो कि ०.०५ विश्वसनीयता स्तर से कम है अतः स्पष्ट है कि दोनों समूहों में आक्रामकता की नकारात्मकता का स्तर समान है।

तालिका नं. ७

आक्रामकता की तात्कालिक विमा का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	संख्या	मध्यमान	मानक विच.	टी.मान
बालक	३०	३.८	१.६	
बालिकाएं	३०	४.३	१.६	१.२५

०.०५ विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक

तालिका नं. ७ का विश्लेषण करने पर टी. मूल्य १.२५ प्राप्त हुआ जो कि ०.०५ विश्वसनीयता स्तर से कम है। स्पष्ट है कि दोनों समूहों में तात्कालिक विमा का स्तर समान है।

तालिका नं. ८

आक्रामकता की संदिग्ध विमा का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	संख्या	मध्यमान	मानक विच.	टी.मान
बालक	३०	५.७	१.८	१.४
बालिकाएं	३०	६.४	१.७	

०.०५ विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक

तालिका नं. ८ के विश्लेषण से टी. मूल्य १.४ प्राप्त हुआ जो कि ०.०५ विश्वसनीयता स्तर से कम है। अतः दोनों समूहों की संदिग्ध विमा समान है।

तालिका नं. ९

मौखिक आक्रामकता की विमा का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	संख्या	मध्यमान	मानक विच.	टी.मान
बालक	३०	६.५	१.६	३.७
बालिकाएं	३०	४.६	१.७	

०.०१ विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक

तालिका नं. ९ के विश्लेषण से टी. मूल्य ३.७ प्राप्त हुआ जो कि ०.०१ विश्वसनीयता स्तर से अधिक है। अतः स्पष्ट है बाल अपराधी बालकों में बाल अपराधी बालिकाओं की अपेक्षा मौखिक आक्रामकता का स्तर अधिक पाया जाता है।

तालिका नं. १०

आक्रामकता की कुण्ठा विमा का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	संख्या	मध्यमान	मानक विच.	टी.मान
बालक	३०	५.५	१.६	०.०४
बालिकाएं	३०	५.७	१.८६	

०.०५ विश्वसनीयता स्तर पर सार्थक

तालिका नं. १० के विश्लेषण से टी. मूल्य ०.०४ प्राप्त हुआ जो कि ०.०५ के विश्वसनीयता स्तर से कम है। अतः स्पष्ट है दोनों समूहों में कुण्ठा विमा का स्तर समान है।

निष्कर्ष : अतः उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि बाल अपराधी बालक व बाल अपराधी बालिकाओं में दुश्चिन्ता तथा आक्रामकता की तीव्रता का अन्तर अलग-अलग होता है। अतः अपराध की प्रवृत्ति दोनों में अलग-अलग पायी जाती है।

संदर्भ

१. जर्सील्ड १९७८: उद्धृत, डी.एन. श्रीवास्तव, प्रीती वर्मा, 'बाल मनोविज्ञान : बाल विकास', अग्रवाल पब्लीकेशन्स, आगरा, २००९, पृ. ३७१।

२. हरलॉक १९६४: उद्धृत डी.एन. श्रीवास्तव, प्रीती वर्मा, वही, पृ. ३७४

३. उद्धृत सिंह पूनम, 'बाल अपराधियों में दुश्चिंता तथा आक्रामकता का तुलनात्मक अध्यन' परियोजना रूलेखण्ड वि.वि., बरेली १९१२-१३

४. Haikerwal: Economic and Social Aspects of Crime in India, Delhi, 1934, p. 27.

५. Buss: The Phychology of Aggression, Wiley, Newyork, 1961, p.3.

६. Myers: D.G., 'Social Psychology' 1988, Feingold A. 'Matching for attractiveness in romantic partners' and Myers D.G. and Arenson S.J., 'Enhancement of dominant risk tendencies in group discussion', 1972, p. 395.

७. मैकोवी एवं जैकलिन १९८०: उद्धृत पूनम सिंह, पूर्वोक्त

८. केगंन एवं मॉस १९६२: उद्धृत पूमन सिंह, परियोजना पूर्वोक्त

९. Rokeach. M , The Nature of Human attitudes, Free Press, New York, 1973, p. 438

१०. Terminal core 'Values associated with adolescent problem behavior'. Adolescence 43 (133), pp. 47-60.

११. Strassburger B., 'Adolescent and the Media Sage California', 1995, p.2.

१२. Yin, Z., Katims, D.& Zapata, J., 'Participation in leisure activities and involvement in delinquency by Maxical Americal Adolescents, Hispanic Journal of Behavioural Sciences': May 1999-21(2), 1999 pp.170-185.

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

महिला उद्यमियों की पारिवारिक भूमिका एवं द्वन्द

❑ डा० ऋतु सक्सेना
○ डा० प्रभा शर्मा

भारतीय समाज में महिलाओं की द्वन्दग्रस्त जीवन शैली का मूल्यांकन इनकी पारिवारिक भूमिका दायित्वों में ही सम्भव है। परिवार में महिलाओं की भूमिका माँ एवं पत्नी के रूप में महत्वपूर्ण होती है। पुरुष एवं स्त्री को प्राप्त आर्थिक, नैतिक अधिकार एवं सामाजिक प्रतिमान के अनुसार प्रस्थिति के व्यावहारिक स्वरूप, परिवार के क्रिया-कलापों में घटित होते हैं। परिवर्तनों के बावजूद महिलाओं को पारिवारिक भूमिकाओं का निर्वाह करते हुए परम्परागत लैंगिक असमानता का भी सामना करना पड़ता है। आधारभूत आवश्यकताओं जैसे भोजन और स्वास्थ्य में महिलाओं को मिलने वाला कम भाग, संसाधन संग्रह में सहभागिता, उसके पुनर्वितरण में असमानता, बच्चों के लिए पौष्टिक आहार की जिम्मेदारी और निर्धन पारिवारिक दशाओं में मुख्यतः माता की आय पर बच्चों की निर्भरता एवं उनकी अशिक्षा कुछ ऐसे पक्ष हैं जो महिला उद्यमियों को आजीवन द्वन्द से ग्रस्त रखते हैं। फिर सामंजस्य की समस्यायें उत्पन्न होती हैं, ऐसी समस्याओं के दो पक्ष होते हैं, पहला भौतिक दूसरा वैचारिक पक्ष। यदि पारिवारिक साधन पर्याप्त मात्रा में होते हैं तो बदलती हुई परिस्थिति में सामंजस्य सरलता से स्थापित होने लगता है। परिवार से जो नई माँग-पूर्ति की अपेक्षा की जाती है, उनकी पूर्ति परिवार अपने साधनों से करता है, लेकिन निर्धन पारिवारिक आर्थिक कठिनाइयों से उबरने की मनोवृत्ति के लिए महिलायें उद्यम के लिए उतरती हैं। निर्धन परिवारों में उनके उद्यम के पीछे लक्ष्य होता है, भरण-पोषण हेतु आर्थिक उपक्रम। व्यस्तता अथवा आत्मसंतोष जैसी उपलब्धियों के लिए उन्हें कठोर श्रम करते हुए नहीं देखा जाता।

> आज के भौतिकवादी परिवेश में पत्नी का कामकाजी होना एक अनिवार्यता सी बन गयी है। घर की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये पति और पत्नी दोनों का ही कार्य करना आवश्यक हो गया है जिससे पत्नी की परम्परागत प्रस्थिति व भूमिका में परिवर्तन आये हैं। बाहर जाकर कार्य करने के कारण पत्नी को घर और बाहर दोनों ही क्षेत्रों की भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है जिससे कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आती है कि दोनों भूमिकाओं में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है या एक पद से सम्बन्धित दायित्व का निर्वाह करते हुये दूसरे पद से सम्बन्धित दायित्वों का उचित रूप से निर्वाह नहीं हो पाता और महिलाएं अपनी भूमिका में द्वन्द्व का अनुभव करती हैं। प्रस्तुत लेख महिलाओं की इसी द्वन्द्वात्मक मनोस्थिति को समझने का प्रयास है।

आर्थिक कठिनाइयों से उबरने हेतु बहुत सी स्त्रियाँ उद्यम करती हैं जिससे उनका परिवार आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त रहे, लेकिन आज के समाज में स्त्रियाँ सिर्फ लाभ की दृष्टि से उद्यम नहीं करती हैं वरन अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करके, समाज में प्रतिष्ठा, स्वतंत्र रहने की चाहत तथा स्वावलम्बी बनने के उद्देश्य से भी व्यवसाय करना चाहती हैं, जिसका परिणाम कभी-कभी ऐसा भी होता है, कि घर के सदस्यों को उनके कार्योजन पर जाने से परेशानी होने लगती है, ऐसी स्थिति में घर के सदस्य कोई उपाय ढूंढ लेते हैं, जैसे पति घरेलू कार्यों में सहयोग करते हैं, छोटे बच्चों को माँ की अनुपस्थिति में कष्ट होता है, जिसके लिए कार्योजित महिलायें सर्वदा चिंतित भी रहती हैं, लेकिन वे भी उस परिस्थिति से समायोजन का कोई न कोई स्वरूप निकाल ही लेती हैं।[1]

महिलाओं के कार्य करने से जो सहायता प्राप्त होती है, उससे परिवार के सदस्य वंचित नहीं रहना चाहते हैं। अतः थोड़ी बहुत परेशानियों को ध्यान नहीं देते। घर के अन्य सदस्यों को जिन परेशानियों का सामना करना पड़ता है, उसमें भी वह अपने को समायोजित करने का प्रयास करते हैं।[2]

प्रमिला कपूर[3] के अध्ययन से पता चलता है कि कार्योजित महिलाओं को स्वयं के द्वारा अर्जित धन को खर्च करने की स्वतंत्रता नहीं होती है, उन्हें यह धन घर के सदस्यों को दे देना पड़ता है, न देने पर घर में कलह या तनाव की स्थिति पैदा हो जाती है।

कला रानी[4] के अध्ययन विभिन्न अवस्थाओं में महत्वपूर्ण हैं। कैसे कार्य करने वाली महिलायें घर एवं बाहर की जिम्मेदारी को निभाती हैं और कैसे दोनों अवस्थाओं के कारण द्वन्द उत्पन्न होता है, अधिकतर महिलायें अपनी पुरानी व्यवस्था पर जोर देती हैं। इनका मत है कि आवश्यकता पूर्ति हेतु जो स्त्री कार्योजन में आती है वह अधिक द्वन्द ग्रस्त होती है। ये अपने बच्चों तथा घर परिवार के

❑ प्रवक्ता समाजशास्त्र, त्रिलोक चन्द्र डिग्री कालेज, फतेहगंज पश्चिमी, बरेली (उ.प्र.)
○ असोशिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर (उ.प्र.)

बारे में अधिक चिंतित रहती हैं।

शोध प्रारूपः प्रस्तुत अध्ययन हेतु उत्तर प्रदेश राज्य के रामपुर जनपद के मुख्यालय का चयन किया गया। रामपुर में पंजीकृत कुछ ४६ महिला उद्यमियों में से २० प्रतिशत अर्थात ०६ तथा गैर पंजीकृत लगभग ३०० उद्यमियों में से ६० प्रतिशत अर्थात् १८० कुल मिलाकर १८६ महिला उद्यमियों का दैव निदर्शन विधि द्वारा चयन किया गया। अध्ययन में गणना में सुगमता की दृष्टि से पंजीकृत महिला उद्यमियों की संख्या १० तथा गैर पंजीकृत महिला उद्यमियों की संख्या १६० ली गई। इस प्रकार कुल २०० महिला उद्यमियों को निदर्शन में सम्मिलित किया गया। अध्ययन के अंतर्गत प्राथमिक तथा द्वैतीयक दोनों ही स्रोतों का सूचना संकलन हेतु प्रयोग किया गया। प्राथमिक सूचनाओं का संकलन साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया। द्वैतीयक सूचनाओं का संकलन सरकारी रिकार्ड, आयोगें की रिपोर्ट, शोध प्रबंध आदि की सहायता से किया गया।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर महिला उद्यमियों से यह जानने का प्रयत्न किया है कि उनके परिवार में सदस्यों से पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार के हैं। इस प्रश्न के उत्तरों को निम्न सारिणी संख्या १ में दर्शाया गया है-

सारिणी संख्या-१

परिवार में सदस्यों से पारस्परिक सम्बन्ध

पारिवारिक सदस्यों से संबंध	आवृत्ति	प्रतिशत
शांतिपूर्ण	८८	४४
सहयोगपूर्ण	१०८	५४
संघर्षपूर्ण	०४	२
योग	२००	१००

उक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि इस बदलते परिवेश में कार्यकारी महिलायें जो परिवार को आर्थिक सहयोग प्रदान करती हैं जिसके कारण उनकी भूमिकाओं में परिवर्तन आया है उस भूमिका द्वन्द को परिवार के सदस्यों ने भी समझा है। ४४ प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं के अनुसार उनके परिवार के सदस्यों से सम्बन्ध शांतिपूर्ण हैं, ५४ प्रतिशत महिला उद्यमियों के सम्बन्ध सहयोगपूर्ण हैं मात्र २ प्रतिशत महिलाओं के परिवार के सदस्यों से सम्बन्ध संघर्षपूर्ण हैं। स्पष्ट है कि अधिकतर कार्यशील महिलाओं के परिवार के सदस्यों से सम्बन्ध अच्छे रहते हैं जिसके कारण वह अपनी भूमिका का निर्वाह ठीक प्रकार से करती हैं।

भारत में प्रारम्भ से ही महिलायें घरेलू कार्य में व्यस्त रहती हैं लेकिन उनके व्यवसायरत् होने के कारण पारिवारिक व्यवस्था में भी बदलाव आ जाता है। महिलायें अपना पूरा समय परिवार को देने में असमर्थ होती हैं क्योंकि उन्हें अपने व्यवसाय में भी समय देना होता है तथा महिला उद्यमी को व्यापारिक कार्य व घरेलू कार्य करने के बाद थकान व नीरसता अधिक कार्य के कारण चिड़चिड़ापन आदि के कारण पारिवारिक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और पारिवारिक सामंजस्य नष्ट होने के कगार पर पहुँच जाता है। अतः कार्यकारी महिलाओं से पूछा गया कि क्या कार्यशील होने के कारण उनके परिवार में तनाव की स्थिति है-

सारिणी संख्या-२

कार्यशील होने के कारण परिवार में तनाव

कार्यशील होने से उत्पन्न तनाव	आवृत्ति	प्रतिशत
नहीं	२२	११.०
बिल्कुल नहीं	११६	५६.५
कभी-कभी	५५	२७.५
सदैव	४	२.०
योग	२००	१००.०

उपर्युक्त सारिणी का निरीक्षण करने से स्पष्ट होता है कि ५६.५ प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं के परिवारों में तनाव की स्थिति बिल्कुल नहीं होती है, ११ प्रतिशत के अनुसार परिवार में तनाव नहीं होता है। २७.५ प्रतिशत के अनुसार तनाव की स्थिति कभी-कभी उत्पन्न हो जाती है। केवल २ प्रतिशत उत्तरदाताओं के कार्यकारी होने के कारण परिवार में सदैव तनाव की स्थिति बनी रहती है। इससे स्पष्ट होता है कि परिवार के सदस्यों से तनाव को कामकाजी महिलाएं आपसी सहयोग से कम करने एवं पारिवारिक सामंजस्य बनाये रखने में समर्थ होती हैं।

पत्नी के व्यवसाय के प्रति पति के उभयभाव दृष्टिकोण से सम्बन्धित यह खोज दुबे[४] के कथन के अनुकूल है। वे लिखते हैं कि महिलाओं की प्रासंगिक आर्थिक स्वतन्त्रता के प्रति इस प्रगति को बहुत से पुरुष उभयभावी के रूप में देखते हैं जिनमें कुछ पाश्चात्य शिक्षित भी शामिल हैं। एक कामकाजी पत्नी आर्थिक रूप से उपयोगी है, यदि वह उच्च पद पर काम करती है तो उसकी एक विशेष सामाजिक प्रस्थिति भी है लेकिन उसका दूसरे लोगों के साथ विशेषकर परपुरुषों के साथ मिलना जुलना उचित नहीं समझा जाता। बाहर के कार्यों के कारण उसके व्यस्त रहने से परम्परागत घरेलू दायित्वों की कुछ अवेहलना होती है और उसकी इस अवेहलना के कारण

प्रतिकूल प्रतिक्रिया दिखाई जाती है। कामकाजी महिलायें स्वयं भी अपनी दोहरी भूमिका के निर्वाह में कठिनाई अनुभव करती हैं और इनमें से कुछ तो अपनी नयी भूमिका के कुछ 'पुरुषोचित' पहलुओं से पूरी तरह प्रसन्न नहीं हैं।

उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य में महिला उद्यमियों से उनके व्यवसायरत् होने के फलस्वरूप उनके पति के साथ संबंधों से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित की गयी। अध्ययन में ५० सूचनादाता अविवाहित हैं अतः सारणी में योग १५० प्रदर्शित है।-

सारिणी संख्या-३

महिला उद्यमियों के साथ पति का व्यवहार

पतियों का व्यवहार	आवृत्ति	प्रतिशत
दोस्ताना	२०	१३.३
मधुर	३०	२०.०
संघर्षपूर्ण	८	५.३
सहयोगपूर्ण	७३	४८.७
सामान्य	१८	१२.०
तटस्थ	१	०.७
योग	१५०	१००.०

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि आधे से कम ४८.७ प्रतिशत महिला उद्यमियों के अनुसार उनके तथा उनके कार्य के प्रति उनके पति का व्यवहार सहयोगपूर्ण होता है तथा वे उनको कार्य के लिये प्रोत्साहित भी करते हैं। १३.३ प्रतिशत पति उनके तथा उनके व्यवसाय के प्रति दोस्ताना व्यवहार रखते हैं तथा २० प्रतिशत महिलाओं के पति का उनके तथा उनके व्यवसाय के प्रति मधुर व्यवहार रहता है। २२ प्रतिशत के अनुसार अनुसार उनके पति का उनके कार्य तथा उनके प्रति व्यवहार सामान्य है, तथा केवल ५.३ प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उनके तथा उनके व्यवसाय के प्रति उनके पति का व्यवहार संघर्षपूर्ण रहता है।

पति-पत्नी की भूमिका एवं दायित्व - भारतीय समाज शताब्दियों तक परंपराओं में जकड़ा रहा है और यह जकड़ समाज के बहुत बड़े अंश को आज भी बुरी तरह प्रभावित किये हुये है। यद्यपि समकालीन भारतीय समाज में पति-पत्नी के पारस्परिक दर्जे तथा उनकी भूमिका के सम्बन्ध में परम्परागत धारणायें शनैः-शनैः बदल रही हैं।

एक रूढ़िगत परिवार की सामाजिक संरचना में पति-पत्नी के आपसी सम्बन्धों का एक विशिष्ट ढाँचा यह स्वीकार किया गया है कि 'पुरुष का प्रभुत्व रखना और नारी का अधीनस्थ होना' पति अपनी पत्नी की अपेक्षा उच्च स्तर रखता है और सभी मुख्य बातों में निर्णय निर्धारण की भूमिका निभाने का एकाधिकार उसको ही प्राप्त है। पारिवारिक वृत्त चाहें एकाकी हो या संयुक्त पत्नी को मुख्यतः विभिन्न भूमिकाओं के अनुरूप अपनी अपेक्षाओं व दायित्वों की पूर्ति में ही अपनी दिनचर्या पूरी करनी होती है। अपने घर से बाहर एक कामकाजी महिला की भूमिका अपना लेने के साथ ही उसने अपने पद में वृद्धि कर ली है। इस नये पद की वजह से उसके साथ अपेक्षाओं की एक नवीन श्रृंखला जुड़ गयी है जो उसके आश्रयी लोगों की भूमिका वर्ग का निमार्ण करती है उसके व्यवसाय की भूमिका एक तरफ तो उसे घर के सीमित दायरे से बाहर लाती है और दूसरी तरफ निरन्तर उससे उसके समय व भक्ति की भी माँग करती है। इन मांगों की पूर्ति में उसके मूल 'भूमिका वर्ग' के सदस्यों की कुछ मांगों के अपूर्ण रहने की संभावना रहती है। अतः पति और पत्नी को एक-दूसरे की भूमिका एवं दायित्व के प्रति उनके दृष्टिकोण का पहलू उनके वैवाहिक सामंजस्य या कुसामंजस्य के लिये विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

अपने अध्ययनों के आधार पर मडड एवं वर्गस ने लगभग ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं। मडड[६] लिखते हैं कि- 'विवाह में अधिकतर कलह एक साथी या दोनों साथियों का एक दूसरे की भूमिका के बारे में भिन्न अपेक्षायें रखने का परिणाम है।' वर्गस[७] लिखते हैं- 'परिवार में व्याप्त अनेक समस्याओं की व्याख्या की जा सकती है कि ये समस्यायें पतियों और पत्नियों तथा माता-पिता व बच्चों की अपेक्षाओं और भूमिकाओं के बारे में संघर्ष मूलक धारणाओं के परिणाम हैं।'

शोधार्थिनी ने उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया कि कभी-कभी कार्य के कारण घर देर से आने पर उनके पति का व्यवहार उनके प्रति कैसा होता है?

सारिणी संख्या - ४

महिला के देर से आने पर पति का व्यवहार

पति का व्यवहार	आवृत्ति	प्रतिशत
मधुर	२२	१५.१७
संघर्षपूर्ण	६	४.१४
सहयोगपूर्ण	८१	५५.८६
सामान्य	३५	२४.१४
तटस्थ	१	०.६६
योग	१४५	१००.००

उपर्युक्त सारिणी में ५५.८६ प्रतिशत महिला उद्यमियों ने बताया कि कार्य के कारण घर देर से आने पर उनके पति का

व्यवहार सहयोगपूर्ण रहता है। १५.१७ प्रतिशत महिलाओं के पति का व्यवहार मधुर ही रहता है उसमें कोई अन्तर नहीं आता। २४.१४ प्रतिशत के पति का व्यवहार सामान्य होता है तथा केवल ४.१४ प्रतिशत महिलाओं के देर से घर आने पर पति का व्यवहार संघर्षपूर्ण रहता है तथा एक महिला ने अपने पति के व्यवहार को तटस्थ कहा अर्थात उन्हें पत्नी के शीघ्र या देर से घर आने पर कोई फर्क नहीं पड़ता।

आधुनिक समय में घर की वित्तीय दशा को सुदृढ़ रूप देने के लिए महिलायें भी धनोपार्जन के निमित्त पुरुषों के साथ व्यवसाय के क्षेत्र में कदम से कदम मिलाकर चल रही हैं, क्योंकि वे जानती हैं कि महिलाओं द्वारा कार्य करने से घर की आय में वृद्धि होगी तथा अन्य सदस्यों को आर्थिक सहयोग मिलेगा। उपर्युक्त तथ्य निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट हैं -

सारिणी संख्या - ५

महिलाओं को कामकाजी होना कैसा लगता है

कामकाजी होना कैसा लगता है	आवृत्ति	प्रतिशत
मानसिक संतुष्ट	६१	४५.५
तनाव रहित	४१	२०.५
तनाव ग्रस्त	१	०.५
आत्म-निर्भर	६३	३१.५
तटस्थ	४	२.०
योग	२००	१००.०

उपर्युक्त सारिणी में ४५.५ प्रतिशत महिला उद्यमी व्यवसायरत होने के कारण मानसिक रूप से संतुष्ट हैं। २०.५ प्रतिशत कार्यशील महिलाएं कामकाजी होने के कारण तनाव रहित रहती हैं। केवल ०.५ प्रतिशत महिला कार्यकारी होने के कारण तनाव ग्रस्त रहती हैं। ३१.५ प्रतिशत महिला उद्यमी कार्यकारी होने के कारण आत्मनिर्भरता महसूस करती हैं। केवल २ प्रतिशत महिलायें तटस्थ रहीं अर्थात् वह व्यवसायी होने के कारण संतुष्ट सी नहीं दिखतीं काम ज्यादा आय कम तो फिर कैसी संतुष्टि।

उद्यमी महिलाओं की बच्चों के प्रति भूमिका- मातृत्व एक पूर्णकालिक कार्य है। कामकाजी महिलायें जब कार्य पर जाती हैं तो उनके कार्यस्थल में एक कार्मिक की भूमिका महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस भूमिका को निभाने के लिये पारिवारिक भूमिकाओं को ठीक प्रकार से नहीं निभा पाती हैं पति समझदार होता है और उनके द्वारा अर्जित धन पारिवारिक आय के कोष में वृद्धि करता है। अतः पति अनेक बार कष्टों और उपेक्षा का अनुभव नहीं करता। दूसरी ओर बच्चे छोटे होते हैं उनमें समझ के अभाव में उनके माँ-बाप का काम करना कोई महत्व नहीं रखता। वे चाहते हैं कि उनकी पूरी देखभाल उनकी माँ करे। अग्रांकित सारिणी में महिला उद्यमियों से यह जानने का प्रयत्न किया है कि कार्य पर जाने के पश्चात् बच्चों की देखभाल घर पर कौन करता है?

सारिणी संख्या - ६

घर पर बच्चों की देखभाल का दायित्व

घर पर बच्चों की देखभाल	आवृत्ति	प्रतिशत
परिवार के सदस्य	१६	२७.५४
नौकर	५०	७२.४६
योग	६६	१००.००

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि बच्चों की देखभाल में अधिकतर महिला उद्यमियों (७२.४६ प्रतिशत) ने उत्तर दिया कि उन्होंने बच्चों की देखभाल के लिये नौकर अथवा आया की व्यवस्था की है केवल २७.५४ प्रतिशत महिलाओं के बच्चों की देखभाल घर के अन्य सदस्य करते हैं। स्पष्ट है कि अधिकांश परिवार के सदस्य बच्चों की देखभाल में महिला उद्यमियों की सहायता नहीं करते हैं जिसके कारण वह पूर्ण रूप से कार्य व बच्चों के बीच सामंजस्य बैठाने में असमर्थ रहती हैं। अतः द्वन्द की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुये महिला उद्यमियों से यह जानने का प्रयास किया है कि 'क्या वह स्वयं बच्चों की देखभाल करतीं तो उनके बच्चों का व्यक्तित्व अलग आकार लेता?' इस सम्बन्ध में उनसे प्राप्त जानकारी निम्नवत हैः-

सारिणी संख्या- ७

बच्चों की देखभाल स्वयं करतीं तो व्यक्तित्व अलग होता

स्वयं देखभाल एवं व्यक्तित्व	आवृत्ति	प्रतिशत
पूर्णसहमत	२३	१७.६७
आंशिक सहमत	६३	४६.२२
सहमत	१६	१४.८४
आंशिक असहमत	८	६.२५
पूर्णतः असहमत	१५	११.७२
योग	१२८	१००.००

उपर्युक्त सारिणी का निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि १७.६७ प्रतिशत महिला उद्यमी पूर्ण सहमत हैं कि यदि बच्चों की देखभाल स्वयं करतीं तो बच्चों का व्यक्तित्व अलग आकार लेता। ४२.२२ प्रतिशत महिला उद्यमियों ने आंशिक रूप से सहमति में उत्तर दिया है। १४.८४ प्रतिशत इससे सहमत

दिखाई दीं। ६.२५ प्रतिशत महिलायें इससे आंशिक असहमत थीं तथा ११.७२ प्रतिशत महिला उद्यमी असहमत हैं कि वह स्वयं देखभाल करने पर अपने बच्चों के व्यक्तित्व को अलग आकार दे पातीं। अतः स्पष्ट होता है कि अधिकतर महिलायें यह स्वीकार करती हैं कि बच्चों की स्वयं देखभाल न करने का बच्चों के व्यक्तित्व पर असर पड़ता है।

भूमिका द्वन्द समाधान- यह निर्विवाद है कि अधिकांश महिलाएं कार्य व भूमिका के मध्य द्वन्द का अनुभव करती हैं। यह द्वन्द उनके व्यक्तित्व को झकझोर डालता है और वे दोनों में से किसी स्थान से भाग नहीं सकतीं अतः उन्हें सामंजस्य करना पड़ता है। शोधकत्री ने उन महिलाओं से जो भूमिका द्वन्द का अनुभव करती हैं, जानकारी प्राप्त की कि वे अपने कामकाजी होने पर परिवार और कार्य-स्थल के बीच कैसे सामंजस्य करती हैं-

सारिणी संख्या - ८

परिवार और कार्यस्थल के बीच सामंजस्य

परिवार और कार्यस्थल के बीच सामंजस्य	आवृत्ति	प्रतिशत
स्वयं से अत्यधिक समझौता करके	३४	१७.०
परिवार के सहयोग से	९३	४६.५
बच्चों के सहयोग से	७	३.५
उपर्युक्त सभी	६६	३३.०
योग	२००	१००.०

उपर्युक्त आंकड़े दर्शाते हैं १७ प्रतिशत महिला उद्यमी अपने से अत्यधिक समझौता करके परिवार और कार्यस्थल के बीच सामंजस्य बनाती हैं। ४६.५ प्रतिशत महिला उद्यमी परिवार के सदस्यों के सहयोग, ३.५ प्रतिशत महिला उद्यमी बच्चों के सहयोग के कारण तथा ३३ प्रतिशत महिला उद्यमी मानती हैं कि उपरोक्त सभी कारकों के द्वारा ही वह परिवार व कार्यस्थल के बीच सामंजस्य करने में सफल हो पाती हैं। इस प्रकार भूमिका द्वन्द की स्थिति से निबटने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि महिलायें कार्यों को महत्व व उनकी प्राथमिकता के आधार पर करें।

निष्कर्ष- अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि महिला उद्यमी को कार्य के दौरान अनेक बार कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है तथा परिवार के सदस्यों का सहयोग भी उन्हें कम मिल पाता है। विशेषकर पति यदि अपनी कार्यशील पत्नी के साथ गृह कार्यों में मदद भी करते हैं तो हमारे समाज का परम्परागत ढाँचा इस प्रकार का है जो उन्हें ऐसा करने से रोकता है। रिश्तेदार तथा घर के अन्य सदस्य उन्हें ताना मारते हैं। परिणाम स्वरूप कार्यशील महिला पर गृहकार्य का बोझ और बढ़ जाता है। अतः जब तक महिलाओं के दायित्वों के प्रति पुरुष मानसिकता में परिवर्तन नहीं आता है तब तक कार्यशील महिलाओं को दोहरे कर्तव्यों का पालन करते हुये भूमिका द्वन्द व अन्य कठिनाईयों का सामना करना ही पड़ेगा।

सन्दर्भ

१. धर्मयुग, १२ मई १९६८ (डिस्कशन ऑन आफिस वर्किंग मदर्स, चिल्ड्रन लैफ्ट एट होम) मॉडरेटेड बाई आशा रानी व्होरा, ऑलसो सी द इश्यूज ऑफ २६ नवम्बर १९७०.

२. महाजन, अमरजीत : 'वुमैन्स टू रोल्स, ए स्टडी ऑफ रोल कॉनफ्लिक्ट', द इण्डियन जनरल ऑफ सोशल वर्क, वॉल्यूम-२५, न०-१, मार्च १९९९, पृ. ३७७-३८८.

३. कपूर, प्रमिला : 'मैरिज एण्ड द वर्किंग वुमैन इन इण्डिया', विकास दिल्ली, १९९९; द चेन्जिंग स्टेटस ऑफ द वर्किंग वुमैन इन इण्डिया,नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस, १९७४.

४. रानी, कला : 'रोल कॉनफ्लिक्ट इन वर्किंग वुमैन', चेतना पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, १९७६.

५. दुबे एस० सी०, 'मैन्स एण्ड वुमैन्स रोल्स इन इण्डिया, वुमैन इन दि न्यू एशिया', (संस्करण) बरबारा ई० वार्ड, पेरिस, यूनेस्को, १९६३, पृ. १९४-९५.

६. मडड, एम०ली०एच०, 'दि प्रेक्टिस ऑफ मैरिज काउन्सिलिंग', न्यूयार्क दि एसोसियेशन प्रेस, १९५५, पृ. ४८७.

७. वर्गस, अर्नेस्ट इ० डब्लू०, 'दि फैमली इन ए चेजिंग सोसायटी', अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी, खण्ड ५३, ६ मई १९४८, पृ. ४१७-२२.

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

वृद्धाश्रम में निवास करने वाले वृद्धों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ ललन यादव

प्रस्तुत अध्ययन वृद्धों की संस्थागत देखभाल की निरंतर बढ़ती मांग के औचित्य के कारणों को जानने पर आधारित है। सरकारी प्रयत्नों की आवश्यकता इस दिशा में निरंतर बढ़ती जा रही है क्योंकि समकालीन समाज में विविध सामाजिक, आर्थिक, जन कल्याण एवं अन्य कारकों के प्रभाव से विविध विसंगतियां पैदा हो रही हैं इनमें वृद्धों के प्रति दुर्व्यवहार और उनकी उपेक्षा बढ़ती जा रही है। उपेक्षा की चरम सीमा परिवार से आश्रम की दहलीज तक वृद्धों को पहुंचा देती है। प्रस्तुत अध्ययन नई दिल्ली नगरपालिका द्वारा 'संध्या' नाम से संचालित वृद्धाश्रम के वृद्धों पर आधरित है।

आज अधिकतर देश विकास तथा रोजगार की बात कर रहे हैं परन्तु एक प्रमुख समस्या जो विश्व के सामने खड़ी हो रही है वह है वरिष्ठ नागरिकों (६०+) की बढ़ती संख्या। विकसित देशों में यह समस्या प्रमुख रूप से विकट होती जा रही है। इसका प्रमुख कारण है कि उच्च स्तर की स्वास्थ्य सेवाओं के कारण मृत्युदर में कमी आ रही है तथा जीवन प्रत्यशा में वृद्धि हो रही है।[१] भारत मे वृद्धों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है। १६०१ में भारत में वृद्धों की संख्या १२.१ मिलियन थी जो २०११ में १०३.२ मिलियन हो गई है।[२]

भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली के अंतर्गत वृद्धों को सामाजिक सुरक्षा प्राप्त थी उनकी न केवल देखभाल होती थी बल्कि परिवार का मुखिया होने के नाते उन्हें परिवार के निर्णयों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करने का अधिकार था। परन्तु अब जैसे-जैसे औद्योगीकरण, नगरीकरण व सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई वैसे ही संयुक्त परिवारों का विघटन शुरू हो गया।[३] निर्धनता, बेकारी, मूल्य वृद्धि ने परिवार के सदस्यों को वृद्धों के प्रति अपने दायित्वबोध से पीछे कर दिया। अंततः पीढ़ी संघर्ष बढ़ने लगा। वृद्धों की उपेक्षा होने लगी एवं वृद्धावस्था संरक्षण एक सामाजिक समस्या बनने लगी। मुकेश कुमार ने अपने अध्ययन में पाया कि ३६.८ प्रतिशत वृद्ध परिवारों के द्वारा उपेक्षित थे।[४] वर्तमान में परिवार की संरचना में भी परिवर्तन आया है एकाकी परिवारों के बढ़ते चलन व परिवार के सदस्यों का आर्थिक कार्यो में भागीदारी होने पर वृद्धों की देखभाल एक समस्या बन गयी है और इसलिये वृद्धों की देखभाल की जिम्मेदारी धीरे-धीरे परिवार से समाज और सरकार की होती जा रही है।[५] वर्तमान समय में आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण और पश्चिमी सभ्यता के कारण छोटे परिवार की लालसा तथा रोजगार के लिए एक जगह से दूसरी जगह पलायन के कारण वृद्धों को अपने परिवार का समर्थन नहीं मिलता, तथा उनकी परिवार से दूरी बढ़ जाती है।[६]

उद्देश्य :- भारत में परिवार ही वृद्धों की देखभाल कर सकता है लेकिन यथार्थ इस धारणा से भिन्न हो रहा है। वृद्ध अपने बच्चों के साथ रहने में कठिनता महसूस कर रहे हैं। इन परिस्थितियों में वृद्धों के पास वृद्धाश्रम में रहने के अलावा और कोई दूसरा विकल्प नहीं हैं। सवाल यह उठता है कि उनके अंतिम चरण में इन वृद्धाश्रमों का वृद्धों के प्रति रवैया कैसा रहता है। क्या वे दुखी महसूस करते हैं? क्या वे इन परिस्थितियों के साथ समझौता करते हैं? क्या वृद्धाश्रम पारिवारिक संरक्षण का विकल्प प्रस्तुत करने में सक्षम हैं? प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

१. वृद्धाश्रमों की व्यवस्था और उनके द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का अध्ययन।
२. उत्तरदाताओं की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन।
३. उत्तरदाताओं के पारिवारिक संबंधों और परिवार का अध्ययन।
४. उत्तरदाता के वृद्धाश्रम में आने के कारणों का अध्ययन।

शोध प्रारूप :- डाटा वृद्धाश्रम के स्टाफ और उत्तरदाताओं के साथ साक्षात्कार के माध्यम से एकत्र की गई थी। सर्वे में ५२ उत्तरदाताओं में से ३८ उत्तरदाता साक्षात्कार के समय मौजूद थे।

प्रस्तुत अध्ययन नई दिल्ली स्थित संध्या नामक वृद्धाश्रम के वृद्धों पर आधारित है। नई दिल्ली नगर पालिका द्वारा संचालित संध्या नाम से नेताजी नगर में पुरूष और महिला दोनों वृद्धों की देखभाल के लिए वृद्धाश्रम स्थापित किया है। इसकी क्षमता वर्तमान में ५२ लाभार्थियों के लिए हैं, जिसमें से २६ पुरूष और १२ स्त्रियों का अध्ययन किया गया है। इसकी स्थापना जुलाई १६६३ में हुई थी। प्रवेश के लिए जो किसी भी संक्रामक रोग से पीड़ित नहीं है, जो ६० वर्ष की आयु से ऊपर है जिसकी देखभाल करने या रखने के लिए कोई नहीं है जो केन्द्र शासित प्रदेश दिल्ली का निवासी है। इस वृद्धाश्रम में रहने, कपड़े, बिस्तर की सुविधा, परामर्श सेवाओं, चिकित्सा की देखभाल, टी०वी०,

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

रेडियो और धार्मिक प्रवचन, धार्मिक स्थल का भ्रमण, भजन कीर्तन कार्यक्रम, अक्षमवृद्धों की सहायता के लिए प्रतिदिन एक सहायक का प्रावधान हैं। इसमें एक कमरे में दो वृद्धों और एक कमरे में एक वृद्ध दोनों प्रकार की सुविधा है। हल्दीराम की तरफ से चाय, नास्ता और भोजन प्रतिदिन निःशुल्क मिलता है। रहने के लिए एक कमरे में एक बिस्तर का भुगतान ३००० रूपये प्रतिमाह या एक कमरे में दो बिस्तर का भुगतान १५५४ रूपये प्रतिमाह देना पड़ता है।

प्रबंधक के सामान्य कर्तव्य : समय नियोजन, संस्थागत गतिविधियों, कार्यक्रमों के समन्वय, साफ सफाई, रख रखाव, के लिए जिम्मेदार होगा। वृद्धों की भलाई के लिए प्यार और स्नेह के साथ घरेलू माहौल सुनिश्चित करना। वृद्धों को खाली समय में नए अवसरों का पता लगाना। दैनिक दौरा करने और व्यक्तिगत रूप से वृद्धों से उनकी समस्याओं के बारे में पूछना। वृद्धों के लिए तैयार किए गए भोजन का परीक्षण और निरीक्षण। साप्ताहित रूप से रात में निरीक्षण करना। वृद्धों के लिए मनोरंजन, कार्यक्रम, गतिविधियों को करवाना। वृद्धों के परिवार वालों के साथ सम्पर्क स्थापित करने में वृद्धों की सहायता। वृद्धों की नियमित रूप से शारीरिक और स्वास्थ्य की देखभाल और वृद्धों के साथ घनिष्ठ तालमेल बनाए रखना।

उपलब्धियाँ

१.सामाजिक - आर्थिक स्थिति :- प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ६०-७० की आयु समूह के ६ प्रतिशत उत्तरदाता , ७१-८० की आयु समूह के २२ प्रतिशत, ८१-६० की आयु समूह के १० प्रतिशत उत्तरदाता हैं। हिन्दू धर्म के उत्तरदाताओं की संख्या ८० प्रतिशत, मुस्लिम धर्म के उत्तरदाताओं का ०१ प्रतिशत, सिख धर्म के उत्तरदाताओं का १४ प्रतिशत तथा ईसाई धर्म के उत्तरदाताओं का ०५ प्रतिशत हैं। अतः सर्वाधिक उत्तरदाता हिन्दू धर्म को मानने वाले हैं। सामान्य जाति की संख्या ८६ प्रतिशत, अन्य पिछडा वर्ग जाति की संख्या १२ प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति की संख्या २ प्रतिशत है। निरक्षर उत्तरदाताओं की संख्या ३६ प्रतिशत है। पी.उधयकुमार एण्ड पी. इलेन्नू ने अपने अध्ययन में पाया कि जो वृद्ध अशिक्षित थे उनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी।[७] हाईस्कूल स्तर के उत्तरदाताओं की संख्या ४६ प्रतिशत है। स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के उत्तरदाताओं की संख्या क्रमशः १० तथा ७ प्रतिशत है। डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी स्तर के उत्तरदाताओं की संख्या ०१ प्रतिशत है। अविवाहित उत्तरदाताओं की संख्या २६ प्रतिशत है। विवाहित उत्तरदाताओं की संख्या १४ प्रतिशत है। विधवा तथा विधुर उत्तरदाताओं की संख्या क्रमशः ३२ तथा २८ प्रतिशत है। वृद्धाश्रम में आने के पूर्व १० प्रतिशत उत्तरदाता के निजी व्यवसाय से आय अर्जित करने के स्त्रोत रहे हैं। जबकि संगीता यादव ने अपने अध्ययन में पाया कि ३८ प्रतिशत वृद्धों को अपने निजी व्यवसाय से आय प्राप्त थी।[८] २२ प्रतिशत उत्तरदाता श्रम कार्य से आय अर्जित करते रहे हैं। ६ प्रतिशत वृद्ध उत्तरदाता अपने बच्चों पर निर्भर हैं। ८ प्रतिशत उत्तरदाता अपनी स्थायी संपति से आय के रुप में धन अर्जित करते रहे हैं। ५४ प्रतिशत शासकीय सेवा में रहे हैं। दांडेकर के ने महाराष्ट्र में अपने अध्ययन में पाया कि ग्रामीण वृद्धों की निर्भरता, शहरी वृद्धों की ४६ प्रतिशत की तुलना में ३३ प्रतिशत थी।[९]

२.उत्तरदाताओं के पारिवारिक संबंध :- तालिका क्रमांक १ में संतान के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण किया गया है। ३७ प्रतिशत उत्तरदाता निःसंतान हैं। १ बच्चे की संख्या वाले उत्तरदाताओं की संख्या १६ प्रतिशत है। २ और ३ बच्चों की संख्या वाले उत्तरदाताओं की संख्या क्रमशः १६ और १० प्रतिशत है। ३ बच्चों से अधिक उत्तरदाताओं की संख्या २१ प्रतिशत है। तालिका क्रमांक २ में उत्तरदाता के पारिवारिक सदस्यों के साथ संबंध के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। इस तालिका में ८४ प्रतिशत उत्तरदाताओं का अपने परिवार के सदस्यों के साथ खराब संबंध है। निताशा शर्मा ने भी अपने अध्ययन में यही पाया कि वृद्धों के अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ संबंध अच्छे नहीं रहते हैं।[१०]

३.वृद्धाश्रम में रहने की अवधि :- तालिका क्रमांक ३ में वृद्धाश्रम में रहने की अवधि के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण किया गया है। जिसमें १ वर्ष से कम अवधि से रह रहे उत्तरदाताओं का १६ प्रतिशत है। १ से ५ वर्ष तक की अवधि से रहने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत ४२ है। ६ से १० वर्ष की अवधि से रहने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत ३२ है तथा १० वर्ष से अधिक अवधि वाले उत्तरदाताओं का १० प्रतिशत है।

४.वृद्धाश्रम में आने का कारण :- तालिका क्रमांक ४ में वृद्धाश्रम में आने के लिए उत्तरदायी कारणों का वर्गीकरण किया गया है। उत्तरदाता जो परिवार में बोझ बनना नहीं चाहते थे इसलिए वृद्धाश्रम में आ गए उनकी संख्या १६ प्रतिशत है। जो शारीरिक देखभाल स्वयं नहीं कर सकते वैसे उत्तरदाताओं का प्रतिशत २१ हैं। अकेलापन भी कारण है उत्तरदाताओं के वृद्धाश्रम में आने का, ऐसे उत्तरदाताओं का प्रतिशत ४२ है। एक अन्य कारण है कि बच्चे वृद्धों को अपने साथ नही रखते ऐसे उत्तरदाताओं का प्रतिशत २१ है।

तालिका क्रमांक - १

संतान के आधार पर निदर्श का वर्गीकरण

बच्चों की संख्या	संख्या	प्रतिशत
कोई बच्चे नहीं है	१४	३७
१ बच्चे	६	१६
२ बच्चे	६	१६
३ बच्चे	४	१०
३ बच्चों से अधिक	८	२१
कुल ३८	१००	

तालिका क्रमांक - २

पारिवारिक सदस्यों के साथ संबंध

पारिवारिक सदस्यों के साथ संबंध	संख्या	प्रतिशत
अच्छा	६	१६
खराब	३२	८४
कुल	३८	१००

तालिका क्रमांक - ३

वृद्धाश्रम में रहने की अवधि

वृद्धाश्रम में रहने की अवधि	संख्या	प्रतिशत
१ वर्ष से कम	६	१६
१ से ५ वर्ष	१६	४२
६ से १० वर्ष	१२	३२
१० वर्ष से अधिक	४	१०
कुल ३८	१००	

तालिका क्रमांक - ४

वृद्धाश्रम में आने के लिए उत्तरदायी कारण

आने के लिए कारण	संख्या	प्रतिशत
परिवार में बोझ बनना नहीं चाहते थे	६	१६
शारीरिक देखभाल स्वयं नहीं कर सकते	८	२१
अकेलापन	१६	४२
बच्चे साथ नहीं रखते हैं	८	२१
कुल ३८	१००	

निष्कर्ष : इस शोध से निष्कर्ष निकलता है कि वृद्धों का अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ बहुत खराब संबंध हैं जिसके कारण वे इस वृद्धाश्रम में आये। अकेले रहने वाले व्यक्तियों को अपनी सहायता के लिए दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है अथवा अपनी सहायता स्वयं करनी पड़ती है। विक्रम सिंह जाखड़ ने भी अपने अध्ययन में इस बात को सही माना कि वृद्धों को दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता हैं।[११] उक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जातिगत आधार पर सर्वाधिक उत्तरदाता सामान्य जाति के पाये गये। औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति ने एक नवीन मध्यम वर्ग को पैदा किया, जो अर्थोपार्जन की क्रियाओं में संलग्न होने के लिये नगरों व उद्योगों की तरफ आकृष्ट हुआ। यह बड़ा मध्यम वर्ग औसत रुप से सामान्य जातियों के व्यक्तियों का था जिनमें शिक्षा व ज्ञान का प्रसार हो चुका था। निम्न जातियाँ समाज की मुख्य धारा में अभी भी पूरी तरह से नहीं जुड़ पाईं है। यहीं कारण है कि उनमें नवाचारों का रुझान कम है।

संदर्भ

१. आदिनारायण एन., 'अर्बन एल्डरलि इन इण्डिया', बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली, २०१२, पृ. १२

२. महापंजीयक और जनगणना आयुक्त, भारत २०११

३. यादव के.एन.एस., 'एजिंग सम इमरजिंग इसुज', मानक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २०११, पृ. ६

४. कुमार मुकेश, आर. के. बंसल एंड मनोज बंसल, 'नीड टू सपोर्ट ओल्ड एज होम रेजिडेन्टस', इंडियन जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन, वाल्यूम ३३(२) अप्रैल-२००८, पृ. १३१

५. ढिल्लन परमजीत कौर, 'साइको-सोशल आसपेक्टस ऑफ एजिंग इन इंडिया', कन्सेप्ट पब्लिशिंग, नई दिल्ली, १६६२, पृ. १६

६. गन्डोतरा वीणा, पटेल सरजु, 'एजिंग एन इंटरडिसीप्लीनरी अप्रोच', रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २०११, पृ. ४

७. कुमार पी.उधय एण्ड पी. इलेन्गू, 'क्वालिटि ऑफ इन्फॉर्मल केयर रिसीवड बाई एल्डरली इन तिरूचिरापल्ली', इण्डियन जर्नल ऑफ जेरोन्टोलॉजी, वाल्यूम २६, न. ४, २०१२, पृ. ५१३ - ५२३

८. यादव संगीता, नीतू सिंह, 'एज एसोशिएट डाईजीज बर्डन इन ओल्ड एज होम एंड रेजिडेंशिअल होम इन २१वीं सेन्चुरी-ए कम्परेटीव स्टडी', रिसर्च जर्नल ऑफ फैमिली, कम्यूनिटी एंड कंज़्यूमर साइंसेस वाल्यूम-१(२), अप्रैल-२०१३, पृ. १०-१३

६. दांडेकर के., द एजेड, देअर प्राब्लमस एंड सोशल इंटरवेंशन इन महाराष्ट्र, इकोनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली, २७ (२३), पृ. ११८८-११६४, १६६३

१०. शर्मा निताशा, देवेन्द्र कुमार राणा, 'ए कम्परेटीव स्टडी ऑन फिजीयोलॉजीकल एंड साइको-सोशल फन्कशन्स ऑफ एल्डरली रिजाइडिंग इन होम एंड ओल्ड एज इनस्टीटयूशन', हेल्पएज इंडिया रिसर्च एंड डेवलपमेंट जर्नल, वाल्यूम -१८, नं.-२, मई-२०१२

११. जाखड़ विक्रम सिंह, 'वृद्धावस्था एवं बदलते सामाजिक मूल्य', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, राजस्थान, २००६, पृ. २५४

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा : एक अध्ययन

❑ प्रियंका श्री

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा सांप्रतिक भारत में एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आई है। आए दिन महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की घटनाएं उनके मानवाधिकारों का प्रयोग करने में बाधक बन रही हैं साथ ही इसी कारण उनके लिए समाज के समाजार्थिक एवं राजनीतिक विकास में सही ढंग से योगदान करना भी संभव नही रह गया है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के विभिन्न प्रकारों को उजागर करना, हिंसा के कारणों को खोजना तथा हिंसा के विरूद्ध समाधान सुझाने का प्रयास किया गया है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा जीवन के सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में और उनके जीवन काल के किसी भी समय हो सकती है। आज अधिकांश महिलाओं में हिंसा से संबंधित घटनाओं को देखकर डर व्याप्त है तथा वे आए दिन हिंसा से संबंधित घटनाओं को जानकर घबरा रही हैं जिसके कारण महिलाएँ आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक विकास के लिए सही तरीके से योगदान नहीं कर पातीं। आए दिन महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की घटनाएँ उनके मानवाधिकारों का प्रयोग करने के लिए बाधा बन रही हैं, दैनिक अखबार का एक पन्ना जरूर ही महिलाओं के विरूद्ध हिंसक घटनाओं से भरा होता है, उनके जीवन पर इसका गहरा प्रभाव है।[१] महिलाओं के विरूद्ध हिंसा समाज में एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आया है। विश्व की पूरी आबादी की १/३ औरतें अपनी १५-४६ उम्र में शारीरिक शोषण का शिकार होती हैं तथा प्रत्येक १० में से १ यौन शोषण का शिकार होती है तथा पूरी आबादी की ३५ प्रतिशत शारीरिक या यौन शोषण की शिकार होती हैं। यह प्रतिशत दर्शाता है कि विश्व की अरबों औरतें अत्याचार तथा शोषण की शिकार होती हैं जो आज भी अटूट रूप से जारी है। इनमें से ज्यादातर औरतें अपने पति तथा घर के अन्य सदस्यों द्वारा किये जा रहे अत्याचार सहती हैं। आज घरेलू हिंसा महिलाओं के बीच मृत्यु और विकलांगता का मुख्य कारण है।[२] इसके अलावा कई अध्ययनों से पता चला है कि गरीबी, अशिक्षा तथा आर्थिक रूप से अशक्त महिलाओं के विरूद्ध हिंसा एक कड़ी का काम करती है।NFHS-3 के आँकड़े तथा सूचना के अनुसार शादीशुदा तथा कुंवारी दोनों ही शारीरिक तथा यौन शोषण की शिकार होती रही हैं, यह घटनाएँ १५-४६ की उम्र में ज्यादातर संवेगात्मक घटित होती हैं तथा शादीशुदा महिलाओं में EMOTIONAL अत्याचार भी सहने होते हैं।[३] महिलाओं के विरूद्ध हिंसा आज एक ज्वलंत समस्या के रूप में सामने आई है जो घटने के बजाए बढ़ती ही जा रही है तथा महिलाओं का शोषण पूरे जीवन क्रम चलता रहता है।

डब्ल्यूएचओ द्वारा जारी महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के प्रकार की तालिका[४] तथा अन्य हिंसा के प्रकार निम्न हैं जो महिलाओं को पूरे जीवन क्रम में निरंतर सहना होता है।

जीवन चक्र के दौरान :

जन्म से पूर्व : लिंग चयनात्मक गर्भपात, गर्भावस्था के दौरान हुए मारपीट के परिणामस्वरूप समय पूर्व प्रसव।

बचपन : कन्या भ्रूण हत्या, शारीरिक यौन और मानसिक शोषण,।

कौमार्य : बाल - विवाह, मादा जननांग विकृति, शारीरिक यौन और मनोवैज्ञानिक शोषण, अनाचार, बाल वेश्वावृत्ति और अश्लील साहित्य दिखाना, डेटिंग और प्रेमालाप हिंसा (जैसे एसिड फेंकना और बलात्कार) आर्थिक रूप से कमजोर लड़कियों को सेक्स के लिए मजबूर करना (जैसे स्कूली लड़कियों के स्कूल फीस के बदले में मादक द्रव्य के साथ यौन संबंध बनाना)

किशोरावस्था और वयस्कता : कार्यस्थल में यौन शोषण, बलात्कार, यौन उत्पीड़न, वेश्यावृति करवाना और अश्लील साहित्य दिखाना तथा वैसा ही कुछ करने को कहना, महिलाओं की तस्करी, साथी हिंसा, वैवाहिक बलात्कार, दहेज उत्पीड़न और हत्या, साथी हत्या, मनोवैज्ञानिक शोषण, विकलांग महिलाओं का दुरूपयोग, जबरन गर्भवती करना, दहेज हत्या।

वयोवृद्ध : ''आत्महत्या'' या आर्थिक कारणों से विधवाओं को हत्या के लिए मजबूर करना, यौन शोषण, शारीरिक और मानसिक शोषण।

हिंसा से महिलाओं को संरक्षण मिल सके इसके लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाये जाते रहे हैं, आंदोलन द्वारा सामूहिक प्रयास भी किया जाता रहा है, राष्ट्रीय तथा अंतरर्राष्ट्रीय संगठनों ने भी सिविल सोसाइटी संगठन सक्रिय रूप से

❑ शोध अध्येत्री, गृह विज्ञान विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

कार्यक्रम के माध्यम से महिलाओं के खिलाफ हिंसा का मुकाबला करने के लिए काम करते रहे हैं, उसके बाद भी महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की समस्या घटने का नाम ही नहीं ले रही है।[५]

घरेलू हिंसा के तौर पर देखा जाए तो महिलाओं की प्रस्थिति इतनी बदतर है कि २००५ में संसद को घरेलू हिंसा निवारक अधिनियम पारित करना पड़ा। लेकिन विचारणीय बिन्दु यह है कि क्या कानून बना देना पर्याप्त है? कानून बनने के बाद भी घरेलू हिंसा में ३० प्रतिशत वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य की सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार ३७ प्रतिशत महिलाएँ गम्भीर पारिवारिक हिंसा की शिकार हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार २००६ में वैश्विक आतंकवाद में मरने वालों की संख्या-२२३६ थी वहीं भारत में घरेलू हिंसा में मरने वाली महिलाओं की संख्या-८३८३ थीं।[६]

अध्ययन का उद्देश्य :

१. महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के विभिन्न प्रकार को समझना।
२. महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के बढ़ते हुए कारणों को खोजना तथा समझना।
३. हिंसा के विरूद्ध समस्याओं का समाधान ढूँढना।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन में झारखण्ड राज्य के राँची जिले के शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र लिये गये हैं जो जिले से १० कि०मी० क्षेत्र के अंदर आते हैं। निर्दशन विधि के माध्यम से कुल १०० महिलाएँ चुनी गयी हैं जिनमें से ५० महिलाएँ राँची जिले के शहरी क्षेत्र से तथा ५० महिलाओं का चयन ग्रामीण क्षेत्र से किया गया है, जो १८ से ६० वर्ष की आयु की हैं तथा सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं। सूचना प्राप्त करने के लिए एक साक्षात्कार अनुसूची बनायी गयी जिसके आधार पर उत्तर प्राप्त किये गये हैं।

उपलब्धियाँ

तालिका-१

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के विभिन्न कारण

हिंसा के कारण	शहरी	ग्रामीण
मद्यपान	७२	६९
कम पढ़ी-लिखी होना	३१	७४
काम का दबाव	८७	२२
असुरक्षित रोजगार	८८	२७
बेरोजगारी	४६	८२
गर्भावस्था में लड़का जन्म देने का दबाव	६८	३१

समाज में महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के विभिन्न कारण व्याप्त हैं। तालिका १ यह दर्शाती है कि मद्यपान हिंसा के कारणों में से एक अहम् कारण है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह (६९%) तथा शहरी क्षेत्रों में (७२%) है। कम पढ़ी-लिखी होना भी महिलाओं के ऊपर अत्याचार का एक आम कारण है जो ग्रामीण स्तर पर (७४%) तथा शहरी क्षेत्र में (३१%) विद्यमान है। काम के दबाव के कारण भी पुरूष तनाव में रहते हैं तथा महिलाओं पर अत्याचार करते हैं जो ग्रामीण स्तर पर (२२%) तथा शहरी क्षेत्रों में (८७%) है। असुरक्षित रोजगार के कारण ग्रामीण क्षेत्र में (२७%) तथा शहरी क्षेत्र में (८८%) हिंसा का कारण हैं। हिंसा के मुख्य कारणों में से एक बेरोजगारी भी है जब पुरूष बेरोजगार होते हैं तो कुंठा में होते हैं जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्र में (८२%) तथा शहरी क्षेत्रों में (४६%) है। गर्भावस्था में स्त्रियों के ऊपर लड़के को जन्म देने का दबाव बनाया जाता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में (३१%) तथा शहरी क्षेत्रों में (६८%) है जो दिल दहला देने वाली घटना है किसी भी भावी माँ के लिए।

तालिका सं०-२

घरेलू हिंसा के स्वरूप

हिंसा के प्रकार	ग्रामीण	शहरी
थप्पड़ मारना	७८	५३
बलात्कार	५२	६५
लोहे के रॉड या छड़ी से पिटाई	१८	४६
शराब के नशे में मारना	३४	८६
यौन संबंध बनाने को बाध्य करना	३३	१४
पसंद का भोजन नहीं पकाना	४१	५२
कम दहेज मिलने पर ताने देना	४६	८२
अन्य सुंदर महिलाओं से तुलना करना	३८	२६

तालिका -२ यह दर्शाती है कि पुरूष द्वारा बात-बात पर थप्पड़ मारना एक आम बात है, ग्रामीण क्षेत्र में (७८%) तथा शहरी क्षेत्रों में (५३%) है। बलात्कार की घटना ग्रामीण क्षेत्रों में (५२%) तथा शहरी क्षेत्रों में (६५%) है। कई मामलों में पुरूष द्वारा स्त्री की छड़ी या रॉड द्वारा पिटाई की घटनाएँ भी आम है जो ग्रामीण क्षेत्रों में (१८%) वहीं शहरी क्षेत्रों में (४६%) है, कुछ मामलों में स्त्री की पिटाई शराब के नशे में भी की जाती है जो जानलेवा होता है, ग्रामीण क्षेत्रों में यह (३४%) तथा शहरी क्षेत्रों में (८६%) है। इसी प्रकार यदि स्त्री स्वेच्छा से यौन संबंध बनाने को तैयार नहीं होती तो उन पर जोर-जबरदस्ती की जाती है जो ग्रामीण क्षेत्रों में (३३%) तथा शहरी क्षेत्रों में (१४%) है। पसंद का भोजन नहीं पकाना भी

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा का कारण बनता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में (४१%) तथा शहरों में (५२%) है। हिंसा के मुख्य कारणों में से एक कम दहेज लाना भी है जो ग्रामीण क्षेत्रों में (४६%) तथा शहरी क्षेत्रों में (८२%) है, अन्य सुंदर महिलाओं से अपनी पत्नी की तुलना करना भी हिंसक प्रवृति को जन्म देता है।

तालिका सं०-३

हिंसा के विरूद्ध समाधानात्मक सुझाव/उपाय

सुझाव	शहरी	ग्रामीण
शिक्षा	२६	८३
रोजगार	३१	७७
सामाजिक परिवर्तन	२४	१२
महिला सशक्तिकरण तथा जागरूकता	७६	५५

तालिका -३ यह दर्शाती है कि शिक्षा द्वारा हिंसा की समस्या को रोका जा सकता है शहर के (२६%) तथा ग्रामीण क्षेत्र के (८३%) लोगों का यह मानना है कि अशिक्षा हिंसा का मुख्य कारण है जिसे केवल शिक्षा से ही दूर किया जा सकता है। शहर के (३१%) तथा गांव के (७७%) लोगों ने माना कि रोजगार द्वारा हिंसा की घटना कम किया जा सकता है। शहर के (२४%) तथा गांव के (१२%) लोग इस बात से सहमत हैं कि हिंसा की घटना को रोकने के लिए सामाजिक परिवर्तन बहुत जरूरी है। वहीं शहर के (७६%) तथा गांव के (५५%) लोगों का मानना है कि महिलाएं यदि सशक्त तथा जागरूक होंगी तो हिंसा की समस्या स्वयं समाप्त हो जाएगी।

निष्कर्ष : हमारे समाज में महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की समस्या गहरी पैठी है। हमारा समाज पुरूष प्रधान समाज है, तथा महिलाएँ अपने पूरे जीवन काल में पुरूष के शासन में रहती हैं - बाल्यावस्था में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहती है।[७] घरेलू हिंसा की समस्या शहर तथा गाँव दोनों ही क्षेत्र में विद्यमान है। मद्यपान, दहेज, अशिक्षा तथा जागरूकता की कमी महिलाओं के विरूद्ध हिंसा का मुख्य कारण है।[८]

सीता का अपहरण करने वाला यह देश, द्रोपदी के वस्त्र उतारने वाला यह देश तथा सूर्पनखाँ के नाक-कान काटने वाला यह देश पुरूषों की घृणित मानसिकता का परिचायक है तथा आज भी वह स्त्रियों को अपने अधीन समझता है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा को रोकने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रभावकारी हो सकते हैं जिन्हें प्रस्तुत अध्ययन में सामान्यीकरण स्वरूप में प्राप्त किया है :-

१. घरेलू हिंसा अधिनियम की पूरी जानकारी समाज के लोगों को करायी जाए। इससे घरेलू हिंसा में कमी आएगी।
२. समाज द्वारा लड़कों को बचपन से ही यह शिक्षा दी जाए कि वह प्रत्येक महिला का सम्मान करें ताकि बड़े होकर किसी भी महिला से हिंसा न करें।
३. महिला उत्पीड़न से संबंधित जनहित मामलों में त्वरित फैसला होना चाहिए।
४. महिलाओं को स्वयं जागरूक होना होगा तथा शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने की क्षमता लानी होगी।
५. महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्म निर्भर होना तथा यह समझना होगा कि वे अपना भरण-पोषण स्वयं कर सकती हैं।
६. शहर की ज्यादातर महिलाएँ शिक्षित होती हैं फिर भी उन पर अत्याचार होते हैं यह साबित करता है कि महिलाओं को नैतिक रूप से मजबूत तथा सशक्त होना होगा।[९]

संदर्भ

१. Jump up Colarossi, L. (2005). A Response to Danis & Lockhart : What Guides Social Work knowledge about violence agains Women ? Journal of Social work Education, 41(1), 147 - 159, Retrieved November 30, 2013, from http:// www.jstorg.org/stable/23044038,pp. 148.
२. Jump up ^ Fried, S.T. (2003). Violence against women Helath and Human Rights, 6(2), 88-111, pp. 91.
३. Jump up ^ Maffly, Brain (21 march 2009). "BYU study links women's safety, nation's peace". The salt lake Tribune; Jump up ^ http://www.womanstats.org/images/stearmer emmett APSA07. Pdf.
४. Jump up ^ this table is an excerpt from (1997). violence against women : Definition and scope of the problem. World Health Organization, 1, 1-3 Retrieved Nov. 30, 2013, from http://www.who. int/ gender/ violence/v4.pdg, pp.2
५. Jump up ^ Rosche, D., & Dawe, A. (2013). Ending violence Against women : the case for a comprehensive. Intrnational action plan. oxfan briefing Note, 1, 1-10, Retirieved Nov. 29, 2013, from http:// www.ofam.org/sites/ www.oxfam.orgn\/files/bn-ending-violence against women.action. plant - 22013 - en.pdf, pp.2
६. प्रतियोगिता दर्पण, फरवरी, २०१३, पृ० १००६; प्रतियोगिता दर्पण सितम्बर २००२ पृ० ३७४
७. Mies, Maria, 1980 Indian Women and Patriarchy, Concpet Publications, New Delhi
८. आहूजा राम, ''सामाजिक समस्याएँ'' रावत पब्लिकेशन, जयपुर, २०१० पृ० ४३५
९. माथुर प्रियंका, 'महिला सशक्तिकरण', ज्योति प्रकाशन, जयपुर, २०१०, पृ०-२४

हरियाणा में राष्ट्रीय आंदोलन : सविनय अवज्ञा आंदोलन का क्षेत्रीय अध्ययन

❑ **नीलम रानी**

राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास लेखन में समय-समय पर नये आयाम उभरते रहे हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न विषय इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित करते रहे हैं। इन विषयों में अखिल भारतीय स्तर पर होने वाले आंदोलन अपना विशेष महत्व रखते हैं। इतिहासकारों ने इनका अखिल भारतीय स्तर पर विभिन्न प्रकार का अध्ययन किया है। जैसे-जैसे नये स्त्रोत इतिहासकारों के सामने आ रहे हैं, वैसे-वैसे इन आंदोलनों के क्षेत्रीय एवं सूक्ष्म अध्ययन को प्रोत्साहन मिला है। इसी दिशा में वर्तमान शोध-पत्र एक छोटा सा प्रयास है। इस पत्र में सविनय अवज्ञा आंदोलन का क्षेत्रीय अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। हरियाणा क्षेत्र भी, विशेष रूप से १६२० के दशक के बाद राष्ट्रीय मुख्यधारा से अलग नहीं रहा था इसलिए सविनय अवज्ञा आंदोलन का हरियाणा के संदर्भ में अध्ययन क्षेत्रीय इतिहास लेखन की दिशा में अभूतपूर्व होगा।

पृष्ठभूमि : असहयोग आंदोलन के समाप्त होने पर स्वतन्त्रता संघर्ष की गति धीमी हो गई थी। परन्तु स्वराज्यवादियों ने राष्ट्रवाद की मशाल को जलाए रखा। १६२७ के उत्तरार्द्ध में एक बार फिर साम्राज्य विरोध जन उभार में उफान आने लगा। सन् १६२८ तक पहुँचते-पहुँचते स्वाधीनता आंदोलन एक सुनिश्चित दिशा में गतिमान हुआ। तब तक राजनीतिक चेतना अपनी प्रौढ़ावस्था में पहुँच गई थी। हरियाणा का प्रबुद्ध समाज पूरी तरह स्वाधीनता आंदोलन का अंग बन गया था।

३ फरवरी १६२८ को जब साइमन कमीशन ने भारत की भूमि पर पैर रखा तो पूरे देश ने एक स्वर में नारा बुलन्द किया - 'साईमन कमीशन वापिस जाओ'। हरियाणा में साइमन कमीशन केवल गुड़गांव में आया जहाँ इसका कोई विरोध नहीं हुआ।[1]

३० अक्तूबर १६२८ को साइमन कमीशन जब पंजाब की राजधानी लाहौर स्टेशन पर पहुँचा तो कांग्रेस के नेताओं ने काले झण्डों से इसका स्वागत किया। सारे देश में हड़ताल की गई। लाहौर में लाला लाजपतराय के नेतृत्व में कमीशन का बायकाट किया, विशाल जलूस निकाला गया। लाला लाजपतराय पर पुलिस ने अंधाधुंध लाठियाँ बरसाई।[2] लाला लाजपतराय के साथ, हरियाणा से डॉ. गोपीचन्द्र भार्गव, डॉ. सत्यपाल, डॉ. सैफूद्दीन किचलू, सरदार खडग सिंह आदि नेताओं के साथ अन्य हजारों लोग भी घायल हुए जिससे १७ नवम्बर १६२८ को लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई। इससे कांग्रेस को बहुत आघात पहुँचा।[3]

पंजाब में जब साइमन कमीशन पहुँचा तो इसके खिलाफ हरियाणा में भी विरोध प्रदर्शन हुआ। अम्बाला, करनाल, हिसार व रोहतक में विरोध प्रदर्शन के लिए 'काले झण्डों' के साथ जलूस निकाले गए और सार्वजनिक सभाओं में सख्त विरोध प्रकट किया गया। रोहतक अनाज मण्डी में एक सार्वजनिक सभा हुई जिसकी अध्यक्षता बाबू श्यामलाल जैन एडवोकेट ने की जिसमें साइमन कमीशन के विरूद्ध नेताओं के भाषण हुए। इसके अतिरिक्त झज्जर, गोहाना, सोनीपत, महम, बहादुरगढ़, बेरी में भी इस कमीशन का विरोध हुआ।[4]

इसके साथ ही कांग्रेस ने ८-६ मार्च को पंजाब प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन रोहतक में बुलाया। इसकी अध्यक्षता सत्यपाल प्रधान ने की जिसमें देश के बड़े-बड़े नेताओं ने भाग लिया।[5] रोहतक शहर में जलूस निकाला गया जिसके पश्चात् पंडाल में स्टेज के सामने पं. जवाहर लाल नेहरू ने तिरंगा झण्डा लहराया व सभा की कार्यवाही शुरू की गई। पं. मोतीलाल नेहरू, अब्दुल वहीद कसूरी, लाला दुलीचंद (अम्बाला), डॉ. मोहम्मद आलम लाहौर, डॉ. खानचंद्र दुबे बैरिस्टर, दुलीचंद लाहौर, सरदार सरदुल सिंह, कबीश्वर शेख शिराजुद्दीन पराया, पं.के. सन्तानम्, श्री रामनारायण सिंह चौधरी बिहार, महीप्रसाद सिंह, लाला केदारनाथ सहगल, पिंडीदार, लालचंद मलिक, बाबू श्यामलाल (रोहतक), सरदार त्रिलोक सिंह आदि। श्रीराम शर्मा अध्यक्ष स्वागत समिति ने स्वागत एड्रेस पढ़ा। इसके पश्चात् पं. मोतीलाल नेहरू, के. सन्तानम् श्री रामनारायण चौधरी, प्रताप सिंह शेख, सिराजुद्दीन पराया और डॉ. मोहम्मद आलम, सरदार सरदूल सिंह व केदारनाथ सहगल के जोशीले भाषण हुए व जनता में जागृति पैदा की गई। सभा में कई प्रस्ताव पास किये गए।[6] लाहौर कांग्रेस अधिवेशन को कामयाब बनाने के लिए पंजाब के लोगों से अपील की गई तथा ५० हजार मेम्बर भर्ती करने की अपील की गई।

२६ दिसम्बर १६२६ को लाहौर में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का सालाना अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता पं.

❑ **शोध अध्येत्री, इतिहास विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)**

जवाहरलाल नेहरू ने की और महात्मा गांधी जी ने 'पूर्व स्वतन्त्रता प्राप्ति' का प्रस्ताव पेश किया। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया। सरकार को चेतावनी दी गई कि २६ जनवरी १६३० तक अगर भारत को पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दी गई तो २६ जनवरी को कांग्रेस सारे भारत में पहला 'स्वतन्त्रता दिवस' मनायेगी व गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ करने की भी चेतावनी दी। जनता ने, पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो जाती तब तक, सरकार से संघर्ष करने का प्रण लिया।[७]

लाहौर कांग्रेस प्रस्ताव के अनुसार सारे देश में २६ जनवरी १६३० (रविवार) को 'पूर्ण स्वराज्य दिवस' के रूप में मनाया गया। हरियाणा के भी सभी प्रमुख शहरों, कस्बों और बड़े-बड़े गांवों में तिरंगा झण्डा लेकर लोगों ने प्रभात फेरियां लगाईं जुलूस निकाले, सभाएँ हुईं। लोगों ने तिरंगे झण्डे के नीचे 'पूर्ण स्वतन्त्रता' प्राप्ति की शपथ ली। पुलिस ने कई जगहों पर जुलूस पर लाठीचार्ज किया और लोगों को गिरफ्तार किया।[८]

हरियाणा में 'स्वतन्त्रता दिवस' मनाने के लिए जबरदस्त तैयारियाँ की। १० जनवरी से २० जनवरी तक रोहतक, झज्जर, बेरी, सोनीपत, गोहाना, बहादुरगढ़, महम आदि कस्बों में राजनैतिक सभाएं कीं व अन्य जगहों जैसे कालका, जगाधरी, करनाल, कैथल, थानेसर, खातीवास, फरीदाबाद, रेवाड़ी, भिवानी, हिसार और सिरसा में भी पहला स्वतन्त्रता दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया गया।[६] सरकार पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। अतः महात्मा गांधी जी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करना पड़ा।

सविनय अवज्ञा आंदोलन का आरम्भ : फरवरी १६३० में साबरमती आश्रम में कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने एक प्रस्ताव पास करके महात्मा गाँधी को सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ करने के सम्पूर्ण अधिकार दिए गए कि वे अपनी इच्छा से जब और जिस जगह से चाहे आंदोलन आरम्भ कर सकते हैं।[१०]

महात्मा गाँधी जी ने आंदोलन आरम्भ होने से पूर्व अपने साप्ताहिक समाचार पत्र 'यंग इण्डिया' ३० जनवरी १६३० में एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने वायसराय (लार्ड इरविन) को अपनी ११ मांगे बतायी और उन्हें विश्वास दिलाया कि सरकार इन मांगों को स्वीकार कर लेगी तो सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ नहीं किया जाएगा। ये ११ मांगे इस प्रकार थीं[११]-

१. सम्पूर्ण मदिरा निषेध।
२. मुद्रा विनिमय की दर में कमी कर एक शिलिंग चार पैसे के बराबर माना जाए।
३. माल गुजारी आधी की जाए व इसे विधान मण्डल के नियन्त्रण में रखा जाए।
४. नमक कर को समाप्त किया जाए।
५. सैनिक व्यय में ५० प्रतिशत की कमी की जाए।
६. बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियों का वेतन आधा किया जाए।
७. विदेशी वस्त्रों पर तटकर लगाया जाए ताकि देश के उद्योगों का संरक्षण हो।
८. भारतीय समुद्र तट केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित हों।
६. राजनीतिक बंदी रिहा कर दिए जाएं व मुकदमे वापिस ले लिए जाए, भारत में निर्वासित किए गए लोगों को वापिस भारत लाया जाए।
१०. गुप्तचर पुलिस को तोड़ दिया जाए या उस पर जनता का नियन्त्रण रखा जाए।
११. हथियारों के लाइसेंस दिये जाए।

सरकार की तरफ से कोई जवाब न मिलने पर गांधी जी ने १२ मार्च १६३० के दिन साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) से ७६ सत्याग्रहियों के संग २४१ मील की लम्बी यात्रा की जिसमें हरियाणा के विभिन्न क्षेत्रों से भी लोगों ने हिस्सा लिया। अम्बाला से लाला सुरजभान भी मुख्य सत्याग्रही थे।[१२] भारतीय इतिहास में गांधी जो की इस यात्रा को 'डांडी मार्च' के नाम से जाना जाता है। मोतीलाल नेहरू ने इस यात्रा की तुलना रामचन्द्र की 'लंका यात्रा' से की थी। सी.एफ. एण्ड्रयूज ने इसकी तुलना मूसा द्वारा 'इतालियो के निर्गमन के नेतृत्व' से की थी। इतालियनों के लिए यह दृश्य सीजर द्वारा रूबिकोन को पार कर गायूल की विजय के लिए प्रस्थान करने के समान था। इससे पहले भारत के इतिहास में इतने लंबे साहसपूर्ण कार्य का विवरण नहीं मिलता।[१३] गांधी जी का यह काफिला अरब सागर के तट पर स्थित 'दाण्डी' नामक गांव जिला सूरत (गुजरात) में पहुँचा। अतः ६ अप्रैल १६३० को गांधी जी ने स्वयं समुद्र के पानी से नमक तैयार किया। ८ मार्च को नमक कानून का उल्लंघन किया। सारे भारत में नमक सत्याग्रह का बिगुल बज गया व सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ हो गया। तत्पश्चात् पुलिस ने गांधी जी को गिरतार करके यर्वदा जेल में भेज दिया।[१४]

इसके साथ ही हरियाणा में भी ब्रिटिश राज के खिलाफ आंदोलन जोर पकड़ गया व जिला कांग्रेस ने झज्जर तहसील में जहादपुर गांव में एक कुआँ राव मंगली के नाम पर पट्टे पर लेकर नमक बनाने के लिए पहला जत्था पं. श्रीराम शर्मा के नेतृत्व में रवाना हुआ।[१५] ६ अप्रैल १६३० को पंडित जी को भिवानी में गिरतार कर लिया गया और हिसार जेल में भेज

दिया। जब हिसार कोर्ट में उन्हें पेश किया गया तो उन्हें १००० रुपये जुर्माना व एक वर्ष की कैद की सजा दी गई।[१६]

इससे एक दिन पहले कामरेड रामशरण दास को एक भाषण देने पर गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद बाबू श्यामलाल को गिरफ्तार कर लिया गया। हरियाणा में आंदोलन जोर पकड़ने लगा। देहात और शहरों में कांग्रेस वालंटियरों की भर्ती होने लगी, वे सत्याग्रह आश्रम में जमा होने लगे। शहर में जुलूस व जलसे शुरू हो गए। कपड़े व शराब की दुकानों पर पिकेटिंग शुरू हो गई। विदेशी कपड़ों की होली जलने लगी। चौधरी छाजूराम गांव चिमनी जत्थेदार के साथ २५ सत्याग्रहियों ने गिरफ्तारियां दीं। रोहतक जिले में लगभग ३५० लोगों ने गिरतारियाँ दी।[१७]

नमक सत्याग्रह : सविनय अवज्ञा आंदोलन के कार्यक्रम के अन्तर्गत हरियाणा में भी नमक कानून तोड़ा गया। कुछ स्थानों का जिक्र इस प्रकार हैं-

रेवाड़ी: में २० अप्रैल को नमक बनाया गया। इसकी मात्रा कोई एक छटांक के करीब थी। लेकिन जब इसे नीलाम किया गया तो यह १०४० रुपये मे बिका। इस नमक का एक पैकेट एक लड़की कस्तुरबाई ने ६० रुपये में खरीदा जो उसके द्वारा एकत्रित किया गया, २ पैसे प्रतिदिन के हिसाब से जेब खर्च था। २३ अप्रैल को पुनः इसी विषय पर सार्वजनिक सभा की गई जिसमें खडग बहादुर ने भाषण दिया। इन्होंने रेवाड़ी के लोगों को नमक कानून तोड़ने पर बधाई दी।[१८]

हिसार भी आंदोलन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। १३, १४ अप्रैल १६३० को जिला कांग्रेस कमेटी जिसमें के.ए. देसाई व श्रीराम शर्मा के नेतृत्व में हिसार में नमक बनाया गया।[१६] २१ अप्रैल को के.ए. देसाई के नेतृत्व में भिवानी में भी नमक बनाया गया। नमक बनाने से पहले एक जुलूस निकाला गया फिर कटला रामलीला पहुँचकर जलसा किया गया। फिर हजारों लोगों की उपस्थिति में नमक बनाया गया जिसे थैलियों में भरकर बेचा गया। सिरसा, हांसी और फतेहाबाद में भी ऐसा ही कार्यक्रम हुआ।

अम्बाला में अब्दुल गफार खां और भगत राम सहगल के नेतृत्व में नमक कानून भंग किया गया। अम्बाला में बहुत सी औरतों ने भी नमक कानून में भाग लिया। यहाँ लाला दुनीचंद की पुत्री विद्यावती ने भी सात स्त्रियों को साथ लेकर भारी जन समूह के सामने नमक बनाया व सत्याग्रह किया।[२०]

रोहतक में अनाज मण्डी में 'बाल भारत सभा' की एक आम सभा में नमक कानून को तोड़ा गया व किशन सिंह गांव सलोधा, बारू हरिजन गांव जागसी, रामसिंह लडायन, रविदत्त गौरड़ ने गिरफ्तारियां दीं। नमक के साथ-साथ विदेशी वस्तुओं कपड़ा, चीनी, वनस्पति घी आदि का भी बहिष्कार किया गया। रोहतक में स्त्रियों में कस्तूरबाई ने नमक सत्याग्रह आंदोलन का मार्गदर्शन किया।[२१]

विदेशी कपड़ों का बहिष्कार कार्यक्रम

विदेशी कपड़ों का बहिष्कार भी असहयोग आंदोलन का महत्वपूर्ण भाग था। पूरे हरियाणा में १७ मार्च को विदेशी कपड़े के बहिष्कार का दिवस मनाया गया। इस कार्यक्रम का प्रचार गोपीचंद भार्गव ने किया। विदेशी कपड़ा विक्रेताओं की दुकानों पर सिरसा, अब्दुलपुर, अब्दुल मस्जिद में धरना दिया गया।[२२]

रोहतक, भिवानी, अम्बाला के व्यापारियों ने विदेशी कपड़े के व्यापार न करने का वायदा किया। अम्बाला में स्त्री वालंटियरों ने मंदिर के सामने धरना दिया और केवल उन्हीं लोगों को अन्दर जाने दिया जो खद्दर पहनने लगें। अम्बाला जिले में ५०० लोगों ने खद्दर पहनने की शपथ ली।[२३] हिसार, सिरसा, भिवानी में भी खद्दर प्रचार व स्वदेशी कपड़ा तथा स्वदेशी चीजें ही व्यवहार में लाये जाने का प्रचार किया गया। देहाती जनता की गरीबी व बेकारी को दूर करने के लिए खद्दर की कताई- बुनाई व पिनाई पर बल दिया गया जिससे स्वरोजगार व आर्थिक सम्पन्नता को बढ़ावा मिला।[२४]

२४ मार्च १६३१ को रेलवे मंडी रोहतक के सभी बाजारों में सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि भविष्य में विदेशी कपड़ा नहीं मंगवाया जाएगा। जो कपड़ा दुकानों पर है उसे ढाई महीने से पहले बेच दिया जाएगा।[२५]

उपर्युक्त निर्णय होने पर भी एक दुकानदार रूलदूराम ने अपनी दुकान पर विदेशी कपड़ा मंगवाया। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं ने इसका विरोध किया व इसके बाद विदेशी कपड़ों पर मोहर लगाई गई ताकि बाजार में न बिक सकें।[२६]

हिसार व भिवानी में पं. नेकीराम शर्मा के नेतृत्व में जोर-जोर से सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रचार हुआ। जून १६३१ में नेकीराम शर्मा के नेतृत्व में कांग्रेस के स्वयंसेवकों ने विशेषकर महिलाओं ने भिवानी नगर में विदेशी वस्त्रों की दुकानों के बाहर धरना दिया। इससे भिवानी के व्यापारियों ने तंग आकर, सरदार वल्लभभाई पटेल व महात्मा गांधी से शिकायत की। परन्तु पं° नेकीराम शर्मा ने संघर्ष किया और एक दिन भिवानी नगर के लगभग सभी दुकानदारों तथा कमीशन एजेंटों ने विदेशी वस्त्रों व वस्तुओं का व्यापार न करने का संकल्प लिया।[२७]

सांपला में २५ नवम्बर १६३१ को नेकीराम शर्मा व श्रीमती कस्तूरबाई ने विदेशी कपड़ों का बहिष्कार का कार्यक्रम चलाया। उन्होंनें स्त्रियों को सम्बोधित किया। सांपला के सभी बजाजों ने नेकीराम शर्मा को भविष्य में विदेशी कपड़ा न बेचने का

आश्वासन दिया।[२८]

सोनीपत भी विदेशी कपड़े के बहिष्कार में पहले नम्बर पर था। जहां विदेशी कपड़े का आयात व बिक्री बिल्कुल बंद हो गई थी। बजाजों ने विदेशी माल पर कांग्रेस की मोहर लगवा ली थी। १४ तारीख को लाला काशीराम म्यूनिसिपल कमिश्नर की अध्यक्षता में जलसा हुआ जिसमें बजाजों को बधाई भी दी गई। इससे एक दिन पहले बेरी में भी विदेशी कपड़े का बहिष्कार किया गया। जिसका नेतृत्व नेकीराम शर्मा व श्रीमती कस्तूरबाई चित्रादेवी ने किया।[२६]

अम्बाला में लाला दुनीचंद अम्बालवी और उनकी धर्मपत्नी कमला देवी, लाला सूरजभान, सरदार कपूर सिंह, खान अब्दुल गफार खां, गांव लेह में इस आंदोलन को चलाने के लिए गांव-गांव जाकर सत्याग्रहियों की भर्ती की और शहरों में विदेशी कपड़ों को जलाने लगे तथा शराब और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर पिकेटिंग की व गिरतारियाँ दी गई। कई बार यमुनानगर, जगाधरी, अम्बाला, कुरुक्षेत्र, रोपड़, नारायणगढ़ में भी जुलूस निकाले। इसी प्रकार जिला गुड़गांव, करनाल में भी शराब व विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग करके गिरतारियाँ दी गई।[३०]

कांग्रेस वालेंटियरों द्वारा शराब की दुकानों पर धरने दिए गए। इसके दो उद्देश्य थे। पहला नशीले पदार्थों की खपत को कम करना तथा दूसरा सरकारी आमदनी में कमी करना था। कई स्थानों पर जो व्यक्ति शराब खरीदते थे उन्हें गधे पर बिठाकर, मुँह काला करके जूतों की माला पहनाकर जबरदस्ती शहर की गलियों के बाजारों में घुमाया जाता था।[३१] कांग्रेस के वालंटियर्स ने १ मई १६३१ को रोहतक में शराब की दुकानों की पिकेटिंग की गई। ८ अगस्त को अम्बाला में ही एक शराब के ठेकेदार के घर के बाहर धरना दिया गया व उसका सामाजिक बहिष्कार किया गया।[३२]

महिलाओं ने धरना प्रदर्शन कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने विदेशी कपड़े, वस्तुएं व शराब की दुकानों पर धरने दिये। नमक सत्याग्रह में बढ़चढ़कर भाग लिया। हरियाणा की वे महिलाएँ निम्न हैं- श्रीमती कस्तूरबाई (रोहतक), श्रीमती छाया देवी, श्रीमती पार्वती देवी, श्रीमती चारा देवी, चम्पी देवी,[३३] मुनी देवी (झज्जर), पितरा देवी (रोहतक), गायत्री देवी, (गांव गढकुण्डल) ने सोनीपत में महिलाओं का नेतृत्व किया व जेल गई।[३४]

छात्रों ने भी सविनय अवज्ञा आंदोलन में बढ़चढ़कर भाग लिया। हिसार व भिवानी में छात्रों ने नमक बनाया, पिकेटिंग में हिस्सा लिया और स्वदेशी प्रचार का कार्य किया। रोहतक के वैश्य स्कूल के छात्रों ने आंदोलन के पक्ष में खूब प्रचार किया। रेवाड़ी में अहीर स्कूल शाहबाद के डी०ए०वी० स्कूल के छात्रों ने नमक बनाकर नमक कानून को तोड़ा व जुलूस निकाला। डी०ए०वी० स्कूल करनाल के छात्रों ने भी ऐसा ही किया। शैक्षिक संस्थाओं का बहिष्कार कार्यक्रम हरियाणा में ज्यादा सफल नहीं रहा, क्योंकि छात्रों के माता-पिता ने इसमें सहयोग नहीं दिया।[३५]

कानून व न्यायालयों का बहिष्कार कार्यक्रम भी असफल ही रहा। यद्यपि स्वदेशी न्यायालय व पंचायतों की स्थापना भी अधिक संख्या में की गई, परन्तु उनका अस्तित्व थोड़े समय ही रहा।[३६] सविनय अवज्ञा आंदोलन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि ये आंदोलन किसानों से अधिक कर वसूल किए जाने के खिलाफ था। 'सकेनर ईस्टेट' जोकि १५ गांवों से मिलकर बनी थी, के किसानों ने जनवरी १६२६ में पं. नेकीराम शर्मा के नेतृत्व में 'किसान सभा' नामक संगठन बनाया व अलखपुर में लाला लाजपतराय ने इसका नेतृत्व किया। इससे संबंधित किसानों ने कर अदा करने से मना कर दिया। पं. नेकीराम शर्मा ने बेगार के विरूद्ध भी आवाज उठाई। शीघ्र ही दो स्केनरश ने किसानों के साथ समझौता कर लिया व भू-कर राजस्व को कम कर दिया।[३७]

रोहतक असेम्बली व कौंसिलों के चुनावों में, पोलिंग बूथ पर धरना दिया गया। परन्तु रोहतक में जाटों ने इसका विरोध किया, बाद में इस धरना प्रदर्शन को त्याग दिया गया।[३८] अम्बाला में कुछ बनियों ने चुनावों में मतदान नहीं किया व दो पोलिंग स्टेशनों पर पिकेटिंग की। परिणामस्वरूप पुलिस ने उनको गिरफ्तार कर लिया। अतः हरियाणा में शैक्षिक संस्थाओं का बहिष्कार, कोर्टों का बहिष्कार व चुनावों का बहिष्कार कार्यक्रम असफल रहे।[३६]

सरकार का दमनचक्र : आरम्भ में ब्रिटिश सरकार ने सविनय अवज्ञा आंदोलन पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। परन्तु शीघ्र ही इसकी व्यापकता का आभास सरकार हो गया। फिर ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को रोकने के लिए क्रूर तरीके अपनाए। नेताओं को गिरफ्तार किया जाने लगा। उन पर गोलियां चलाई जाने लगी, लाठीचार्ज किया गया। जनसभाएं करने व जुलूस निकालने पर प्रतिबंध लगाए गए। १६१० के प्रैस एक्ट को फिर से लागू किया गया। १ मई १६३१ को गांधी जी ने इस दबाव को 'गुंडा राज' की संज्ञा दी। ४ मई को गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। 'अमन सभा' (जोकि सरकार की सहयोगी थी) को फिर से प्रकाश में लाया गया। हरियाणा में कांग्रेस पार्टी को अवैध संस्था घोषित कर दिया गया।[४०]

हरियाणा में बहुत अधिक संख्या में कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को गिरतार किया गया व उन्हें कठोर सजाएँ दी गईं। जिनमें से कुछ लोगों के नाम इस प्रकार हैं- रोहतक से श्रीरामशर्मा, श्याम लाल, चौधरी सलवत सिंह मोखरा, चौधरी चंदगी राम नाहरी, चौधरी

भगवान सिंह नूरनखेड़ा, लाला विशम्भर दयाल बहादुरगढ़[४१] राय मंगली राम, भगत कोमराम शरणदास, रामसिंह जाखड़, बदलू राम, मामचंद काशीराम, श्रीमती कस्तूरीबाई, नान्हीं देवी, दड़का देवी, हाजी खेर मोहम्मद, मंगली रात वत्स, मेहस सिंह दांगी, दौरत राम गुप्ता, सरदार त्रिलोक सिंह, स्वामी आत्मानंद, लाला मातुराम आदि।[४२]

हिसार जिले से हरदेव सहाय, चौधरी किरपा राम साहड़वा, दादा पतराम रालवास, बाबू जुगल किशोर व बख्शी, रामकिशन आदि। भिवानी से नेकीराम शर्मा, ए०के० देसाई, बाबू श्याम लाल सत्याग्रही, जमादार अखेराम, मीताथल, ठाकुर शीशपाल सिंह। सिरसा से मुरली मनोहर सिंह, लाल चान्दन मल केटली वाला, लाला डुंगरमल चौटाला, वैद्यराम दयाल, महाशय हुक्मचंद डभवाली, रामस्वरूप आदि को गिरतार किया गया व उनको कठोर सजाएं दी गई।[४३]

अम्बाला से लाला दुनीचंद, उनकी पत्नी कमला देवी, लाला सूरजभान, सरदार कपूर सिंह, खान अब्दुल गफार खां, सुभतप्रसाद और सूरजभान की पत्नी, जो काफी समय से सत्याग्रह आश्रम में कार्य कर रही थी जो भी गिरफ्तार किया गया।[४४]

करनाल जिले से चौधरी मोहम्मद हुसैन, बनारसी दास कैथल, देशबंधु गुप्ता पानीपत, गुलाम मोहम्मद उरनाला, दाताराम सीक, चौ. हुक्म चन्द गगझीना, डॉ. लाला बासू राम, सोनीपत से मानसिंह (कांग्रेस कमेटी प्रेजिडैन्ट) उग्रसेन, गायत्री देवी, गांव गढ़कुण्डल आदि ने गिरफ्तारियाँ दी।[४५]

रेवाड़ी तहसील से भी २० आदमियों को गिरतार किया गया जिसमें महेन्द्रगढ़ से फूलचंद, चिरंजीलाल, ओंकार प्रसाद, रामजी लाल आदि कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को ६-७ महीने की सजाएं दी गई।[४६]

१६१० के प्रैस एक्ट के तहत हरियाणा से प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों के कार्यालयों पर छापे मारे गए व हरियाणा में अनेक समाचार-पत्र (हरियाणा तिलक, जाट गजट) को सरकार के दबाव में आकर बंद भी करना पड़ा। रोहतक में २६ जनवरी १६३० को तीसरा स्वतन्त्रता दिवस मनाया जा रहा था तो चौधरी भरत सिंह को ४० वालियन्टरों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया व सत्याग्रह आश्रम की तलाशी लेकर सारा सामान उठा लिया गया। हरियाणा तिलक अखबार व प्रैस को भी जब्त कर लिया गया।[४७]

अंग्रेजों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को दबाने के लिए एक और कूटनीति का सहारा लिया। उन्होंने 'फूट डालो व राज करो' की नीति अपनाई। सरकार ने बड़े-बड़े व्यक्तियों को अपने साथ मिलाकर, आंदोलनकारियों के विरूद्ध 'अमन सभाओं' का गठन किया। हिन्दू व मुसलमानों में भी भेदभाव पैदा किया गया। अकाल सहायता और तबाही होने के बहाने से प्रभावशाली लोग सरकारी कर्मचारियों के साथ गांव में जाते थे व उन्हें कांग्रेस के विरूद्ध भड़काते थे। इतना सब होने के बाद भी आंदोलन धीमा नहीं पड़ा, जारी रहा।[४८]

आंदोलन की समाप्ति व गांधी इरविन समझौता : सविनय अवज्ञा आंदोलन की प्रगति से विवश होकर, सरकार को बढ़ते हुए खतरों का सामना करने के लिए एक रास्ता निकाला गया। महात्मा गांधी जी ने वायसराय लार्ड इरविन से समझौते की बात शुरू की। ५ मार्च १६३१ को गांधी व इरविन में समझौता हुआ।[४६] जिसे गांधी-इरविन समझौते के नाम से जाना जाता हैं।

इस समझौते के बाद गांधी जी ने अपना सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित कर दिया। सब सत्याग्रहियों को जेल से रिहा कर दिया गया। जब जेल से रिहा होकर देशभक्तों के जत्थे अपने-अपने शहरों और कस्बों में आ रहे थे तो उनका भव्य स्वागत किया गया। यह स्थिति थोड़े समय ही रही। १३ अप्रैल १६३१ को लार्ड ईरविन अपना कार्यकाल पूरा करके वापस इंग्लैंड चले गए तथा उनके स्थान पर विलिंग्डन वायसराय बनकर भारत आए। उनके यहां आते ही समझौते पर से सरकार का ध्यान उठ गया। सरकार ने अपना दमनचक्र फिर से आरम्भ कर दिया। हरियाणा में जो कैदी गांधी ईरविन समझौते के अन्तर्गत रिहा किये गए थे उन्हें पुनः गिरतार कर लिया गया जिनका विवरण निमनवत है[५०]-

जिला	गिरतारियाँ
रोहतक	३५०
हिसार	६३
अम्बाला	६६
करनाल	४५
गुड़गांव	२८
कुल	५८२५०

सितम्बर १६३१ में लंदन में आयोजित दूसरा गोलमेज सम्मेलन सम्पन्न हुआ। जिसमें कांग्रेस की ओर से गांधी जी ने भाग लिया। दुर्भाग्यवश यह सम्मेलन असफल रहा और गांधी जी ने फिर से आंदोलन आरम्भ कर दिया। उधर सरकार ने जनवरी १६३२ को गांधी जी को पुनः सभी प्रमुख नेताओं के साथ गिरतार कर लिया गया।[५१]

मई १६३३ में गांधी जी ने जेल में २१ दिन का उपवास रखा ताकि सरकार से अपनी मांगे मनवा सकें। सरकार ने उन्हें उपवास पूर्ण होने से पहले ही बिना किसी शर्त के रिहा कर दिया। गांधी जी ने बाहर आते ही स्थिति का जायजा लिया और पाया

कि लोगों में उत्साह दिखाई नहीं दे रहा है। अतः उन्होंने मई १६३३ को आंदोलन को स्थगित कर दिया। परन्तु अप्रैल १६३४ में उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन को वापिस ले लिया। सरकार ने धीरे-धीरे करके सभी राजनैतिक कैदियों को रिहा कर दिया। गांधी जी के असहयोग आंदोलन की तरह सविनय अवज्ञा आंदोलन भी असफल रहा।[५२] फिर भी इस आंदोलन ने राष्ट्रीय चेनता को आगे बढ़ाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस आंदोलन ने देश के लोगों में देशभक्ति, आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास व समर्पण की भावना भर दी। इस आंदोलन के पश्चात् भारतीयों का ब्रिटिश शासन पर से विश्वास उठ गया। अतः उन्हें भी अपना शासन हिलता हुआ नजर आया।[५३]

अतः संक्षेप में कह सकते हैं कि सविनय अवज्ञा आंदोलन हरियाणा के स्वतन्त्रता संघर्ष में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। हरियाणा के आमजन ने शामिल होकर इसे जन-आंदोलन का रूप दिया। यह आंदोलन असफल होने के बावजूद सफलता की तरफ महत्वपूर्ण कदम था, जिसने भारत की आजादी का मार्ग-प्रशस्त किया।

संदर्भ

१. हरियाणा तिलक, रोहतक, ७ फरवरी १६२८
२. हरियाणा कांग्रेस स्मारिका, चण्डीगढ़, पृ. ३
३. नागर पुरुषोत्तम, लाला लाजपत राय, 'दि मैन एंड हिज आईडिया', दिल्ली १६७७, पृ. १५०-५१
४. जाखड़, रामसिंह, 'स्वतन्त्रता संग्राम में हरियाणा का योगदान', हरियाणा साहित्य भवन, रोहतक, १६६१, पृ. ५६
५. हरियाणा तिलक, १७ मार्च १६२६
६. जाखड़ रामसिंह, पृ. ५७, हरियाणा तिलक, १२ मार्च १६२६
७. मजूमदार, आर.सी., 'स्ट्रगल फार फ्रीडम', भाग-३, मुम्बई, १६६६, पृ. ३३१
८. जाखड़ रामसिंह, 'हरियाणा के राजनैतिक इतिहास की झलक', रोहतक, १६६६, पृ. ६१, हरियाणा तिलक, झज्जर, २८ जनवरी १६३०।
६. होम डिपार्टमैंट पॉलिटिक्ल जनवरी, १६३१ फाईल-१८, श्रीरामशर्मा, हरियाणा का इतिहास, मार्डन पब्लिकेशन, हिसार, १६७४, पृ. ६३
१०. चन्द्र विपिन, 'भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष', दिल्ली, १६६०, पृ. २५३
११. पट्टाभि सीतारमैया, 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस', भाग-४।
१२. खण्डेलवाल कृष्ण कुमार, हरियाणा एनसाईक्लोपीडिया, इतिहास, भाग-२, २०१०, पृ. ३८८
१३. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस वर्णिका (१८८५-१६८५), चण्डीगढ़, पृ० १७६
१४. दि ट्रिब्यून, १४ मार्च १६३०, ग्राम सेवक २५ अक्तूबर, १६३६, पृ० ४
१५. हरियाणा तिलक, १८ अप्रैल १६३०, झज्जर।
१६. जुनेजा, एम.एम., पं. नेकीराम शर्मा, 'हिज लाईफ एंड वर्क', हिसार, १६८७, पृ. १३७
१७. जाखड़, रामसिंह, १६६१, पूर्वोक्त, पृ. ६०-६१
१८. दि ट्रिब्यून, २३ अप्रैल, १६३०
१६. होम डिपार्टमैंट, (पोलिटिक्ल) जनवरी १६३०, फाईल-२५०
२०. दि ट्रिब्यून, २४, २६ अप्रैल १६३०
२१. हरियाणा तिलक, २३, ३१ अगस्त १६३०
२२. होम डिपार्टमैंट, पोलिटिक्ल, फाईल-१७६/१६२६
२३. दि ट्रिब्यून, १८ जनवरी १६३०, वही, श्रीराम शर्मा, पृ. १३८
२४. चन्द्र जगदीश, 'फ्रीडम स्ट्रगल इन हरियाणा', कुरुक्षेत्र, १६८२, पृ० ६०
२५. ग्राम सेवक, १ जुलाई १६३६
२६. हरियाणा तिलक, २१ अप्रैल १६३१
२७. चन्द्र जगदीश, गांधी कोलेक्शन वर्क, भाग-४७, पृ० ६८
२८. जुनेजा, एम.एम., हरियाणा केसरी पं. नेकीराम शर्मा, पृ० ६८,
२६. हरियाणा तिलक, १ दिसम्बर १६३१
३०. हरियाणा तिलक, २१ जुलाई १६३१
३१. जाखड़ रामसिंह, १६६१, पूर्वोक्त, पृ. ६१-६२
३२. होम डिपार्टमैंट, पोलिटिक्ल, फाईल १७६/१६२६, जगदीश चन्द्र पूर्वोक्त, पृ. ६०
३३. होम डिपार्टमैंट, पोलिटिक्ल, फाईल (गर्व० ऑफ इण्डिया), सितम्बर १६३०, फाईल १८, दि ट्रिब्यून, १२ अगस्त १६३०।
३४. हरियाणा तिलक, ३ नवम्बर, १६३१
३५. खण्डेलवाल कृष्ण कुमार, पूर्वोक्त, पृ. ३६५-६६
३६. जगदीश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ६१,
३७. वही, पृ. ६१,
३८. मित्तल, एस.सी., 'हरियाणा ए हिस्टोरिक्ल प्रोसपैक्टिव', पृ. १३०
३६. हरियाणा तिलक, २५ फरवरी १६३०
४०. होम डिपार्टमैंट, पोलिटिक्ल, फाईल ४८३/१६३०
४१. दि ट्रिब्यून, ११ सितम्बर, १६३१
४२. हरियाणा तिलक, ५ जनवरी १६३२
४३. यादव, बी.डी., 'फ्रीडम स्ट्रगल इन हरियाणा' व चौधरी रणवीर सिंह, 'मदवि रोहतक', २०१०, पृ. १०६
४४. वही, रामसिंह जाखड़, पृ. ६३
४५. हरियाणा एन्साइक्लोपीडिया-४, इतिहास, भाग-२, पृ. ३६४
४६. जाखड़ रामसिंह, १६६६, पूर्वोक्त, पृ. ६३
४७. यादव, बी.डी., पूर्वोक्त, पृ. १०६
४८. हरियाणा तिलक, २६ जनवरी, २ फरवरी १६३२
४६. दि ट्रिब्यून, ३१ जुलाई १६३०, जगदीश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ६३
५०. चन्द्र विपिन, 'भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष', नई दिल्ली, २००६, पृ. २६५
५१. दि ट्रिब्यून, २१ जनवरी, १६३२
५२. मल्होत्रा, एस.एल., सविनय अवज्ञा आंदोलन से भारत छोड़ो तक, चण्डीगढ़, १६७७, पृ. २१-२२
५३. मित्तल, एस.सी., पूर्वोक्त, पृ. १३१-१३२

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

अर्थशास्त्र में वर्णित स्त्रियों के विविध कार्य : एक पूर्वावलोकन

❑ नीना कुमारी

मौर्यकाल में नारी का एक अपना अलग स्थान था, यद्यपि वैदिक और बौद्धकाल की अपेक्षा इस काल में नारी की स्थिति में काफी गिरावट आ चुकी थी। विवाहित स्त्रियों को घर से बाहर जाने की स्वतन्त्रता नहीं थी। उन्हें प्रायः घर पर ही रहना होता था और पति की इच्छा के विरूद्ध वे कोई कार्य नहीं कर सकती थीं। यद्यपि मौर्य काल में स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह, तलाक व नियोग जैसी प्रथाएं विद्यमान थीं लेकिन ये उस काल में काफी सीमित क्षेत्र में लागू थीं। मौर्य काल में ऐसी विधवा स्त्रियां भी थीं जो पुनर्विवाह न करके स्वतन्त्र रूप से जीवन बिताया करती थीं। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को छन्दवासिनी (स्वतन्त्र रूप से रहने वाली) विधवा कहा है। कौटिल्य ने इनके लिए 'आढ्य विधवा' संज्ञा का भी प्रयोग किया है। विशेष परिस्थितियों में राज्य को धन की असाधारण रूप से आवश्कता होती थी तो अनेकाविध उपायों से इन आढ्य विधवाओं से भी धन प्राप्ति के ऐसे उपायों का प्रयोग करते थे, जिन्हें सामान्य दशा में समुचित नहीं समझा जा सकता था।

मौर्यकाल में नारी का एक अपना अलग स्थान था, यद्यपि वैदिक और बौद्धकाल की अपेक्षा इस काल में नारी की स्थिति में काफी गिरावट आ चुकी थी। विवाहित स्त्रियों को घर से बाहर जाने की स्वतन्त्रता नहीं थी। मौर्यकाल में बहुत सी ऐसी स्त्रियाँ थीं जो विवाह द्वारा पारिवारिक जीवन न बिताकर वैश्या, गणिका या रूपदासी के रूप में स्वतन्त्र रूप से जीवन यापन किया करती थीं। इन स्त्रियों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया गया था - (१) गणिका, जो राजकीय सेवा में कार्य करने वाली स्त्रियां थीं, (२) रूपाजीवाएं, जो स्वतन्त्र रूप से पेशा करने वाली स्त्रियां थीं, (३) गुप्तचर, जो गुप्तचरी का कार्य करती थीं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र से वर्णित स्त्रियों के विविध कार्यों का वर्णन करना है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित स्त्रियों के विविध कार्यों का वर्णन करना है। मौर्यकाल में बहुत सी ऐसी स्त्रियाँ थीं जो विवाह द्वारा पारिवारिक जीवन न बिताकर वैश्या, गणिका या रूपदासी के रूप में स्वतन्त्र रूप से जीवन यापन किया करती थीं। इन स्त्रियों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया गया था - (१) गणिका, जो राजकीय सेवा में कार्य करने वाली स्त्रियां थीं, (२) रूपाजीवाएं, जो स्वतन्त्र रूप से पेशा करने वाली स्त्रियां थीं, (३) गुप्तचर, जो गुप्तचरी का कार्य करती थीं। कौटिल्य ने वेश्याओं और वेश्यालयों को राज्य की एक महत्त्वपूर्ण संस्था माना है।[1] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नौ प्रकार के गुप्तचरों में नौवां स्थान भिक्षुकी (स्त्री गुप्तचर) का भी था। ये भिक्षुकी गुप्तचर राज्य के अमात्यों के गुप्त रहस्यों, रानी से राजा की रक्षा, राजकुमारों से राजा की रक्षा आदि कार्य करती थीं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ऐसी परिव्राजिकाओं का भी उल्लेख आया है जिसका उपयोग गूढ़ पुरुष या गुप्तचर के रूप में किया जाता था।[2] सूत कातने और बुनने में भी स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण योगदान था। मौर्यकाल में ये स्त्रियां अपने कार्य के अनुसार वेतन को प्राप्त करती थीं। कुछ स्त्रियों को राजा के अंगरक्षकों के रूप में भी नियुक्त किया गया था, जो राजा के बिस्तर से लेकर शिकार तक राजा के साथ रहा करती थीं। अर्थशास्त्र में वर्णित स्त्रियां निम्नलिखित कार्यों में संलग्न थीं-

गणिकाएँ : कौटिल्य के अर्थशास्त्र में गणिकाओं का वर्णन एक अलग अध्याय में है। इस काल में बहुत-सी ऐसी स्त्रियां भी होती थीं जो विवाह द्वारा पारिवारिक जीवन न बिताकर गणिका, वैश्या या रूपाजीवा के रूप में स्वतन्त्र रूप से जीवन-यापन किया करती थीं। वेश्यालयों की व्यवस्था के लिए गणिकाध्यक्ष संज्ञक राजपदाधिकारी द्वारा एक प्रधान गणिका की नियुक्ति की जाती थी, जो रूपवती, यौवन से सम्पन्न एवं शिल्प सम्पन्ना (नृत्य, संगीत, वादन आदि शिल्पों में निपुण) होती थी। यह आवश्यक नहीं था कि यह गणिकार परिवार में ही उत्पन्न हुई हो अर्थात् ऐसी स्त्री को भी प्रधान गणिका के पद पर नियुक्त किया जा सकता था, जो गणिका परिवार में उत्पन्न न हुई हो। इस गणिका को एक हजार पण वार्षिक वेतन प्रदान किया जाता था।[3] इसी प्रकार प्रधान गणिका के अतिरिक्त एक प्रतिगणिका की भी नियुक्ति की जाती थी जिसका वेतन पांच सौ पण वार्षिक होता था।[3] इन दो प्रमुख गणिकाओं के अतिरिक्त अन्य बहुत सी गणिकाएं राजा की सेवा के लिए रहती थीं, जिन्हें उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन वर्गों में विभक्त किया हुआ था। गणिकाओं का यह वर्गीकरण उनके रूप, यौवन और अलंकरण आदि को

❑ शोध अध्येत्री, इतिहास विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

दृष्टि में रखकर किया गया था। सौन्दर्य और सजावट में कमतर कनिष्ठ वेश्या का वेतन एक हजार पण, सौन्दर्य और सजावट में उससे अच्छी मध्यम वेश्या का वेतन दो हजार पण और हर एक बात में चतुर उत्तम वेश्या का वेतन तीन हजार पण होता था।[५] ये वेश्याएं चंवर, छत्र और कलश उठाने का कार्य करती थीं, जब राजा सिहांसन, रथ अथवा पालकी में बैठा रहता था तो, उसकी परिचर्या में लगी रहती थीं।[६] आठ साल की आयु में ही इन्हें राजकीय सेवा में नियुक्त कर दिया जाता था और तभी से ये राजदरबार में नृत्य, गायन आदि के कार्य को प्रारम्भ कर देती थीं।[७]

अर्थशास्त्र में वर्णन मिलता है कि यदि कोई गणिका दूसरी जगह चली जाए या मृत्यु हो जाए तो उसकी जगह उसकी लड़की या बहन नियुक्त होकर परिवार का पालन-पोषण करे या फिर उसकी जगह उसकी माता किसी दूसरी गणिका को नियुक्त करें। यदि ऐसा भी सम्भव न हो सके तो उसकी सम्पति पर राजा का अधिकार हो जाता था।[८] जब गणिकाओं का रूप सौंदर्य ढल जाता था तो इन्हें वेश्याओं की माता (खाला) बना दिया जाता था।[९] वेश्याओं की दासी जब बूढ़ी (रूप सौन्दर्य नष्ट) हो जाती थी तो वे कोष्ठागार या महानस (रसोई के कार्य में नियुक्त) का प्रबन्ध करती थीं। इनसे मातृका (परिचारिका) का कार्य भी करवाया जाता था।[१०]

जो स्त्रियां राजकीय सेवा में न रहती हुई स्वतन्त्र रूप से पेशा करती थीं उन्हें रूपाजीवा (रूप से आजीविका कमाने वाली) कहते थे। रूप से आजीविका कमाने वाली वेश्या अपनी मासिक आमदनी में से दो दिन की कमाई कर के रूप में राजा को देती थीं।[११] राज्य की ओर से एक पृथक पुरुष (राजपुरुष) इस कार्य के लिए नियुक्त किया जाता था, जो कि इन रूपाजीवाओं की आदमनी, स्थिति आदि का परिज्ञान रखे। रूपाजीवाओं का यह कर्त्तव्य माना जाता था कि वे अपनी आमदनी आदि के संबंध में इस राजपुरुष को सूचना देती रहें।[१२] मौर्ययुग में नगरों में रूपाजीवाओं के लिए पृथक रूप से स्थान सुरक्षित रखा जाता था। रूपाजीवाएं, नाचने, गाने वाली और वेश्याएं नगर के दक्षिण भाग में निवास करती थीं।[१३]

गणिकाओं की रक्षा के लिए राज्य की ओर से विशेष ध्यान दिया जाता था। उन्हें राज्य की ओर से संरक्षण प्राप्त था। यदि कोई व्यक्ति किसी गणिका की माता, बेटी या रूपदासी को क्षति पहुंचाए तो उसके लिए उत्तम साहस दण्ड का विधान था। यह अपराध बार-बार करने पर दण्ड की मात्रा अधिक कर दी जाती थी।[१४] यदि यही गणिका काम न करके किसी एक व्यक्ति के घर में बैठना चाहती थी तो वह व्यक्ति उस गणिका को सवा पण मासिक वेतन देगा।[१५] जो गणिकाएं राजवृति (पेशे) से अपने आपको मुक्त करना चाहती थीं उसे राजा को मुक्ति शुल्क के रूप में चौबीस हजार पण देना पड़ता था जो कि प्रायः असंभव होता था। यदि वेश्यापुत्र राजसेवा से निवृत होना चाहे तो वह बारह हजार पण अदा करे। यदि वह मुक्त होने का मूल्य अदा करने में असमर्थ हो तो आठ वर्ष तक राजा के यहां चारण का कार्य करके अपने आपको मुक्त करवा सकता था।[१६]

यदि कोई व्यक्ति इन स्त्रियों की इच्छा के विरूद्ध भोग करता था या उसे बलपूर्वक रोकता या घायल कर देता था जिससे उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाए तो ऐसे व्यक्ति को एक हजार पण दण्ड का भुगतान करना पड़ता था।[१७] यदि वह गणिका के शरीर के भिन्न-भिन्न भागों को चोट पहुंचाए तो उन-उन भागों की विशेषताओं के अनुसार अधिक दण्ड दिया जाता था।[१८] यदि कोई पुरुष कामना रहित कुमारी से बलात्कार करे तो उस पुरुष को उस अपराध के लिए उत्तम साहस दण्ड देना चाहिए।[१९] यदि कोई व्यक्ति राजा की सेवा में नियुक्त वेश्याओं को मार दे तो उस व्यक्ति से वेश्या की मुक्ति के लिए निश्चित की हुई राशि का तिगुना दण्ड (बहतर हजार पण) लिया जाता था।[२०] यदि कोई किसी गणिका के आभूषण या संभोग से प्राप्त धन चुरा ले तो उस व्यक्ति से उस धन का आठ गुणा दण्ड लिया जाए।[२१]

इन गणिकाओं को राज्य की तरफ से न केवल संरक्षण प्राप्त था अपितु ये राजतंत्र के कड़े कानूनी नियन्त्रण में भी थीं। गणिकाध्यक्ष का एक कार्य यह था कि रात के समय वेश्याओं के पास कौन आता है और किस वेश्या को किससे कितना धन मिलता है इसका ब्यौरा रखे। वेश्याओं के लिए यह नियम था कि उन्हें अपने आभूषण और सम्पत्ति गणिकामाता के पास रखनी पड़ती थी जो प्रायः राजतंत्र के प्रति वफादार मानी जाती थी। यदि वह अपने आभूषणों को अपनी माता के अलावा किसी दूसरे के हाथों में सौंप देती थी तो उसे सवा चार पण दण्ड का भुगतान करना पड़ता था। यदि वह अपने गहनें, कपड़े, बर्तन आदि को बेच देती थी या गिरवी रख देती थी तो उस पर सवा पचास पण का दण्ड किया जाता था।[२२] यदि गणिका किसी के साथ कठोरता का व्यवहार करती है तो उसे चौबीस पण का दण्ड दिया जाता था, यदि गणिका शारीरिक रूप से उसे चोट पहुंचाए तो उसे दुगुना दण्ड (अड़तालीस पण) दिया जाता था और यदि वह कान काट ले तो गणिका को पौने

बावन पण का दण्ड दिया जाता था।[२३] यदि कोई वेश्या राजा की आज्ञा होने पर किसी विशिष्ट व्यक्ति के पास जाने से इंकार कर दे तो उस वेश्या पर एक हजार कोड़े मारने अथवा पांच हजार पण दण्ड का जुर्माना किया जाता था।[२४] यदि वेश्या संभोग शुल्क (भाग) लेकर धोखा कर दे तो उस पर संभोग शुल्क से दुगुना जुर्माना करना चाहिए। यदि वेश्या संभोग शुल्क लेकर पूरी रात किस्सा-कहानियों या दूसरे बहानों में ही निकाल दे तो उस पर शुल्क का आठ गुणा दण्ड दिया जाना चाहिए।[२५]किसी संक्रमण रोग या किसी दोष के कारण वेश्या संभोग कराने को तैयार नहीं होती है तो उसे अपराधिनी नहीं समझना चाहिए।[२६] यदि कोई वेश्या किसी पुरुष को मरवा दे तो वेश्या को पुरुष के साथ जीवित ही चिता में जला देना चाहिए या उसको पानी में डुबो देना चाहिए।[२७] गणिका का राज्य की ओर से एक कार्य यह भी था कि वह अपने संभोग, अपनी आमदनी और अपने साथ रहने वाले पुरुष की सूचना गणिकाध्यक्ष को बराबर देती रहे।[२८] गाना, बजाना, नाचना, नाटक करना, लिखना, चित्रकारी करना, वीणा-वेणु-मृदंग बजाना, दूसरे के मन को पहचानना, सुगंधित द्रव्यों को बनाना, माला गूंथना, पैर दबाना, शरीर सजाना आदि कार्यों में गणिका, दासी तथा नर्तकियों को कलाओं का ज्ञान देने वाले आचार्यों की आजीविका का प्रबन्ध नगरों तथा गावों से आने वाली आय द्वारा किया जाना चाहिए। गणिकाओं के पुत्रों तथा मुख्य रंगोंपजीवियों को मुख्य अभिनेता बनाया जाता था। ये रंगोपजीवी और उसकी संस्थाएं तथा उसमें प्रच्छन्न रूप से रहने वाले गुप्तचर राजतंत्र के लिए बहुत उपयोगी कार्य करते थे।[२९] वेश्या के पुत्रों, नाचने-गाने वालों तथा इसी प्रकार के अन्य लोगों को वेश्याओं का शिक्षक नियुक्त करना चाहिए।[३०]

गुप्तचर स्त्रियाँ : मौर्य काल में गणिकाओं के अतिरिक्त स्त्रियाँ गुप्तचरी का कार्य भी करती थीं। आजीविका की इच्छुक, दरिद्र, प्रौढ़, विधवा, दबंग ब्राह्मणी, रनिवास (अंतःपुर) में सम्मानित, प्रधान अमात्यों के घर प्रवेश पाने वाली, परिव्राजिका (सन्यासी के वेश में खुफिया का काम करने वाली) नाम की गुप्तचरी कहलाती थी। इसी प्रकार मुंडा (मुंडित बौद्ध-भिक्षुणी) और वृषली (शूद्रा) आदि नारी भी गुप्तचर थीं। ये सभी संचार नामक गुप्तचर की श्रेणी में आती थीं।[३१]

नट, नाचने-गाने-बजाने वाले, कहानी कहने वाले आदि के वेष में स्त्री गुप्तचर सभी रहस्यों का पता लगाये। भिक्षुकी भेष धारण करने वाली गुप्तचर महिला रसद (जहर देने वाले) आदि पुरुष गुप्तचरों से प्राप्त समाचारों को कापढिक (दूसरों के रहस्यों को जानने वाला, बड़ा दबंग और विद्यार्थी की वेशभूषा में रहने वाला गुप्तचर) आदि गुप्तचरों तक पहुँचाने का कार्य था।[३२] यदि अमात्य आदि के घरों में भिक्षुकों का अन्दर जाने पर प्रतिबन्ध (निषिद्ध) हो तो वह समाचार द्वारपालों के माध्यम से बाहर उस (भिक्षुकी) तक पहुंचाये। यदि इसमें भी कुछ आशंका या असंभव लगे तो अंतःपुर (राजमहल) के नौकरों के माता-पिता का बहाना करके बूढ़ी स्त्री-पुरुष का वेश धारण करके भीतर प्रवेश करके रहस्यों का पता लगाये। अंतपुर के समाचार बाहर लाने के लिए गुप्तचरी रानियों के बाल संवारने वाली या नाचने-गाने वाली या दासियों का वेष धारण करके निजी संकेतों वाले गीतों, श्लोकों, प्रार्थनाओं या बाजों, बर्तनों, टोकरियों में गुप्त लेख रखकर अथवा अन्य विधियों से जैसा भी समय के अनुसार आवश्यक हो हर संभव प्रयत्न करना चाहिए। यदि इन युक्तियों से भी सफलता न मिले तो उसे चाहिए कि वह किसी भंयकर बीमारी अथवा पागलपन के बहाने से आग लगाकर या किसी को जहर देकर (जिससे अंतःपुर में कोहलाहल मच जाये) चुपचाप बाहर निकल जाना चाहिए।[३३]

गुप्त उपायों से अमात्यों के आचरणों की परीक्षा भी की जाती थी। किसी सन्यासिनी का वेष धारण करने वाली विशेष गुप्तचर स्त्री को अन्तपुर में ले जाकर अच्छा स्वागत सत्कार करें और फिर वह एक-एक अमात्य के पास जाकर कहे कि महामात्य महारानी जी आप पर आसक्त है और उन्होंने आपसे मिलने की पूरी व्यवस्था की है और इसके लिए आपको बहुत सा धन भी प्राप्त होगा। यदि अमात्य इस प्रस्ताव का विरोध करता है तो अमात्य को पवित्र समझना चाहिए।[३४]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि स्त्री गुप्तचर राजपुत्रों से राजा की रक्षा का कार्य भी करती थी। यदि राजकुमार का मन किसी पर स्त्री के लिए बैचेन हो जाए तो उस समय उसके संरक्षकों का कर्त्तव्य बनता था कि आर्यावेश धारण की हुई अपवित्र, घृण्य, स्त्रियों को रात्रि के एकांत में राजकुमार के निकट भेजकर उसके मन में ऐसी घृणा तथा खिन्नता पैदा करवाये कि परस्त्री की चाह से राजकुमार का मन हमेशा के लिए हट जाए।[३५]

रानी से राजा की रक्षा के उपाय भी किए गए थे, रनिवास में राजा जब महारानी से मिलने के लिए जाए तो वह अपने साथ बूढ़ी परिचारिका (विश्वसनीय गुप्तचरी) को साथ लेकर जाता था।[३६] राजा स्वयं भी किसी रानी को लक्ष्य करके उसके निवास स्थान पर नहीं जा सकता था। ऐसा इसलिए किया

जाता था क्योंकि स्वयं रानी भी अपने पति के विरोध में षडयन्त्र रच सकती थी। राजा भद्रसेन की रानी के भाई ने अपने बहनोई भद्रसेन की हत्या कर दी थी। अपनी माता की शय्या के नीचे छिपे राजपुत्र ने अपने पिता कारुश राजा का वध कर दिया था।

इसी प्रकार स्वयं रानी ने खीलों में विष मिलाकर अपने पति काशीराज को खिलाकर मार डाला था। इसी तरह वैरन्त्य राजा के विष में बुझे हुए नूपुर के द्वारा, मेखला (करघनी) की मणि से सौदीर राजा को, जालथकी राजा को शीशे के द्वारा और विडूरथ राजा की रानी ने अपनी वेणी में शस्त्र छिपाकर राजा का वध कर दिया था।[३६] इसलिए राजा रनिवास के अन्दर जाकर किसी विश्वस्त बूढ़ी परिचारिका के साथ महारानी से मिले। अकेला राजा किसी रानी के पास न जाए।[३८] जब वेश्याएँ एवं गणिकाएं राजा के पास जाती थी तो अच्छी तरह स्नान करके एवं नये वस्त्रों तथा अलंकार आदि से सुसज्जित होकर जाती थी। रानियों के नैतिक आचरण की निगरानी वे बूढ़े सरकारी कर्मचारी करते थे जिनमें अस्सी वर्ष की अवस्था के पुरुष और पचास वर्ष की बूढ़ी स्त्रियाँ होती थीं। इन दासियों पर राजा का भरोसा होता था। ये रानियों को यही शिक्षा देती थीं कि उन्हें अपने स्वामी के हित में रहना चाहिए।[३९] राजा को चाहिए कि मुंडी, जटी इसी प्रकार से धूर्त और बाहर की दासियों के साथ रानियों का सम्पर्क न रहने दे।[४०] रानी की प्रसव या बीमारी की अवस्था में दायी को नियुक्त किया जाए। वेश्याएँ (गणिकाएं) अन्तपुर में स्नान, उबटन के बाद सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से अलंकृत होकर जाएं।[४१] अस्सी वर्ष की अवस्था के पुरुष और पचास वर्ष की बूढ़ी स्त्रियाँ माता-पिता की भांति रानियों से व्यवहार करें। अन्तःपुर में दूसरे वृद्ध और नपुंसक पुरुष रानियों के चरित्र का ध्यान रखें और उन्हें राजा की हित कामना में लगाये रखें।[४२]

अंतपुर के सभी परिचारिक-परिचारिकायें अपने-अपने स्थानों पर रहें, दूसरे के स्थान पर न जाने पाये। इसी प्रकार कोई भीतर का आदमी बाहर के आदमी से न मिल पाये।

मौर्यकाल में राजद्रोही उच्चाधिकारियों के संबंध में दण्ड दिलाने में गुप्तचर स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण योगदान था। यदि किसी राजद्रोही को मारना है तो इसके लिए भिक्षुकी नामक स्त्री गुप्तचर राजद्रोही की स्त्री से कहे कि मैं वशीकरण की औषधि को जानती हूँ। तुम इस औषधि को अपने पति को खिला देना। इस प्रकार औषधि की जगह विष देकर राजद्रोहियों को मारा जाता था। इस कार्य को आप्य-प्रयोग कहते थे।[४३]

प्रवास के लिए गया हुआ राजा पहले अपने राजद्रोही लोगों का खूब आदर-सत्कार करे, फिर किसी व्याभिचारिणी स्त्री को महारानी के वेष में राजद्रोहियों के पास भेज दे बाद में सिपाहियों से वहीं पर उन्हें गिरफ्तार करवाया जाए और राजद्रोह के अपराध में उनका वध करवा दिया जाए।[४४]

गुप्तचर भिक्षुकी देश के किसी उच्चपद राजद्रोही से कहे कि किसी राजद्रोही (अमुक) की पत्नी, पुत्रवधू या लड़की तुम पर आसक्त है। यदि वह विश्वास कर ले तो उससे कोई आभूषण आदि लेकर दूसरे राजद्रोही को दिखाए और वह अमुक राजद्रोही महाधिकारी जवानी में मतवाला होकर तुम्हारी पत्नी, पुत्री, पुत्र वधु को चाहता है। इस प्रकार उन दोनों का आपस में झगड़ा हो जाता है।[४५]

गुप्तचर स्त्री माता के वेष में देशद्रोही का दोषारोपण करे कि "तूने मेरा लड़का मारा है।" जब देशद्रोही पुरुष रात्रिहवन, वनयज्ञ और वन क्रीड़ा को प्रस्थान करे तो तीक्ष्ण लोग किसी नियुक्त पुरुष को मारकर देशद्रोही के रात्रिहवन आदि के पास उसको गाड़ दे और इसी अपराध में देशद्रोही को गिरफ्तार कर उसका सब कुछ छीन लिया जाता था।[४६]

सूत व्यवसाय

मौर्य काल में स्त्रियाँ गुप्तचरी के अलावा सूत कातने का काम भी किया करती थीं। इस काल में आमतौर पर सूत कातने का काम स्त्रियों द्वारा किया जाता था।

इस काल में स्त्रियाँ ऊन, बल्क, कपास, सेंमल, सन और जूट आदि कातने का कार्य करती थी। राजकीय कर्मान्तों के अलावा अपने घरों में भी कार्य करती थीं। विधवा, अंग विकल स्त्रियां जिनका विवाह होना कठिन हो, कन्या (अविवाहित स्त्रियाँ) अपराधिनी (जिन्हें कारावास का दण्ड मिल चुका हो), बूढ़ी वेश्याएँ और देवदासियाँ (जो देवालयों के लिए अनुपयोगी हो चुकी हो) आदि सूत कातने का कार्य करती थीं।[४७]

महिलाओं की मजदूरी सूत की एकसारता, मोटाई और मध्यमता की जांच करने के बाद निश्चित की जाती थी। कम ज्यादा सूत कातने वाली महिलाओं को उनके कार्य के अनुसार वेतन देना चाहिए। सूत का वजन या लम्बाई को जानकर पुरस्कार रूप में उन्हें तेल, आंवला और उबटन देना चाहिए, जिससे वे प्रसन्न रहकर कार्य करें।[४८] त्यौहारों के दिनों में उन्हें भोजन, दान या सामान देकर उनसे कार्य करवाया जाता था। यदि निर्धारित मात्रा से सूत कम काता जाए तो सूत के मूल्य के अनुसार उनका वेतन काट लिया जाता था।[४९] जो स्त्रियाँ परदानसीन (अनिष्कासिनी) या अपने घर से बाहर कहीं न

जाती हों, जिसके पति परदेश चले गये हों, विधवा लूली-लंगड़ी हो, कुमारी कन्या हो, जो आत्मनिर्भर रहना चाहती हो, इसके लिए अध्यक्ष को चाहिए कि वह दासियों के द्वारा सूत भेजकर उनसे सूत कतवाये और उनके साथ अच्छा व्यवहार करे।[५०] घर पर काते हुए सूत को लेकर जो स्त्रियां स्वयं या दासियों को साथ लेकर प्रातःकाल सूत्रशाला में आकर काम लेती थीं उन्हें अंधेरे में ही प्रातःकाल काम दे दिया जाता था और दीपक के लिए उतना ही तेल दिया जाता था जितने से धागाभर दिख सके।[५१]

जो कर्मचारी स्त्री का मुख देखने या इधर-उधर की बात करता था उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाता था। यदि वह स्त्रियों को उचित समय पर मजदूरी न दे तो मध्यम साहस दण्ड और यदि कार्य न करने पर भी वेतन दिया जाए तब भी मध्यम साहस दण्ड देना चाहिए।[५२] जो स्त्री वेतन लेकर भी कार्य न करे उसका अंगूठा कटवा देना चाहिए[५३] और यही दण्ड उसको भी देना चाहिए जो माल को चुराये, खो दे या लेकर भाग जाये।[५४]

मौर्य काल में शिल्पियों की कमी होने के कारण इनके साथ नरमी से व्यवहार किया जाता था।

राजा के अंगरक्षकों के रूप में कार्य

इन कार्यों के अतिरिक्त मौर्यकालीन स्त्रियां राजा के अंगरक्षकों के रूप में भी कार्य करती थीं। कौटिल्य ने वर्णन किया है कि जब राजा प्रातःकाल बिस्तर से उठता था तो स्त्रियां राजा को धनुषबाण लेकर घेर लेती थीं जो राजा के निकटतम अंगरक्षक हुआ करती थीं। राजा को स्नान कराना, उसके अंगों को दबाना, बिस्तर बिछाना, कपड़े धोना और माला बनाना आदि कार्यों को दासियाँ ही करती थीं[५५]। दासियाँ इत्र, सुगंधित पाउडर, चन्दन, वस्त्र, मालाएँ इत्यादि को अपनी आंखों से देखकर, बाहों और छाती से लगाकर अजमाएँ और फिर बाद में राजा को प्रदान करें।[५६] कौटिल्य के अनुसार राजा की व्यक्तिगत सेवा के लिए तीन तरह की वेश्याओं की श्रेणियाँ थीं जो प्रतिदिन के घरेलू कार्य करती थीं। इन गणिकाओं का सबसे बड़ा गुण और योग्यता उनका सौन्दर्य तथा कामवासना में प्रवीणता माना जाता था। इसी आधार पर उनके तीन भेद किये जाते थे। कनिष्ठ वेश्या, मध्यम वेश्या और उत्तम वेश्या। इनमें से पहली निम्न गणिका राजा का छत्र धारण करती थी तथा इत्रदान लेकर राजा की सेवा करे, दूसरी गणिका (मध्यमा) राजा को पंखा झलती थी तीसरी और उत्तम वेश्या राजा के साथ सिंहासन, पालकी और रथ में बैठती थी और उसकी परिचर्या करती थी।[५७] इस प्रकार गणिकाओं तथा वेश्याओं का न केवल सेवन किया जाता था बल्कि उनका खुला प्रदर्शन भी किया जाता थां

शिकारी के रूप में भी स्त्रियां राजा की सहायता करती थीं। स्ट्रेबो ने वर्णन किया है कि राजा के शरीर की देखभाल स्त्रियों को सौंपी हुई थी जब राजा शिकार को जाता था तो एक शोभा यात्रा निकलती थी जिसे कुछ महिलाएं रथों पर, घोड़ों पर और हाथियों पर शस्त्र लिये राजा को चारों तरफ से घेरे हुए होती थीं।[५८] जब राजा निशाना साधने के लिए धनुष को ऊँचा उठाता है तो दो या तीन स्त्रियाँ शस्त्र लिये उसके पास खड़ी रहती थीं।

पेशलरूपां दासी

मौर्य युग में स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग भी था जिसे मदिरा के व्यापारी अपने पानागारों में आगुन्तकों की सेवा के लिए रखा करते थे। कौटिल्य ने इन्हें 'पेशलरूपां दासी' की संज्ञा दी है।[५९] इन स्त्रियों से गुप्तचर का कार्य भी लिया जाता था। ठेकेदार सुन्दर एवं चतुर दासियों द्वारा अलग-अलग कमरों में बेहोश उन बाहर से आये या नगर के रहने वाले और ऊपर से आर्य लगने वाले शराबियों के भीतरी भावों का पता लगाते थे।[६०] सुरा को बनाने और किण्व (मसाले) को तैयार करने के लिए स्त्रियों और बालकों को नियुक्त किया जाता था।[६१]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में गणिका, भिक्षुकी, गुप्तचर, सूत कातने व बनाने वाली स्त्रियाँ और राजा के अंगरक्षकों के रूप में इनका वर्णन मिलता है। गणिकाओं को इस काल में संरक्षण भी प्राप्त था और राज्य के द्वारा इन पर नियन्त्रण भी रखा गया था। गुप्तचारियों के माध्यम से अन्तःपुर के गुप्त रहस्यों का पता लगाया जाता था। परिव्राजिकाओं के द्वारा राजा की रक्षा की जाती थी। यह एक विश्वासी स्त्री का चरित्र निभाती थीं। अतः कहा जा सकता है कि कुछ हद तक ये स्त्रियां मौर्य साम्राज्य की रीढ़ में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।

सन्दर्भ

१. धर्मवीर, 'कौटिल्य का सामाजिक बैर', संगीता प्रकाशन, दिल्ली, २०००, पृ. २६
२. विद्यालंकार सत्यकेतु, 'मौर्य साम्राज्य का इतिहास', सरस्वती सदन, मसूरी, १६२६, पृ. ३६६
३. शास्त्री आर. शाम, 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र', अधिकरण दूसरा, अध्याय २७, रघुवीर प्रिंटिंग प्रेस, मैसूर, ३० मार्च, १६५६, पृ. १३६
४. विद्यालंकार सत्यकेतु, पूर्वोद्धृत, पृ. ३६६
५. गैरोला वाचस्पति, 'कौटिल्य-अर्थशास्त्रम्', दूसरा अधिकरण : प्रकरण ४३, अध्याय २७, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १६७४, पृ. २५५-५६
६. पाण्डेय मिथिला शरण, 'प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएँ', ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ८१
७. सिन्हा एस.एन., एन. के. वासु, वूमैन इन एंशियण्ट इंडिया, (वेदाज टू वात्स्यायन), कामा पब्लिशर्स, दिल्ली, २००२, पृ. २००८
८. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोक्त, पृ. १३६
९. कांगले आर.पी., दी कौटिलीय अर्थशास्त्र, भाग-२, अधिकरण दो, अध्याय २७, यूनिवर्सिटी ऑफ बाम्बे, बम्बई १६७२, पृ. १५६
१०. विद्यालंकार सत्यकेतु, पूर्वोद्धृत, पृ. ४००
११. जर्नल एडिटर बी. डी. चट्ठोपाध्याय, सम्पादक कुमकुम राय, 'वूमैन इन अर्ली इंडियन सोसायटिस', मनोहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रब्यूटर्स, नई दिल्ली, १६६६, पृ. २०१
१२. विद्यालंकार सत्यकेतु, पूर्वोद्धृत, पृ. ४००
१३. वही, पृ. ४०१
१४. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. १४०-४१
१५. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. २५६
१६. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. १३६
१७. दीपकर आचार्य, 'कौटिल्य कालीन भारत', हिन्दी समिति, लखनऊ, १६६८, पृ. १३५
१८. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. २५७
१९. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. १४०
२०. कांगले आर.पी., पूर्वोक्त पृ. १६०
२१. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोक्त, पृ. १४१
२२. वही, पृ. १४०
२३. कांगले आर.पी., पूर्वोद्धृत, पृ. १६०
२४. सिन्हा एस.एन., पूर्वोद्धृत, पृ. २०६
२५. कांगले आर.पी., पूर्वोद्धृत, पृ. १६०-६१
२६. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. २५८
२७. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. १४१
२८. कांगले आर.पी., पूर्वोद्धृत, पृ. १६१
२९. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. १४१-४२
३०. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. २६०
३१. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. २०
३२. कांगले आर.पी., पूर्वोद्धृत, पृ. २५
३३. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. ४१
३४. कांगले आर.पी., पूर्वोद्धृत, पृ. १६
३५. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. ३३
३६. आर. पी. कांगले, पूर्वोद्धृत, पृ. ४८
३७. सिन्हा एस.एन., एन. के. वासु, पूर्वोद्धृत, पृ. २०७
३८. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. ८१
३९. आचार्य दीपकर, पूर्वोद्धृत, पृ. १६४
४०. कांगले आर.पी., पूर्वोद्धृत, पृ. ५०
४१. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. ४१
४२. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. ८२
४३. कांगले आर.पी., पूर्वोद्धृत, पृ. २६३
४४. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. ४६७
४५. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. २७२
४६. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. ५१०
४७. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. १२८
४८. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. २३५
४९. कांगले आर.पी., पूर्वोद्धृत, पृ. १४७
५०. वही, पृ. १४७
५१. आचार्य दीपकर्र, पूर्वोद्धृत, पृ. ५२
५२. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. १२६
५३. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. २३७
५४. कांगले आर.पी., पूर्वोद्धृत, पृ. १४८
५५. मुखर्जी राधामुकुद, 'चन्द्रगुप्त मौर्य एण्ड हिज लाइफ', मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १६८८, पृ. ५६-६०
५६. सिन्हा एस.एन., एन. के. वासु, पूर्वोद्धृत, पृ. २०५
५७. गौरोला वाचस्पति, पूर्वोद्धृत, पृ. २५५-५६
५८. मुखर्जी राधाकुमुद, पूर्वोद्धृत, पृ. ५६
५९. विद्यालंकार सत्यकेतु, पूर्वोद्धृत, पृ. ४०२
६०. कांगले आर.पी., पूर्वोद्धृत, पृ. १५४
६१. शास्त्री आर. शाम, पूर्वोद्धृत, पृ. १३७

Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

सामूहिक स्नानों से प्रभावित जल की गुणवत्ता - एक अध्ययन

❑ **डॉ.नीतू सिंह तोमर**

भारत में विभिन्न जाति, समुदायों के लोग रहते हैं। नदियों में स्नान करना हिन्दू धर्म का पवित्र व महत्वपूर्ण अंग है।[1] यहाँ पर कुछ ऐसे पर्व हैं, जब किसी विशेष स्थान पर स्नान करना धार्मिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। जल प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण के केन्द्रीय बोर्ड दिल्ली ने मीठे पानी के स्रोतों के वर्गीकरण तथा परिधिकरण करते समय सामूहिक स्नान को नदियों का एक महत्वपूर्ण प्रयोग माना और उसे वर्गीकरण में जल के दूसरे दर्जे की कोटि में रखा, जो पीने के पानी के बाद का दर्जा है। गंगा, यमुना व इनकी सहायक नदियों में अनेक ऐसे स्थान हैं, जहाँ पर सामूहिक स्नान करने वालों की संख्या लाखों तक पहुँचती है। हरिद्वार, बनारस, मथुरा, उज्जैन, गंगा सागर इनमें प्रमुख हैं। इन जगहों पर नदियों को वर्गीकरण के दूसरे दर्जे में रखा गया है।[2]

कुम्भ पर्व भारत में चार जगहों पर मनाया जाता है। हर जगह १२ वर्ष में एक बार कुम्भ आता है। अर्धकुम्भ दो कुम्भ पर्व के बीच आता है।[3] कुम्भ की शुरूआत कैसे हुई इसके बारे में एक रोचक कहानी है। कई हजारों वर्ष पूर्व सागर का मंथन किया गया, इसके फलस्वरूप १४ रत्न प्राप्त हुए, इनमें से एक अमृत-कुम्भ था। इस कुम्भ को लेने के लिए देवताओं व राक्षसों में झगड़ा हुआ। देवताओं ने इस कुम्भ की रक्षा की जिम्मेदारी इन्द्र के पुत्र जयन्त को दी। गुरू शुक्राचार्य से प्रेरित होकर राक्षसों ने जयन्त का पीछा किया। देवताओं के गुरू बृहस्पति एवं चन्द्र तथा सूर्य ने जयन्त की सहायता की। यह झगड़ा १२ दिव्य दिन (१२ मानव वर्ष) तक चला। इस १२ वर्ष की अवधि में कुम्भ ४ स्थानों पर छुपाया गया। ये हैं हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन व नासिक। यह विश्वास किया जाता है कि इस झगड़े के दौरान चारों स्थानों पर अमृत की कुछ बूंदें गिर गईं। इन्हीं चार स्थानों पर कुम्भ पर्व के दिन (वह दिन जिस दिन कुम्भ उन स्थानों पर रखा गया था) स्नान करना अत्यन्त कल्याणकारी माना जाता है। ऐसा विश्वास है कि इन स्थानों पर स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं और आत्मा शुद्ध होती है। पर्व पर इन स्थानों पर देश-विदेश से लाखों लोग नदी के एक छोटे भाग में एक साथ स्नान करते हैं।[4]

> नदियों में स्नान करना हिन्दू धर्म का पवित्र व महत्वपूर्ण अंग है। यहाँ पर कुछ ऐसे पर्व हैं, जब किसी विशेष स्थान पर स्नान करना धार्मिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। ऐसे सामूहिक स्नानों से जल की गुणवत्ता पर कई बुरे प्रभाव पड़ते हैं। कई बीमारियों के कीटाणुओं का ऐसे स्थानों पर फैलने का डर रहता है। इनमें से आंत्र रोगाणु जैसे सोल्मोनेला, शीगेला, आंत्र वायरस बहुकोशी परजीवी रोगाणु एवं अवसर ग्राही रोगाणु जो पानी में पोषक तत्वों की मौजूदगी में बढ़ते रहते हैं। स्नान करने वालों के चर्म, नाक, कान आँख, मुँह, काँख आदि में रहने वाले जीवधारी जैसे स्युडोमोनास एरीयस और कुछ अन्य जीवधारी जो विभिन्न स्रोतों से पैदा होते हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत सामूहिक स्नानों से प्रभावित जल की गुणवत्ता का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

भौगोलिक दृष्टि से गंगा का उद्‌गम उत्तरांचल प्रदेश जो कि पूर्व में उत्तर प्रदेश में था, के उत्तरकाशी जनपद के गंगोत्री गाँव से २२ किमी. पश्चिम में गोमुख नामक बर्फ की चट्‌टानों से होता है। वहाँ से २१६ किमी. चलकर देवप्रयाग में गंगा व अलकनन्दा का संगम होता है और गंगा हरिद्वार पहुँचती हैं, जहाँ लाखों लोग इसके पवित्र जल से अपने पापों को धोते हैं। कन्नौज में यह कालीनदी तथा इलाहाबाद में यह यमुनानदी से मिलती हुई उत्तर-प्रदेश, बिहार, पश्चिम-बंगाल की खाड़ी-गंगासागर तक २,५२५ किलोमीटर लम्बी है। उद्‌गम से उद्‌भव तक इस नदी की ६ लाख वर्ग किलोमीटर की द्रोणी हैं।[5] इसके जल को स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी माना जाता है। इसके नियमित सेवन से बहुत सी बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। पुराणों में लिखा गया है कि गंगाजल वर्षों तक किसी बर्तन में सुरक्षित रखा जा सकता है और उसमें किसी प्रकार की खराबी उत्पन्न नहीं होती है। गंगा की विशेषता का कारण, उसके जल की अद्वितीय कोटि, जिसका बखान महाभारत व अन्य पौराणिक ग्रन्थों में भी हुआ है।[6]

हिन्दू समुदाय के सभी प्रमुख त्यौहारों का सम्बन्ध नदी, सरोवर, कुण्ड, झीलों में सामूहिक स्नान से है। त्यौहारों के समय पूरे देश से लाखों की संख्या में श्रद्धालु इन स्थानों पर आकर एकत्रित होते हैं। यह उनकी धर्म में आस्था एवं अपार

❑ **शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र, कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)**

श्रद्धा के कारण होता है। यहाँ वे न केवल स्नान ही करते हैं बल्कि अपेय प्रदूषित जल, जिसमें अनेक रोगों के कारक जीव विद्यमान होते हैं, का भी सेवन करते हैं। इन जन समूहों में ग्रामवासियों की संख्या सर्वाधिक होती है जो अपनी पवित्र आकांक्षाओं एवं दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नदी एवं कुण्डों के पास ठहरना अधिक पसन्द करते हैं। ये तीर्थयात्री मलमूत्र का विसर्जन, व्यर्थ भोजन, मिट्टी के बर्तन, पत्तल-दोने एवं पूजन सामग्री तथा विभिन्न अवसरों के अवशेषों-मूर्तियों को इन नदियों-कुण्डों में विसर्जित कर देते हैं जो जल की अशुद्धता में वृद्धि करते हैं। गंगा-दशहरा एवं मकर-संक्रान्ति तथा ग्रहण के दौरान गंगानदी के तटों पर बड़ी संख्या में तीर्थयात्री होते हैं जिनमें त्वचा, तपेदिक एवं अनेक संक्रामक रोगों से ग्रसित रोगियों का उच्च्य प्रतिशत रहता है। इन रोगियों के गंगा स्नान का मुख्य श्रद्धाभाव यह होता है कि वे जब पवित्र गंगा के स्नान कर लेगें, उन्हें इन रोगों से मुक्त मिल जायेगी।[७] विभिन्न देवी-देवताओं के सम्मान में अनेक सामाजिक कार्यक्रमों के सम्पन्न होने से भी जल प्रदूषित होता है। सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण स्नान के अवसर पर गंगा तटों पर एकत्रित होकर गंगानदी में स्नान करना पवित्र माना जाता है। गंगा-दशहरा ज्येष्ठमास की शुक्लपक्ष दशमी को, विजय-दशहरा-आश्विन मास की शुक्लपक्ष दशमी को तथा मकर-संक्रान्ति जनवरी माह की १४ तारीख को होता है। इन अवसरों पर बड़ी संख्या में श्रद्धालु गंगा तटों पर एकत्रित होकर गंगा स्नान करते हैं।[७]

सामूहिक स्नानों के फलस्वरूप गंगाजल में परिवर्तन से संबन्धित केन्द्रीय बोर्ड के अध्ययन

१-हरिद्वार-अर्धकुम्भ के दौरान केन्द्रीय बोर्ड द्वारा अप्रैल १६८० में हरिद्वार में गंगाजल की गुणवत्ता पर अध्ययन किया गया। हरिद्वार में अप्रैल, १६८० में अर्द्धकुम्भ सम्पन्न हुआ। इस दौरान लगभग १२ लाख लोगों ने हरि की पौड़ी में गंगा स्नान किया और केन्द्रीय बोर्ड के वैज्ञानिकों ने १० से १३ अप्रैल तक गंगा का अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि जल में सामूहिक स्नान से भौतिक व रासायनिक परिवर्तन इतने महत्वपूर्ण नहीं जितना कि जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि। हरि-की-पौड़ी से करीब २५ किलोमीटर ऊपर लक्ष्मण झूले के पास सूचक जीवाणुओं की संख्या १०० प्रति १०० मिलीलीटर थी, जो कि स्नान जल मानदण्ड से नीचे थी अर्थात् जल नहाने लायक था, किन्तु हरिद्वार में जीवाणुओं की संख्या कई गुनी ज्यादा पाई गयी। दिनांक १२-४-१६८० को जबकि ४ लाख लोगों ने सामूहिक स्नान किया सूचक जीवाणु १८५० गुना तक बढ़ गये थे, किन्तु उसके अगले दिन जबकि १२ लाख लोगों ने सामूहिक स्नान किया, जो कि कुम्भ का मुख्य स्नान था, जीवाणुओं की संख्या काफी कम थी जो कि ८ से ६ गुनी कम थी। क्लोरीन जीवाणु पर घातक प्रभाव डालती है, और इसका उपयोग जल को जीवाणुओं से मुक्त करने के लिए किया जाता था।[८]

२-इलाहाबाद- यहाँ पर जनवरी, १६८२ में अर्द्धकुम्भ हुआ था। इस दौरान यमुना व गंगा के संगम से पूर्व ८-१० किमी. तक व संगम के बाद १५ किमी. तक गुणवत्ता का विभिन्न स्नानों के दिन केन्द्रीय बोर्ड द्वारा अध्ययन किया गया। यमुना व गंगा मिलने से पूर्व ही नदियों का जल काफी दूषित पाया गया व सूचक जीवाणुओं की संख्या काफी ज्यादा थी तथा पानी स्नान योग्य नहीं था। स्नान के दोनों पर्वों १४ व २५ जनवरी को क्रमशः मकर-संक्रान्ति, मौनी-अमावस्या मुख्य स्नान था। संक्रान्ति के दिन ४५ लाख लोगों ने एक साथ स्नान किया जिसकी बजह से संगम के करीब सूचक जीवाणु २५ गुना बढ़ गये थे और मनइया घाट तक वैसे ही रहे थे। इसी प्रकार मौनी अमावस्या के दिन करीब १ करोड़ लोगों ने संगम पर एकत्रित होकर एक साथ स्नान किया। पानी के नमूने संगम के ऊपर गंगा और यमुना दोनों में लिए गए तथा संगम के बाद मनइया घाट तक पाया गया कि सूचक जीवाणु उतने अधिक बढ़े नहीं थे जितने कि संक्रान्ति के दिन बढ़े थे। जबकि इस अवसर पर नहाने वालों की संख्या दूनी से ज्यादा थी। यह कमी किसी दिव्य शक्ति से नहीं अपितु क्लोरीन मिलाने से हुई थी। यहाँ कुल कोलीफार्म व फीकल कोलीफार्म का अनुपात हरिद्वार से काफी उच्च्य पाया गया। इसका कारण कानपुर शहर से चर्म-उद्योगों व अन्य स्रोतों से भारी मात्रा में कोलीफार्म का मिलना तथा बीच में नदी में डाले गये शवों द्वारा भारी मात्रा में कोलीफार्म मिलना है।[६]

३- गंगासागरः संक्रान्ति मेला-गंगा के मुहाने पर गंगा सागर नामक एक द्वीप है जहाँ पर हर वर्ष संक्रान्ति पर मेला लगता है तथा लाखों श्रद्धालु मुहाने के जल में डुबकी लगाते हैं। इसी अवसर पर, जनवरी, १६८३ में केन्द्रीय बोर्ड ने अपनी चल प्रयोगशाला के रूप में वैज्ञानिक दल भेजा। दल ने विभिन्न ज्वार-भाटाओं में जल की गुणवत्ता का अध्ययन किया तथा मुख्य स्नान के दिन समुद्रतट व ५ किमी. समुद्र के अन्दर तक सूचक जीवाणुओं की मात्रा का अध्ययन किया आठ स्थानों पर लगातार पानी के नमूने लेकर विश्लेषण किया गया। सूचक जीवाणु तथा कार्बनिक पदार्थों की मात्रा के विश्लेषण से पता

चला कि इनकी मात्रा सामूहिक स्नान से काफी प्रभावित रही। सूचक जीवाणु समुद्र के पानी में ज्यादा देर तक जीवित नहीं रह पाते और इनका वितरण सिर्फ १ किमी. के दायरे में ही था। गंगासागर में पानी सामूहिक स्नान से पूर्व नहाने योग्य था उसमे प्रदूषण नहीं के बराबर था। सामूहिक स्नान के दौरान ३ दिन तक जल में सूचक जीवाणु व कार्बनिक पदार्थ समुद्रतट की करीब १ किमी. चौड़ी पट्टी में काफी बढ़ गये थे तथा समुद्र तट पर ही मलमूत्र त्याग होने से ज्वार के समय गंदगी पानी में मिलकर, सूचक जीवाणु व कार्बनिक पदार्थ बढ़ा रहे थे।[१०]

४-कुम्भपर्व, हरिद्वार (१९८६): केन्द्रीय बोर्ड द्वारा अध ययन क्रम में चौथा अध्ययन कुम्भपर्व-१९८६ के दौरान हरिद्वार में किया गया। केन्द्रीय बोर्ड ने अप्रैल, १९८६ में हरिद्वार में वैज्ञानिक दल को चल प्रयोगशाला लेकर मुख्य स्नान से ५ दिन पूर्व ही भेजा था। इस दल ने हरि की पौड़ी के ऊपर १० किमी. तथा नीचे १० किमी. तक लगातार नमूने लेकर परीक्षण किया तथा तुलना के लिए लक्ष्मण झूले के निकट भी नमूने लिए थे। परीक्षण में ज्ञात हुआ कि इस बार सूचक जीवाणु पिछले सभी अध्ययनों की अपेक्षा कम हैं। सूचक जीवाणु कम पाये जाने का मुख्य कारण गंगा की प्रदूषण नियन्त्रण परियोजना का अथक प्रयास व गंगा को मुक्त कराने का संकल्प था। केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण ने गंदे पानी के नालों को जो सीधे नदी में गिरते थे, रोका। परिणामतः गंगा का जल काफी हद तक साफ हो गया। सूचक जीवाणु पहले से ४ से ५ गुना कम पाये गये। यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि प्रति व्यक्ति कोलीफार्म अंशदान पिछले पूर्व अध्ययनों से कम था। यह भी पाया गया कि पानी में कार्बनिक पदार्थ काफी बढ़ गये थे जिसके स्रोत के बारे में अनुमान है कि मनुष्य के बदन से नहाते समय कार्बनिक पदार्थ निकलते हैं। इसके अलावा नदी की पूजा करके लिप्त लोग दूध, घी, दही, फूल, पत्तियाँ, मिठाइयाँ व अन्य पदार्थ नदी में डाल रहे थे। कार्बनिक पदार्थ बढ़ने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी हो सकता था।[११]

सामूहिक स्नानों के फलस्वरूप गंगाजल में परिवर्तन से सम्बन्धित केन्द्रीय बोर्ड के अध्ययनों में पाया गया कि भौतिक व रासायनिक परिवर्तन जो सामूहिक स्नान से हुए हैं, सिर्फ क्लोराइड में थोड़ा परिवर्तन मिला था क्योंकि हर आदमी अपने बदन में क्लोराइड जो कि नमक का अंग है, पसीने के साथ निकलता है और नहाते समय पानी में घुल जाता है। यह अनुमान लगाया गया कि करीब ६ ग्राम प्रति व्यक्ति क्लोराइड नदी में नहाने से बढ़ा था। अध्ययनों में कुम्भ पर्व के अध्ययन के दौरान सूचक जीवाणु सामूहिक स्नान से घाटों के नीचे करीब ५ गुना तक बढ़ गये थे। अगर लक्ष्मण-झूला को सन्दर्भ माने तो सूचक जीवाणु १२ से ६५ गुना बढ़े हुए पाये गये थे। इस अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि नदी में पानी में क्लोरीन बहुत कम मात्रा में मिलाई गई और उसका प्रभाव न के बराबर रहा। यह अनुमान किया गया कि नदी की क्लोरीन मांग के मुकाबले में दी गई क्लोरीन २० से ३० गुना कम थी।

स्नानों से जल की गुणवत्ता पर मुख्य प्रभाव : ऐसे सामूहिक स्नानों से जल की गुणवत्ता पर कई बुरे प्रभाव पड़ते हैं। कई बीमारियों के कीटाणुओं का ऐसे स्थानों पर फैलने का डर रहता है। इनमें से आंत्र रोगाणु जैसे सोल्मोनेला, शीगेला, आंत्र वायरस बहुकोशी परजीवी रोगाणु एवं अवसर ग्राही रोगाणु जो पानी में पोषक तत्वों की मौजूदगी में बढ़ते रहते हैं। स्नान करने वालों के चर्म, नाक, कान आँख, मुँह, काँख आदि में रहने वाले जीवधारी जैसे स्युडोमोनास एरीयस और कुछ अन्य जीवधारी जो विभिन्न स्रोतों से पैदा होते हैं। हमारे देश के कुछ भागों में नारू नामक बीमारी जो कि एक तन्तु कमी द्वारा होती है, इसके फैलाव में स्नान जल का सबसे ज्यादा योगदान है। मारपलस (१९६९) के अनुसार एक मिलीग्राम चर्म पपड़ी में औसतन ५,३०,००० जीवाणु मौजूद होते हैं। यह दर्शाता है कि ५३ करोड़ जीवाणु एक ग्राम चर्म पपड़ी पर मौजूद होंगे जो कि उपजाऊ मिट्टी में जीवाणु की संख्या के बराबर है तथा शरीर के कुछ भाग जैसे उपचर्म, चर्म, पसीना ग्रन्थियों, बालों की जड़ों में जीवाणु उसी तरह फलते-फूनते हैं जैसे उपजाऊ मिट्टी में। स्नान के समय इसका काफी बड़ा भाग पानी में मिल जाता है।[१२]

सामान्यतया जल की गुणवत्ता रोगाणु की दृष्टि से मापने के लिए सूचक जीवाणु की मद्द ली जाती है। इसका मुख्य कारण है सूचक जीवाणु की अधिक मात्रा, सरल पहचान व विश्लेषण तथा रोगाणुओं के साथ-साथ पाया जाना कई रोगाणुओं का विश्लेषण अत्यन्त जटिल व खतरनाक होता है। अतः सूचक जीवाणु ही मापे जाते हैं। ऐसा अनुमान है कि यदि सूचक जीवाणु की संख्या २०० जीवाणु प्रति १०० मि.ली. जल से ज्यादा हो तो साल्मोनेला जो टाईफाइड या आंत्र ज्वर पैदा करता है, की मात्रा बढ़ने लगती है। एक प्रदूषित मुहाने से जहाँ जीवाणु-सूचक २०१ से २००० तक थे सोल्मानेल्ला ८५ प्रतिशत से ९८ प्रतिशत हर अध्ययन में पाया गया।

स्टेबेन्सन ने अपने अध्ययन-१९५२ में स्पष्ट किया कि

बीमारी की घटनायें तैरने वालों में काफी ज्यादा होती हैं। चाहे पानी की गुणवत्ता कैसी भी हो। उसने यह भी स्पष्ट किया कि आँख, कान, और गले की बीमारियों की घटनाएं समस्त बीमारियों की घटनाओं की आधी थीं, आंत्र रोग २० प्रतिशत तथा चर्म रोग व अन्य ३० प्रतिशत। स्टेवेन्सन के ही अध्ययन के अनुसार ऐसे तालाब में स्नान करना जिसमें औसत सूचक जीवाणु २३०० प्रति मि.ली. हों, बीमारी की घटनाओं को काफी बढ़ा देता है। ऐसी नदियों में नहाना, जिसमें सूचक जीवाणु २७०० प्रति १०० मि.ली. हों, आंत बीमारियों की घटनाएं काफी ज्यादा होती हैं। यहाँ तक कि तीन साल्मोनेला टाइफी रोगाणु प्रति १०० मि.ली. जल में हो तो टाइफाइड ज्वर पैदा करने में समर्थ हो जाते हैं।[१३]

स्नान जल की गुणवत्ता मानदण्ड तथा विभिन्न मानक : यूनाइटेड स्टेट इन्वायरनमेंट प्रोटेक्शन ऐजेन्सी एक महीने में लिये गये पाँच नमूनों में सूचक जीवाणु का औसत २०० प्रति १०० मि.ली. जल से ज्यादा नहीं होना चाहिए तथा १०० प्रतिशत से अधिक नमूनों में ४०० सूचक जीवाणु प्रति १०० मि.ली. जल से ज्यादा नहीं होना चाहिए। इन्वायरोमेनमेंट कनाडा ने सूचक जीवाणु की संख्या २० प्रति १०० मि.ली. जल से कम रखने का सुझाव दिया तथा अत्यधिक सीमा २०० सूचक जीवाणु प्रति १०० मि.ली. की निर्धारित की। नेशनल टेक्नीकल एड्वाइजरी कमेटी ने भी युनाइटेड स्टेट इन्वायरनमेंट प्रोटेक्शन एजेन्सी की तरह अपने मानक की सिफारिश की। स्थानीय महामारी के प्रमाण की अनुपस्थिति में नेशनल टेक्नीकल एड्वाइजरी कमेटी तथा युनाइटेड स्टेट इन्वायरनमेंट प्रोटेक्शन एजेन्सी ने औसत २००० तथा अधिकतम ४००० सूचक जीवाणु प्रति १०० मि.ली. जल तक की अनुमति दी है। स्ट्रीटर की सिफारिश के अनुसार, स्नान समय के दौरान किसी भी महीने में औसत सूचक जीवाणु १००० प्रति १०० मि.ली.जल से ज्यादा नहीं होना चाहिए। यह संख्या किसी भी महीने में लिये गये नमूनों में २० प्रतिशत से ज्यादा नमूनों में नहीं बढ़नी चाहिए और २००० जीवाणु प्रति १०० मि.ली. जल से किसी भी दिन ज्यादा नहीं होना चाहिए। जल प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण के केन्द्रीय बोर्ड नई दिल्ली ने अपने राष्ट्रीय जल स्रोतों के वर्गीकरण व परिधिकरण में जल स्रोतों में स्नान योग्य जल की कोटि निर्धारित की। इसके अनुसार अगर सूचक जीवाणु ५०० प्रति १०० मि.ली. से ज्यादा होते हैं तो नियमित परीक्षण करना चाहिए तथा मानदण्ड की सन्तुष्टि तब होगी जब ५ प्रतिशत से ज्यादा नमूनों में २००० जीवाणु प्रति १०० मि.ली. जल तथा २० प्रतिशत से ज्यादा नमूनों में ५०० जीवाणु प्रति १०० मि. ली.जल से ज्यादा न हो। राष्ट्रीय मानक ब्यूरो ने भी अपने मानक बनाये जिसके अनुसार सूचक जीवाणु का मासिक औसत ५००० प्रति १०० मि.ली. जल से ज्यादा नहीं होना चाहिए। साथ ही ५ प्रतिशत से कम नमूनों में २०००० प्रति १०० मि.ली. जल तथा २० प्रतिशत से कम नमूनों में सूचक जीवाणु ५००० से ज्यादा या उसके बराबर नहीं होना चाहिए।[१४]

उपर्युक्त अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त होता हैं कि सामूहिक स्नानों के कारण सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव पानी में जीवाणुओं की वृद्धि है। अर्धकुम्भ तथा कुम्भ के अवसरों पर गंगा नदी में सबसे खराब पानी या सबसे अच्छा पानी का कारण स्वास्थ्य विभाग की तथा जल निगम द्वारा गंगा की सफाई पर लापरवाही अथवा विशेष ध्यान देना था। गंगा सागर में नहाने से पूर्व पानी की अवस्था जीवाणु की दृष्टि से बहुत अच्छी थी किन्तु स्नान के तीनों दिन कार्बनिक पदार्थ व सूचक जीवाणु समुद्री पर्यावरण में ज्यादा समय जीवित नहीं रहे इसी वजह से समुद्र तट की सिर्फ एक कि.मी. चौड़ी पट्‌टी में सूचक जीवाणु व कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक पाई गई। सूचक जीवाणु की संख्या स्नानों से २५ से १८५० गुना तक बढ़े। केन्द्रीय बोर्ड के मानदण्ड के अनुसार गंगा सागर को छोड़कर किसी भी जगह पानी स्नान योग्य नहीं था। कार्बनिक पदार्थ व जीवाणु मनुष्य के शरीर को धोने के अलावा मल मूत्र त्याग, जो नदी के किनारे किया गया व थोड़ी बरसात की बजह से नदी में मिला तथा नदी में पूजा के लिए मिठाइयाँ फूल, दूध, दही, घी के मिलाने से बढ़ा था। कई सारे रोगाणु जो कि सामूहिक स्नान के दौरान एक-दूसरे तक पहुँचने में समर्थ हो सकते हैं जैसे आंत्र ज्वर, हैजा, पैराटाइफाइट, पेचिस, विभिन्न चर्म व छींद्र रोग आदि के होने की सम्भावना थी। मुख्य स्नानों के दिन सूचक जीवाणु बढ़ने के बजाय कम पाये गये इसका मुख्य कारण पानी में क्लोरीन मिलाना था जो कि जीवाणु नाशक होती है। पानी में मिलाई गई क्लोरीन की मात्रा हर जगह आवश्यकता से कम थी। सूचक जीवाणु नदियों में समुद्र के बजाय अधिक समय जीवित रहते हैं।

भविष्य में सामूहिक स्नानों से सम्बन्धित मेलों को बिना किसी महामारी के व्यवस्थिति करने के लिए सुझाव -

१- भविष्य में हिन्दू एवं मुस्लिम समुदायों के उत्सवों एवं त्यौहारों के अवसर पर सरोवर, कुण्ड, नदी एवं गंगा मेलों को बिना किसी अव्यवस्था के व्यवस्थित किया जाना चाहिए।

२- नदी में क्लोरीन स्नान शुरू होने के एक दिन पूर्व से ही डाला जाना चाहिए तथा अन्त तक चलना चाहिए। क्लोरीन मिलाने की मात्रा भी पानी की क्लोरीन मांग के ऊपर निर्भर होनी चाहिए।

३- मलमूत्र त्याग के लिए निर्धारित स्थान होने चाहिए जो कि नदी से दूर हों। इन स्थानों को भी स्वस्थ विधियों द्वारा सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

४- निर्धारित स्थानों के अलावा मलमूत्र त्याग पर निगरानी द्वारा रोक लगाई जानी चाहिए।

५- सम्बन्धित राज्य प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के लोगों को जाग्रति व शिक्षा हेतु कार्यक्रम आयोजन करने चाहिए, ताकि समाज तथा देश में प्रदूषण नियन्त्रण के महत्व की जानकारी बढ़े।

संदर्भ

१. गंगराड़े प्रकाशचंद्र, 'हिन्दुओं के रीति-रिवाज तथा मान्यताएं', पुस्तक महल, दिल्ली, २००३, पृ.२१

२. वही, पृ.-१६७

३. सरस्वती स्वामी विज्ञानानन्द, 'कल्याण व्रतपर्वोत्सव-अंक', गीताप्रेस, गोरखपुर, २००४, पृ. ६६.

४. गंगराड़े प्रकाशचंद्र, पूर्वोक्त, पृ.१६७

५. पर्यावरण एवं परिस्थितिकी विभाग उ.प्र., 'उत्तर-प्रदेश एक अवलोकन', पॅनोरमा प्रकाशन, दिल्ली, १६८२, पृ.२१

६. गंगराड़े प्रकाशचंद्र, पूर्वोक्त, पृ.२२

७. केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, 'नदी घाटी का मूल्यांकन और विकास-अध्ययन श्रंखला', शाहदरा-दिल्ली, एडसोर्ब्स/१८/१६८८, पृ.१.

८. जल प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण का केंद्रीय बोर्ड, 'नदी घाटी का मूल्यांकन और विकास-अध्ययन श्रंखला', नई-दिल्ली, एडसोर्ब्स /१७/१६८७, पृ.२.

६. वही, पृ.२.

१०. वही, पृ.३.

११. वही, पृ.३.

१२. वही, पृ. ५

१३. वही, पृ. ५

१४. वही, पृ. ६

Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

उदारीकरण के दौरान बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों से फैजाबाद जनपद में हुई प्रगति

❑ कु. सुरेखा तिवारी

उदारीकरण के दौरान फैजाबाद जनपद में बेरोजगारी उन्मूलन हेतु सरकार द्वारा अनेक नीतियाँ, कार्यक्रम एवं योजनायें चलाई गयी हैं। इन योजनाओं से जनपद फैजाबाद में किस प्रकार का परिवर्तन आया है तथा रोजगार के स्वरुप में किस प्रकार का बदलाव आया है, क्या वास्तव में इन योजनाओं से बेरोजगारी में कमी आयी है आदि को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

बेरोजगारी की समस्या वर्तमान में एक विश्वव्यापी समस्या है। सामान्यतः किसी भी देश की सारी श्रमिक संख्या रोजगार में नहीं लगी होती है, अपितु उसका कम या अधिक भाग बेरोजगार होता है।[1] अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O.) की ग्लोबल एम्प्लायमेंट ट्रेड्स नामक रिपोर्ट[2] के अनुसार वित्तीय एवं आर्थिक संकट की वजह से वैश्विक स्तर पर बेरोजगार लोगों की संख्या वर्ष २००९ के दौरान २१.२ करोड़ थी। वर्ष २००७ की तुलना में वर्ष २००९ में बेरोजगारों की संख्या में १६ प्रतिशत अर्थात् ३.४ करोड़ की वृद्धि हुयी है। वार्षिक स्तर पर वैश्विक रोजगार रिपोर्ट[3] के अनुसार वर्ष २००९ में विश्व में बेरोजगारी की दर ६.६ प्रतिशत थी, जो वर्ष २००७ की तुलना में ०.९ प्रतिशत अधिक है। इस दौरान सबसे ज्यादा प्रभाव युवाओं पर पड़ा है। वर्ष २००७ में ९.२ करोड़ की तुलना में बेरोजगार युवाओं की संख्या वर्ष २००९ में बढ़कर १०.२ करोड़ हो गयी। वैश्विक युवा बेरोजगारी दर वर्ष २००७ की तुलना में वर्ष २००९ में १.६ प्रतिशत की वृद्धि के साथ १३.४ प्रतिशत के स्तर पर पहुँच गयी। यह वर्ष १९९१ के बाद युवा वर्ग में बेरोजगारी में सबसे बड़ी वृद्धि हुयी है। आई०एल०ओ० की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष २००८ में ६३३ मिलियन श्रमिक एवं उनके परिवार १.२५ अमेरिकी डालर से कम पर जीवनयापन कर रहे थे। वर्ष २००७ में ५.७ प्रतिशत की तुलना में वर्ष २००८ में विश्व के ६ प्रतिशत श्रमिक नौकरी की तलाश में थे। इन दस वर्षों (२००१-११) के दौरान[4] जनसंख्या एवं रोजगार अनुपात ५८.४ प्रतिशत से घटकर ५६.५ प्रतिशत हो गया। तात्पर्य यह है कि श्रमबल की वृद्धि की तुलना में रोजगार सृजन पर्याप्त नहीं है।[6]

बेरोजगारों की संख्या आमतौर पर विकासशील देशों में अधिक पायी जाती है।[7] इन देशों में जनसंख्या का घनत्व बहुत अधिक है। भारत के सन्दर्भ में यह बात विशेष रूप से लागू होती है। नेशनल सेंपल सर्वे आर्गनाईजेशन (६२वां दौर) के अनुसार भारत में १६ करोड़ लोग बेरोजगार हैं जिनमें से ४.२ करोड़ शैक्षिक बेरोजगार हैं। सामान्य स्थिति के अनुसार प्रति १००० कार्यशील व्यक्तियों में ग्रामीण क्षेत्र में १७ तथा शहरी क्षेत्र में ४५ व्यक्ति बेरोजगार हैं। प्रति १००० शिक्षित युवाओं में से ग्रामीण क्षेत्र से २६७ तथा शहरी क्षेत्र से २०८ युवा बेरोजगार हैं। प्रति १००० शिक्षित महिलाओं में से ग्रामीण क्षेत्र से १३३ तथा शहरी क्षेत्र से ६१ महिलायें बेरोजगार हैं। देश में कुल श्रमिकों में से खेतिहर मजदूरों का प्रतिशत लगभग २३.८ प्रतिशत है। इनकी संख्या ७ करोड़ ४० लाख है। इन्हें साल में तीन माह से अधिक कृषि में रोजगार प्राप्त नहीं होता है।[8]

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी उस समय उत्पन्न होती है जब प्रति श्रमिक उत्पादकता प्रति श्रमिक उपयोग से अधिक हो जाती है।[9] यथार्थ में स्थिति यह होनी चाहिए कि उत्पादकता उपयोग से अधिक हो। ऐसोचैम[10] की सितम्बर २००१ में प्रकाशित रिपोर्ट में बताया गया है कि श्रम उत्पादकता की सूची में भारत का स्थान विश्व में ४६वां एवं एशिया में ७वाँ है भारत मे इस समय ४६.८८ करोड़ श्रम शक्ति है।[11] भारत में प्रति व्यक्ति प्रति घंटे उत्पादकता दर मात्र २.४२ डालर का है जबकि सूची में प्रथम स्थान पाने वाले देश लक्जमवर्ग में प्रति व्यक्ति प्रति घंटा उत्पादकता दर ४१.९० डालर है। इनका अपने देश की उत्पादकता में योगदान ७३.९० डालर है।[12] एशिया में मलेशिया की उत्पादकता भारत के कर्मचारी की तुलना में २५ प्रतिशत अधिक है। इसका प्रमुख कारण भारतवर्ष में ६३ प्रतिशत श्रमिक अज्ञानता, निरक्षरता, तकनीकी कौशल में अक्षम होते हैं।[13]

अध्ययन का उद्देश्य :-

❑ शोध अध्येत्री, प्रौढ़ सतत् एवं प्रसार शिक्षा विभाग, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नवत् हैं-

१. फैजाबाद जनपद में उदारीकरण के दौरान बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों के संचालित होने से बेरोजगारी की स्थिति में आये परिवर्तन का समीक्षात्मक अध्ययन करना है।

२. फैजाबाद जनपद में उदारीकरण के दौरान बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों के संचालित होने से रोजगार की प्रकृति में आये परिवर्तन का समीक्षात्मक अध्ययन कराना है।

परिकल्पना :-

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनायें निर्धारित की गयी हैं-

१. उदारीकरण के दौरान फैजाबाद जनपद में कार्यक्रमों के संचालित होने से बेरोजगारी में कमी आयी है।

२. उदारीकरण के दौरान फैजाबाद जनपद में कार्यक्रमों के संचालित होने से कृषि कार्य में लगे व्यक्तियों का प्रतिशत घटा है।

३. उदारीकरण के दौरान फैजाबाद जनपद में कार्यक्रमों के संचालित होने से लघु एवं कुटीर उद्योगों में लगे कार्यशील व्यक्तियों का प्रतिशत घटा है।

शोध प्रारूप :- शोध कार्य पूर्ण रुप से द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है। द्वितीयक स्त्रोत के माध्यम से तथ्यों का संकलन सार्वजनिक प्रलेख के माध्यम से किया गया है। सार्वजनिक प्रलेख में प्रकाशित प्रलेख, समितियों तथा आयोगों के प्रतिवेदन, व्यवसायिक संस्थाओं के अभिलेखों आदि का उपयोग किया गया है। इसके साथ ही फैजाबाद जनपद के विकास भवन अर्थ एवं सांख्यिकी विभाग, पंचायती राज विभाग तथा ग्रामीण विकास विभाग से आकड़ों का संकलन किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश में फैजाबाद जनपद का चयन किया गया है। फैजाबाद जनपद उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित पवित्र सरयू नदी के किनारे लखनऊ से १३० किलो मीटर पूर्व में स्थित है। फैजाबाद जनपद २५२२ वर्ग किलो मीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ है। फैजाबाद जनपद में ५ तहसीलें तथा ११ ब्लॉक हैं। गाँवों की कुल संख्या १२७२ तथा ग्राम पंचायतों की कुल संख्या ७२६ है।

फैजाबाद जनपद में बेरोजगारी की स्थिति : जनपद की बेरोजगारी दर पर दृष्टि डालें तो उदारीकरण के बाद बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रम के क्रियान्वित होने के बावजूद बेरोजगारी दर में बढ़ोत्तरी हुयी है। सन् १९९५ में जहाँ बेरोजगारी दर ६.२ प्रतिशत थी वहीं सन् २००५ में बढ़कर ८.७ प्रतिशत हो गयी। २००६ में महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना शुरू होने के बाद २००७ में जनपद की बेरोजगारी दर में ०.५ प्रतिशत की कमी के साथ ८ प्रतिशत हो गयी।

फैजाबाद जनपद में कार्यशील व्यक्तियों की स्थिति : बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों के संचालन से फैजाबाद कार्यशील व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हुई है। परन्तु कृषि क्षेत्र में कार्यशील व्यक्तियों की संख्या में कमी आयी है। जहाँ १९९१ में जनपद में कृषि से सम्बन्धित कार्य में कुल ८८.२ प्रतिशत कार्यशील व्यक्ति लगे हुए थे, परन्तु विभिन्न बेरोजगारी उन्मूलन योजनाओं के चलने से लोगों में कृषि पर निर्भरता कम हुयी है जिससे २००१ में कृषि कार्य में लगे कार्यशील व्यक्तियों का प्रतिशत घटकर २०.२ प्रतिशत रह गया। इस प्रकार सारणी संख्या १.०१ में देखने से स्पष्ट होता है कि जहाँ कृषि कार्य में लगे कार्यशील व्यक्तियों की संख्या घटी है वहीं लघु एवं कुटीर उद्योगों में लगे कार्यशील व्यक्तियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुयी है।

सारणी संख्या- १

फैजाबाद जनपद में कृषि कार्य में लगे कार्यशील व्यक्तियों का विवरण

(वित्तीय वर्ष १९९१-२००१)

विकास खण्ड	१९९१ में (प्रतिशत में)	२००१ में (प्रतिशत में)
मसौधा	७४.०	२२.६८
सोहावल	८६.०	२३.०६
पूरा बाजार	८३.७	१६.३६
मया बाजार	८६.२	१२.४८
अमानीगंज	६३.६	१७.५६
तारून	८६.८	२५.७२
मिल्कीपुर	६१.२	१७.४७
बीकापुर	६०.०	२१.१४
हैरिंग्टनगंज	६३.४	१६.७२
मवई	८६.३	२२.६
रूदौली	८६.३	२३.४५
कुल	८८.२	२०.२

जनपद में कृषि कार्य में कार्यशील व्यक्तियों की संख्या १९९१ में लघु एवं कुटीर उद्योगों में लगे कार्यशील व्यक्ति सिर्फ ७४ प्रतिशत थे, वहीं २००१ में लघु एवं कुटीर उद्योगों को अपनाने वाले कार्यशील व्यक्तियों की प्रतिशत बढ़कर ३.६५ प्रतिशत

हो गयी। मिल्कीपुर में सबसे ज्यादा लुघ एवं कुटीर उद्योगों को अपनाने वालों का प्रतिशत बढ़ा है। मिल्कीपुर में १९९१ में मात्र ०.६ प्रतिशत लोगों ने लघु एवं कुटीर उद्योगों को अपनाया था जो २००१ में बढ़कर ४.२५ प्रतिशत हो गया। सबसे कम बढ़ोत्तरी मसौधा ब्लॉक में दर्ज की गयी, जो १९९१ में यह १.२ प्रतिशत था जो २००१ में मात्र १.५६ प्रतिशत की बढ़ोत्तरी के साथ २.७६ प्रतिशत हो गया।

सारणी संख्या-२

फैजाबाद जनपद में लघु एवं कुटीर उद्योग में लगे कार्यशील व्यक्तियों का विवरण

(वित्तीय वर्ष १९९१-२००१)

विकास खण्ड	१९९१ में (प्रतिशत में)	२००१ में (प्रतिशत में)
मसौधा	१.२	२.७६
सोहावल	०.८	३.९६
पूरा बाजार	१.१	३.९५
मया बाजार	०.५	४.१५
अमानीगंज	०.८	४.६१
तारून	०.७	२.७७
मिल्कीपुर	०.६	४.२५
बीकापुर	१.१	३.४५
हैरिंग्टनगंज	०.८	३.७८
मवई	०.५	३.१७
रूदौली	१.१	३.६५
कुल	.७४	३.६५

लघु एवं कुटीर उद्योग में लगे कार्यशील व्यक्तियों का प्रतिशत बढ़ा है। लघु एवं कुटीर उद्योग को बढ़ावा मुख्यतः स्वर्ण जंयती ग्राम स्वरोजगार योजना के माध्यम से हुआ है। यह योजना जनपद में १९९८ से चल रही है इस योजना के माध्यम से बेरोजगार व्यक्ति उचित प्रशिक्षण एवं सहायता प्राप्त कर स्वयं के कुटीर उद्योग स्थापित कर रहे हैं।

फैजाबाद जनपद में बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रम में अन्य उद्योगों का सहयोग : फैजाबाद जनपद में कुल ३५ पंजीकृत, ३४६ लघु औद्योगिक इकाईयों तथा ७७ खादी ग्रामोद्योग इकाईयाँ स्थापित हैं। पंजीकृत ३५ इकाईयों में कुल १९४१ व्यक्ति कार्यरत हैं तथा ३४६ लघु औद्योगिक इकाईयों से १७५५ व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त है। ७७ खादी ग्रामोद्योग इकाईयों के अन्तर्गत १२६५ व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हुआ है।

डॉ० नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय कुमारगंज का बेरोजगारी उन्मूलन में सहयोग : फैजाबाद जनपद में केन्द्र एवं राज्य सरकार तथा डा० नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय, कुमारगंज के प्रयासों से जनपद में वैश्वीकरण के बाद कृषि को व्यवसायिक रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण प्रगति हुयी है। आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया आरम्भ होने के बाद कृषि क्षेत्र में विविधीकरण की प्रक्रिया तेज हुयी है। जनपद में कृषि में गैर अनाज फसल उत्पादों की भूमिका बढ़ी है। कृषि को लोग व्यवसाय के रूप में अपना रहे है। केले, सफेद मूसली, हाईब्रिड टमाटर, ब्रोकली आदि का किसान व्यवसायिक उत्पादन कर अपनी आमदनी में आशातीत वृद्धि कर रहे हैं। विश्वविद्यालय के उचित प्रशिक्षण कार्यक्रम की वजह से यहाँ गैर परम्परागत कृषि उत्पादन, मशरूम, बागवानी, औषधीय फसलें, डेयरी, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन आदि का महत्व बढ़ा है। जनपद की मिट्टी एवं मौसम बागवानी के लिहाज से अनुकूल है। यहाँ की जलवायु और पर्यावरण सम्बन्धी विविधता देखने को मिलती है जिसके कारण यहाँ अनेक प्रकार के फूलों की खेती वर्तमान में एक अच्छा रोजगार माना जाने लगा है। बागवानी से जुड़े व्यवसाय में गुलाब, सेवन्ती, गेंदा, रजनीगंधा, बेला, मोगरा, ग्लेडियोलाई, विदेशी लिलियम, विभिन्न प्रकार के देशी विदेशी पौधों तथा सजावटी कैक्टस, क्रोटन तथा बोनसायी का व्यवसायिक उत्पादन होता है। फैजाबाद के लिलियम की पहुँच मुंबई तक हो गयी है। शहर से लगे आशापुर गाँव के बाहर पाली हाउस बनाकर इनकी खेती राजेश वर्मा ने शुरू की है और मुम्बई की दादर फूलमण्डी में इसे बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गये :-

१. उदारीकरण के शुरु होने पर सन १९९३ में फैजाबाद जनपद में बेरोजगारी दर ६.२ प्रतिशत थी।

२. उदारीकरण के दौरान सन २००१ में फैजाबाद जनपद में बेरोजगारी दर ८ प्रतिशत थी।

उपर्युक्त निष्कर्ष निर्धारित परिकल्पना ''उदारीकरण के दौरान फैजाबाद जनपद में कार्यक्रमों के संचालित होने से बेरोजगारी में कमी आयी है'' की पुष्टि करता है।

३. उदारीकरण के पहले फैजाबाद जनपद में १९९१ में सबसे ज्यादा ८८.२ प्रतिशत कार्यशील व्यक्ति कृषि कार्य में लगे थे।

४. उदारीकरण के दौरान फैजाबाद जनपद में २००१ में

सबसे कम २१.२ प्रतिशत कार्यशील व्यक्ति कृषि कार्य में लगे हैं।

उपर्युक्त निष्कर्ष निर्धारित परिकल्पना " उदारीकरण के दौरान फैजाबाद जनपद में बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों के संचालन से कृषि कार्य में लगे कार्यशील व्यक्तियों का प्रतिशत घटा है" की पुष्टि करता है।

५. उदारीकरण के पहले फैजाबाद जनपद में १९९१ सबसे कम ०.७४ प्रतिशत कार्यशील व्यक्ति लघु एवं कुटीर उद्योग में लगे है।

६. उदारीकरण के दौरान फैजाबाद जनपद में सन २००१ में ३.६५ प्रतिशत कार्यशील व्यक्ति लघु एवं कुटीर उद्योग में लगे हैं।

उपर्युक्त निष्कर्ष निर्धारित परिकल्पना "उदारीकरण के दौरान फैजाबाद जनपद में बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों के संचालन से लघु एवं कुटीर उद्योग में लगे कार्यशील व्यक्तियों का प्रतिशत घटा है" की पुष्टि नही करता है।

सुझाव : इन सब सफलताओं के बावजूद सच्चाई यह है कि देश के गाँवों में अभी भी बेरोजगारी बनी हुई है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि नब्बे के दशक के प्रारम्भ में ग्रामीण युवकों में बेरोजगारी का प्रतिशत ८.६५ था जो कि नब्बे के दशक के अन्त में ११ प्रतिशत हो गया है। उल्लेखनीय है कि गाँवों में प्रशिक्षित कुशल युवाओं के लिए रोजगार अवसरों का आज भी अभाव है। यहीं नहीं कृषि क्षेत्र में भी रोजगार की वृद्धि दर आज कम है। ग्रामीण बेरोजगारों को काम देने के लिए कृषि के अतिरिक्त लघु, कुटीर एवं हस्त शिल्प उद्योगों के विकास व विस्तार को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। डॉ० स्वामीनाथन ने भी इस तथ्य को पुष्ट करते हुए कहा कि "कृषि के क्षेत्र में रोजगार सृजन की संभावनाएं कम हो गयी हैं अतः सरकार को गैर कृषि क्षेत्रों के विकास की ओर ध्यान देते हुए कुशल श्रमिकों को वहां नियोजित करने की दिशा में सार्थक प्रयास करने होंगे।"[१४]

सन्दर्भ

१. Awasthi, S.K. 'Economic Development and Planning in retrospect', Vikash Publishing house, New Delhi, 1983, p.91.

२. भारतीय अर्थव्यवस्था २०११-२०१२, ज्ञान भारतीय प्रकाशक, देहली, पृ. ३.४१

३. वही पृ. ३.१५

४. प्रतियोगिता दर्पण, 'भारतीय अर्थव्यवस्था', जनवरी २०११, पृ. ३८

५. प्रतियोगिता दर्पण, 'अतिरिक्तांक २०१३, भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ. ४२

६. Chaubey, Dr. Salesh & Shukla, Dr. Narend, 'Bharat Me Aarthik Sudhar : Aavasyakta, Prabhav va Sujhav', Aadhyan Publishers and Distributors, 2006, New Delhi, p.7

७. Bhadouria, B.P.S., Dubey V.B., 'Panchayatiraj and Rural Development", Commonwealth Publication, New Delhi, 1976 p.l69.

८. कुरूक्षेत्र अक्टूबर २०१२, पृ. २४

९. Borsy, M.N. 'Hand book of Research Methodology', Shri Nivash Publication, Jaipur, 2005, p.308.

१०. क्रानिकल इयर बुक, २०१२, पृ. १६-१८

११. Dhar, D.P.G. 'Planning and Social Changes' Arnold Heinemann Publishers, New Delhi, 1976, p.87.

१२. Brahmananda, P.R. 'Amartya Sen and the Transformation of the Agenda of welfare economics', The Indian Economic Journal, Volume-46, 1998, p.2.

१३. Basu, Rukmani, 'Economic Liberalization and Poverty Alleviation', Deep and Deep Publication, New Delhi, 2000, p.32.

१४. उद्धृत अर्चना द्विवेदी, 'स्वयं सहायता समूह वनाम लघु ऋण उद्देश्य और हकीकत का फासला', योजना, जनवरी २००८, पृ. ३४

मनरेगा कार्यक्रम और जातीय पृष्ठभूमि : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ सनी कुमार सुमन

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) भारत सरकार का एक प्रमुख बेरोजगारी-उन्मूलन अधिनियम है, जो सीधे-सीधे गरीबों की जिंदगी से जुड़ा है और स्थायी विकास को प्रोत्साहन देता है। विश्व में भारत प्रथम देश है जिसने ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार सुनिश्चित करके गरीबी दूर करने के लिए राष्ट्रीय रोजगार गारंटी बिल पारित कर रोजगार को कानूनी अधिकार की मान्यता दी है। ६ दिसम्बर २००५ को इसे अधिसूचित किया गया, २ फरवरी, २००६ को प्रथम चरण में इसका शुभारंभ २०० जिलों में किया गया तथा १ अप्रैल २००८ को संपूर्ण देश में लागू किया गया। प्रस्तुत अध्ययन जातीय पृष्ठभूमि के संदर्भ में इससे संबद्ध लोगों की मनरेगा के संबंध में जानकारी, जागरूकता एवं इसके प्रभाव का विश्लेषण करने का एक प्रयास रहा है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का सम्पूर्ण सामाजिक दर्शन एवं दृष्टिकोण इस विश्वास पर आधारित था कि भारत गाँवों में बसता है। इसकी लगभग तीन-चौथाई जनता ग्रामीण है जो परोक्ष या अपरोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। भारत का यदि वास्तवित दर्शन करना है तो दिल्ली, मुंबई, कोलकाता एवं चेन्नई में नहीं गाँवों में जा कर कीजिए, जहाँ गरीबी एवं बेकारी की समस्या सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती जा रही हैं, जहाँ तकनीकी ज्ञान एवं पूँजी की कमी के चलते प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का पूर्ण विदोहन सम्भव नहीं हो पा रहा है, वहाँ जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है एवं जनाधिक्य की समस्या विद्यमान है। ऐसी परिस्थिति वाले देश के लिए कृषि विकास के साथ ग्रामीण रोजगार सृजन की अनिवार्यता को नकारा नही जा सकता।[१] रोजगार किसी भी देश और समाज के आर्थिक विकास की कुंजी है। जिस गति से रोजगार पाने वाले की संख्या और उनकी आमदनी में बढ़ोतरी होती है उसी गति से देश विकास के पथ पर अग्रसर होता है।[२] लेकिन जैसे-जैसे बेरोजगारी बढ़ेगी गरीबी भी उसी प्रकार बढ़ती जाएगी। गाँव में रोजगार की अनुपलब्धता, मौसमी बेकारी एवं कृषि योग्य भूमि का अभाव आदि कारणों से रोजगार की तलाश में बहुत सारे कृषक मजदूर दूसरे राज्यों में पलायन करते रहते हैं। जहाँ उनका शोषण होता रहता है। शोषण की यह प्रक्रिया गाँव में रह रहे बेरोजगारों के साथ कम नहीं घटती है, बहुत सारे लोगों को बंधुओं मजदूर के रूप में रखा जाता है एवं तरह-तरह की प्रताड़नाएँ दी जाती है।[३] संभवतः गाँव में बंधुआ मजदूर उन्मूलन अधिनियम का सकारात्मक प्रभाव कम ही देखा जा सकता है। बेरोजगारी एवं इस कारण इससे उत्पन्न गरीबी के कई सामाजिक-आर्थिक दुष्परिणाम उभर कर सामने आते हैं जैसे पारिवारिक विघटन, नक्सली समस्या, अपराधिक प्रकृति, नशाखोरी, महिलाओं का शोषण, यौन-उत्पीड़न, कुपोषण एवं असामाजिक मृत्यु। बेरोजगारी को राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी 'अपराध' की संख्या देते है।[४] देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही गाँवों की बेरोजगारी रूपी दानव से मुक्त करवाने हेतु सरकार अनेक योजनाओं, कार्येक्रमों व नीतियों को क्रियान्वित कर रही हैं, जैसे - सामुदायिक विकास कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं विभिन्न प्रकार के अन्य कल्याणकारी योजना आदि। लेकिन सरकारी तंत्र की लालफीताशाही एवं इसमें फैले भ्रष्टचार, साथ ही साथ आम लोगों के बीच जागरूकता की कमी के कारण इसका वास्तविक लाभ ज्यादातर गरीबों एवं बेरोजगारों को नहीं मिला। ग्रामीणों के पलायन को रोकने और उन्हें गाँवों में ही रोजगार को प्रदान कराने के लिए भारत सरकार ने गाँवों में रोजगार गारंटी योजना लागू की[५] ताकि ग्रामीण क्षेत्रों के प्रत्येक परिवार के कम से कम एक सदस्य को वर्ष में १०० दिन का शारीरिक श्रमयुक्त रोजगार दिया जा सके।[६]

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) भारत सरकार का एक प्रमुख बेरोजगारी-उन्मूलन अधिनियम है, जो सीधे-सीधे गरीबों की जिंदगी से जुड़ा है और स्थायी विकास को प्रोत्साहन देता है। विश्व में भारत प्रथम देश है जिसने ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार सुनिश्चित करके गरीबी दूर करने के लिए राष्ट्रीय रोजगार गारंटी बिल पारित कर रोजगार को कानूनी अधिकार की मान्यता दी है।[७] नरेगा ७ सिंतबर, २००५ को अधिसूचित किया गया था। २ फरवरी २००६ का तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने आंध्रप्रदेश के अनंतपुर जिले के वादलापल्ली ग्राम पंचायत से इसका शुभारंभ किया। प्रथम चरण में यह सुविधा २०० जिलों में उपलब्ध कराई गई थी। २००७-०८ में इस कानून का विस्तार १३० अतिरिक्त जिलों में किया गया

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

तथा देश के सभी जिलों को इसमें शामिल करने की अधिसूचना १ अप्रैल, २००८ को जारी की गई।[८]

चूकि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ग्राम स्वराज को अधिक महत्व देते थे, अंतः पंचायत राज संस्थाओं के पचास वर्ष पूरे होने के मौके पर केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) का नाम बदलकर महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम कर दिया। फिर भी यह अपने पूर्व लोकप्रिय नाम-नरेगा-से ही ज्यादा जाना जाता है।[९]

इस अधिनियम का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के ऐसे प्रत्येक परिवार को एक वित्त वर्ष के दौरान कम से कम १०० दिन का गारंटीशुदा रोजगार उपलब्ध कराना है जिसके व्यस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार हैं ताकि ग्रामीण भारत में रोजगार की स्थिति को और बेहतर बनाया जा सके। इस रोजगार गारंटी से उत्पादक सम्पदाओं का निर्माण करने, पर्यावरण की रक्षा करने, ग्रामीण औरतों के सशक्तीकरण, गाँवों से शहर की ओर होने वाले पलायन पर अंकुश लगाने और सामाजिक समानता सुनिश्चित करने में सहायता मिलेगी।[१०] इस योजना के अंतर्गत काम के इच्छुक प्रत्येक परिवार ग्राम पंचायत में अपने व्यस्क सदस्यों के नाम, लिंग और पता देकर पंजीयन करवा सकता है। पंजीकरण ५ वर्ष तक वैध हैं। रोजगार पाने वाले में से कम से कम एक तिहाई (३३ प्रतिशत) संख्या महिलाओं की हो।[११] मनरेगा के अन्तर्गत योजना का क्रियान्वयन त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्था के माध्यम से होगा।

योजना के अंतर्गत कार्य आवेदक के निवास स्थान से ५ किमी. की परिधि के भीतर दिया जायेगा। यदि उसके बाहर रोजगार दिया जाता है तो १० प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी दी जायेगी।[१२] यदि काम के माँग पर १५ दिनों के अन्दर आवेदक को काम उपलब्ध नहीं कराया गया तो उसे बेरोजगारी भत्ता देने का प्रावधान है। यह राशि राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जायेगी हालांकि पहले ३० दिनों के लिए भत्ता कम से कम मजदूरी का एक चौथाई होना चाहिए, पर बाद में मजदूरी के आधे से कम न हो।[१३]

मनरेगा में होने वाले खर्च में केन्द्र और राज्य ही हिस्सेदारी ९०:१० है। लेकिन राज्य सरकारों को इस बात के लिए जवाहदेह बनाया गया है कि यदि वे रोजगार उपलब्ध नहीं करा पाती है तो उन्हें बेरोजगारी से होने वाले नुकसानों के साथ ही बेरोजगारी भत्ता का भी भुगतान करना होगा।[१४]

बिहार के ग्रामीण विकास मंत्री नीतीश मिश्रा ने बताया कि मनरेगा के तहत केन्द्र से स्वीकृत १३८ रूपये दैनिक मजदूरी दी जाती थी, इधर राज्य ने पहली वार अप्रैल २०१३ से अकुशल मजदूरों की दैनिक मजदूरी १६२ रूपये निर्धारित कर दीं।[१५]

मनरेगा के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण बात यह है कि कार्य स्थल पर दुर्घटना के कारण किसी मजदूर की मृत्यु होने के पर उसके उत्तराधिकारी को २५,०००/- रूपये, हाथ-पैर या आँख के नुकसान होने पर पीड़ित को १५,०००/ रूपये, एक हाथ या एक पैर नुकसान होने पर १०,००० रूपये आर्थिक सहायता मिलेगी। निबंधन/जॉब कार्ड/मजदूरी दर आदि संबंधी कोई जानकारी या शिकायत प्रखण्ड कार्यक्रम पदाधिकारी/प्रखंड विकास पदाधिकारी या जिला कार्यक्रम समन्वयक/उप विकास आयुक्त से की जा सकती है।[१६]

योजना के प्रभावी क्रियान्वयन और भ्रष्टाचार से मुक्त रखने के लिए योजना में जन-जागरूकता, जनसुनवाई, सामाजिक अंकेक्षण तथा सूचना के अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत निर्माण कार्य के संदर्भ में समस्त जानकारी लेते रहने का प्रावधान है।[१७]

शोध प्रारूप : जातीय पृष्ठभूमि के संदर्भ में मनरेगा से संबद्ध लोगों का विश्लेषण करने हेतु बिहार राज्य के कटिहार जिले के बरारी प्रखंड का चयन किया गया। अध्ययन में बरारी प्रखंड से ३०० मजदूरों का चयन निदर्श के रूप में सुविधाजनक निदर्शन प्रणाली के द्वारा किया गया लेकिन निदर्श की इकाइयों के चुनाव में इस बात का यथेष्ट रूप से ध्यान रखा गया कि ये प्रतिनिधित्वपूर्ण हैं। इकाइयों से तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया।

तालिका संख्या - ०१

जाति और मनरेगा के विषय में जानकारी

	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल
पूरी जानकारी	१६	७१	१९	४१	२५	१२४
	(६९.५७)	(७१.८८)	(४४.१९)	(३१.३०)	(३५.२१)	(४१.३३)
आधी अधूरी	०७	०९	२४	९०	४६	१७६
जानकारी	(३०.४३)	(२८.१२)	(५५.८१)	(६८.७०)	(६४.७९)	(५८.६७)
कुल	२३	३२	४३	१३१	७१	३००

तालिका संख्या ०१ में जाति और मनरेगा के विषय में जानकारी को दर्शाया गया है। ४१.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं को मनरेगा के बारे में पूरी जानकारी है तथा ५८.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस योजना की आधी-अधूरी जानकारी है लेकिन एक भी उत्तरदाता ऐसा नहीं पाया गया जिसे इस योजना के विषय में कोई जानकारी नही है। तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि जिन उत्तरदाताओं को इस योजना की पूरी जानकारी है उनमें पिछड़ी जाति के सदस्यों (७१.८८प्रतिशत) की संख्या अधिक है तथा जिन्हें इसकी आधी-अधूरी जानकारी है उसमें अनुसूचित जाति (६८.७०प्रतिशत) के सदस्यों की संख्या अधिक हैं।

तालिका संख्या - ०२

जाति एवं मनरेगा का हित समूह

	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल
केवल गरीब के लिए	०९	१३	१७	८१	४६	१६६
	(३९.१३)	(४०.६३)	(३९.५४)	(६१.८३)	(६४.७९)	(५५.३३)
सभी व्यक्ति	१४	१९	२६	५०	२५	१३४
के लिए	(६०.८७)	(५९.३७)	(६०.४६)	(३८.१७)	(३५.२१)	(४४.६७)
कुल	२३	३२	४३	१३१	७१	३००

तालिका संख्या ०२ में जाति एवं मनरेगा का हित समूह के बारे में जानकारी से स्पष्ट होता है कि ५५.३३ प्रतिशत उत्तराताओं ने मनरेगा को सिर्फ गरीब के लिए बताया जबकि ४४.६७ प्रतिशत ने बताया कि यह योजना गरीब, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति सभी के लिए है। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि जो उत्तरदाता यह मानते हैं कि यह योजना सिर्फ गरीबों के लिए है उनमें अधिकांश क्रमशः (६४.७९ प्रतिशत) एवं (६१.८३ प्रतिशत) उत्तरदाता अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति के हैं। चूकि इन जातियों में गरीबी अधिक है और मनरेगा योजना से लोगों को रोजगार मिलता है और रोजगार मिलने से लोगों को आमदनी होती है जिससे उनकी गरीबी दूर हो रही है।

तालिका संख्या - ०३

जाति एवं बेरोजगारी भत्ता मिलने की जानकारी

	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल
हां	१५	१९	२५	५९	४४	१६१
	(६५.२२)	(५९.३८)	(५५.८१)	(६१.८३)	(६१.९८)	(५३.६७)
नहीं	०८	१३	१९	७२	२७	१३९
	(३४.७८)	(४०.६२)	(४४.१९)	(५५)	(३८.०२)	(४६.३३)
कुल	२३	३२	४३	३१	७१	३००

तालिका संख्या ०३ में जाति और मनरेगा में बेरोजगारी भत्ता मिलने की जानकारी के संबंध में पाया गया कि योजना में बेरोजगारी भत्ता मिलने की जानकारी है जिसमें सबसे अधिक (६५.२२ प्रतिशत) उच्चजाति के सदस्यों को है तथा सबसे कम (६१.८३ प्रतिशत) अनुसूचित जाति के उत्तरदाता का है। जिन उत्तरदाताओं को इस योजना में बेरोजगारी भत्ता मिलने की जानकारी नहीं है, उनमें सर्वाधिक (५५ प्रतिशत) अनुसूचित जाति के सदस्यों की संख्या है तथा सबसे कम (३४.७८) उच्च जाति के उत्तरदाता हैं। लेकिन अध्ययन के क्रम में यह भी पता चला कि इस नियम के बावजूद किसी को भी आज तक बेरोजगारी भत्ता नहीं मिला है।

तालिका संख्या - ०४
जाति एवं आवेदन के बाद समय सीमा में काम मिलना

	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल
७ दिन के अन्दर	०३ (१३.०४)	०८ (२५)	०७ (१६.२८)	२१ (१६.०३)	११ (१५.४६)	५० (१६.६७)
१५ दिन के अन्दर	१० (४३.४८)	१५ (४६.८८)	२१ (४८.८४)	६२ (४७.३२)	२३ (३२.३६)	१३१ (४३.६७)
३० दिन के अन्दर	०७ (३०.४४)	०५ (१५.६२)	०७ (१६.२८)	२७ (२०.६२)	२१ (२६.५८)	६७ (२२.३३)
३० दिन के बाद	०३ (१३.०४)	०४ (१२.५)	०८ (१८.६०)	२१ (१६.०३)	१६ (२२.५४)	५२ (१७.३३)
कुल	२३	३२	४३	३१	७१	३००

तालिका संख्या ०४ में जाति एवं आवेदन के बाद समय के अन्दर काम मिलने की जानकारी को दर्शाया गया है। सर्वाधिक उत्तरदाताओं (४३.६७प्रतिशत) को १५ दिनों के अन्दर काम मिलने की जानकारी है, इनमें (४८.८४ प्रतिशत) अत्यंत पिछड़ी जाति के सदस्यों की संख्या अधिक है तथा सबसे कम (३२.३६ प्रतिशत) अनुसूचित जनजाति की संख्या है।

तालिका संख्या - ०५
जाति एवं एक वर्ष में रोजगार के दिनों की जानकारी

	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल
५० दिन	०५ (२१.७४)	०८ (२५)	१४ (३२.५५)	३५ (२६.७२)	२१ (२६.५८)	८३ (२७.६७)
१०० दिन	१८ (७८.२६)	२४ (७५)	१६ (३७.२१)	६२ (४७.३२)	२३ (३२.३६)	१३१ (४६.६७)
२०० दिन	-	-	-	-	-	-
नहीं मालूम	-	-	१३ (३०.२३)	३१ (२३.६७)	२७ (३८.०३)	७१ (२३.६६)
कुल	२३	३२४	३	३१	७१	३००

तालिका संख्या ०५ में जाति एवं एक वर्ष में मिलने वाले रोजगार के दिनों की संख्या के बारे में जानकारी को प्रदर्शित है। सर्वाधिक उत्तरदाताओं (४६.६७ प्रतिशत) को वर्ष में १०० दिन काम मिलने की जानकारी है, (२७.६७ प्रतिशत) उत्तरदाताओं को वर्ष में ५० दिन काम मिलने की जानकारी है। लेकिन उत्तरदाताओं को वर्ष में मिलने वाले कामों की जानकारी नहीं है।

तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक उत्तरदाताओं को मनरेगा योजना में १०० दिन काम मिलने की जानकारी वालों में उच्च जाति के सदस्यों की संख्या अधिक (७८.२६ प्रतिशत) है तथा सबसे कम (३२.३६ प्रतिशत) अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की संख्या है जिन्हें वर्ष में काम मिलने वाले दिनों की संख्या की जानकारी नहीं है उसमें अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की संख्या अधिक (३८.०३ प्रतिशत) है। इसके बावजूद ज्यादातर उत्तरदाताओं को एक वर्ष में १०० दिनों का रोजगार प्राप्त नहीं होता है।

तालिका संख्या - ०६

जाति एवं परिवार की आर्थिक स्थिति में परिवर्त्तन

	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल
पहले से बेहतर	०४ (१७.३६)	१२ (३७.५)	१३ (३०.२३)	४७ (३५.८८)	२१ (२६.५८)	९७ (३२.३३)
पहले से बदतर	-	११ (३४.३८)	०६ (२०.६४)	३१ (२३.६७)	०६ (१२.६८)	६० (२०)
यथावत	१६ (८२.६१)	०६ (२८.१२)	२१ (४८.८३)	५३ (४०.४५)	४१ (५७.७४)	१४३ (४७.६७)
कुल	२३	३२	४३	३१	७१	३००

तालिका संख्या ०६ में जाति और मनरेगा से परिवार की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन होने की जानकारी को दर्शाया गया है। अधिसंख्यक उत्तरदाताओं (४६.६७%) ने बताया कि मनरेगा योजना के आने के बाद भी हमारी परिवार के आर्थिक स्थिति यथावत है, ३२.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि हमारे परिवार के आर्थिक स्थिति पहले से बेहतर हुई है लेकिन २० प्रतिशत लोगों का कहना है कि मनरेगा आने से हमारे परिवार के आर्थिक स्थिति पहले से बदतर हुई है, जिसका कारण वह मनरेगा योजना में काम निरंतर न मिलना बताया है। तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि जिन लोगों के परिवार के आर्थिक स्थिति पहले से बेहतर हुई है उसमें सर्वाधिक उत्तरदाता पिछड़ी जाति के सदस्य है।

निष्कर्ष : निदर्श की ३०० इकाईयों में सबसे अधिक (४३.६७%) अनुसूचित जाति के लोग हैं। इनके बाद क्रमशः (२३.६७%) अनुसूचित जनजाति, (१४.३३%) अत्यंत पिछड़ी जाति, (१०.६७%) पिछड़ी जाति और सबसे कम (७.६६%) उच्च जाति के उत्तरदाता हैं। जातिगत स्थिति का प्रभाव मनरेगा के विषय में जानकारी पर पड़ता है। चूकि अनुसूचित जाति के लोग जागरूक नहीं है इस कारण इनमें ज्यादातर लोगों को मनरेगा के विषय में पूर्ण जानकारी नहीं है। मनरेगा के अन्तर्गत १५ दिनों के अन्दर काम नहीं मिलने पर बेरोजगारी भत्ता मिलने का प्रावधान है लेकिन उत्तरदाताओं को न तो इसकी जानकारी है और न ही किसी को बेरोजगारी भत्ता मिला है। **मनरेगा** कार्यक्रम के फलस्वरूप मजदूरों का दूसरे राज्यों में, गाँव में ही रोजगार मिलने के कारण, पलायन में कमी हुई है। इससे उनका पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन सुहढ़ हुआ है। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि एक बड़ी संख्या में मजदूरों को इस बात की जानकारी नहीं है कि मनरेगा कार्यक्रम के अन्तर्गत १०० दिनों के काम को सुनिश्चित करना है। कई सीमाओं के बावजूद मनरेगा कार्यक्रम से निर्धन जनसंख्या को लाभ प्राप्त हुआ है क्योंकि ज्यादातर उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति में पहले की अपेक्षा सुधार हुआ है।

संदर्भ

१. लवानिया, बासुदेव, 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना', कुरूक्षेत्र, मई २००६, पृ.३६
२. सेतिया, सुभाष, 'ग्रामीण विकास का आधार रोजगार', कुरूक्षेत्र, फरवरी २०१३, पृ.०६
३. चौधरी पदम सिंह, 'कैसे रोकें गांव से पलायन', कुरूक्षेत्र, फरवरी २०१२, पृ.०६
४. मोदी अनीता, 'ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के बढ़ते अवसर', कुरूक्षेत्र, फरवरी २०१३, पृ.१७
५. यादव चंद्रभान, 'मनरेगा और पंचायती राज', कुरूक्षेत्र, अक्टूबर २०१०, पृ.१४
६. दास, विजय रंजन, 'नरेगा से गांव में रोजगार', प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त २०१०, पृ.६४
७. महेश शर्मा, 'महात्मा गाँधी नरेगा', प्रभात पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००८ पृ.०७
८. सिंह रघुवंश प्रताप, 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून के दो साल', योजना, अगस्त २००८, पृ.०७
९. महेश शर्मा, 'महात्मा गाँधी नरेगा', प्रभात पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००८ पृ.०८
१०. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम - बिहार, संकलन २००७, पृ.३
११. वहीं, पृ.४४, ४५
१२. कुरूक्षेत्र, मई २००६, पृ.३७
१३. हिन्दुस्तान, कटिहार, २१ अप्रैल, २०१२, पृ. ०२ एवं १४ मई २०१२ पृ. ०२
१४. कुरूक्षेत्र, २०१० अक्टूबर, पृ. १५
१५. हिन्दुस्तान, कटिहार, २५ जुलाई २०१३, बुधवार, पृ. ०२
१६. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम - बिहार, प्रशासनिक एवं तकनीकी मार्गदर्शिका, ग्रामीण विकास विभाग, पटना, पृ.३३
१७. योजना, अगस्त २०१०, पृ.६५

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

"स्वर्ण एवं स्वर्णकार अतीत से वर्तमान तक"

❑ डॉ० ज्योति रस्तोगी

सामान्यतः स्वर्ण व्यवसाय से जुड़े व्यक्ति को समाज स्वर्णकार कहता है किन्तु यह सत्य नहीं है। वास्तव में स्वर्णकार का तात्पर्य स्वर्णाभूषणों के व्यवसायी मात्र से न होकर उनके निर्माण से है अर्थात जो स्वर्ण, रजत के आभूषणों का निर्माण करता है, उनका कारीगर है-वही स्वर्णकार है। स्वर्णकार का कार्य अथवा व्यवसाय कोई नवीन अथवा आधुनिक नही है अपितु अति प्राचीन काल से समाज में स्वर्णकारों का अस्तित्व रहा है। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत अतीत से वर्तमान तक विभिन्न कालों में स्वर्ण एवं स्वर्णकारों के अस्तित्व, उनकी कलात्मकता उनके विभिन्न नामों एवं उनकी महत्ता का विश्लेषण किया गया है।

स्वर्ण के नमूने स्वर्णकारों की कला कुशलता की प्रशंसा का स्रोत रहें हैं। स्वर्णकार वह है जो अपनी कला से सदैव स्त्री एवं पुरूषों को अलंकृत करता रहा है। 'स्वर्णकार' शब्द के प्रति अनेक भ्रम रहे हैं। स्वर्ण व्यवसाय से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को समाज स्वर्णकार स्वीकार करता है किन्तु यह भ्रम है तथा मिथ्या है। स्वयं एक स्वर्णकार द्वारा अपने अस्तित्व को इस प्रकार व्यक्त किया गया है : "जहाँ सिक्के की झनकार है, स्वर्णकार नहीं सर्राफ हैं जहाँ निहाई और हथौड़ा, कहलाते स्वर्णकार हैं।[1]

अतः स्वर्णकार का तात्पर्य स्वर्णाभूषणों के व्यवसायी मात्र से न होकर 'निर्माण' से है जो स्वर्ण, रजत के आभूषणों का निर्माण करता है अर्थात 'कारीगर' है। इतिहास साक्षी है कि स्वर्ण निर्मित मूर्तियों में यह मान्यता बन गई कि बिना ब्राह्मण द्वारा मंत्र पढ़े ही इनमें प्राण प्रतिष्ठा आ जाती है।[2] स्वर्ण का टुकड़ा बिना आकृति के धातु मात्र होता है किन्तु स्वर्णकार के हाथों में आते ही बहुमूल्य हो जाता है। एक स्वर्णकार स्वर्ण के साथ-साथ अनेक बहुमूल्य धातुओं (चाँदी, ताँबा, हीरा, मोती, पन्ना, मीना) के प्रयोग द्वारा आभूषण को और अधिक मूल्यवान एवं आकर्षक रूप प्रदान करता है। आभूषण निर्माण मात्र एक ही स्वर्णकार व्यक्ति द्वारा सम्भव नहीं है अपितु स्वर्ण गलाने का कार्य व्यक्ति विशेष द्वारा होता है तत्पश्चात अन्य व्यक्ति द्वारा उसका तार बेला जाता है एवं विभिन्न नमूनों के अनुसार व्यक्ति विशेष द्वारा उसकी कटिंग होती है फिर अन्य व्यक्ति द्वारा कटे हुए दुकड़ों को करीने से जोड़कर आभूषण की आकृति प्रदान की जाती है। स्वर्ण टुकड़ों को जोड़ने की स्थिति में उसे अग्नि में तपाया जाता है फलस्वरूप आभूषण का रंग काला हो जाता है अतः उसकी पूर्ववत चमक प्रदान करने के उद्देश से व्यक्ति विशेष द्वारा पॉलिश कराई जाती हैं तत्पश्चात फिनिशिंग के उद्देश से छिलाई हेतु अन्य व्यक्ति विशेष के पास ले जाया जाता है। आभूषण को और अधिक आकर्षक बनाने हेतु उसमें विभिन्न रंगों का प्रयोग भी किया जाता है इस प्रकार विभिन्न स्वर्ण कारीगरों के हाथ से गुजरने के बाद आभूषण पहनने योग्य तैयार होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी कारीगरी में विशेषज्ञ है और बिना इनकी विशेषज्ञता के आभूषण निर्माण सम्भव नहीं है। अतः किसी एक के अभाव में आभूषण की कल्पना व्यर्थ है। इस प्रकार वह प्रत्येक सहयोगी कारीगर जिसके अभाव में आभूषण निर्माण में बाधा उत्पन्न हो स्वर्णकार कहलायेगा। स्वर्णकार मात्र स्वर्णभूषणों का ही निर्माण नहीं अपितु स्वर्ण, रजत, पीतल, ताँबा तथा काँसा घातु का प्रयोग करके इनके सहयोग से आभूषण निर्मित करने वाला व्यक्ति भी स्वर्णकार है, क्योंकि उक्त पाँच घातुओं के मिश्रण से ही आभूषण तैयार होता है।[3] प्राचीन समय में स्वर्णकार अत्यन्त सम्मानजनक स्थान को प्राप्त थे। भगवान शंकर के पाँच कर्म वाले पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम मनु, मय, व्ष्टा, शिल्पी और देवज्ञ था जिनमें देवज्ञ के वंशज अलंकार और स्वर्णकारी का कार्य करते थे।

यजुर्वेद में भी स्वर्णकला का महत्व दर्शित है : "सविता हिरणम मारीड़ प्रतितगम्यत्वच्छि डरोमणिनाम"[4] अर्थात् एक समय में दैत्यों और देवताओं में लड़ाई हुई। जिसमें दैत्यों ने सविता देवता के हस्त काट दिये बाद में देवज्ञों ने स्वर्ण के हाथ निर्मित कर सविता के लगा दिये तब से सविता का नाम हिरण्यपाणि हुआ। यजुर्वेद[5] में स्वर्णकार की तुलना सूर्य से की गई है। कुबेर जी धन के स्वामी समझे जाते हैं क्योंकि वे स्वर्ण निर्माण एवं स्वर्ण के आभूषण भी निर्मित करना जानते थे। वे कुबेर जी ही थे जिन्होनें अपने हाथों से 'पुष्पक विमान" नामक "सोने का हवाई जहाज" बनाया था। **ये लंका के** राजा थे और उस समय लंका सोनियों की अर्थात् सोनारों की कहलाती थी[6] राम राज्य में भी स्वर्ण कला अपनी चरम सीमा पर थी। सीता जी की स्वर्ण प्रतिमा स्वर्णकला

❑ प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली (उ.प्र.)

की प्राचीनता तथा स्वर्ण कलाकारों की कुशलता को दर्शाती है। स्वर्णकला पीढ़ी-दर पीढ़ी हस्तांतरण होते हुए त्रेतायुग तक मात्र ब्राह्मणों तक सीमित रही किन्तु त्रेतायुग के अन्तिम चरण में क्षत्रिय वंशावलियों के लोगों ने आजीविका के साधन स्वरूप तथा परशुराम के भय से स्वयं को संरक्षित करने के उद्‌देश्य से स्वर्णकारी व्यवसाय को अपना लिया। किन्तु बौद्ध एवं जैनकाल आते-आते इस जीविका के स्रोत को न केवल वैश्य अपितु शूद्र वर्ण द्वारा भी अपनाया जाने लगा। किन्तु इस व्यवसाय पर वर्चस्व ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वंश से अपना उद्‌गम् बताने वालों का रहा। अतः स्वर्णकारों को

(१) विश्वकर्मा वंशीय ब्राह्मण स्वर्णकार एवं

(२) क्षत्रिय वंशीय क्षत्रिय स्वर्णकार में विभक्त कर दिया गया।[७]

विश्वकर्मा वंश में प्रारम्भ में १२५ ऋषि जो शिल्पज ऋषि हुए वे अविरस, देवगुरू, वृहस्पति, भृगु, वशिष्ठ, दैवसेन जैसेन, जयत, कुमार, उपमन्यु, विभाज्ञ, धनज, गर्ग, गौतम, सांडिल्य, कपिल, वत्रन, गावल, कुत्स, रिमु हरिज, दमदार्ग, भारद्वाज। दुर्याग्यवश महाभारत हुआ और सच्चे विद्वानों एवं शिल्पज ऋषियों का नाश हो गया। वैदिक काल में ब्राह्मणों की दो शाखायें थीं।

१) ''आर्षेय'' जो षट कर्म द्वारा' यौगिक ब्राहमण कहे जाते थे।

२) ''पोर्षेय'' जो विश्वकर्मा कहे गये

शिलपज्ञों की वास्तविक सम्पत्ति

कुल बारह हजार लिखित शास्त्र थे जो विश्वकर्मा के निर्माण तत्व के पुँज हैं। वर्तमान में उनके द्वारा रचित संहिताओं का मात्र नाम रह गया है किन्तु शास्त्रों का कोई अता-पता नहीं है जो कि समाज की सबसे बड़ी हानि है।[८]

क्षत्रिय वंशीय स्वर्णकार को दो प्रमुख शाखाओं में वर्गीकृत किया गया

१) महर्षि मरीचि से उत्पन्न सूर्यवंशी क्षत्रिय स्वर्णकार

२) महर्षि अत्री से उत्पन्न चन्द्रवशीय क्षत्रिय स्वर्णकार। सूर्यवंशी वंशीावली के अन्तर्गत ही अंगिरसी ब्राह्मणवंशी क्षत्रिय स्वर्णकार, राठौर माथुर क्षत्रिय स्वर्णकार एवं अयोध्यावासी रस्तोगी स्वर्णकार भी हैं।[९] अयोध्यावासी एवं रस्तोगी स्वर्णकारों की भी एक दंत कथा हैं कहते एक स्थान विशेष पर संस्कार युक्त एवं सुशिक्षित अच्छे लक्ष्णों से युक्त व्यक्तियों का समूह देखकर क्षत्रिय द्रोही एवं हंता परशुराम ने इनसें प्रश्न किया बताओ तुम लोग कौन हो ? क्योंकि मैं वही परशु हूँ जिसने २१ बार पृथ्वी की परिक्रमा कर अपनी प्रतिज्ञा कर स्मरण कर पृथ्वी को क्षत्रिय रहित करते हुए बड़े-बड़े तालाब उनके रूधिरों से भर दिये। इस पर उन व्यक्तियों ने अपनी वाकपटुता का परिचय देते हुए प्रत्युत्पन्न बुद्धि से कहा-

'' वयं न राजन न च शस्त्र साजन
रसधसोर्गि अयोध्यं मुनीशं
क्षत्रिय पिनो खत्रिय यज्ञ तिष्ठति
मणिहेय कारणादि करणम करोति''।
आयुधहीन, अयोध्यावासी, नहीं वर्ण है अपना क्षत्री
राजन्म नहीं रसघ के सोधी कहलाते हम सब हैं खत्री।
अर्थात् हम क्षत्रिय राजा नहीं।

क्षत्रिय के भूषण से शोभित है अर्थात शस्त्र भी धारण नहीं किये हुए हैं। हम सब रसध सोंधी (रसधोताँगी) है अर्थात पारे की कसई का काम करते हैं और योक्ष नहीं अयोध्या बसे हैं (योद्ध शूर को कहते है और अयोध्या का आशय कमजोर से है) क्षत्रिय नहीं अपितु खत्री है और स्वर्ण, लौह, काष्ट एवं पत्थर आदि का शिल्प करने वाले हैं। आप व्यर्थ क्रोध क्यों करते हैं? रसधतोंगी का अपमंश शब्द रस्तोगी एवं अंयोध्यावासी हुआ। इन सूर्यवंशी रस्तोगी स्वर्णकारों के गोत्र कश्यप, हरित हैं तथा प्रभावती महालक्ष्मी योगेश्वरी इन्द्राणी, हिंग्लानी, आज्ञापूर्ण आदि कुल देवियाँ हैं।[१०]

चन्द्रवंशी क्षत्रिय स्वर्णकारों की वंशावली निम्न प्रकार हैं-

१. चन्द्रवंशी कुल जी महाराज से कान्यकुब्ज क्षत्रिय स्वर्णकार
२. चन्द्रवंशी आर्यपुत्र क्षत्रवृद्धि से सीनक ऋषियों क्षत्रिय स्वर्णकार।
३. चन्द्रवंशी आर्यपुत्र नुहुष तनय यातति की प्रथम पत्नी देवयानी के वंश में उत्पन्न तालजतंगी अथवा हेहयवंशी एवं युदवंशी क्षत्रिय स्वर्णकार।
४. चन्द्रवंशी यतानि की द्वितीय पत्नी शर्मिष्ठा के वंश उत्पन्न महाराज हस्तितनय अजमीढ़ से मँढ क्षत्रिय स्वर्णकार

महाभारत के युद्ध के परिणाम स्वरूप शिल्पज्ञों एवं उनके शास्त्रों के विनाश के साथ-साथ स्वर्णकारों की भी स्थिति निम्न हो गई। पुनः सम्यता के विकास के साथ-साथ स्वर्णकला का भी पुनर्जन्म हुआ। ३४०० ई० पूर्व से २४७५ ई० पूर्व का काल मिस्त्री इतिहास का युग है। इस युग के स्वर्णकारों द्वारा बनाई गई मूर्तियों में ''हिमराकोन के पवित्र बूमेन'' की प्रतिमा उल्लेखनीय है। मिस्त्री स्वर्णकार शायद सम्पूर्ण विश्व के सर्वप्रथम कीमियागार थे फीबा की खुदाई में मिली हस्तीसपियों में ताम्र से स्वर्ण बनाने के रहस्य लिखे हैं। उसमें लिखित है ताम्र में जैसे ही जिंक मिलाया जाता है वह तुरन्त स्वर्ण (सोने) में परिवर्तित हो जाता हैं।[११]

मध्यकालीन भारत में मुगल शासकों एवं उनकी बेंगमों का स्वर्ण आभूषणों के प्रति विशेष चाव था अतः स्वर्णकार अत्यन्त व्यस्तता एवं सम्मान को प्राप्त थे। गुप्तकाल की चर्चा स्वर्णयुग के रूप में होती थी राजा भोज के समय तक स्वर्णकारों को विशेष सम्मान प्राप्त था। इस युग के अनेक रस ग्रन्थों में कृत्रिम स्वर्ण बनाने की कला पर प्रकाश डाला गया हैं। मुगलकाल में शासकों को स्वयं धन-धान्य का अभाव था अतः मुगल काल के पतन के साथ-साथ आभूषण कला भी शनैः शनैः पतन हो गया। चीन आक्रमण के समय भारत सुरक्षा नियम के अन्तर्गत ' स्वर्ण नियंत्रण'' अध्यादेश लागू किया गया था। यह अध्यादेश ९ जनवरी १९६३ को '' वित्तमंत्री मोरार जी देसाई'' द्वारा लागू किया गया। उक्त स्वर्ण नियंत्रण चौदह कैरेट प्रणाली अथवा शुद्धता नियंत्रण पर आधारित था[१२] परिणामतः लाखों स्वर्णकार क्षण मात्र में बेरोजगार हो गये। गत् समय में हमारे देश में लगभग २० लाख स्वर्णकार थे जिनमें लगभग २०० से अधिक स्वर्णकारों ने आत्महात्यायें कर लीं। स्वर्ण नियंत्रण के विरोध में व्यापक आन्दोलन किये गये जिसमें बरेली निवासी स्वर्णकार संघ के अध्यक्ष स्व० श्री राम किशोर रस्तोगी जी'' ने महत्वपूर्ण योगदान दिया १९९० में स्वर्ण नियंत्रण मुक्त कर दिया गया।[१३]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मण्डल आयोग द्वारा स्वर्णकार अथवा सुनार जाति को केन्द्र शासित क्षेत्रों में तथा विभिन्न क्षेत्रों में निम्न नामों से पुकारा जाता हैं।[१४]

प्रदेश	जाति का नाम
अरूणांचल प्रदेश	सुनार
हरियाणा	सुनार, सोनी, स्वर्णकार, सर्राफ
कर्नाटक	सोनार आर्या (कोली)
देहली	सुनार
हिमाचल प्रदेश	सुनार जरगर, सोनी, स्वर्णकार, टांक
मध्य प्रदेश	सुनार व सोनार
महाराष्ट्र	सोनार
उड़ीसा	सोनी व सुण्डी
राजस्थान	स्वर्णकार
पश्चिम बंगाल	सोनार व स्वर्णकार
त्रिपुरा	सुनरी
मणिपुर	सोनार व सुनार
पंजाब	सुनार, स्वर्णकार, सुनियारा
उत्तर प्रदेश	सोनार, सुनार व स्वर्ण
सिक्किम	सुनार

स्वर्णकला सदैव से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी स्वर्णकार परिवारों में बालक को अल्पायु में ही स्वर्णकला का प्रशिक्षण दिया जाने लगता है अथवा परिवार में रात-दिन की आभूषणों की चकाचौंध अनायास ही बालक को अपनी ओर आकर्षित करती है। परिणाामः उत्सुकतावश वह कारीगरी हेतु प्रेरित होता है एवं ३-४ वर्षो में एक कुशल कारीगर बन जाता है साथ ही कारीगरी के बदले में प्राप्त धन तथा समृद्धि की लालसा में वह पूर्णतया स्वर्णकारीगरी में लिप्त हो जाता है जिसके फलस्वरूप वह अपने परिवार को आर्थिक सहयोग तो करता ही है किन्तु स्वयं का बचपन एवं शिक्षा ग्रहण करने की आयु दोनों ही स्वर्णकला को भेंट कर देता है परिणाम स्वरूप वह अशिक्षित रह जाता है।

प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश के बरेली के शहरी क्षेत्र में ३०० स्वर्णकारीगरों को निदर्शन के माध्यमय से चयनित किया गया हैं। साक्षात्कार से प्राप्त आकड़ो के अनुसार आज ४२ प्रतिशत स्वर्णकार कक्षा आठवी तक शिक्षित हैं तथा ५.३३ प्रतिशत स्वर्णकार सदस्य स्नातक तथा परास्नातक तथा शिक्षा ग्रहण किये हुए हैं। वर्तमान संदर्भ मे बरेली के शहरी क्षेत्र के अन्तर्गत लगभग- ४०,००० स्वर्णकार निवास कर रहे हैं जिनमें- रस्तोगी, वर्मा, अग्रवाल, ब्राह्मण, पंजाबी तथा बंगाली मुसलमान आदि प्रमुख रूप से कार्यरत् हैं इनमें सबसे अधिक ८४ प्रतिशत रस्तोगी स्वर्णकार हैं जिन्हें यह कला अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है। स्वर्णकारी हेतु मुख्य रूप से, बिहारीपुर, मलूकपुर बमनपुरी पुराना शहर, खन्नूमोहल्ला, आदि क्षेत्र प्रमुख हैं। यद्यपि २५ वर्ष पूर्व तक स्वर्णकारी व्यवसाय पारम्परिक आधार पर हस्तांतरित होते हुए अपना अस्तित्व बनाये हुऐ था किन्तु अन्य जातियों एवं बाहरी आगंतुकों का स्वर्णकारी व्यवसाय मैं हस्तक्षेप स्थानीय एवं पारम्परिक स्वर्णकारों की आर्थिक एवं व्यवसायिक निम्नता का कारण बन गया। बंगाली स्वर्णकार जो मुख्यतः पश्चिम बंगाल के निवासी हैं उन्होनें अपनी बारीक एवं अधिक आकर्षक कारीगरी के साथ-साथ न्यूनतम मजदूरी पर काम करने की सहमति से स्थानीय स्वर्णकारों की स्थापित साख एवं स्वर्णकला पर अपना आधिपत्य कर लिया। परिणामतः अनेक स्वर्णकार बेरोजगार हो गये।

वर्तमान में स्वर्णकारीगरों की समस्याओं के सहायतार्थ स्वर्णकार संघ है किन्तु योग्य प्रतिनिधियों के अभाव में तथा स्वर्णकारों में शिक्षा का अभाव उन्हें उचित मार्गदर्शन से विरक्त करता हैं। सोने की मूल्य वृद्धि से भी स्वर्णकारी व्यवसाय काफी हद

तक प्रभावित होता है। २००५ में सोने की मूल्य दर ६७०० रू० प्रति दस ग्राम जो २० प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि के साथ २०१० में २१००० प्रति दस ग्राम की रिकार्ड मूल्य रहा। तथा वर्तमान २०१४ में सोने का मूल्य २६००० रू. प्रति दस ग्राम हैं। सोने की मूल्य वृद्धि स्वर्णकारीगरों के लिए स्वर्ण भाग्य सिद्ध हुई। जो कारीगर पूर्व में ५ प्रतिशत मजदूरी लेकर आभूषण निर्माण करते थे वे वर्तमान में ३ प्रतिशत मजदूरी की दर पर कार्य कर रहे हैं। किन्तु सोने की मूल्य वृद्धि के हिसाब से आमदनी में वृद्धि हुई है। जबकि सन् २००३ से २००५ के मध्य ५ प्रतिशत मजदूरी पर कार्य करते हुए भी मूल्यों के उतार चढ़ाव एवं न्यूनतम मूल्य के परिणाम स्वरूप स्वर्णकारीगरों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी।[१५] परिणामतः अनेक कारीगर अपने परम्परागत् व्यवसाय से पलायन कर गये। मशीनीकरण का प्रयोग जहाँ एक ओर स्वर्ण व्यवसाय में नवीन क्रान्ति लेकर आया वहीं दूसरी ओर कारीगरों के लिए रोजी-रोटी का संकट खड़ा हो गया। आभूषण मशीनों के माध्यम से अधिक आकर्षक एवं विभिन्न डिजाइनों में कम समय में तैयार होने लगे। मुख्यतः हाथ से चेन बनाने वाले कारीगर पूर्णतः बेरोजगार हो गये हैं। लोगों द्वारा मशीन निर्मित आभूषण अधिक पसन्द किये जा रहे हैं जिनमें मुख्यतः कलकत्ता के फैन्सी आभूषण, राजकोट, बाम्बे इत्यादि प्रमुख हैं। स्वर्णकारीगर द्वारा निर्मित आभूषणों की शुद्धता पर कई बार सबाल उठते है किन्तु वह व्यापारी अथवा सर्राफ वर्ग की माँग के अनुरूप ही आभूषण तैयार करता है जिसे व्यापारी वर्ग द्वारा धर्मकाँटे पर टंच के माध्यम से मापा जाता हैं। वर्तमान परिवेश में बिजिल वर्क के आभूषण बनाने वाले कारीगर भी प्रभावित हो रहे हैं। राजकोट बाँम्बे इत्यादि आभूषणों की बढ़ती माँग एवं चलन ने उनके भविष्य पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया हैं। स्वर्ण निवेश के उत्तम साधन के रूप में महत्वपूर्ण साधन माना जाता हैं और वर्तमान में प्रचलित हॉलमार्क शुद्धता का मापक स्वरूप है किन्तु आज भी बिना मार्क आभूषण १८ एवं २४ कैरेट की शुद्धता पर मध्यम एवं निम्न वर्ग में सर्वाधिक प्रचलित हैं। देहाती क्षेत्रों में आज भी स्थानीय कारीगरों द्वारा निर्मित आभूषणों की माँग है क्योंकि मजबूती के लिहाज से अधिक उपयोगी होते हैं। ''एसी नेल्सन ओ आर जी मार्ग'' द्वारा कराये एक ग्राम सर्वेक्षण में पाया गया हैं कि आभूषण व्यापार में पारंपरिक स्वर्णकारों की ही तूती बोलती हैं। आज भी आभूषण बाजार का ६२ फीसदी हिस्सा पारंपरिक स्वर्णकारों के हाथ में हैं और ठेर सारे विज्ञापनों और आलीशन शोरूम के बावजूद ब्रांडेड आभूषणों की हिस्सदारी मात्र ८.०० प्रतिशत है। सोने की चमक में प्लेटीनम एवं चाँदी निस्तेज प्रदर्शित हो रहे हैं। आभूषणों के खरीददारी में ६८ प्रतिशत लोग आज भी सोने के दीवाने हैं। सर्वेक्षण में पाया गया है कि आभूषण में महिलाए ४१ प्रतिशत झुमका खरीदती हैं तथा कुल आभूषण का २६ प्रतिशत उपहार देने के लिए होता हैं।[१६] स्वर्णकारी व्यवसाय एक समृद्धशील व्यवसाय प्रतीत होता है किन्तु इस व्यवसाय की निरन्तरता मात्र ६ माह की होती है जिसमें स्वर्ण कारीगर को रात-दिन कार्य कर आगामी समय हेतु धन अर्जित करना होता है। रात दिन के श्रम में स्वर्णकार परिवार की महिलाएं भी कारीगरी में सहयोग करती हैं। किन्तु अत्यधिक पैसे की चमक की स्वर्णकार वर्ग को शीध्र सुख साधन एवं समृद्धि बढ़ाने हेतु प्रेरित करती हैं। इसके साथ ही वे अनेक दुर्व्यसनों मे भी लिप्त पाये गये हैं। जहाँ एक ओर कठिन श्रम से उनके परिवार की स्त्रियाँ एवं बच्चों में स्वर्णभूणों से सुसज्जित रहते हैं वहीं दूसरी ओर स्वर्णकारीगर खाली समय में जुआ, शराब, सट्टा जैसे व्यसनों में अपनी पूँजी दाँव पर लगा देता है यही कारण है कि स्वर्ण कारीगर की समृद्धि स्थिर नहीं रहती शीघ्र ही उसके परिवार को धनाभाव झेलना पड़ता है यहाँ तक कि घर के जेवर तथा सुख साधन भी गिरवी पड़ जाते हैं। अतः एक बार फिर से स्वर्णकार अभावयुक्त जीवन को विवश हो जाता है। सम्पूर्ण अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया है कि स्वर्णकार वर्ग की सबसे बड़ी कमजोरी शिक्षा का अभाव है। अतः उन्हें शिक्षा के प्रति जागरूक करना चाहिए। वर्तमान पीढ़ी के स्वर्णकार सदस्यों में जागरूकता देखने को मिली है स्वर्णकारीगरों के बच्चों की उच्च्च शिक्षा प्रतिशत में भी वृद्धि हो रही हैं जिनमें बालिका शिक्षा पर अधिक बल दिया जा रहा हैं। स्वर्णकारीगर पुरानी पद्धति से कार्य करने के कारण पिछड़ रहे हैं अतः उन्हें आधुनिक मशीनों की उचित जानकारी एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था स्वयं स्वर्णकार संघ द्वारा की जाये। उन्हें ज्वैलरी डिजाइनिंग संस्थाओं से अवगत् कराने हेतु एवं नवीन तकनीक सीखने हेतु समय-समय पर कार्यशालाओं का आयोजन किया जायें जिससे वे और अधिक उन्नति कर सकें। स्वर्णकारों का अपना संगठन हो जिसमें वह खुलकर अपने विचार रख सकें तथा समस्याओं एवं समाधान से समग्र को अवगत् करा सकें। व्यापारी एवं सर्राफ वर्ग द्वारा शोषण होने पर भी वह सामूहिक रूप से आवाज नहीं उठा पाते जिसका मुख्य कारण एकता का अभाव है अतः समस्त स्वर्णकारीगरों में एकता भाव जागृत कर उनकी समस्याओं के समाधान हेतु सरकारी एवं गैर

सरकारी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त हो। साथ ही उचित नेतृत्व की आवश्यकता हैं जिसके लिए इस वर्ग के प्रतिष्ठित एवं शिक्षित व्यक्तियों का चयन कर एक संगठन का निर्माण किया जायें जिसमें महिलाओं को भी समान रूप से भागीदार बनाया गया हैं क्योंकि स्वर्णकारी व्यवसाय मैं पुरूषों के समान महिलाऐं भी समान रूप से कार्यरत पाई गई हैं। वर्तमान में स्वर्णकार सदस्यों एवं व्यापारी वर्ग के साथ लूट एवं रंगदारी की घटनाओं में निरंतर वृद्धि हो रही है, किन्तु कानून प्रशासन की अव्यवस्था के फलरूवरूप अपराध एवं अपराधियों के स्तर में कोई कमी नहीं आई अपितु स्वयं कानून के रखवालों द्वारा कानून का उल्लंघन करते हुए व्यापारी वर्ग को गुमराह किया जाता हैं।

अतः आवश्यकता है स्वर्णकार एवं स्वर्ण व्यावसायियों द्वारा स्वयं को संगठित कर अव्यवस्थाओं के विरूद्ध आवाज उठाने की। शिक्षा के माध्यम से स्वयं आत्मविश्वासी बनें तथा अपने परम्परागत व्यवसाय पर पनुः अधिपत्य स्थापित करें।

सन्दर्भ

१. अकिंचन वर्मा चन्द्र गुप्त प्रसाद - पत्रिका स्वर्ण संदेश, १९८७ पृ० २९
२. स्मारिका, जिला स्वर्णकार संघ मऊ प्रकाशन, १९९४ पृ० ५५-५६
३. एच०डी० स्वर्णकार - पत्रिका स्वर्णकार दर्पण, मऊ प्रकाशन, १९९४, पृ० ३८
४. यजुर्वेद अध्याय १ मंत्र ४
५. चजुर्वेद अध्याय ३० मंत्र १७
६. एच०डी० स्वर्णकार संघ स्मारिका मऊ प्रकाशन १९९७ पृ० ५६
७. अखिल भारतीय स्वर्णकार संघ स्मारिका १९७६ पृ० १३
८. शर्मा पं० भृगुराज, विश्वकर्मा समाज का ऐतिहासिक अध्ययन १९८७ पृ० १२-२०
९. अकिंचन वर्मा चन्द्रगुप्त प्रसाद स्वर्णमित्र मण्डल पत्रिका, स्वर्णकार जाति का उदभव एवं विकास (एक सामाजिक अध्ययन) १९९३ पृ० ३९
१०. स्वर्ण मित्र मण्डल, दिल्ली प्रकाशन १९९३ पृ० ३८, ४३
११. अकिंचन वर्मा चन्द्रगुप्त प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ० ४०-४५
१२. कुमार बसन्त सचिव प्रकाशक संघ, स्वर्ण नियंत्रण दरीबाकलाँ - १९९८ पृ० ६०
१३. कुमार बसन्त सचिव प्रकाशक संघ स्वर्ण मित्र मण्डल दरीबाकलाँ-१९९८ पृ० २१२
१४. वर्मा वेद प्रकाश, स्वर्ण मित्र मण्डल, (स्वर्णकार समाज व जाति का विकास) मुरादाबाद प्रकाशन, १९९३ पृ० ३७
१५. समाचार पत्र अमर उजाला ५ अगस्त-२००५
१६. समाचार पत्र अमर उजाला जनवरी २०१४

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

भील जाति के लोकगीत – पश्चिम निमाड़ के संदर्भ

❑ डॉ. श्रीमती गुलाब सोलंकी

भारत के मानचित्र में विंध्याचल और सतपुड़ा के बीच का जो भूभाग है वह निमाड़ के नाम से जाना जाता है। प्रशासनिक दृष्टि से यह पूर्वी निमाड़ और पश्चिमी निमाड़ दो भागों में विभाजित है। भील जनजाति का अस्तित्व पश्चिमी निमाड़ के अंतर्गत है। जनसंख्या की दृष्टि से भील जनजाति भारत में तीसरे स्थान पर और मध्य प्रदेश में दूसरे स्थान पर आती है। भील जनजाति के लोक गीतों का संबंध उनकी लोक संस्कृति से है जो लोक गीतों में अभिव्यक्त होती है। जीवन के विविध पक्षों में लोक संस्कृति विभिन्न रूपों में अपनी अभिव्यक्ति खोजती है इसलिए भील संस्कृति के अंतर्गत विविध प्रकार के लोक गीतों का प्रचलन है। प्रस्तुत आलेख भील संस्कृति की इस अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने का एक प्रयास है।

भारतवर्ष के नक्शे मे विन्ध्याचल और सतपुड़ा के बीच जो भू -भाग है, वह निमाड़ के नाम से जाना जाता है। प्रशासनिक दृष्टि से वह दो भागों मे विभाजित है।
(१) पूर्वी निमाड़ (२) पश्चिम निमाड़

भील जनजाति पश्चिम निमाड़ की जनजाति है, जिसमे से अनेक जनजातियां उपजी और विकसित हुई हैं। उनमें से भीलाला और बारेला प्रमुख हैं। भील जनजाति का इतिहास और विकास ही भिलाला और बारेला जनजाति का इतिहास है।

क्रुक[1] ने लिखा है कि स्थानीय जनश्रुति के अनुसार भील किसी समय राजपूताना, सेन्ट्रल इण्डिया तथा गुजरात की शासक जाति थी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उन्हे राजपूताना, मालवा तथा गुजरात राज्यों ने अपने अधीन कर लिया था। इस दावे को उनके अधिराजाओं द्वारा मान्य किया गया है और जब कभी भी कोई सरदार गददी पर बैठता है, उस समय राज्याभिषेक के अवसर पर उस सरदार के ललाट पर किसी भील के हाथ के अंगूठे या पैर के अंगूठे से निकाला गया खून अनिवार्यतः लगाया जाता है।

भील जनजाति संख्या की दृष्टि से भारतवर्ष मे तीसरे स्थान पर आती है। पहला स्थान गोंड, दूसरा संथाल। मध्य प्रदेश मे संख्या की दृष्टि से यह जनजाति दूसरे स्थान पर है।

भील शब्द की उत्पत्ति किस प्रकार हुई , इस विषय मे प्रायः सभी लेखकों की मान्यता एवं प्रस्तुति एक समान है। इस शब्द की उत्पत्ति मूलतः उच्चारण संबंधी भेद के कारण संस्कृत के मूल शब्द भिद से हुई है। भिद का भावार्थ है- बिंधना, भेदना, बेंधना (लक्ष्य को बेधना) आदि।

उच्चारण संबंधी विशिष्टता के कारण भिद शब्द ही कतिपय परिवर्तनों के पश्चात अन्ततः भील शब्द मे रूपान्तरित हुआ है। मेजर इरस्किन[2] का कथन-भील यहा के मूल निवासी नहीं हैं। वे-कहीं अन्यत्र से बाहर आकर बस गए। यह कथन न केवल भ्रामक है, बल्कि कपोल-कल्पित है। ठीक उसी प्रकार जैसे यह कहना है कि-आर्य भारत के मूल निवासी न होकर बाहर से आकर यहॉ बसे हैं। वर्तमान में प्रयुक्त भील शब्द वस्तुतः अतीत के निषाद शब्द का ही पर्याय है, इसे प्रायः सभी लेखक और अन्वेषक स्वीकार करते हैं। निषाद प्राचीन हिन्दू समाज के अंग थे तथा उनके व शेष हिन्दुओं के बीच सतत सम्पर्क व सहयोग रहा है।

भीलों की अपनी विशिष्ट बोली भीली है। विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई एक जनजाति है। इसलिए आंचलिक बोलियों का प्रभाव उन अंचलों में या उनके आसपास बसे भीलों पर देखा जा सकता है। भीली पर राजस्थानी गुजराती और मराठी का प्रभाव झलकता है। धार जिले की भीली बोली पर मालवी का प्रभाव, निमाड अंचल मे निमाड़ी का प्रभाव भी भीली पर परिलक्षित होता है।

"भील एवं भिलालो मे जलप्लावन की कहानी भी अध्ययन के दौरान सुनने को मिली," जिसके - अन्तर्गत वे पावागढ पहाड़ पर चढ़ गये थे, और सृष्टि की रचना की, बहन-भाई के योग से मानते हैं। प्रारंभ में सभी समान थे, बाद में कार्यो के आधार पर जातियों की उत्पत्ति हुई। भील अपनी उत्पत्ति समुद्र के शंख से मानते हैं, और भिलाले अन्य उपजातियों (गौत्र) की व्याख्या इस तरह से करते हैं- जिसने बासी खाना खाया आसकला, जिसने चोटी बेच दी वे चौगडया, जिसने भूख से बचने के लिए कौड़े खाए वे किराडिया, जिसने सस्ते बाल बेचे उसे सस्तिया और जिसने बाए हाथ से खाना खाया वे डावर कहलाए।

जन्म संस्कार गीतः- भील जनजाति में स्त्री पुरूष के जन्म में फर्क नही किया जाता है। पुत्र और पुत्री को समान अधिकार और मान्यता प्राप्त है। जन्म संस्कार एक नए मानव

❑ प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय धामनोद (म.प्र.)

के पृथ्वी पर आने की असाधारण घटना है। भील जनजाति नये मानव का स्वागत अपनी निर्धनता की सीमा में बडे धूमधाम से मनाते है। विशेष रस्म रिवाज नहीं है, फिर भी सब एकत्रित होकर दारू (शराब) का सेवन कर नृत्य आदि करते हैं।

''अलिमो जाओ रे पिया गलियो जावो कोई दायण लाओ बेगी-बेगी रे।

अलियो गयो हुतो गलियो गयो हुतो नाही मिली ओ सुगड दायण ओ अलियो जाओ रे पिया.....''

भावार्थः- (नवयुवती को डिलेवरी होने वाली है। दायण बुलाने के लिए भेजा जा रहा है।)

सूरज पूजन-शिशु जन्म के पश्चात सूरज पूजनः-

''उड जा रे मारा काला कबलडा वीरा घर संदेशो पोचाई दीजो रे।

बेन्या सारू चुनडी, नाना सारू झगलो लावजो।।

उड जा रे, मारा काला कबलडा, ननदुल घर संदेशो पोचाई दीजो रे।

भाभी सारू लेहंगो, नाना सारू गजरो लावजे रे।।''

भावार्थः- बहन के घर बच्चे ने जन्म लिया है, बहन के लिए साडी और बच्चे के लिए कपड़े का संदेशा भेजा जा रहा है।

विवाह गीतः- निमाड़ के भीलों मे होने वाले विवाह संबंध हिन्दुओं की भाँति ही है। उनके विवाह में आर्थिक विपन्नता बाधक नही होती। वर पक्ष से पैसे, अनाज, गुड़ आदि लेने की परम्परा है। भीलों की एक विशेषता है-कि यहॉ दहेज रूपी दानव नही है। कुछ निर्धारित वस्तुऍ थाली, लोटा, बेडा आदि ही अनिवार्य है।

खडमाटी गीतः- महिलाएं चुल्हा, कोठी बनाने के लिए मिटटी खोदने सामूहिक रूप से गीत गाते हुए जाती हैं-

चलो ऽ चलो ऽ मारी सईया ओ खडमाटी खोदावा

अड धड राक्या पड धड राक्या बमारा लाड लडाया वो आ चलो मारी सई वो घणा-घणा हो रसजियो म्हारा नन्यिावी बमारा लाड लडाया रे।"

विवाह अवसर पर गणेश पूजा का विशेष महत्व है जिसमे महिलाऍ गीत के माध्यम से कहती हैं हमारे घर गणपति बाबा आए हैं-

गढवो-गुडी वे बाबो गणपति आयो वो पूछतो-पूछतो बाबो गली म आयो वो सेयरी म आयो वो पूछे जगन भाई को घर कहां वो गढ बो-गुडी वो बाबा गणपति आयो वो पूछतो-पूछतो-पूछतो

हल्दी मसलने के गीतः- विवाह चार,पॉच या सात दिन का भी हो सकता है। दूल्हा-दूलहन को रोज हल्दी लगाकर नहलाया जाता है।

''गादी पर बैठो बना थारा हल्दाय महकाय रे गादी का लाग्या रूपया साठ रे

नादान बना थारा हल्दाय महकाय रे।"

भावार्थः- हे दूल्हे राजा तुम्हारी हल्दी से खुशबू आ रही है। जिस गादी या पटले पर बैठे हो उसके लिए पैसे खर्च किए गए हैं।

''झील मील पाणी गरम लाडा रे
तुम नावों कि नय ऽ रे
नव का टेम होयग्यो रे
झील मील पाणी गरम लाडा रे
तुम नावों कि नय ऽ रे।''

भावार्थः- नहाने का पानी गरम है सुबह के नौ बज गए हैं इसलिए हे दूल्हे राजा स्नान कीजिए।

तातो तपेलो पाणी ठंडो हो सरयोवो
बनडा तू त नावीलव वो
तातो तपेलो पाणी ठंडो हो सरयोवो।

भावार्थः- हे दूल्हे राजा नहाने के लिए तपेले में गरम पानी रखा है स्नान कीजिए।

मण्डपः- मण्डप के दिन मुवाडया न्योता होता है। मण्डप मे महिलाए गीत गाती हैं

लाडा थारो माण्डवो ऊचों लेरीया लयवो
ऊबों लेरिया लयवो सीता बाई रा वन म
ओ लाडा थारो माण्डवो ऊबो लेरीया लयवो।

भावार्थः- हे दूल्हे राजा तुम्हारा मण्डप हरा भरा दिखाई दे रहा है।

बानागीतः- भील जनजाति मे दूसरे,चोथे या पांचवी रात महिलाऍ, परिवार के सदस्य एवं गांवो के बच्चे जलती मशाल,जंगी ढोल दूल्हा घोडा साइकिल या अन्य सवारी का उपयोग कर गांव की गलियों मे निकलता है।

अडवड ऊपर घुंघरू रे बना
धीरा चालो,गेरया बोलो ना।
हजारी बना धीरा चालो रे
अडवड ऊपर घुंघरू रे बना।।

भावार्थः- रास्ते मै घुघरू की आवाज आ रही है, हे दूल्हे राजा धीरे-धीरे चलिए-

इन्दौरयारी लाम्बी रे सडक
लाम्बी रे सडका बनो म्हारो पढने को जाय
माता पिता करलो विचार लायदो रे किताब बनो मनरो पढने

को जाय।
भाई भाभी कर लो विचार लाय दो किताब बनो मारो पढने को जाय।
भावार्थः- दूल्हे राजा पढ़ने जा रहे है माता-पिता-भाई-भाभी विचार कर रहे हैं, कि दूल्हे की पुस्तके खरीद कर दी जावे।
होटल पर ऽ लडडू मारा बना ने बनवाया बनो खाई न बनी तरसे वो
होटल पर ऽ चाय मारा बना ने बणपायी बनो पियो न बनी तरसे वो
भावार्थः- दूल्हे राजा ने होटल पर लडडू और चाय का आर्डर दिया है वह लडडू खा रहा है और चाय पी रहा है। किन्तु दुल्हन तरस रही है।
वरनिकासी गीतः- बारात रवानगी के समय दूल्हे को माता-पिता और बुजुर्ग आशीर्वाद देते हैं तब महिलाऍं गाती हैं।
वो माता पडस बेटो थारो ऊबो वो,
म्हारी रायरूकमणी पर फूक वो।
वो माता पडस बेटो थारो ऊबो वो ,
म्हारी रायरूकमणी पर फूक वो।
भावार्थः- हे दूल्हे की मॉ तेरा लाडला तेरे सम्मुख आशीर्वाद के लिए खड़ा है। तुम आशीर्वाद दो।
"बना रे थारा मैला ऊपर
बोले कोयल मोर रे बना रे
थारा पिताजी बुलावे
बेगा आओ रे हरियाली बना
बना रे थारा मैला ऊपर
बोले कोयल मोर रे बना रे
"बना रे थारा काकाजी बुलावे
बेगा आओ रे हरियाली बना
भावार्थः- हे बना तेरे महल की छत पर कोयल, मोर बोल रहे हैं। प्रसन्नता के साथ पिताजी, माँ, काकी बुला रही है।
सवी चाल्या न, घर पार कुण का भरोसे
ताल्णा देवो कूची साथ लो वी बना जी आ।
भावार्थः- सभी बारात जा रहे हैं। घर किसके भरोसे रहेगा, अर्थात ताला लगा कर चाबी अपने पास रख लो।
बारात रास्ते के गीतः- बारात घर से पैदल, बैलगाड़ी या परिवहन से रवाना होती है। महिलाऍं रास्ते भर गीत गाती हैं।
धरती ऊपर फरसी रे बना
धीरे-धीरे चलना धरती ऊपर फरसी रे बना धीरे-धीरे चलना।
पिता बुलाव जरा बोलना रे बना
धीरे से बोलना ससरो बुलाव जरा जोर से बोलना रे बना
बना कडक सी बोलना धरती ऊपर फरसी रे बना।।
भावार्थः- महिलाऍं दूल्हे को शिक्षा दे रही हैं, कि परिवार एवं ससुराल वालो के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। बारात वधु के गॉव पहुंचती है तब महिलाऍं गाती हैं-
खोल दो किवाड मेरा बना आया वो
खोल दो किवाड तेरी झाझम पे मेरा बना आया वो
बनी खोज दो किवाड, डोर-डोर ढीली छोड वो
हरिया बनी तेरी पतंग मेरी डोर वो
खोल दो किवाड वो तारा मोडिया प मोर नाचे वो
हरिया बनी तेरी पतंग मेरी डोर वो।
भावार्थः- हे दुल्हन तुम दरवाजा खोल दो मेरा दुल्हा तुम्हारे घर आया है। हे दुल्हन तू पतंग के रूप मे हमारी डोर से बंध गयी है।

अनुसूचित जनजातियों में भील जाति की अपनी एक अलग पलचान है। इनके रीति-रिवाज, उत्सव एवं अन्य कार्यक्रम लोकगीतों के साथ आरंभ होते हैं। भील जाति के विविध संस्कारों को इस शोध पत्र में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है जो शोध अध्ययन के दौरान प्राप्त हुए हैं जिसमें सच्चाई और प्रमाणिकता के गुण सम्मिलित हैं।

सन्दर्भ

१. सोलंकी गुलाब, 'पश्चिम निमाडत्र की जनजातियों के लोकगीतों का अनुशीलन', पीएच.डी. शोध प्रबन्ध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, पृ. २६
२. वही, पृ. २८

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लाभान्वित परिवारों की समस्याएँ

❑ **अर्निका दीक्षित**

निःसन्देह निर्धनता भारत की एक राष्ट्रीय समस्या है, लेकिन यह समस्या शहरों की अपेक्षा गाँव में अधिक है। इसका कारण यह है कि आज भी देश की कुल जनसंख्या का तीन-चौथाई भाग गॉवों में निवास करता है। निर्धनता विशेष कर ग्रामीण निर्धनता की समस्या केवल स्वास्थ्य तथा कुशलता के स्तर से ही जुड़ी नहीं है, अपितु यह जीवित रहने के लिए न्यूनतम पोषक तत्वों की पूर्ति से जुड़ी हुई है। फिर भी निर्धनता स्वयं में एक सापेक्षिक अवधारणा है। वास्तव में निर्धनता का संबंध मुख्यतः तीन तत्वों यथा न्यूनतम जीवन स्तर, व्यक्ति पर आश्रित सदस्यो की संख्या और बाजार मूल्य से है। इसका अभिप्राय यह है कि जब किसी समुदाय के अधिकतर लोगों को इतना भी आर्थिक साधन प्राप्त नहीं हो पाता है कि एक क्षेत्र विशेष की आवश्यकता के अनुरूप अपने आश्रित सदस्यों के न्यूनतम जीवन स्तर को कायम रख सके तब ऐसी स्थिति निर्धनता की स्थिति कहलाती है। अतः निर्धनता का तात्पर्य एक ऐसी अवस्था से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी और न्यूनतम आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में असमर्थ रहता है।[1]

निर्धनता भारत की एक राष्ट्रीय समाजार्थिक समस्या हैं। निर्धनता का अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें समाज का एक बड़ा भाग न्यूनतम जीवन स्तर से वंचित रहता है और केवल निर्वाह स्तर पर अपना गुजारा करता है। निर्धनता की समस्या नगरों की अपेक्षा गांवों में अधिक है क्योंकि देश की कुल जनसंख्या का लगभग तीन-चौथाई भाग गांवों में निवास करता है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत जनपद शाहजहांपुर में गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने वाले लाभान्वित परिवारों की सामाजिक, व्यवसायिक, पारिवारिक तथा आर्थिक पहलुओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय योजना आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति २१०० कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से जिन्हें पौष्टिक आहार नहीं प्राप्त होता है, उन्हें गरीबी रेखा से नीचे माना गया है। यदि पौष्टिक आहार की मात्रा को रूपयों में परिणत कर दिया जाये तो राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के ५०वें दौर के अनुसार गरीबी की रेखा को १९९३-९४ की कीमतों के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र के लिए २२८.९० रूपये तथा शहरी क्षेत्र के लिए २६४.१० रूपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह निर्धारित किया गया। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण पर आधारित योजना आयोग के संशोधित आकलन के अनुसार १९८७-८८ में कुल २०.१४१ करोड़ लोग जिनमें से १६.८३० करोड़ ग्रामीण क्षेत्र में और ३.३११ करोड़ शहरी क्षेत्र में गरीबी से नीचे जीवन व्यतीत कर रहे थे, जबकि १९९३-९४ में १६.८५७ करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे थे और इनमें से १४.१०५ करोड़ लोग ग्रामीण निम्न में तथा २.७५२ करोड़ लोग शहरी क्षेत्र में गरीबी रेखा से नीचे थे।[2] भारतीय जनसंख्या का लगभग ३६ प्रतिशत भाग गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहा है विशेष वर्ष में निर्धनों की कुल जनसंख्या ३२ करोड़ थी जिनमें से २४.४ करोड़ लोग ग्रामीण क्षेत्र में रह रहे थे जो कुल ग्रामीण जनसंख्या का ३७ प्रतिशत भाग था। इन आँकड़ो के अनुसार यद्यपि ''निर्धनता का भार'' वर्ष १९३७-७४ के ५४.९ प्रतिशत से घटकर वर्ष १९९३-९४ में ३५ प्रतिशत हो गया तथापि इन बीस वर्षों में निर्धनों की संख्या में कोई महत्वपूर्ण कमी नहीं हुई। वर्ष १९७३-७४ में निर्धनों की कुल संख्या जहाँ ३२.१ करोड़ थी वहीं १९९३-९४ में यह संख्या मामूली रूप में घटकर सिर्फ ३२.० करोड़ थी।[3] इस तरह कहा जा सकता है कि गरीबी की समस्या एक विश्वव्यापी समस्या है जिसका पूर्ण स्पष्टीकरण करना अत्यन्त मुश्किल है। सभी प्रकार की व्यवस्थाओं में निर्धनता को परिभाषित करने हेतु भिन्न-भिन्न प्रयास किये गये हैं लेकिन इन सभी प्रयासों का आधार न्यूनतम अथवा उचित जीवन स्तर की कल्पना है।

अवधारणात्मक विवेचन : निर्धनता एक आर्थिक-सामाजिक समस्या है। निर्धनता का अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें समाज का एक बड़ा भाग न्यूनतम जीवन स्तर से वंचित रहता है और केवल निर्वाह स्तर पर अपना गुजारा करता है। अतः इसका अध्ययन और विश्लेषण होना चाहिए।

अध्ययन का उद्देश्य : गरीबी की स्थिति को दृष्टिगत करते हुए प्रस्तुत शोध में जनपद शाहजहाँपुर में गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने वाले लाभान्वित परिवारों की सामाजिक,

❑ **शोध अध्येत्री, आर्य महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाहजहाँपुर (उ.प्र.)**

व्यवसायिक, पारिवारिक तथा आर्थिक पहलुओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

अध्ययन का क्षेत्र/निदर्शन : प्रस्तुत अध्ययन हेतु रूहेलखण्ड मण्डल के शाहजहाँपुर जनपद के उन लाभान्वित गरीब परिवारों का चयन किया गया जो वर्तमान में किसी व्यवसाय को करने के बाद भी गरीबी रेखा के अन्तर्गत आते हैं। जनपद शाहजहाँपुर में वर्तमान में सरकारी आँकड़ों के आधार पर लगभग बी०पी०एल० लाभान्वित परिवारो की संख्या २१६६ है। इन समस्त परिवारों में से दैव निदर्शन विधि के आधार पर १० प्रतिशत अर्थात् २२० को निदर्शन में सम्मिलित किया गया है। अध्ययन में तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची को उपयोग में लाया गया।

लाभान्वित परिवारो में अध्ययन के उपरान्त पायी गयी उपलब्धियों को निम्न सारणी के आधार पर स्पष्ट किया गया है-

सारणी-१

जनपद शाहजहाँपुर में लाभान्वित परिवारों में योजनाओं की जानकारी में कठिनाई

योजनाओं की जानकारी में कठिनाई	सदर	तिलहर	पुवायाँ	जलालाबाद	सम्पूर्ण योग	प्रतिशत
सही सूचनाएँ सही समय पर प्राप्त नहीं हुयी	१०	१०	५	५	३०	१३.६४
अत्यधिक समय व धन व्यय करना पड़ा	०९	१५	१०	०४	३८	१७.२८
रोजगार से सम्बन्धित सही जानकारी प्राप्त नहीं हुयी	०५	१०	१०	०६	३१	१४.१०
सरकारी सहायता से सम्बन्धित जानकारी सही ढंग से प्राप्त नहीं हुयी	१०	०५	०५	१०	३०	१३.६३
नवीन जानकारियों का पता नहीं लग पाता	०८	०५	०५	१०	२८	१२.७२
किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा	०८	०५	२५	२५	६३	२८.६३
योग	**५०**	**५०**	**६०**	**६०**	**२२०**	**१००%**

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि जनपद शाहजहाँपुर में लाभान्वित परिवारों में जिन्हें किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा, उनका प्रतिशत २८.६३ है। लाभान्वित परिवारों में उन परिवारों का योग अधिक संख्या में पाया गया जिन परिवारों को अपना अत्यधिक समय व धन व्यय करना पड़ा जिस कारण उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिनका कुल योग १७.२८ प्रतिशत है। रोजगार से सम्बन्धित सही जानकारी प्राप्त न होने के कारण कठिनाइयों का सामना करने वाले लाभान्वित परिवारों का योग १४.१० प्रतिशत है। सही सूचनाएँ सही-सही समय पर प्राप्त न होने के कारण कठिनाइयों का सामना करने वाले लाभान्वित परिवारों का योग १३.६४ प्रतिशत है।

नवीन जानकारियों का पता न लग पाने के कारण भी कठिनाइयों का सामना करने वाले परिवारों का कुल १२.७२ प्रतिशत है। जबकि कुछ परिवार ऐसे भी पाये जिन्हें किसी भी कठिनाई का सामना नही करना पड़ा उनका योग २८.६३ प्रतिशत है।

अतः स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि जनपद शाहजहाँपुर में पाये गये लाभान्वित परिवारों में उन परिवारों का योग अधिक संख्या में पाया गया जिन परिवारों को सही सूचनाएँ सही समय पर प्राप्त नहीं हुयी व अत्यधिक समय व धनव्यय करने के कारण कठिनाईयों का सामना करना पड़ा।

सारणी-२

लाभान्वित परिवारों को ग्राम-प्रधान, लेखपाल या सरकारी कर्मचारी द्वारा जानकारी

ग्राम प्रधान, लेखपाल या सरकारी कर्मचारी द्वारा जानकारी	हाँ	नहीं	सम्पूर्ण योग
सदर	३५	१५	५०
तिलहर	३५	१५	५०
पुवायाँ	४५	१५	६०
जलालाबाद	४०	२०	६०
योग	१५५	६५	२२०
प्रतिशत	७०.४६	२९.५४	१००

उपर्युक्त तालिका के अनुसार जिन लाभान्वित परिवारों को लेखपाल, ग्राम प्रधान, सरकारी कर्मचारियों द्वारा योजनाओं

की पूर्ण जानकारी प्राप्त हुई उनका योग ७०.४६ प्रतिशत है जबकि योजनाओं की जानकारी न मिल पाने वाले परिवारों का कुल योग २९.५४ प्रतिशत है।

सारणी-३

लाभान्वित परिवारों द्वारा ग्राम-प्रधान, लेखपाल या सरकारी कर्मचारी को रिश्वत

सहायता अनुदान पाने में रिश्वत देनी पड़ी	हाँ	नहीं	सम्पूर्ण योग
सदर	०९	४१	५०
तिलहर	०६	४४	५०
पुवायाँ	२०	४०	६०
जलालाबाद	२५	३५	६०
योग	६०	१६०	२२०
प्रतिशत	२७.२७	७२.७२	१००

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि अनुदान या सहायता पाने के लिए किसी भी कर्मचारी व लेखपाल को रिश्वत न देने वाले परिवारों का कुल योग सर्वाधिक (७२.७२ प्रतिशत) है। जबकि उन परिवारों का योग कम संख्या (२७.२७ प्रतिशत) में पाया गया जिन परिवारों को अनुदान या सहायता पाने के लिए रिश्वत का कुछ अंश देना पड़ा।

अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनपद शाहजहाँपुर में उन लाभान्वित परिवारों का योग सर्वाधिक संख्या में पाया गया जिन परिवारों में रिश्वत का कुल अंश अपनी सहायता के लिए नहीं देना पड़ा।

सारणी-४

लाभान्वित परिवारों को सहायता अनुदान मिलने से सम्बन्धित समस्याएँ

सहायता योजना के लाभ में कठिनाई	**सदर**	**तिलहर**	**पुवायाँ**	**जलालाबाद**	**योग**	**प्रतिशत**
काफी समय बाद लाभ प्राप्त हो पाता है	१०	१५	०५	०५	३५	१५.९०
पूरा लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है	१२	१०	०६	०५	३३	१५.००
समय व धन व्यय करना पड़ा है	१०	०५	०७	१०	३२	१४.५५
वक्त पर काम नहीं होता है	०५	०५	०५	१५	३०	१३.६४
समय पर सूचना न मिलने के कारण आर्थिक लाभों में देरी	०५	१०	१०	०५	३०	१३.६४
किसी भी समस्या का सामना नहीं करना पड़ा	०८	०५	२७	२०	६०	२७.२७
योग	**५०**	**५०**	**६०**	**६०**	**२२०**	**१००**

उपर्युक्त तालिका के अनुसार समस्याओं का सामना न करने वाले परिवारों का योग २७.२७ प्रतिशत है जो सर्वाधिक है। सरकार द्वारा मिलने वाला लाभ काफी समय बाद प्राप्त हो पाता है जिसमें उन्हें समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिनका कुल का १५.९० प्रतिशत है। पूरा लाभ प्राप्त न होने वाले लाभन्वित परिवारों का योग १५ प्रतिशत है। जनपदानुसार समय व धन व्यय करके समस्याओं का सामना करने वाले परिवारों का योग १४.५५ प्रतिशत है। वक्त पर काम न होने के कारण समस्याओं का सामना करने वाले लाभान्वित परिवारों का योग १३.६४ प्रतिशत है। जनपदानुसार कुछ (१३.६४ प्रतिशत) लाभान्वित परिवारों में ऐसे भी पाये गये जिन्हें समय पर सूचना न मिलने के कारण आर्थिक लाभ नहीं मिल पाया।

सारणी-५
लाभान्वित परिवारों की जीवन यापन की भविष्यगामी योजनाएं

जीवन यापन की भविष्यगामी योजना	सदर	तिलहर	पुवायाँ	जलालाबाद	सम्पूर्ण योग	प्रतिशत
उचित रोजगार से जुड़ना चाहते हैं	१०	५	७	१०	३२	१४.५५
नौकरी पाना चाहते हैं	८	५	२७	२०	६०	२७.२७
कुटीर उद्योग करना चाहते हैं	५	१०	१०	५	३०	१३.६४
कृषि-योग्य भूमि प्राप्त करना चाहते हैं	१०	१५	५	५	३५	१५.८०
सरकारी नौकरी प्राप्त करना चाहते हैं	१२	१०	६	५	३३	१५.००
सरकार के माध्यम से आवास व्यवस्था करना चाहते हैं	५	५	५	१५	३०	१३.६४
योग	**५०**	**५०**	**६०**	**६०**	**२२०**	**१००.००**

उपर्युक्त सारणी के आधार पर कहा जा सकता है कि जनपद शाहजहाँपुर में उन लाभान्वित परिवारों का योग अधिक संख्या में पाया गया जो परिवार कुटीर-उद्योग अपनाकर अपने भविष्य को उज्जवल बनाना चाहते हैं, जिनका कुल योग १७. २८ प्रतिशत है। १० प्रतिशत सरकार के माध्यम से आवास व्यवस्था से सम्बन्धित भविष्यगामी योजना बनाने वाले हैं। उचित रोजगार को अपनाकर भविष्यगामी योजना बनाने वाले परिवारों का योग ६.५५ प्रतिशत है, जबकि नौकरी चाहने वाले लाभान्वित परिवारों का ६.५५ प्रतिशत है। कृषि-योग्य भूमि प्राप्त करके भविष्य को बनाने वाले लाभान्वित परिवारों का सम्पूर्ण योग ८.६३ प्रतिशत है। सरकारी नौकरी प्राप्त करके भविष्यगामी योजना बनाने वाले लाभान्वित परिवारों का योग ७.२७ प्रतिशत है जो सबसे कम है।

अतः स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि कुटीर-उद्योग के द्वारा भविष्य को उज्जवल बनाने वाले लाभान्वित परिवारो का योग सर्वाधिक संख्या में पाया गया।

अन्त में कुल मिलाकर स्पष्ट होता है कि लाभान्वित परिवारों को सरकार द्वारा दिये जाने वाले लाभों को प्राप्त करने के लिए कई समस्याओं का सामना करना पड़ा। जनपद में पाये गये लाभान्वित परिवारों को व्यवसायिक, पारिवारिक, आर्थिक, समस्याओं का सामना करना पड़ रहा जिससे वह गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं। अतः लाभान्वित परिवारों की स्थिति काफी दयनीय है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त आँकड़ो से स्पष्ट होता है कि जनपद शाहजहाँपुर में पाये गये लाभान्वित परिवारो में उन परिवारो का योग अधिक संख्या में पाया गया जिन्हें किसी भी समस्या का सामना नहीं करना पड़ा जिनका कुल योग २८.६३ प्रतिशत पाया गया समय व धन व्यय करने वाले, रोजगार की सही जानकारी न पाने वाले परिवारों की संख्या कम मात्रा में पायी गयी। पूर्ण जानकारी पाने वाले परिवारो का योग ज्यादा से ज्यादा मात्रा में पाया गया। रिश्वत देने वाले परिवारों का योग २७.२८ प्रतिशत पाया गया। कुछ परिवार ऐसे पाये गये जिन्हें सरकार द्वारा दिया जाने वाला लाभ काफी लम्बे समय बाद प्राप्त हुआ। वक्त पर काम न होने के कारण भी अधिकतम परिवारों को समस्याओं का सामना करना पड़ा जिस कारण वे आर्थिक लाभ नहीं उठा सके। कुटीर उद्योग अपनाकर अपने भविष्य को उज्जवल बनाने वाले परिवार व आवास व्यवस्था से सम्बन्धित भविष्यगामी योजना बनाने वाले परिवारों का योग १० प्रतिशत ही पाया गया, उचित रोजगार और नौकरी चाहने वाले परिवार ६.५५ प्रतिशत पाये गये ८.६३ प्रतिशत परिवार कृषि योग्य भूमि प्राप्त करके भविष्य को उज्जवल बनाने तथा सरकारी नौकरी प्राप्त करके अपने जीवन को सफल बनाने की इच्छा रखने वाले परिवारों की संख्या ७.२७ प्रतिशत पायी गयी।

संदर्भ

१. सेन अमर्त्य 'गरीबी और अकाल' २००२, पृ० १२८.

२. वीरदिया एच०एस०, 'सोशल प्रोबलम्ब इन माडर्न इण्डिया', १९७८, पृ० १६८-१७३.

३. अटल योगेश, 'रोल ऑफ वेल्यूज एण्ड इंस्टीट्यूशन्स इन चैलेन्जेस ऑफ पोवर्टी इन इण्डिया', १९७१, पृ० ७२.

विक्रम-सम्वत् : एक अध्ययन

❑ डॉ० पवन शेखर

विक्रम संवत भारत के प्राचीनतम सम्वतों में से सर्वाधिक विशिष्ट रहा है क्योंकि काल गणना के लिए आज तक प्रयुक्त किया जाता है। विक्रम संवत का प्रारंभ किसके द्वारा किया गया, किस उपलक्ष्य में तथा कब किया गया। यह आज भी विवाद का विषय है। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत विक्रम संवत से संबंधित इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया गया है।

विक्रम सम्वत् भारत के प्राचीनतम सम्वतों में से सर्वविशिष्ट रहा है क्योंकि यह वर्तमान तक प्रयुक्त है। साथ ही आश्चर्यजनक पक्ष यह है कि इस सम्वत् के प्राचीनतम प्रयोग का प्रमाण इस नाम से नवीं शती ईस्वी से पूर्व का नहीं मिलता। इस बात की संभावना है कि जिन लेखों में इसका विक्रम-सम्वत् नाम से उल्लेख हुआ हो वे अभी तक अप्राप्य रहे हों, परन्तु एक विशिष्ट तथ्य यह है कि जहाँ अनेकानेक राजवंशो द्वारा अभिलिखित तिथिविधायक शिला, स्तम्भलेख एवं अन्य लेखों की संख्या सहस्त्रों में है, वहीं नवी शती ईसवी से पूर्व का एक भी लेख विक्रम-सम्वत् के उल्लेख के साथ वर्तमान तक में प्राप्त नहीं हो पाया है। जिस पहले लेख में विक्रम सम्वत् का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है, वह चहमान राजा चण्डमहासेन का है जो धौलपुर से मिला है एवं विक्रम सम्वत् ८९८ अर्थात् सन् ८४१ ई० के सन्दर्भ में है।[१]

साधारणतया विक्रम-सम्वत्, मालव- सम्वत् का परिष्कृत रूप माना जा सकता है। मालव-सम्वत् कालान्तर में अपनी मूल संज्ञा को खोकर विक्रम-संवत्वाली ही रह गई और इस विलुप्तता का एक सूत्र हमें तब प्राप्त होता है जब कणस्वा के शिव-मन्दिर लेख में 'संवत्सर... मालवेशानां और मैनालगढ़ वाले में 'मालवेशगतवत्सर (रैः)' उल्लखित मिलता है।[२] मालव-सम्वत् विक्रम सम्वत् में किस प्रकार रूपान्तरित हो गया, यह विवाद का विषय है। एक मत यह है कि विक्रमादित्य नाम के राजा ने ही इस सम्वत् का प्रारम्भ किया, दूसरा मत यह है कि वास्तव में यशोधर्मा ने हूणों को हराकर यह सम्वत् प्रारम्भ किया और इसे प्राचीनता प्रदान करने हेतु इसका आरम्भ ५०० वर्ष पूर्व से किया। वास्तव में यह तथ्य अनुमानों पर आधारित हैं। कुछ विद्वानों ने सन्देह प्रकट किया है कि प्रथम शती ई०पू० में विक्रमादित्य नाम के किसी राजा के होने का यथेष्ट प्रमाण नहीं है। इस सम्बन्ध में यह प्रश्न सामने आता है कि प्रथम शती ई०पू० में विक्रमादित्य नामक इतना प्रतापी राजा हो सकता था तो कम से कम उसके कुछ शिलालेख, स्तम्भलेख तथा अन्य लेख तो हमें प्राप्त होते। परन्तु इस सम्बन्ध में यह भी विचारणीय है कि प्रथम शती ई०पू० का समय अत्यन्त अव्यवस्थित तथा उथल-पुथल का था। संभव है कि वह ऐतिहासिक सामग्री बिखर गई हो जिस पर हम उसके अस्तित्व का आधार रख पाते। विशेष तथ्य यह है कि हमारी साहित्यिक अनुश्रुति तो स्पष्टतया इस विक्रमादित्य विषयक तथ्य के अनुकूल है। जैन साहित्य, पट्टावलि, जिनसेन गाथा आदि के अतिरिक्त विक्रमादित्य के प्रथम शती ई०पू० में होने का प्रमाण संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य में भी उपलब्ध होता है। सातवाहन (शालिवाहन) राजा हाल के प्राकृत सतसई ग्रन्थ 'गाथा-सप्तशती' में राजा विक्रमादित्य का उल्लेख किया गया है।[३] इस हाल का काल लगभग प्रथम शती ईस्वी है। वह दूसरी शताब्दी ईस्वी के बाद नहीं रखा जा सकता अर्थात् वह आन्ध्र सातवाहन विक्रमादित्य (प्रथम शती ई०पू०) से लगभग दो या तीन शताब्दियों के बाद जीवित था।

अतैव यह विचार तो प्रायः माना जाता रहा है कि ई०पू० प्रथम शती में विक्रमादित्य नामक कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति अवश्य था। वह कौन था? यह प्रश्न अभी भी विवाद का विषय है। साथ ही यह भी विवादित है कि विक्रमादित्य उस व्यक्ति का नाम था या विरूद? क्योंकि कालान्तर में कई महत्वपूर्ण शासक हमें विक्रमादित्य की उपाधि धारण किए प्राप्त होते हैं।[४] के० पी० जयसवाल ने सातवाहन कुल के गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णि को विक्रमादित्य माना है।[५] उन्होंने शकों के विरूद्ध दो विजयों का उल्लेख किया है। प्रथम गौतमीपुत्र द्वारा नहपाण की और द्वितीय मालवों द्वारा शकों की। इनमें से द्वितीय तथ्य को मान लेने में तो कोई आपत्ति न होगी, परन्तु प्रथम तथ्य को स्वीकार करना कठिन है। एक बिन्दु ध्यान देने योग्य यह है कि यदि विक्रम सातवाहन होता तो हाल उसका विवरण देते समय उसे अपना पूर्वज अवश्य कहता। दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णि का विरूद्ध 'विक्रमादित्य' न था और इससे भी विशिष्ट ध्यान देने योग्य यह है कि विक्रम-सम्वत् का

❑ शोध अध्येता, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

प्रयोग स्वयं उसने या उनके वंशजों ने नहीं किया।

विक्रम सम्वत् को जिस विजय के उपलक्ष्य और स्मरण में 'विक्रम-सम्वत्' के रूप में घोषित किया गया, उसकी पहचान ही सबसे बड़ी आवश्यकता है। गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णी द्वारा नहपान वाली विजय अनेक प्रमाणों से अप्रासंगिक होने के कारण मान्य नहीं हो सकती। इसके बाद ई०पू० प्रथमशती की एक ही और विजय जो शकों की विरूद्ध हुई और जिसके स्मरण स्वरूप यह सम्वत् प्रचलित माना जा सकता है, वह है शकों के विरूद्ध मालवों की विजय। मालवों ने शकों को अवन्ति से निकालकर वहाँ अपने मालवगण की स्थापना की और अपने गण के नाम से ही अवन्ति को 'मालवा' का नाम दिया। यह घटना प्रथम शती ईस्वी पूर्व में घटी और इसी के स्मरण में उन्होंने विक्रम सम्वत् चलाया, जिसकी प्रारम्भिक तिथि मालव-गण की अवन्ति में स्थापना की तिथि होने के कारण यह मालव-सम्वत् भी कहलाया। इस सम्बन्ध में दो तथ्य महत्वपूर्ण हो सकते हैं- प्रथम या तो 'विक्रम' का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से न होकर 'शक्ति', 'विक्रम', पराक्रम से हो जिसकी प्रतिष्ठा शकों के अवन्ति से निष्काषण और वहाँ मालवों के प्रतिस्थापन से हुई, दूसरा यह कि उसका यह नाम मालव जाति के किसी प्रमुख नेता के नाम से सम्बन्ध रखता होगा। इनमें से प्रथम को स्वीकार करना इस कारण थोड़ा कठिन है कि उस दशा में प्रथम शती ईस्वी के हाल और गुणाढ्य के विक्रमादित्य सम्बन्धी निर्देश निरर्थक हो जाते हैं। दूसरा पक्ष इस स्थिति से थोड़ा महत्वपूर्ण दिखाई पड़ता है कि एक व्यक्ति विशेष के नेतृत्व में यह मालवों की उपलब्धि थी।

इस सम्बन्ध में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अलिकसुन्दर से मुठभेड़ होने के बाद पंजाब के मालव-गणों को अपना निवास-स्थान सर्वदा भयास्पद प्रतीत हुआ और वे पंजाब छोड़ दक्षिण-पश्चिम की ओर बढ़ चले। ५८ ई० पू० के आस-पास वे अजमेर के पीछे से निकलकर अवन्ति की ओर बढ़ चले थे जहाँ उन्हें एक विदेशी शक्ति से लोहा लेना पड़ा।[६] लड़ाई काफी सघन रूप से हुई क्योंकि एक तरफ वो मालवगण थे जिन्हें स्वतंत्रता सबसे प्रिय थी तो दूसरी तरफ अवन्ति के वे शक थे जो पार्थवराज मज्ददात द्वितीय के क्रोध से भागे हुए थे। उन्हें भारत के बाहर मृत्यु का सामना करना पड़ सकता था, अतैव उन्होने भी पूरी शक्ति से लड़ाई लड़ी किन्तु अन्ततः मालव ही विजयी हुए। उन्होने शकों को अवन्ति से निकालकर उस प्रदेश का नाम अपने अनुरूप रखा। संभवतः अवन्ति इसी तिथि से मालवा कहलाई और इसी विजय तिथि से स्मारक स्वरूप 'विक्रम-सम्वत्' का प्रचलन हुआ। इस विजय के उपलक्ष्य में उन्होने नये सिक्के चलाये और उस पर 'मालवान (नां) जय (यः)'[७] अंकित करवाया। आगे की काल गणना करने के लिए उन्होने 'मालव-सम्वत्' या विक्रम सम्वत् का आरम्भ किया।[८] बाद में जब उनके गण की स्वतंत्रता मिट गई तो उन्होने अपने राजा (मुखिया) के नाम 'विक्रम' पर ही अपनी काल-गणना की विक्रम-सम्वत् के रूप में प्रचलित बनाये रखा। ऐसा प्रतीत होता है कि मालवों की सेना के संचालकों में प्रमुख विक्रम नाम का कोई व्यक्ति था जिसकी शक्ति और रण-कौशल ने शकों के पराभव में विशिष्ट भूमिका अदा की थी। शायद कालान्तर में इसी कारण मालव सम्वत् को 'विक्रम-सम्वत्' का नाम दे दिया गया।

ईस्वी सन् के पश्चात भारत के सम्राटों का अपने नाम के साथ विक्रमादित्य की उपाधि जोड़ना इस बात का सूचक है कि पूर्व में विक्रम या विक्रमादित्य नाम का कोई उल्लेखनीय व्यक्ति रहा होगा। इसलिए चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे शक्तिशाली सम्राट ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। अन्यथा समरांगनों में विहार करने वाले विदेशियों के विजेता विशाल साम्राज्य के स्वामी 'परमभट्टारक' जैसे अलंकरणों को प्राप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय का विक्रमादित्य उपाधि धारण करना कोई विशेष गौरवमयी पक्ष न था। विक्रमादित्य की उपाधि एक अत्यन्त कमनीय उपाधि बन गया और भारतीय शासक इसे धारण करने में गौरवानुभूति महसूस करने लगे।

इस सन्दर्भ में गुणाठ्य द्वारा पैशाची भाषा में लिखी हुई वृहत्कथा से भी साक्ष्य मिलता है। मूल ग्रन्थ के अभाव के साथ इसके संस्कृत रूपान्तरण की कश्मीरी तथा नेपाली शाखाओं में 'वृहत्कथामञ्जरी', 'कथारित्सागर' और 'श्लोक संग्रह' ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इन ग्रन्थों की विवेचना के आधार पर निश्चित रूप से हम कह सकते हैं कि पहली या दूसरी शताब्दी से पूर्व एक पराक्रमी शासक विक्रमादित्य हुआ था। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य 'शुकसप्तति', 'सिंहासनद्वात्रिंशका' और 'वेतालपञ्चविंशति' में भी लगभग यह सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।

जैन साहित्य विशेषकर 'कालकाचार्य कथानक' में उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल का उल्लेख है। उसका शकों द्वारा मारे जाने के पश्चात उज्जयिनी पर शकों का आधिपत्य तथा प्रजा पर शकों का उत्पीड़न प्रारम्भ हो गया। जैने परम्परा के अनुसार प्रजा की दुर्दशा देखकर और अर्तनाद को सुनकर गर्दभिल के पुत्र विक्रमादित्य ने शक्ति संग्रह की और शकों का उन्मूलन किया। उसने ई० सन् से ५७-५८ वर्ष पूर्व यह विजय प्राप्त

की और इसके उपलक्ष्य में विक्रम सम्वत् की स्थापना की। **सारतः** हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह माना जा सकता है कि ईसा के ५७-५८ वर्ष पूर्व 'विक्रम' या 'विक्रमादित्य' नाम का अवश्य ही महत्वपूर्ण शासक था, जिसने शकों पर विजय के फलस्वरूप एक सम्वत् का प्रारम्भ किया। यह भी संभव है कि वह शासन करने वाले मालव समूह का केवल मुखिया मात्र रहा हो। परन्तु स्पष्ट है कि उसके नेतृत्व में शकों का उन्मूलन किया गया और इसके उपलक्ष्य में 'मालव-सम्वत्' की स्थापना हुई। कालान्तर में 'मालव-सम्वत्', 'विक्रम-सम्वत्' के रूप में परिवर्तित हो गया और विक्रमादित्य का उपाधि धारण करना भारतीय शासकों के एक गौरवमयी पक्ष हो गया। इसके साथ ही विक्रमादित्य' भारतीय इतिहास में एक परम्परा, जो एक 'सम्मानजनक पदवी' के रूप में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

सन्दर्भ

१. इन्डियन एन्टिक्वेरी, खण्ड-१६, पृ०-३५।

२. जे.ए.एस.बी., खण्ड-५५, भाग-१ पृ०-४६ (अजमेर के चहमान राजा पृथ्वीराज के समय मैनालगढ़वाले लेख, संख्या-१२२६)।

३. गाथा, ४६४, वेबर का संस्करण।

४. सन्दर्भ : १. चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (लगभग ३७५-४१५ ई०)
२. स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य (लगभग ४५५-४६७ ई०)
३. यशोधर्मन् विक्रमादित्य (५३३ ई०)
४. हेमू विक्रमादित्य (१५५६ ई०)

५. 'जनरल ऑव द विहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी', खण्ड-१६, भाग ३ एवं ४, पृ०-२२६-३१६।

६. कनिंधम, ए.एस.आर., खण्ड-१४, पृ०-१५०।

७. साथ ही 'मालवे-जय', 'मालवहण जय,' 'मालवगण्स्य' आदि भी लिखित प्राप्त होते हैं।

८. फ्लीट, जे.एफ., कॉर्पस इन्सक्रिपसम इंडिकम (इन्सक्रिपसन्स ऑफ द अर्ली गुप्त किंग एण्ड देयर सक्सेसर्स) वॉल्यूम III, कलकत्ता, १८८८, पृ०- १५४ तथा इपिग्राफिका इंडिका खण्ड- १६, पृ०- ३२०- 'श्री मालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृसंज्ञके'।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

सामाजिक सेवाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन में जनप्रतिनिधियों की भागीदारी व जागरूकता का स्तर

❑ **प्रियंका सोनी**

भारतीय समाज व्यवस्था में स्वशासन की परंपरा को देखते हुए स्वाधीन भारत में ग्राम एवं क्षेत्रीय स्तर पर प्रशासन एवं विकास के तंत्र को विकेन्द्रित करने का प्रयास प्रारंभ किया गया। संविधान के अनुच्छेद ४० भाग ४ में कहा गया है कि राज्य पंचायतों का संगठन करेगा और उन्हें इस प्रकार के अधिकार प्रदान करेगा जिससे गाँव स्वशासन के रूप में कार्य कर सके। स्पष्ट है ग्राम पंचायतों के गठन, अधिकार एवं कार्य आदि के विषय में राज्य को स्वतंत्रता दी गयी है। यही कारण है कि विभिन्न राज्यों में ग्राम पंचायतों के अधिकार, संगठनात्मक स्वरूप आदि में अंतर है। राष्ट्रीय स्तर पर इस बारे में अध्ययन दलों का गठन किया जाता रहा है जिसके आधार पर राज्यों में पंचायतों का गठन किया गया। माना यह गया कि विकास के कार्य में जनभागीदारी के लिए हर स्तर पर सामान्य जन की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। राज्य एवं केन्द्रीय शासन के लिए जनप्रतिनिधि मात्र का चयन पर्याप्त नहीं है इसके लिए ग्राम या ग्राम समूह स्तर पर, गांव के लोगों की भागीदारी आवश्यक है। यह भागीदारी नागरिक मध्य प्रदेश शासन, सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास सभी स्तरों पर आवश्यक है।

७३वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पंचायतों को संवैधानिक पद प्रदान किया गया जिससे इनके द्वारा चुने गये जन प्रतिनिधि अपने क्षेत्रों का व्यवस्थित रूप से सतत् एवं स्थायी विकास कर सकें। ये जन प्रतिनिधि ग्रामीण विकास हेतु अपने दायित्वों के निर्वहन के लिए प्रतिबद्ध हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत पंचायती राज द्वारा संचालित सामाजिक सेवाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन में जन प्रतिनिधियों की भागीदारी का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

७३ वें संवैधानिक संशोधन के पश्चात पंचायत राज संस्थाओं में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं, साथ ही जनप्रतिनिधियों व लोकसेवकों के अधिकार, कर्तव्य एवं कार्यो के लिए विशेष प्रावधान भी किए गए हैं व अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं को चुनावों में आरक्षण दिया गया। इस संवैधानिक संशोधन के द्वारा पंचायतो कों संवैधानिक दर्जा दिया गया था। पंचायती राज में नवीन परिवर्तन कर इसको एक व्यवस्थित रूप में स्थापित किया गया जिससे इनके द्वारा चुने गए जनप्रतिनिधि अपने क्षेत्र का व्यवस्थित रूप से सतत् एवं स्थायी विकास करवा सकें। इसलिए पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा देने के साथ ही अनेक नवीन परिवर्तन किए गए जिसके अंतर्गत (अनुच्छेद २४३) ११वीं अनुसूची जोड़ी गई तथा सामाजिक सेवाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन से संबंधित २६ विषयों की सूची पंचायत को प्रदान की गई है तथा इन विषयों पर कार्य करने का दायित्व पंचायत को सौंपा गया। इस प्रवाह चित्र से स्पष्ट होता हैं कि पंचायत के प्रतिनिधि और इसकी समितियां ग्राम सभा के निर्देश से पंचायती राज अधिनियम से प्राप्त अधिकारों के द्वारा ही पंचायतों को चलाती हैं। पंचायतों का मुख्य काम ग्रामीण विकास मे सहयोग करना तथा ग्राम स्तर पर निर्णय की प्रक्रिया में आम आदमी को जोड़ना हैं। पंचायतें ग्रामीण विकास का काम ठीक से निपटा सकें इसके लिए संविधान की ११वीं अनुसूची में पंचायतों के अधीन होने वाले कार्यो की सूची शामिल की गयी हैं जिसमें कुल २६ विषय हैं जो प्रवाह चित्र से स्पष्ट होते हैं।[1]

प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत ग्रामीण जनता, ग्राम सभा के माध्यम से, जनप्रतिनिधि बनकर पंचायती राज से जुड़ी है। ये जनप्रतिनिधि ग्रामीण विकास हेतु, अपने दायित्व निर्वहन के लिए प्रतिबद्ध हैं। जनप्रतिनिधि ग्राम स्तर, जनपद स्तर व जिला स्तर पर नियुक्त होते हैं तथा अपने-अपने कार्य क्षेत्र में कार्य करते हैं ताकि सतत् रूप से ग्रामीण विकास होता रहे।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य पंचायत राज द्वारा संचालित सामाजिक सेवाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन में जन प्रतिनिधियों की भागीदारी का अध्ययन करना रहा है। अध्ययन के समग्र के रूप में मध्य प्रदेश के बड़वानी व खण्डवा जिले के पंचायत क्षेत्र लिए गए।

बड़वानी जिले के दो विकासखण्ड बड़वानी व निवाली तथा

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र, बाबा साहेब अंबेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान, महू (म.प्र.)

खण्डवा जिले के दो विकासखण्ड खण्डवा व खाल्वा का चयन सविचार निदर्शन विधि द्वारा किया गया। इन चार विकासखण्डों में से दैव निदर्शन विधि द्वारा प्रत्येक से पाँच -पाँच ग्राम पंचायतों का चयन किया गया। इस प्रकार कुल २० ग्राम पंचायतो को अध्ययन का लक्षित समूह माना गया।

अध्ययन क्षेत्र बड़वानी व खण्डवा जिले से दैव निदर्शन विधि की सहायता से प्रत्येक ग्राम पंचायत से दो-दो प्रतिनिधियों का चुनाव किया गया। इस प्रकार पंचायत राज संस्थान के निर्वाचित कुल जनप्रतिनिधि ४० सम्मिलित हैं अतः ये जनप्रतिनिधि अध्ययन की इकाई हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक व द्वितीयक दोनों ही प्रकार के समंको का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक समकों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया है। एकत्रित वर्णनात्मक सूचनाओं व समंको को वस्तुनिष्ठ प्रकार में बदला गया तत्पश्चात सभी सूचनाओं को एस.पी.एस.एस. सॉफ्टवेयर की सहायता से व्यवस्थित किया गया तथा उसके आधार पर सारणीयन कर विश्लेषण व विवेचना की गई। समंको की सत्यता के परीक्षण हेतु सांख्यिकीय विश्लेषण भी किए गए। **शोधार्थी** द्वारा ४० जनप्रतिनिधियों का साक्षात्कार लिया गया है तथा निदर्श में सभी प्रकार की पदस्थिति के जनप्रतिनिधियों का समावेश है। इनमें सबसे अधिक सरपंच हैं जिनका प्रतिशत ३५ है, ३० प्रतिशत जनपद अध्यक्ष व सदस्य हैं, व सबसे कम १० प्रतिशत जिला अध्यक्ष व सदस्य हैं तथा २५ प्रतिशत पंच है। जनप्रतिनिधियों के इन अलग-अलग पदों व स्तर वालों को अध्ययन हेतु चयनित करने का मुख्य कारण, इनके कार्यो को, विचारों को व आपसी निर्भरता को जाना जा सके तथा सामाजिक सेवाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन में इनकी भूमिका ज्ञात हो सके।

उपलब्धियाँ

पंचायत स्तर पर सामाजिक सेवाओं का नियोजन

विकल्प	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	२४	६०
नहीं	१६	४०
कुल योग	४०	१००

उपर्युक्त सारणी पंचायत स्तर पर सामाजिक सेवाओं के नियोजित होने की स्थिति का सांख्यिकीय विश्लेषण करती है। ६० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों के अनुसार पंचायत स्तर पर सामाजिक सेवाएँ नियोजित होती हैं लेकिन यह केवल छोटे स्तर की, वार्षिक योजनाएँ होती हैं जो गॉव की समस्या - समाधान हेतु ग्राम पंचायत स्तर पर बनाई व क्रियान्वित की जाती हैं। ४० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों का कहना है कि पंचायत स्तर पर सामाजिक सेवाएँ नियोजित नही होती हैं। इनके अनुसार सामाजिक सेवाओं से संबंधित योजनाएँ शासन से (सरकार द्वारा) जिला पंचायत व जनपद पंचायत के माध्यम से ग्राम स्तर पर आती हैं तथा प्रत्येक वर्ष, योजनाओं से संबंधित, गॉव के अनुसार, बजट प्रस्ताव जनपद व जिला स्तर पर भेजा जाता है तब योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु एक निश्चित बजट ग्रामीण स्तर पर आता है और योजनाएँ संचालित की जाती है। अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान में कुछ ग्रामीण क्षेत्र केन्द्रीकृत मानसिकता से गुजर रहे है वहां विकेन्द्रीकरण के सही रूप से प्रभावी होने की आवश्यकता है। पंचायत व्यवस्था की एक समस्या यह भी हैं कि जनप्रतिनिधियों में अयोग्यता एवं शिक्षा का अभाव होते हुए भी उन्हें चुन लिया जाता हैं। इस बात की पुष्टि इस अध्ययन से होती है कि मध्य प्रदेश के ४.३ प्रतिशत पंचायत प्रतिनिधि अशिक्षित हैं। १६ प्रतिशत ने प्राथमिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त की हैं और ५ प्रतिशत जूनियर हाईस्कूल तक हैं। १० वीं और १२ वीं पढ़े पंचायत प्रतिनिधियों का २४ प्रतिशत हैं और केवल ६ प्रतिशत स्नातक या उससे अधिक पढ़े हैं।[२]

पारूल शर्मा ने अपने शोध अध्ययन में पाया कि स्थानीय स्वशासन की पंचायत राज व्यवस्था में नीतियों के निर्माण व उनके क्रियान्वयन में पंचायती वर्ग में जनप्रतिनिधियों व जनता का योगदान कम तथा प्रशासकीय व राज्य सरकारों के अधिकारियों का अधिक रहता हैं जबकि पंचायती राज की माँग प्रशासकीय अधिकारियों की नहीं स्थानीय जनता द्वारा निर्वाचित जनप्रतिनिधियों द्वारा शासन करने की हैं और इस विषय में पंचायती राज कुछ हद तक असफल रहता हैं।

सामाजिक सेवाओं के नियोजन में जनप्रतिनिधियों को ससम्मान बुलाया जाना

नियोजन हेतु बुलाया जाना	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	०८	२०
नहीं	३२	८०
कुल योग	४०	१००
भागीदारी नहीं होने का कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
अशिक्षा व तकनीकी ज्ञान का अभाव	२४	७५
जनप्रतिनिधियों को नियोजन का अधिकार नहीं	२०	६२.५

नियोजन में लोकसेवकों का अत्यधिक हस्तक्षेप	२२	६८.७
अन्य	१४	४३.८
कुल योग		N=३२

उपर्युक्त सारणी यह प्रदर्शित करती है कि सामाजिक सेवाओं के नियोजन में जनप्रतिनिधियों को सम्मान के साथ बुलाया जाता है या नहीं । ८० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों का कहना है कि उन्हें सामाजिक सेवाओं के नियोजन हेतु सम्मान के साथ बुलाया नहीं जाता है। २० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों का कहना है कि सामाजिक सेवाओं के नियोजन में हमें बुलाया जाता है। जब जनप्रतिनिधियों से सामाजिक सेवाओं के नियोजन में नहीं बुलाए जाने का कारण पूछा तो ७५ प्रतिशत जनप्रतिनिधियों ने स्वयं की अशिक्षा व तकनीकी ज्ञान के अभाव को इसका कारण बताया। ६८.७ प्रतिशत जनप्रतिनिधियों का कहना है कि नियोजन में लोकसेवकों/शासकीय अधिकारियों की ही भूमिका रहती है, जनप्रतिनिधियों की भूमिका नगण्य है। जनप्रतिनिधियों को नियोजन का अधिकार नहीं ऐसा कहने वाले जनप्रतिनिधियों का प्रतिशत ६२.५ है व अन्य कारण बताने वाले जनप्रतिनिधियों का प्रतिशत ४३.८ है । अन्य कारणों में जातिवाद व राजनीतिक हस्तक्षेप प्रमुख है। निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि जनप्रतिनिधियों को नियोजन का अधिकार पूर्णतया दिया जाना चाहिए ताकि वे नियोजन की प्रक्रिया से जुड़ सके व क्षेत्र की आवश्यकतानुसार योजनाऍं समय पर नियोजित एवं क्रियान्वित कर सके।

सामाजिक सेवाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन में जनप्रतिनिधियों कि मुख्य भूमिका

जनप्रतिनिधियों कि मुख्य भूमिका	आवृत्ति	प्रतिशत
नियमानुसार कार्यो का संचालन	३२	८०
क्षेत्र की आवश्यकतानुसार कार्य करना	१६	४०
अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियंत्रण	०८	२०
कार्यक्रमों का निरीक्षण	१८	४५
अन्य	०४	१०

उपर्युक्त सारणी सामाजिक सेवाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन में जनप्रतिनिधियों की मुख्य भूमिका को प्रदर्शित करती हैं। ८० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों का कहना है कि उनका मुख्य कार्य नियमानुसार पंचायत के कार्यो का संचालन करना है यह नियम शासन स्तर से बनकर आते हैं। ४५ प्रतिशत जनप्रतिनिधियों के अनुसार उनकी मुख्य भूमिका कार्यक्रमों का निरीक्षण करना है। ४० प्रतिशत के अनुसार क्षेत्र की आवश्यकतानुसार कार्यो का करना ही जनप्रतिनिधियों का मुख्य कार्य है। २० व १० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों ने पंचायत में कार्यरत अधीनस्थ कर्मचारियो पर नियंत्रण रखना व अन्य कार्यो जैसे मूल्यांकन करना, लोगों को जागरूक करना आदि को मुख्य भूमिका बताया है।

निष्कर्ष

१. ग्राम सभा बैठक वर्षभर में अनिवार्य रूप से चार बार होती है तथा सर्वाधिक ४० प्रतिशत हितग्राहियों के अनुसार बैठक वर्षभर में ६-८ बार हो जाती है। कुछ क्षेत्र ऐसे है जहाँ बैठक नियमित होती हैं तथा ग्रामीणों का बैठक में पूर्ण सहयोग होता है व ग्राम विकास पर चर्चा होती है।

२. ८५ प्रतिशत जनप्रतिनिधियों को सामाजिक सेवाओं से संबंधित २६ विषयों की जानकारी है तथा १५ प्रतिशत जनप्रतिनिधियों को संबंधित जानकारी नहीं है। इसका कारण जनप्रतिनिधियों की अशिक्षा व प्रशासकीय शब्दावली को न समझ पाना है।

३. ६० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों के अनुसार पंचायत स्तर पर सामाजिक सेवाएँ नियोजित होती हैं लेकिन यह छोटे स्तर की वार्षिक योजनाएँ होती हैं जो ग्राम पंचायत स्तर पर नियोजित एवं क्रियान्वित की जाती है तथा ४० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों का कहना है कि सामाजिक सेवाओं से संबंधित योजनाएँ शासन स्तर से नियोजित होकर केवल क्रियान्वयन हेतु ग्रामीण स्तर पर आती हैं।

४. ८० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों का कहना है कि उन्हें सामाजिक सेवाओं के नियोजन हेतु सम्मान के साथ नहीं बुलाया जाता है। इनमें से ७५ प्रतिशत जनप्रतिनिधि नियोजन में नहीं बुलाने का कारण स्वयं की अशिक्षा व तकनीकी ज्ञान के अभाव को मानते हैं। ६८.७ प्रतिशत जनप्रतिनिधियों ने नियोजन में लोकसेवकों के अत्यधिक हस्तक्षेप को इसका कारण बताया है।

५. १०० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों का कहना है कि सामाजिक सेवाओं के क्रियान्वयन में मुख्य भूमिका जनप्रतिनिधियों की होती है। चूँकि पंचायत राज का आधार ग्राम पंचायतें हैं इसलिए जनप्रतिनिधि में सरपंच व लोकसेवको में सचिव की कार्यक्रमों के क्रियान्वयन व पर्यवेक्षण में मुख्य भूमिका रहती है।

६. सर्वाधिक ८० प्रतिशत जनप्रतिनिधियों के अनुसार सामाजिक सेवाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन में उनकी मुख्य

भूमिका शासन के नियमानुसार पंचायत के कार्यो का संचालन करना है। इसके अतिरिक्त ४५ प्रतिशत ने कार्यक्रमों का निरीक्षण तथा ४० प्रतिशत ने क्षेत्र की अवश्यकतानुसार कार्यो को करना ही जनप्रतिनिधियों का मुख्य कार्य बताया।

सुझाव

१. पंचायत की तीनो स्तरों (जिला पंचायत, जनपद (Block) पंचायत व ग्राम पंचायत) के कार्यो एवं सामाजिक सेवाओं से संबंधित योजनाओं का सही तरीके से विभाजन किया जाना चाहिए।

२. सामाजिक सेवाओं के क्रियान्वयन संबंधित प्रक्रिया को सरल बनाया जाना चाहिए।

क्र ग्रामीण विकास आयोजन एवं क्रियान्वयन से संबंधित अधिकार ग्रामीण नेतृत्व को हस्तांतरित किए जाने चाहिए।

३. जनप्रतिनिधियों को वित्तीय अधिकार व वित्तीय साधनों की पर्याप्त व्यवस्था दी जानी चाहिए।

४. जनप्रतिनिधियों एवं लोकसेवकों के मध्य उचित समन्वय हेतु, शासकीय स्तर पर, कुछ समय अन्तराल से सम्मिलित प्रशिक्षण या मीटिंग रखी जानी चाहिए तथा दोनों के कार्यो व पद की महत्ता बताई जानी चाहिए।

५. पंचायत प्रतिनिधि शिक्षित होना चाहिए ताकि वे प्रशासकीय शब्दावली को समझ सकें तथा प्रत्येक कार्य हेतु सचिव या अन्य अधिकारियों पर निर्भर न रहें।

६. पंचायत प्रतिनिधियों को सामाजिक सेवाओं से संबंधित प्रत्येक योजना हेतु समय- समय पर प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

७. जिला परिषद, पंचायत समिति व ग्राम पंचायत की नियमित बैठक होना चाहिए।

८. जिला स्तर पर सामाजिक सेवाओं का नियोजन किया जाना चाहिए तथा प्रत्येक योजना के लिए पंचायत में अलग-अलग पंचायत कार्मिकों की व्यवस्था होनी चाहिए।

संदर्भ

१. 'पंचायतराज और हमारा साझा विकास', समर्थन सेन्टर फॉर डेवलपमेंट सपोर्ट भोपाल, मध्य प्रदेश, १९९९

२. कर्णावत शशि, 'पंचायत राज व्यवस्था में रोजगार', अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, २००६ पृ.२४१

३. शर्मा पारूल, 'पंचायत राज प्रशासन', रितु पब्लिकेशन्स जयपुर, २००७ पृ. १४०

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

भील जनजाति पर शिक्षा का प्रभाव

❑ सोनिका बघेल

भील जनजाति भारत की सबसे प्राचीन जनजातियों में से है। भीलों का अपना एक परम्पराओं से युक्त, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन होता है। किन्तु वर्तमान समय में शिक्षा के व्यापक प्रभाव के फलस्वरूप एक ओर उनमें जागरूकता आई है तो दूसरी ओर उन्हें आगे बढ़ने के अवसर प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत भीलों के समाजार्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में हो रहे परिवर्तनों तथा उनके कारकों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

भारत में जनजातियों के संदर्भ में ऐसा माना जाता है कि ये नीग्रो, प्रोटो आस्ट्रिलियड और मंगोलियन आदि प्रजाति के लोग हैं, जिनका भारत में सबसे पहले आगमन हुआ। ये लोग धीरे-धीरे उप हिमालय पश्चिमी भागों की पहाड़ियों और जंगलों में मध्य भारत की पहाड़ियों खासकर नर्मदा और गोदावरी के बीच तथा दक्षिण भारत के मुख्यतः पश्चिमी भागों में बस गए तथा हिन्दू समाज के संस्थापकों द्वारा बाद में जिन्हें आदिम जाति की संज्ञा दी गई।[१]

जनजाति समान नाम धारण करने वाले परिवारों का एक संकलन हैं, जो समान बोली बोलते हैं। एक ही भूखण्ड पर अधिकार करने का दावा करते हो तथा जो साधारणतया अन्तर्विवाही न हो, यद्यपि मूल रूप में चाहे वैसे रह रहे हो।[२]

इन जातियों को विभिन्न नामों से जाना जाता हैं। जैसे वन्य जाति, वनवासी, पहाड़ी लोग, आदिम जाति तथा कई स्थानीय नामों से भी इन्हें जाना जाता हैं।

भारत में लगभग ३०० प्रकार की जनजातियां पाई जाती हैं, जिनमें भील, गोंड और संथाल ऐसी जनजातियां हैं, जिनकी जनसंख्या ४० लाख से भी अधिक है। मध्यप्रदेश भारत का सबसे बड़ा राज्य है, जहां पर मुख्यतः पाण्डो, कोरवा, मुण्डा, कोल, गोंड तथा भील आदि जनजातियां पाई जाती हैं।[३]

भील देश की तीसरी सबसे बड़ी जनजाति है जिसका निवास मध्य प्रदेश के पश्चिम हिस्से धार, झाबुआ और पश्चिमी निमाड़ जिले में हैं, जो प्रदेश का सबसे बड़ा जनजाति क्षेत्र है। इसकी चार उपशाखाऐं होती हैं - भील, भीलाला, बारेला और पटलिया।

भील जनजाति भारत की सबसे प्राचीन जनजातियों में से एक हैं। भील शब्द संस्कृत भाषा के 'भिटल' शब्द से बना हैं। भील शब्द द्रविड़ भाषा के 'बिल' या 'वितसे' से आया, जिसका अर्थ तीर होता हैं। तीर धनुष भीलों की पहचान है। भील लोग अलग-अलग दूरियों पर अपना घर बनाना पसंद करते हैं। भीलों के घर लकड़ी, बांस, मिट्टी और खपरैल के होते हैं। भीलों के घर आकार में बड़े और खुले-खुले होते है। भील जहां रहते हैं, उस जगह को फाल्या कहते हैं।[४]

भील भीली भाषा बोलते हैं, जिसे वे अपनी मातृभाषा मानते हैं। भीलों का अपना एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन होता हैं, जो सामाजिक विरासत के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता हैं। सामाजिक विरासत के अभौतिक स्वरूप में भाषा, वस्त्र, रहन-सहन, आदतें, प्राविधिक नियम-कानून, प्रथा-परम्पराऐं, रीति- रिवाज, धर्म, कला आदि हैं। भील संसार की अत्यंत रंग प्रिय जनजाति हैं। स्त्रियां शरीर पर गुदने गुदवाना, चांदी के आभूषण और रंगीन कपड़े पहनना पसंद करती हैं। पुरूष भी श्रृंगार पसंद होते है, कानों में चांदी की बालियां, लटकन, हाथ में कड़े और सिर पर पगड़ी पुरूष के अंगारिक परिधान हैं।[५]

शोध समस्या :- आधुनिक भारतीय समाज परिवर्तन की कठिन घड़ी से गुजर रहा हैं। हमारा समाज एक परम्परागत तथा ऐतिहासिक समाज हैं, जिसके कारण इसकी सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्तियां निश्चित ही अधिक जटिल विस्तृत और मिश्रित हैं।

शिक्षा परिवर्तन की दिशा को निरूपित करने की सबसे महत्वपूर्ण संख्यागत प्रक्रिया हैं, जो व्यक्ति तथा जीवन को विविध रूपों में प्रभावित करती हैं। शिक्षा सामाजीकरण की एक प्रक्रिया ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों को आगामी पीढ़ियों तक पहुँचाने तथा विभिन्न समस्याओं का सर्वोत्तम हल ढूंढने का भी सबसे अच्छा माध्यम हैं। आधुनिक समाज में शिक्षा के सामाजिक नियंत्रण के एक महत्वपूर्ण अभिकरण के रूप में देखा जाता है।

आदिवासी समाज पर भी शिक्षा का व्यापक प्रभाव पड़ा हैं। शिक्षा के माध्यम से जहां एक ओर उनमें जागरूकता आई है, वहीं दूसरी ओर उन्हें आगे बढ़ने के अवसर भी मिले हैं। शिक्षा का प्रभाव उनकी सामाजिक संरचना परम्पराओं एवं मान्यताओं पर भी पड़ा हैं जिसका अध्ययन किया जाना चाहिए।[६]

अध्ययन के उद्देश्य :-

❑ व्याख्याता, समाजशास्त्र, भूपाल नोबल्स स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)

१. शैक्षणिक गतिशीलता के फलस्वरूप उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्थिति में हुए परिवर्तनों का अध्ययन करना।
२. सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों हेतु उत्तरदायी कारकों का आकलन करना।,
३. भील समाज की सामाजिक व्यवस्था एवं मूल्यों पर शैक्षणिक गतिशीलता के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध प्रारूपः- प्रस्तुत शोध हेतु मध्यप्रदेश के इन्दौर जिले का चुनाव किया गया। अध्ययन की प्रकृति एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इन्दौर जिले के आदिवासी बाहुल्य ब्लॉक मानपुर के ११ चिन्हित भील जनजाति वाले ग्रामों में से २२० परिवारों का दैव निदर्शन विधि द्वारा चुनाव किया गया है। **अध्ययन** के अंतर्गत प्राथमिक और द्वैतीयक दोनों ही स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक समंकों के अंतर्गत साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली तथा अवलोकन का प्रयोग किया गया तथा द्वितीयक समंकों के अंतर्गत समाचार पत्र, पत्रिकाऐं, सरकारी प्रकाशन, पुस्तक आदि का प्रयोग किया गया है।

उपलब्धियाँ : शिक्षा सदा से ही मानवीय विकास का आधार रही है। प्रारंभिक अवस्था में उसके रूप इतने सहज और सरल थे, कि प्राणवायु की भाँति उसके अस्तित्व व महत्व की ओर ध्यान ही नहीं गया। जीवन की जटिलता के साथ साथ शिक्षा भी विशिष्ट रूपों में प्रतीत होती गई इसके इन रूपों की महत्ता स्वीकारी गई और शिक्षा को धन तथा बाहुबल की भाँति शक्ति का महत्वपूर्ण स्त्रोत माना जाने लगा। आधुनिक युग में शिक्षा को मानवीय जीवन में केन्द्रीय स्थान प्राप्त हैं। मानव की नियति, जनसाधारण के लिये नई व्यवस्था में स्थान सभी कुछ शिक्षा पर ही निर्भर हैं।[७]

अध्ययन क्षेत्र शहर के नजदीक एवं शिक्षा की व्यवस्था सुलभ होने के कारण शिक्षा का विकास देखने को मिलता हैं, यहाँ कई लोग शिक्षित हैं एवं नौकरी भी करते हैं तथा कुछ परिवारों में लड़कियाँ भी नौकरी करती हैं तथा कुछ आँगनवाड़ी कार्यकर्ता तथा सहायिका भी हैं।उनकी शैक्षिक स्थिति निम्नवत हैः-

सारणी क्रमांक १

शिक्षा का स्तर

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
प्राथमिक	५६	३५.००
माध्यमिक	४६	२८.७५
हाईस्कूल	२६	१६.२५
हायर सेकेण्डरी	१३	०८.१२
स्नातक व स्नातकोत्तर	१९	११.८७
योग	१६०	१००

उपर्युक्त सारणी अनुसार ३५.०० प्रतिशत व्यक्तियों नें प्राथमिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त की है, माध्यमिक स्तर तक शिक्षित लोगों का प्रतिशत २८.७५ हैं। १६.२५ प्रतिशत लोगों नें हाई स्कूल तक, ०८.१२ प्रतिशत हायर सेकेण्डरी तक तथा स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर पर ११.८७ प्रतिशत लोग शिक्षित हैं। सारणी से स्पष्ट होता हैं कि भीलों मे शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ती जा रही हैं इसका मुख्य कारण शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा के प्रति जागरूकता, शिक्षा अभियान व शहरीकरण का प्रभाव माना जा सकता हैं।

सारणी क्रमांक २

भीलों की विवाह संस्था में परिवर्तन

बाल विवाह

विवरण	संख्या	प्रतिशत
समाप्त हुआ हैं	१७४	७९.१
कम हुआ हैं	४६	२०.९
यथावत्	०	०
कुल योग	२२०	१००

दहेज मूल्य

विवरण	संख्या	प्रतिशत
कम हुआ हैं	१३६	६१०८
बढ़ा हैं	७८	३५.५
यथावत्	६	२.७
कुल योग	२२०	१००

विधवा-विवाह

विवरण	संख्या	प्रतिशत
आसान हुआ हैं	२१६	९८.२
कठिन हुआ हैं	४	१.८
कुल योग	२२०	१००

तलाक

विवरण	संख्या	प्रतिशत
आसान हुआ हैं	१५६	७०.९
कठिन हुआ हैं	६४	२९.१
कुल योग	२२०	१००

परिवर्तन के कारण

विवरण	संख्या	प्रतिशत
लोगों में जागरूकता	३३	१५.०
शिक्षा का प्रभाव	१२२	५५.५
वैधानिक नियमों का कारण	५७	२५.९
संचार साधनों का विकास	८	३.६
कुल योग	२२०	१००

उपर्युक्त सारणियों से स्पष्ट हैं कि वर्तमान समय में भील जनजाति की विवाह संस्था में क्या परिवर्तन आए हैं। बाल विवाह की प्रथा भीलों में प्रचलित हैं, परन्तु वर्तमान समय मे इसमें परिवर्तन देखा गया हैं, ७६.१ प्रतिशत लोगों का कहना हैं कि बाल विवाह समाप्त हो गया हैं, मात्र २०.६ प्रतिशत लोगों का कहना हैं कि बाल विवाह होते हैं, पर कम होते हैं, ६१.८ प्रतिशत लोगों का मत हैं कि दहेज का मूल्य कम हुआ हैं, ३५.५ प्रतिशत लोगों का कहना है कि बढ़ा हैं, तथा २.७ प्रतिशत लोगों का कहना हैं कि दहेज मूल्य यथावत् हैं। नातरा विवाह या विधवा विवाह भीलों में प्रचलित हैं, पूर्व समय में नातरा विवाह के अर्न्तगत पति की मृत्यु पर उसका छोटा भाई अपनी ही बड़ी भाभी को पत्नी बना लेता था परन्तु वर्तमान में यह परम्परा कम ही प्रचलित हैं। वर्तमान समय में विधवा विवाह में भी परिवर्तन आया है, ६८.२ प्रतिशत लोगों का कहना हैं कि विधवा विवाह आसान हुआ हैं क्योंकि अब जाति के लोगों का प्रतिबंध कम होता हैं तथा लोगों में जागरूकता भी आई हैं। केवल १.८ प्रतिशत लोग विधवा विवाह को कठिन मानते हैं। भीलों में विवाह-विच्छेद या तलाक कम ही होते हैं, परन्तु उन्हें भी अच्छा नहीं माना जाता। ७०.६ प्रतिशत लोगों का कहना हैं कि तलाक पहले की अपेक्षा आसान हुआ हैं तथा २६.१ प्रतिशत लोग तलाक प्रक्रिया को कठिन मानते हैं, क्योंकि वर्तमान समय में जाति पंचायतों के अलावा विभिन्न वैधानिक प्रक्रियाओं के कारण तलाक की परेशानी का सामना करना पड़ता हैं।

भीलों में इन प्रक्रियाओं में विभिन्न कारणों से परिवर्तन आए हैं, १५ प्रतिशत लोग परिवर्तन का कारण लोगों में जागरूकता मानते हैं, ३५.५ प्रतिशत लोग शिक्षा तथा उसका प्रभाव जो सर्वाधिक हैं, क्योंकि शिक्षा से ही उनमें जागरूकता आई हैं, २५.६ प्रतिशत वैधानिक नियमों व प्रक्रियाओं को कारण मानते हैं तथा ३.६ प्रतिशत लोग संचार के साधनों को कारण मानते हैं, क्योंकि वर्तमान समय में टेलीविजन/रेडियो तथा अखबार सूचना का व प्रचार प्रसार का सशक्त माध्यम हैं।

परिवार में स्त्रियों की स्थिति :- भील समाज मे महिलाओं की विशिष्ट भूमिका होती तथा समाज व परिवार में इन्हें पूर्ण सम्मान प्रदान किया जाता हैं। महिलाओं को पति की अर्द्धांगिनी माना जाता हैं एवं विशेष अवसरों पर पुरूषों का कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग करती हैं। घर के कार्यो के अतिरिक्त, खेती व मजदूरी के कार्यो में पति एवं घर के सदस्यों को सहयोग प्रदान करती हैं।[८]

भीलों में शिक्षा का अभाव है। भील अपनी लड़कियों को पढ़ाना पसन्द नहीं करते हैं। परन्तु आजकल शहरी प्रभाव के कारण कुछ लोग अपनी लड़कियों को शिक्षा दिलवाने लगे हैं।

सारणी क्रमांक ३

महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन के कारण

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
शिक्षा	११३	५५
महिलाओं की जागरूकता	७४	३६.६
परिवार की सोच में परिवर्तन	३३	१६.३
योग	२२०	१००.०

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता हैं कि परिवार में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन का कारण ५५ प्रतिशत लोग शिक्षा को मानते हैं, ३६.६ प्रतिशत महिलाओं की जागरूकता को तथा १६.३ प्रतिशत लोग परिवर्तन कारण परिवार की सोच में परिवर्तन मानते हैं। स्पष्ट हैं कि परिवर्तन के लिए शिक्षा मुख्य कारक हैं।

निष्कर्ष :- अध्ययन में यह पाया गया भील जनजाति पर शिक्षा का व्यापक प्रभाव पड़ा हैं। इस जनजाति के लोग अधिक शिक्षित होने लगे हैं, शिक्षा के कारण इनकी संस्कृति व समाज व्यवस्था, विवाह संस्था में भी परिवर्तन आया है तथा बाल विवाह जैसी कुरीतियां भी समाप्त होती जा रही हैं। लोग महिला शिक्षा को भी बढ़ावा देने लगे हैं तथा शिक्षा से उनके सामाजिक स्तर में भी परिवर्तन आया है।

संदर्भ

१. जैन श्रीचन्द्र, 'वनवासी भील और उनकी संस्कृति', रोशनलाल जैन एंड बोरडी, जयपुर, १६७३

२. विद्यार्थी ललिता प्रसाद, 'भारतीय आदिवासी', उत्तरप्रदेश हिन्दी समिति, लखनऊ १६७५, पृ. १-३

३. पाठक शोभनाथ, 'भीलों के बीच बीस वर्ष', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, १६८३

४. मेहता प्रकाशचन्द्र, 'भारत के आदिवासी', शिवा पब्लिकेशन, उदयपुर, १६६३, पृ. ७-८

५. शिवकुमार एवं श्रीकमल शर्मा, 'मध्यप्रदेश की जनजातियां समाज एवं व्यवस्था' हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल १६६६, पृ. ५-६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 16 अंक 1, जनवरी–जून 2014**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

औद्योगीकरण, वैश्वीकरण और विकास नीति के दौर में पलायन
(झारखण्ड के आदिवासी समाज के विशेष संदर्भ में)

❑ सुप्रिया सोनाली

मध्य भारत में निवास करने वाली आदिम जनजातियाँ जो गुजरात के पहाड़ी प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल में एक समूह के रूप में जुड़े हुए हैं, भारत के जनजातीय जनसंख्या के सर्वाधिक भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। जनजातियों का सबसे अधिक संकेन्द्रण उन क्षेत्रों में है जहाँ मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल आपस में मिलते हैं।[1] प्राचीन समय में छोटानागपुर का पठारी भाग, संथाल परगना, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा का कुछ क्षेत्र सम्मिलित रूप से झारखण्ड के नाम से जाना जाता है। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि झारखण्ड एक आदिवासी बहुल प्रदेश है। यहाँ के लोगों का जीवन जमीन, जल जंगल पर पूर्णतः आधारित है। इनका मुख्य पेशा खेती है, परन्तु इनकी संस्कृति, धर्म, समाज और जीवन की हर मूलभूत आवश्यकता प्रकृति, यथा- जंगल, पर्वत, नदी, झरने, वन्य जीव-जन्तु पर निर्भर करता है।

झारखण्ड आदिवासी बहुल प्रदेश है। यहाँ के लोगों का जीवन जमीन, जल, जंगल पर पूर्णतः आधारित है। आजादी के बाद देश में औद्योगिक विकास बहुत तीव्र गति से होने लगा था। इसी के अंतर्गत विभिन्न स्तर की विकास परियोजनाएं झारखण्ड में भी प्रारंभ की गईं, वे यहाँ के मूल निवासियों के विनाश का कारण बनीं। औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की प्रक्रिया के साथ ही झारखण्ड भी वैश्वीकरण के दौर में आधुनिकीकरण की चपेट में आ गया। विकास गति संबंधी परियोजनाओं एवं औद्योगीकरण से सिर्फ उन लोगों का विकास हुआ जो इससे उच्च स्तर से जुड़े थे न कि उन आदिवासियों का, जिनके अस्तित्व एवं मूल धरोहर को क्षतिग्रस्त कर इस विकास प्रक्रिया की नींव रखी गई। आदिवासी क्षेत्रों में औद्योगीकरण एवं विकास परियोजनाओं का जो बेहद गंभीर प्रभाव पड़ा वह था लोगों का अपने क्षेत्र से पलायन। प्रस्तुत लेख झारखण्ड के आदिवासियों के पलायन की समस्या-इसके कारणों एवं प्रभावों का विशद विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

यह सर्वज्ञात है कि आजादी के पश्चात् देश में औद्योगिक विकास बहुत तीव्र गति से होने लगा था। इसके साथ छोटानागपुर प्रान्त भी जल्द ही औद्योगीकरण की प्रक्रिया में शामिल हो चुका था। विभिन्न स्तर की परियोजनाएँ जो छोटानागपुर के विभिन्न स्थानों में आरंभ की गईं वे यहाँ के मूल निवासियों के लिए विनाश का कारण बनीं। इन परियोजनाओं के साथ ही यहाँ औद्योगीकरण, शहरीकरण की प्रक्रिया का आरंभ हुआ। वैश्वीकरण के दौर में झारखण्ड भी विकास नीति, आधुनिकीकरण की चपेट में आ गया। इन सब का प्रमुख कारण था खनिज सम्पदा की प्रचुरता। देश में पाई जाने वाली, अधिकांश खनिज सम्पदा का संकेन्द्र इसी प्रदेश में है। विकास नीति के अन्तर्गत, परियोजनाओं और औद्योगीकरण से सिर्फ उन लोगों का विकास हुआ जो इससे उच्च स्तर से जुड़े थे, न कि उन आदिवासी लोगों का जिनका अस्तित्व तथा मूल धरोहर को क्षतिग्रस्त कर इस विकास प्रक्रिया की नींव रखी गई। आदिवासी इलाकों में औद्योगीकरण और विकास परियोजनाओं का जो बेहद गंभीर प्रभाव पड़ा वह था लोगों का अपने क्षेत्र से पलायन।

पलायन को सरल रूप में अधिवास के स्थायी या अस्थायी परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह एक बहुआयामी परिघटना है, परन्तु इसे मात्र आर्थिक एवं जनसांख्यिकी परिवर्तन की दृष्टि से ही विश्लेषित किया जा रहा है, जबकि यह आर्थिक से अधिक समाजशास्त्रीय परिघटना है। यह केवल एक जनसंख्या का स्थान परिवर्तन करना भर नहीं है। पलायन की परिघटना अधिवास त्याग करके आने वाली आबादी एवं नवीन अधिवास में पूर्व से निवास करने वाली आबादी दोनों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को गहराई से प्रभावित करती है।[2] यह ध्यान देने योग्य है कि झारखण्ड में पलायन का स्वरूप द्विआयामी है–

- आदिवासी क्षेत्रों में अन्य क्षेत्रों से पलायन कर लोगों का आगमन।
- आदिवासियों का अन्य क्षेत्रों में पलायन।

ध्यातव्य है कि पहले तरह का पलायन दूसरे आयाम का प्रमुख कारण रहा है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :- झारखण्ड में भूमि बेदखली और उसके विरोध में लगातार होनेवाले विद्रोहों के साथ आदिवासियों के पलायन का इतिहास बहुत पुराना हैं यह तीनों अन्तः सम्बन्धित

❑ शोध अध्येत्री, इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

परिघटनाएँ हैं।[३] झारखण्ड के इतिहास में जितने भी विद्रोह और आन्दोलन हुए उसके मूल में भूमि संबंधित कारक ही निहित हैं। इसकी शुरूआत तब हुई जब १५८५ ई० में मुस्लिम शासक, शाहबाज खान काम्बा ने आक्रमण कर इसे मुस्लिम शासन के अधीन लाकर, अधिकार में कर लिया। आगे चलकर १६१६ ई० में जहाँगीर के आदेशानुसार, इब्राहिम खान ने छोटानागपुर के शासक राजा दुर्जनसाल को बन्दी बना लिया। कुछ वर्षों के बाद उसे रिहा कर दिया गया।[४] यही वह समय था, जब इस प्रदेश में बाह्य व्यक्तियों का प्रवेश आरंभ हुआ। अपने कारावास के दौरान राजा कई हिन्दू राजाओं के सम्पर्क में आया, उनकी शासन व्यवस्था की भव्यता से वह अत्यधिक प्रभावित हुआ। छोटानागपुर लौटने के क्रम में, राजा द्वारा ब्राह्मणों, राजपूतों तथा अन्य लोगों को अपने साथ लेकर शासन को मजबूत बनाने का प्रयास किया। इसके साथ ही अन्य जातियों का वर्चस्व इस प्रदेश में बढ़ गया। बाह्य लोगों का प्रवेश सदियों से चले आ रहे सामाजिक ढाँचे के परिवर्तन का संकेत दे चुका था। चूँकि उस समय राजा की ओर से अधिकारियों को वेतन के रूप में या पण्डितों को दान स्वरूप जागीर देने की प्रथा का चलन था; जिसने इन बाह्य लोगों के अधिकार क्षेत्र को विस्तृत कर दिया। वे अब धीरे-धीरे जागीरदार बनते जा रहे थे।

इस क्षेत्र के इतिहास में सबसे बड़ा परिवर्तन तब आया जब १७६५ ई० में अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई।[५] इस अधिकार के साथ ही अंग्रेजों का इस प्रदेश में प्रवेश हुआ। उन्होंने अपने अधिकार को सशक्त करने हेतु प्रशासनिक कदम उठाए जिसने यहाँ के आदिवासियों के पारम्परिक प्रशासनिक स्वरूप को क्षति पहुँचाई। अंग्रेजों के प्रशासन के अन्तर्गत आदिवासियों को भी अपनी जमीन के लिए लगान चुकाना होता था। १७९३, रेगुलेशन-I के आधार पर लगान व्यवस्था को पूरी तरह से स्थाई कर दिया गया।[६] स्थायी बन्दोबस्त ने आदिवासियों की सदियों से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था पर कुठाराघात किया।

आदिवासी अपना जीवन बहुत ही सरल एवं साधारण तरीके से जीते हैं। इनके जीवन की सरलता और अंग्रेजों द्वारा लागू की गई व्यवस्था के कारण इनका और अधिक शोषण होने लगा। इस नई व्यवस्था ने जमीनदारों, साहूकारों की कुनीतियों को और बढ़ावा दिया। आर्थिक अभाव के कारण लगान अदा करने हेतु उन्हें साहूकारों से उधार लेना पड़ता था। इसके लिए उन्हें अपनी जमीन गिरवी रखनी पड़ती था। साहूकार इनकी अज्ञानता का लाभ उठाकर उनकी जमीन, अपने नाम करवा लेते थे। यही नहीं परिस्थिति और भी भयावह थी। कभी-कभी तो कई पीढ़ियों तक ये इनके यहाँ बेगारी करने को मजबूर हो जाते थे। इस प्रकार आदिवासी लोग बेगारी तथा बैठ बेगारी जैसी कुरीतियों के शिकार हो रहे थे।

मुण्डा-मानकी जैसी प्रशासनिक व्यवस्था का ह्रास होता जा रहा था। अंग्रेजी प्रशासन के अन्तर्गत जमींदार और साहूकार स्वयं को यहाँ का शासक मानने लगे थे। ये लोग अंग्रेजों के अधीन रहकर आदिवासियों पर शासन करने लगे थे, और इनके अपने प्रधान, मुण्डा-मानकी, परहा-पंचायत जैसी पारम्परिक शासन व्यवस्था को चोट पहुँचाई जा रही थी। इस परिस्थिति के कारण वे अपनी जमीन खोते जा रहे थे। पहले ही लगान न चुका पाने के कारण एक तो जमींदार जमीन अपने नाम करवा लेता या फिर इनकी जमीन नीलाम कर दी जाती थी। वहीं दूसरी ओर अब इन जमींदारों द्वारा दिकुओं (बाहरी लोगों) को जमीन ही नहीं गाँव के गाँव फार्म के रूप में दिया जाने लगा था।[७] ब्रिटिश शासन के दौरान तत्कालीन सेटलमेंट ऑफिसर जे० रीड० ने राँची जिला के सेटलमेंट रिपोर्ट (१६०२-१६१०) में पलायन के दो मुख्य कारणों का वर्णन किया है। पलायन का पहला कारण आदिवासियों पर पड़ने वाला अत्यधिक आर्थिक दबाव था। यहाँ की भूमि कृषि के योग्य इतनी उपयुक्त नहीं थी और इनके कृषि का तरीका भी पुराना तथा पारम्परिक था। मुण्डा और उराँव लोगों की आवश्यकता एकदम सीमित होती थी। आनेवाले दिनों के लिए भी वे हमेशा आश्वस्त रहते थे। ये कभी भी दैनिक आवश्यकता से अधिक उपज नहीं करते थे।[८] इसलिए भूमि की उपलब्धता के बाद भी इनके बीच आर्थिक तंगी विद्यमान रहती थी। इस कमी को पूरा करने के लिए मुख्य रूप से असम और दुआर के चाय बागान और मानभूम के कोयला खदान में मजदूरी करने हेतु जाने लगे। दूसरा कारण यह था कि आदिवासियों की बहुत सी जमीने बाह्य लोगों के हाथों में जाने के कारण रैयतों और जमींदारों में भूमि संबंधित विवाद उत्पन्न हो गये थे। जब एक आदिवासी अपनी जमीन का मालिकाना हक प्राप्त करने के लिए कोर्ट जाता है तो वहाँ भी इसे पूरी तरह आर्थिक रूप से लूटा जाता था। ऐसे बहुत से कृषक थे जिन्होंने एक नक्शे की कॉपी तथा सुनवाई के लिए ४०-५० रूपये तक दिये थे, जिसका वास्तविक खर्च २-३ रूपये ही होता था। न्यायालय में हर स्तर पर उन्हें खर्च करना पड़ता था, परन्तु इसके बाद भी उन्हें अपनी भूमि पर हक वापस पाने की कोई संभावना नहीं होती थी।[९]

इस क्षेत्र में अधिकांशतः आदिवासियों का पलायन बंगाल तथा असम के चाय बागानों में होता था, इसके निम्न कारण थे-

- चाय बागानों में एक मजदूर व्यक्ति के साथ उसके परिवार को भी वहाँ आसानी से काम मिल जाया करता था। कभी-कभी तो बच्चे भी काम पर लगा लिए जाते थे। इस प्रकार जब परिवार के सभी लोग मजदूरी करते तो उन्हें मजदूरी भी एक व्यक्ति के अनुपात में अधिक मिलती थी।
- जब कुछ लोग अपने परिवार से मिलने वापस अपने गाँव आते तो वे वहाँ की स्थिति के बारे में बताते और अपने साथ अन्य भाई-बन्धु को भी ले जाते थे।
- चाय के बागानों में जो मजदूर पलायन कर काम करते थे, वहाँ उनके बसने के लिए भूमि तथा स्थान मुहैया कराई जाती थी। उस वक्त असम सरकार और चाय बागानों के अंग्रेज स्वामियों दोनों के हित से संबंधित, आदिवासियों को कृषि योग्य परती भूमि उपलब्ध करवाने में जुटे थे। सरकार को अतिरिक्त भू-राजस्व में रूचि थी। बागान मालिक इस अनुबंध मुक्त पूर्व कुलियों को अपने बागान के निकट की भूमि पर ही बसा कर रखना चाहते थे, ताकि चाय-पत्ती तोड़ने के मौसम में उनकी सेवा प्राप्त की जा सके।

चाय बागानों के मालिकों की ओर से इसलिये सुविधाएँ प्रदान की जा रही थीं कि बगानों में जो भारी संख्या में मजदूरों की आवश्यकता है वह पूरी हो सके। वहीं दूसरी ओर आदिवासी भी अपने क्षेत्र में व्याप्त बेगारी जैसे सामाजिक कुरीतियों से त्रस्त तथा अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने हुए निरंतर पलायन कर रहे थे।[१०] निम्न तालिकाओं के आधार पर पलायन की दर को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

सारणी-१ सन् १६०१ ई० छोटानागपुर से आए बहिरागतों का असम के विभिन्न जिलों में बसावट

क्षेत्र	*कुल आगमन*	*कछार*	*सुरमा घाटी*		*गोइलपारा*	*कामरूप*	*दारंग*	*नोनोंग*	*ब्रह्मपुर घाटी*		*कुल*
			सिलहट	*कुल*					*शिवसागर*	*लखीमपुर*	
पलामू	६७७६	१.२	१.१	२.३	०.१	०.१	६८.७	०.६	१७.७	१०.२	६७.७
हजारीबाग	६८७७२	१२.१	१३.६	२५.७	०.१	०.७	१०.७	३.१	४२.४	१६.६	७३.६
राँची	६१७६४	८.२	८.२	१६.४	०.३	१.३	१४.५	५.७	२३.१	३७.६	८२.८
मानभूम	६६७२८	१३.६	६.३	२३.२	०.२	०.६	१७.५	३.६	२६.४	२५.०	७६.३
सिंहभूम	१२६२७	३.१	८.०	११.१	०.२	०.६	१७.०	४.७	२२.४	४२.६	८७.८
कुल	२४६६६७	१०.४	६.८	२०	०.२	०.८	१५.६	४.२	३०.०	२८.०	७६.२

स्रोत - झारखण्ड एन्साइकलोपीडिया, खण्ड ३, पृ. १८१ (भारत की जनगणना, १६०१, खण्ड ४, भाग-२)

सारणी-२ छो०ना० - सं०प० में जन्मे, १८६१ व १६०१ में असम की जनगणना

क्षेत्र	**चाय बागानों की संख्या १८६१**	**१८६१ जन्म हुआ**		**१६०१ जन्म हुआ**	
		सं०प० %	**छो०ना० %**	**सं०प० %**	**छो०ना० %**
सुरमा घाटी	२७६	३५.१	२५.६	१६.३	२०.२
कछार तराई	१८४	१६.६	१५.२	८.६	१०.४
सिलहट	६२	१८.५	१०.४	१०.६	६.८
ब्रह्मपुत्र घाटी	५५७	६४.८	७४.४	७६.७	७६.२
गोइलपारा	७	४.५	०.५	४.७	०.२
कामरूप	३०	४.७	०.५	२.६	०.०८
दारंग	११५	८.४	१३.६	११.१	१५.६
नोगांव	६४	४.१	५४.१	३.६	४.२
शिवसागर	२१०	१८.१	२८.१	२७.६	३०.०
लखीमपुर	१३१	२५.०	२५.६	२६.५	२८.०
कुल तराई	८३३	१००.०	१००.०	६८.६	६६.४
कुल पहाड़ी	६	०.०	०.०	१.१	०.६
कुल असम	८३६	१००.०	१००.०	१००.०	१००.०
कुल बहिरागत जिनकी असम में जनगणना हुई।		१८२६४	१६०७७४	२१२३७	२४६६६७

स्रोत - झारखण्ड एन्साइकलोपीडिया, खण्ड ३, पृ. १८३ (भारत की जनगणना, १८६१, असम खण्ड २, भारत की जनगणना, १६०१, खण्ड ४, भाग-२)

पलायन का वर्तमान परिदृश्य :- झारखण्ड भारत का सबसे बड़ा औद्योगिक क्षेत्र है जहाँ खनिज धातुओं और प्राकृतिक संसाधनों की भरमार है। स्पष्ट है सबसे ज्यादा पूँजी निवेश यहीं हुआ होगा। इस पूँजी निवेश से पैदा हुई आर्थिक गतिशीलता ने स्थानीय आदिवासी, समाज और अर्थव्यवस्था पर सिर्फ नकारात्मक असर डाला है।

बीसवीं सदी के अंतिम वर्ष में देश की नई आर्थिक नीति की परछाईं तले, भारत का आदिवासी समुदाय संकटकालीन परिस्थितियों से गुजर रहा है। १६८० के दशक में जो आर्थिक नीति अपनाई गई वह १६६० के दशक में ज्यादा मजबूत हुई, जब सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण बुनियादी ढाँचे में परिवर्तन करने के लिए नई आर्थिक नीति अपनाई। इसका अल्पकालिक उद्देश्य तो ''बैलेंस ऑफ पेमेंट'' की समस्या से निपटना था पर दीर्घकालीन उद्देश्य था अंदरूनी और बाहरी पूँजी-निवेश को बढ़ाकर अर्थव्यवस्था को बढ़ाने की गति में तेजी लाना।[११]

भूमि अधिग्रहण एवं विस्थापन :- औद्योगीकरण तथा राष्ट्रीय हित (National Significance) के नाम पर बहुत भारी संख्या में आदिवासियों की भूमि का अधिग्रहण किया जाने लगा था। भूमि अधिग्रहण कानून के कार्यान्वयन में आदिवासियों की जमीन का गैर आदिवासियों को हस्तांतरण रोकने वाले संरक्षक प्रावधानों को प्रायः अनदेखा किया गया है। फलतः बांधों, उद्योगों और खानों जैसी परियोजनाओं द्वारा विशेषतः संसाधन समृद्ध क्षेत्रों में, विकास उत्प्रेरित विस्थापन हुआ। विस्थापितों की २-३ करोड़ की आबादी का लगभग आधा हिस्सा आदिवासियों का है, जिसमें विस्थापितों व परियोजना पीड़ितों की संख्या के वे ४० प्रतिशत हैं जो अब ५० प्रतिशत से भी अधिक हो गये हैं।

आदिवासियों में मुआवजा पाने वालों की संख्या बहुत कम है। इसका सबसे बड़ा कारण ''सर्वोपरि अधिकार'' का सिद्धांत मुआवजा निजी जमीन पर ही मिलता है। आदिवासी समाज में भूमि का सामूहिक स्वामित्व होता है अथवा किसी मृत पूर्वज के नाम होता है।[१२] भूमि के स्वामित्व का हस्तांतरण पीढ़ी दर पीढ़ी स्वतः होता जाता है, परन्तु मुआवजे से संबंधित कानूनी प्रक्रिया के लिए यह कारगर नहीं होता। एक तो भूमि भी छीन ली जाती है और मुआवजा भी नहीं मिलता है।

बड़े पैमाने पर विस्थापन के कारण आदिवासी दैनिक मजदूर बनने के लिए मजबूर हो गए हैं। संगठित क्षेत्र की तुलना में जहाँ मजदूरों को श्रमिक संघ का संरक्षण प्राप्त है, वहीं आदिवासियों को नाममात्र के लिए संरक्षण प्राप्त होता है, क्योंकि अधिकतर राज्य के श्रम कानूनों को लागू करने में कोताही बरती जाती है। उदाहरण स्वरूप- १६७४ में जब कोयला खदानों का राष्ट्रीयकरण हुआ और उसमें काम करनेवाले मजदूरों की नौकरी पक्की करते हुए उनकी तनख्वाहें काफी बढ़ा दी गईं तो हजारों संथाल और भूंइया आदिवासियों को, जो खदानों में मालकट्टा या लोडर का काम करते थे, रातोरात नौकरी से हटाकर उनकी जगह उत्तर बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोगों को गलत तरीकों से भर दिया गया।[१३] आदिवासियों की भूमि पर उद्योगों के साथ औद्योगिक शहरों का विकास किया गया वहाँ भी बाहर से आए हुए लोगों को ही बसाया गया और आदिवासी उन शहरों से लगे स्थानों में छोटे-छोटे कस्बों में झोपड़ियाँ बनाकर रहने पर विवश हो गए। एच०ई०सी०, बोकारो स्टील सिटी, जमशेदपुर में टेलको, टिस्को की स्थापना, स्पष्ट एवं प्रमुख उदाहरण हैं। इन उद्योगों के निर्माण कार्य के दौरान ये रेजा, कुली और मजदूरों की आवश्यकता तो पूरा करते थे और आज शहरीकरण के दौर में इन्हीं बाहृय लोगों के घरों में नौकरानी, आया, दाई की आवश्यकता को पूरा करते हैं।

झारखण्ड की विडम्बरा यह है कि भारत के सभी राज्यों के लोग नौकरी पाने के लिए यहाँ आते हैं, लेकिन यहाँ के लाखों आदिवासी ठेका मजदूरों के रूप में आसाम से लेकर किन्नौर तक रोजगार की तलाश में भटकते रहते हैं और उनका परिवार बिखर जाता है।

उद्योगों का गैर क्षेत्रीय स्वरूप :- झारखण्ड क्षेत्र में खनिज सम्पदा उपलब्ध है, परन्तु देश की विकास नीति के कारण इस क्षेत्र को मुख्यतः प्राथमिक उद्योग (खनन) एवं अर्धनिर्मित वस्तुओं के उत्पादन के लिए ही बनाया गया। इस नीति के कारण इस क्षेत्र में निर्मित वस्तुओं का उद्योग नहीं पनप पाया। उपनिवेश काल में जो अन्तः क्षेत्र बने, स्वतंत्रता के बाद भी उन अन्तः क्षेत्रों का ही विकास हुआ। उदाहरण के लिए झारखण्ड में बॉक्साइट खनन तथा अल्युमिनियम तो बनता है, उसकी वस्तुएँ नहीं। लोहे/इस्पात की चादरें तो बनती हैं, पर स्टील के बर्तन नहीं। जिस कारण क्षेत्रीय रूप में उद्योगों का प्रसार नहीं हो पा रहा है। लाह एवं अन्य वन उत्पादों पर आधारित उद्योग भी इस क्षेत्र में स्थापित नहीं हो पाए हैं।[१४] झारखण्ड में कृषि, वन उद्योग विकास एवं अनुसंधान संबंधित कई संभावनाएँ विद्यमान हैं, जैसे बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, केन्द्रीय बागवानी अनुसंधान केन्द्र, सेन्ट्रल,

रेफेड अपलैड राइस रिसर्च स्टेशन हजारीबाग, भारतीय लाह अनुसंधान केन्द्र, वन उत्पादन कर्ता संस्थान[१५], रेशम तथा तस्सर उद्योगों से संबंधित संस्थान, इन संस्थानों सरकार द्वारा नियुक्त उच्च स्तर के तकनीकी विशेषज्ञों की भी कमी नहीं है फिर भी यह झारखण्ड कर दुर्भाग्य ही है इस अमूल्य अवसर का उपयोग भारत के दूसरे क्षेत्रों के विकास के लिए किया जा रहा है।

आदिवासी समाज में पलायन की समस्या :- पलायन के द्विआयामी स्वरूप के कारण अर्थात् आदिवासियों का अपने क्षेत्र से अन्य क्षेत्रों में पलायन और गैर-आदिवासियों का अन्य क्षेत्रों से पलायन कर आदिवासी क्षेत्र में आगमन, आज अन्य लोगों के अनुपात में जनजातीय जनसंख्या कम होती जा रही है। निम्न सारणी में १९५१ से १९९१ तक की जनगणनाओं में आदिवासियों की तुलना में गैर-आदिवासियों की वृद्धि दर से यह स्पष्ट हो जाती है।

सारणी-३ :
झारखण्ड में आदिवासियों और गैर-आदिवासियों की जनसंख्या वृद्धि दर प्रतिशत में

वर्ष	झारखण्ड में जनसंख्या वृद्धि दर	आदिवासी जनसंख्या वृद्धि दर	गैर आदिवासी जनसंख्या वृद्धि दर
१९५१	६.३५	०२.०१	१३.६०
१९६१	१९.६६	१२.७१	१३.९२
१९७१	२२.५८	१५.८६	२६.०१
१९८१	२४.००	१६.७७	२७.११
१९९१	२४.००	१३.४१	२६.८३

स्रोतः झारखण्ड एन्साइक्लोपीडिया, खण्ड-३, श्वेत श्याम तस्वीर, पृ०-१८६

आदिम जनजातियों के अस्तित्व में संकट :- झारखण्ड में कुल ३२ अनुसूचित जनजातियाँ हैं, जिनमें आदिम जनजातियों की संख्या आठ है- असुर, बिरहोर, बिजरिया, माल पहाड़िया, पराहिया, साऊरिया पहाड़िया, कोरवा और सावर है। झारखण्ड में जनजातियों की जनसंख्या 27.67% (1991 census) है।[१६]

यह तथ्य स्पष्ट करता है कि आज आदिवासी अपनी ही जन्मभूमि में अल्पसंख्यक बन कर रह गए हैं। कुछ आदिम जनजातियाँ तो समाप्ति के कगार पर नजर आ रही है। जैसे, बिरहोर, असुर, जनजाति के लोग मात्र कुछ हजार की संख्या में ही रह गए हैं। यह राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकार की आर्थिक नीतियों, कार्यक्रमों और आदिवासियों के प्रति शासन की असंवेदनशीलता का परिणाम है।[१७]

जनजातीय भाषा का ह्रास :- देश में बोली जाने वाली भाषायें पाँच विस्तृत भाषा समूहों के अन्तर्गत आती हैं यथा आर्यन (75.37%), द्रविणियन (22.5%), ऑस्ट्रो-एशियाटिक (1.13%), तिब्बती बर्मन (0.97%) और सेमिटो-हैमिटिक (0.01%) है। वर्ष १९९१ की जनगणना में देश में दो सौ उन्नीस अभिज्ञेय मातृ-भाषाओं को सूचीबद्ध किया गया है जिनममें लगभग छह सौ तेरह जनजातीय समुदायों द्वारा बोली जाने वाली एक सौ पाँच जनजातीय भाषायें सम्मिलित हैं। देश की कुल जनसंख्या का लगभग 96.29% संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित अठारह भाषाएँ बोलता है। आठवीं अनुसूची में सूचीबद्ध भाषाओं को बोलने वाले लोग सुसम्बद्ध भाषायी क्षेत्रों में निवास करते हैं, जिनका अपना एक विशिष्ट इतिहास है।[१८]

झारखण्ड के आदिवासियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संदर्भ में देखा जाए तो ये पांच भाषा समूहों में से तीन भाषा समूह के अंतर्गत आते हैं, आर्यन, द्रविणियन और ऑस्ट्रो-एशियाटिक। झारखण्ड की संस्कृति से संबंधित यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि भाषाई तौर पर भी झारखण्ड की समृद्ध और विशाल सांस्कृतिक विरासत है।

परन्तु पलायन का एक दूरगामी प्रभाव यहाँ की भाषा पर दिखाई पड़ रहा है। आधुनिक शिक्षा से परम्परागत आदिवासी भाषाओं को नुकसान पहुँच रहा है। विशेषकर आदिवासी युवा उच्च शिक्षा एवं नौकरी के सिलसिले में दूसरे शहरों में या राज्यों में पलायन कर रहे हैं। स्वयं को अन्य लोगों के बीच में समंजन करने तथा उस क्षेत्र विशेष के अनुरूप में ढालने के क्रम में, अपनी भाषा से दूर होते जा रहे हैं। उदाहरण स्वरूप, चाण्डिल क्षेत्र के उराँच समुदाय के लोग बंगला भाषा बोलने लगे हैं। बहुत साल पहले वे राँची से चाण्डिल आए, तो अपनी भाषा ही खो बैठे।[१९] आदिवासी अन्य क्षेत्रों में जाकर अंग्रेजी, बंगाली, पंजाबी, तामिल, तेलगु आदि भाषाएँ सीखकर स्थान के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं, परन्तु अपनी मातृ भाषा का प्रयोग करने से हिचकिचाते हैं। इसका सबसे प्रमुख कारण है, आदिवासी के प्रति गैर आदिवासियों का दृष्टिकोण। लोग आदिवासियों को निम्न दृष्टि से देखते हैं। किसी भी कारण से जब ये पलायन कर अन्य क्षेत्र में जाते हैं, तब बाह्य लोगों की वास्तविक मानसिकता का बोध होता है, परन्तु उनके बीच रहना जीवकोपार्जन हेतु आवश्यक होने के कारण आज आदिवासी अपनी भाषा ही भूल चुके हैं। भाषा या बोली

उसकी जाति जातीयता का परिचायक होती है। रंग रूप या पहनावे से नहीं, तो लोग बोली सुनने के बाद अवश्य पूछते हैं क्या तुम आदिवासी हो? यह एक सवाल मन में आदिवासी जीवन से जुड़े लोगों की मानसिकता को लेकर अन्य कई सवाल खड़े कर देता है।

संविधान में भी आदिवासी संस्कृति के भाषाई आधार को पूरी तरह संरक्षित और सुरक्षित रखने हेतु कई प्रावधान निर्धारित किए गए हैं। राज्य पुनर्गठन आयोग की अनुशंसाओं के अनुक्रम में संविधान का (सातवाँ) संशोधन अधिनियम, १९५६ पारित किया गया जिसके तहत्, अन्य बातों के साथ-साथ, भारत के संविधान में भाषाजात अल्पसंख्यकों के लिए एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान करते हुए अनुच्छेद-३५० (ख) को सम्मिलित किया गया जिसे भारत के भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त के नाम पदनामित किया गया। भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त का संगठन ३० जुलाई १९५७ को अस्तित्व में आया।

– भारत के संविधान में भाषाजात अल्पसंख्यकों को प्रदत्त सुरक्षणों को समय-समय पर अखिल भारतीय स्तर पर सहमत सुरक्षणों की योजना के माध्यम से और सुदृढ़ीकरण किया गया है।[२०]

भाषाजात अल्पसंख्यकों के संवैधानिक सुरक्षण संविधान के अनुच्छेदों २९, ३०, ३४७, ३५०-क तथा ३५० में परिगणित हैं जो कि संक्षेप में निम्नलिखित हैं :-

(१) अनुच्छेद-२९ भाषा, लिपि तथा संस्कृति को अक्षुण्ण रखने का अधिकार प्रदान करता है,

(२) अनुच्छेद-३० पसन्द के शिक्षा-संस्थानों की स्थापना तथा उनके प्रशासन का अधिकार देता है,

(३) अनुच्छेद-३४७ में किसी भाषा की मान्यता के लिए राष्ट्रपति द्वारा निर्देश करने का प्रावधान है,

(४) अनुच्छेद-३५० शिकायतों के निराकरण के लिए सरकार के किसी पदाधिकारी को संघ/राज्यों में प्रयोग होने वाली किसी भी भाषा में अभ्यावेदन देने का अधिकार प्रदान करता है,

(५) अनुच्छेद-३५०(क) शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के माध्यम से अनुदेशन प्रदान करने की सुविधा देने का प्रावधान रकता है।

(६) अनुच्छेद-३५० (ख) में भारत के भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त की संस्था का प्रावधान है।

इन अनुच्छेदों के अन्तर्गत प्रावधान परिशिष्ट-१ में पुनः प्रस्तुत किए गए हैं। समय-समय पर अखिल भारतीय स्तर पर सहमति प्राप्त दूसरे सुरक्षण प्रादेशिक शिक्षा मंत्रियों का सम्मेलन १९४९, भारत सरकार का ज्ञापन १९५६, भाषा पर दिया गया बयान १९५८, दक्षिणी अंचल परिषद् के निर्णय १९५९, मुख्य मंत्रियों का सम्मेलन १९६१ तथा आंचलिक परिषदों के उपाध्यक्षों की समिति की बैठक १९६१ परिशिष्ट-२ में दिए गए हैं। संवैधानिक सुरक्षणों के सुनिश्चित करने के लिए इस तंत्र विन्यास की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैंः-

१. महत्वपूर्ण नियमों, विनियमों, सूचनाओं इत्यादि का उन सभी भाषाओं में अनुवाद एवं प्रकाशन जो सम्पूर्ण जनसंख्या के कम से कम १५ प्रतिशत लोगों द्वारा बोली जाती है,
२. उन जनपदों में अल्पसंख्यक भाषाओं को द्वितीय राजभाषा घोषित करना जहाँ एक ऐसी भाषाओं के बोलने वाले जनसंख्या का कम से कम ६० प्रतिशत हो,
३. अल्पसंख्यक भाषाओं में अभ्यावेदनों को स्वीकार करना तथा उन्हीं भाषाओं में उनके उत्तर देना,
४. शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा/अल्पसंख्यक भाषाओं के माध्यम से अनुदेशन,
५. शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर अल्पसंख्यक भाषाओं के माध्यम से अनुदेशन,
६. भाषाजात अल्पसंख्यक छात्रों की भाषाजात प्राथमिकता का अग्रिम पंजीयन एवं अन्तर्विद्यालयीय समायोजन,
७. अल्पसंख्यक भाषाओं में पाठय-पुस्तकों एवं अध्यापकों के लिए प्रावधान,
८. त्रिभाषा-सूत्र का कार्यान्वयन,
९. भर्ती के समय राज्य की राजभाषा के ज्ञान पर बल न दिया जाना। राज्य की राजभाषा में दक्षता की परीक्षा परिवीक्षा अवधि के पूर्ण होने से पूर्व ली जानी चाहिए।
१०. आंचलिक, राज्य तथा जनपद स्तरों पर भाषाजात अल्पसंख्यकों के सुरक्षणों के कार्यान्वयन हेतु समुचित तंत्र की स्थापना,
११. आंचलिक, राज्य तथा जनपद स्तरों पर भाषाजात अल्पसंख्यकों को उपलब्ध सुरक्षणों की विस्तृत जानकारी देने वाली पुस्तिकाओं के प्रकाशन के माध्यम से प्रचार।

यदि संविधानों में वर्णित उपरोक्त प्रावधानों का सही से निर्वहन किया जाय तो इस परिस्थिति को कम किया जा सकता है।

आदिवासी संस्कृति का विघटन :- आदिवासी संस्कृति में अखड़ा, सरना और ससनदीरि ये तीन आधारशिला हैं।

औद्योगीकरण एवं विकास परियोजनाओं के कारण जो पलायन हो रहा है उसकी वजह से आदिवासी संस्कृति पर गहरा खतरा मंडरा रहा है। अखड़ा जो कि आदिवासी गाँव का सांस्कृतिक स्थल है जहाँ ये ढोल, नगाड़ा और मांदर की थाप पर साथ मिलकर नाचते हैं। सभी मिलजुल कर धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्सवों को मनाते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात है कि यह आदिवासियों की सांस्कृतिक विरासत को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाने का माध्यम है। सरना एक पवित्र स्थल है, चूँकि आदिवासी प्रकृति पूजक होते हैं, इनके धार्मिक जीवन में यह अहम स्थान रखता है। हर प्रकार के धार्मिक एवं सामाजिक संस्कारों का निर्वहन ये सरना स्थल पर ही करते हैं। उसी प्रकार ससनदीरि और कब्रिस्तान जहाँ सदियों से ये अपने पूर्वजों का मृत्युपरांत होने वाले क्रियाकलापों तथा अंतिम संस्कार की क्रियाओं को करते हैं। आदिवासी संस्कृति की एक और विशेषता है, धुमकुड़िया जो कि युवाओं के लिए होता है, आज वह भी सूना पड़ा है और अपना अस्तित्व खोता जा रहा है। वर्तमान में पलायन के कारण गाँवों में अखड़ा में नाचने-गाने के लिया न युवा समाज है और न ही विस्थापित परिवारों के लिए उनका सरना और ससनदीरि।

सामाजिक संगठन (परिवार में बिखराव) :- पारंपरिक आजीविका का अभाव अधिकांशतः मजदूरी की तलाश में पुरूषों को ही पलायन के लिए मजबूर करता है। जिस कारण कभी-कभी सामाजिक संरचना बिखर जाती है। परिवार का विघटन सम्पूर्ण परिवार को प्रवासी होने के लिए मजबूर कर देता है।[२१] आदिवासी समाज में महिलाओं पर भी परिवार की आर्थिक जिम्मेदारियाँ रहती हैं। जिस प्रकार विकट परिस्थितियों में मजबूरन इन्हें भी पलायन कर अपने परिवार से दूर दूसरे स्थानों पर जाना होता है।

महिलाओं एवं बच्चों पर प्रभाव :- महिलाओं के संदर्भ में पलायन का स्वरूप को देखें तो यह बहुत भयानक है। आदिवासी समाज में परिवार में महिलाएँ भी आर्थिक रूप से जिम्मेदार होती हैं। दिल्ली जैसे बड़े शहर साथ ही हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश के अधिकांश क्षेत्र में ये घरेलू नौकरानी के रूप में काम करती हैं। यही नहीं इन क्षेत्रों में वे जहाँ महिला जनसंख्या अनुपात कम है इन्हें ऐसे पुरूषों के हाथों बेच दिया जाता है, जिनकी शादी नहीं हो रही हो या जिन्हें अपना परिवार चलाने के लिए वंश की आवश्यकता होती है। आज झारखण्ड की आदिवासी महिलाएँ वस्तु के रूप में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तथा एक स्थान से दूसरे स्थानों में बेच दी जाती है। **हर** परिस्थिति में महिलाओं पर ही भार पढ़ता है। न सिर्फ महिलाएँ परन्तु बच्चों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। मजबूरी में स्कूल छोड़ने वालों की संख्या, विशेषकर अन्य बच्चों की देखभाल के लिए बालिकाओं की और बाल श्रमिकों की बढ़ती संख्या इसके सूचक हैं।[२२] आदिवासी समाज एवं संस्कृति में बिखराव से उत्पन्न कुरीतियाँ जैसे शराबखोरी, महिलाओं के प्रति घर और बाहर बढ़ती हिंसा के रूप में दिखाई पड़ती है। अतः समुदाय के अंतर्गत और बाहर दोनों ही स्थान पर महिलाओं की स्थिति पतन की ओर जाती हुई दृष्टिगत होती है।

पृथकतवादी आन्दोलन (आदिवासी बहुल्य पृथक राज्य की माँग) :- आजादी के पश्चात् झारखण्ड में आदिवासियों द्वारा जल, जंगल, जमन की रक्षा अपने अस्तित्व को बचाने की कोशिश, आदिवासी बहुल प्रान्त के रूप में एक अलग राज्य की मांग ने झारखण्ड आंदोलन को जन्म दिया। शिक्षा, औद्योगीकरण, शहरीकरण के परिणाम स्वरूप आदिवासियों में कुछ बुर्जुआ वर्ग का उदय होने लगा था। वे ये लोग थे जिन पर लगातार हो रहे परिवर्तन का सकारात्मक प्रभाव पड़ा था। परन्तु इनकी संख्या काफी कम थी। आदिवासियों के शोषण तथा उनके अस्तित्व के उपर मंडरा रहे खतरे को समाप्त करने का वृहत रूप में एक नए आंदोलन की शुरूआत हुई। बिहार राज्य से पृथक झारखण्ड के रूप में एक अलग राज्य की मांग लोगों को एक सकारात्मक परिवर्तन की आशा थी, परन्तु दुर्गाभाग्यवश नए राजनैतिक परिवेश में समस्या को और बढ़ा दिया।

निष्कर्ष :- औद्योगीकरण एवं वैश्वीकरण के युग में सम्पूर्ण विश्व एक वैश्विक गाँव के रूप में परिवर्तित हो चुका है। जहाँ एक ओर औद्योगीकरण तथा शहरीकरण ने बाहृय लोगों के लिए विकास के नए-नए अवसर प्रदान किए, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ हर भौतिक सुख-सुविधाएँ उपलब्ध किये, वहीं दूसरी ओर अपनी जमीन तथा गाँव से विस्थापित तथा पलायन पर मजबूर किए गए आदिवासियों को भौतिक सुविधाएँ तो बहुत दूर की बात है, मूलभूत आवश्यकताएँ अर्थात् भोजन, पानी, मकान भी उपलब्ध नहीं है। बाहृय लोगों का पलायन कर इन आदिवासी क्षेत्र में आकर बसने के कारण आज आदिवासी सामाजिक व्यवस्था क्षत-विक्षत हो चुकी है। **आदिवासी** समाज में पलायन सदियों से चला आ रहा है और आज भी जारी है। परन्तु आज इस का स्वरूप पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा भयानक और विध्वंसकारी है।

आज आदिवासियों को स्वयं को इतना सशक्त करना होगा कि वर्तमान परिस्थिति में इन नवआगन्तुकों के बीच रहकर अपने अस्तित्व, अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को सहेजते हुए अपना चहुमुखी विकास कर सकें। विश्व दृष्टिकोण से भी देखा जाए तो आदिवासी संस्कृति अपने आप में एक बहुमूल्य धरोहर है। **वर्तमान** समय में जीवन में होने वाले विकास की प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता है, परन्तु इसके स्वरूप को बदलना एवं इससे होने वाले नकारात्मक परिणामों को रोकना आदि आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो हम अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को पूर्णरूप खो देंगे। विविधताओं से भरी इस आदिवासी संस्कृति को बचाना जितना देश या सरकार की जिम्मेदारी है उससे कहीं ज्यादा स्वयं एक आदिवासी के कर्त्तव्यों में निहित है।

सन्दर्भ

१. दास विक्टर, 'कैसल ओवर द ग्रेब्स, दी बैक्ग्राउण्ड ऑफ झारखण्ड एंड इट्स पीपल', इंटर इण्डिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १६६२, पृ०-४१

२. बाल, सुधीर, 'झारखण्ड एनसाइक्लोपीडिया', श्वेत श्याम तस्वीर खण्ड-३, रणेन्द्र, पलायन : उपनिवेशक प्रेतछाया की पड़ताल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००८, पृ०-१७३

३. वही, पृ०-१७४

४. रीड, जे०, 'फाइनल रिपोर्ट ऑन द सर्वे एण्ड सेटलमेंट ऑपरेशन, इन दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ राँची', (१६०६-१६१०), चैप्टर-II, ए स्केच ऑफ द हिस्ट्री ऑफ द डिस्ट्रिक्ट, रेवन्यू हिस्ट्री - 'डेवलपमेंट ऑफ द एडमिनिस्ट्रेशन, २६. द मोहमडन पीरियड', पृ०-१४

५. वही ३०. ब्रिटिश पीरियड, पृ०- १५

६. वही, ३४. 'सेटलमेंट डिक्लयर्ड परमानेंट', पृ०-१६

७. वही, ४८. इनसूरेक्शन ऑफ द कोल्स (१८३१-१८३२), पृ०- २२

८. वही, चैप्टर-II, पोपुलेशन, पृ०-१०

६. वही, पृ०-११

१०. बाल, सुधीर, वही, पृ०-१८१

११. विकास, समता एवं न्याय उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के युग में भारत के आदिवासी समुदाय, सेतु : सेन्टर फॉर सोशल नॉलेज एण्ड एक्शन, अहमदाबाद एवं माइनॉरिटी राइट्स ग्रुप, लंदन द्वारा आयोजित, नई दिल्ली, ६-६ अप्रैल, १६६८

१२. भारत के आदिवासियों पर उदारीकरण का प्रभाव, वही, पृ०-४

१३. हरिवंश, (संपा.) झारखण्ड दिसुम मुक्तिगाथा और सृजन के सपने, तलवार, वीर भारत, स्वायत्ता के लिए आदिवासियों को लम्बी लड़ाई लड़नी है, राजकमल प्रकाशन, पटना, २००६, पृ०- १३२

१४. हरिवंश, वही, शरण, रमेश, 'झारखण्ड : विकास की संभावनाएँ', वही, पृ०- २०२-२०२

१५. वही, पृ०-२०३

१६. बाल सुधीर, वही, सिंह, प्रभात कुमार, जनजातीय विकास : तथ्य एवं आंकड़े, वही, पृ०- २८५

१७. हरिवंश, वही, पृ०- १३४

१८. भारत के भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त की सैतीसवीं रिपोर्ट, जुलाई, १६६८ से जून, १६६६ तक परिचय

१६. जैन रोहित, 'आदिवासी युवाओं की आकांक्षाएँ और पीढ़ियों का टकराव', झारखण्ड की एक केस स्टडी, आदिवासी समता एवं न्याय, भारत के आदिवासी महिला-बालक पर वैश्वीकरण का प्रभाव, सेतु : सेन्टर फॉर सोशल नॉलेज एण्ड एक्शन, अहमदाबाद एवं माइनॉरिटी ग्रुप, लंदन द्वारा आयोजित गोलमेज सम्मेलन की रिपोर्ट, २-५ सितम्बर, २००१, हैदराबाद, पृ०-२२

२०. भारत के भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त की सैंतीसवी रिपोर्ट, वही, ix, x

२१. नई आर्थिक नीति का आदिवासी महिलाओं पर प्रभाव, विकास समता एवं न्याय, वही, पृ०- १६

२२. वही, पृ०- १६

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

रमा प्रसाद घिल्डियाल ''पहाड़ी'' जी के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

❑ श्रीमती रेखा

प्रगतिशील धारा के कथाकार श्री रमा प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' यथार्थ को उकेरने वाले सच्चे समाज लेखक हैं। उन्होंने समाज की कई समस्याओं को लेकर रचनाएं की हैं। उनकी रचनाओं में निम्नवर्गीय समाज की आर्थिक, पारिवारिक एवं चारित्रिक विसंगतियों का विश्लेषण मिलता है। प्रस्तुत आलेख में रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी जी के उपन्यासों में वर्णित सामाजिक चेतना को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

प्रगतिशील धारा के कथाकार श्री रमा प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' यथार्थ को उकेरने वाले सच्चे समाज लेखक हैं। उन्होंने समाज की कई समस्याओं को लेकर रचनाएं की हैं। उनकी रचनाओं में निम्नवर्गीय समाज की आर्थिक, पारिवारिक एवं चारित्रिक विसंगतियों का विश्लेषण मिलता है। समाज का सम्बन्ध मनुष्य मात्र से रहता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतः समाज में घटने वाली प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक घटनाएं मानव जीवन को प्रभावित करती हैं। इस रूप में प्रत्येक रचना का सम्बन्ध समाज से रहता है या यों कहना चाहिए कि प्रत्येक रचना समाज सापेक्ष होती है। 'पहाड़ी जी' के उपन्यास इसी कोटि में रखे जा सकते है।

प्रमुख कथाकार ''रमाप्रसाद घिल्डियाल'' पहाड़ी जी का जन्म श्रीनगर (गढ़वाल) के निकटवर्ती गांव डांग में सन् १९११ ई० में हुआ था। ''पहाड़ी'' जी के पिता का नाम गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल तथा माता का नाम सूरजी देवी था।''[1] पहाड़ी जी का परिवार संभ्रान्त परिवारों में गिना जाता था, परिवार के अधिकांश सदस्य उच्चासीन पदों पर विराजमान थे। पहाड़ी जी अपने छात्र जीवन से ही कथा साहित्य के प्रति गहरी अभिरूचि रखते थे। सन् १९३० में जब समूचे देश में गांधी जी का असहयोग आन्दोलन जोरों पर था तभी से कथा साहित्य में प्रवेश किया उन्होंने सौ से अधिक कहानियां लिखीं और कई उपन्यास भी लिखे, परन्तु तीन ही उपन्यास प्रकाशित हुए-सराय, चलचित्र और निर्देशक।

पहाड़ी जी समय-समय पर विविध साहित्यक क्षेत्रों से सम्बद्ध भी रहे, उन्होंने कहानी, उपन्यास, लेख, पत्रिकारिता आदि विधाओं पर लेखनी चलाई। इसलिए उन्हें कई साहित्यिक पुरस्कारों से अलंकृत किया गया। जैसे-''डॉ० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान १९८०-८१ ई० में, साहित्य भूषण उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ १९८४, अभिषेक श्री-श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया इलाहाबाद १९८७, साहित्य महोपाध्याय हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद १९८३, साहित्य वाचस्पति हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग १९८१ के अलावा अन्य पुरस्कार भी प्राप्त हुए। १९९७ को वे मोक्ष को प्राप्त हुए।

भले ही महान साहित्यकार संभ्रान्त परिवार से ताल्लुक रखते थे परन्तु गरीबी के चित्र उन्होंने अपनी आंखों से देखे एवं महसूस किये ये बयां करते हैं उनके उपन्यास। गरीबी एवं मध्यवर्ग के खुरदरे अनुभवों को व्यस्त किया है, अपनी रचनाओं के माध्यम से।

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज में रहता है। मनुष्य आपसी साहचर्य से मिलजुलकर जीवन के अंतिम क्षण तक समाज से सम्बन्धित रहता है। मैकाइवर तथा पेज के अनुसार-''समाज का तात्पर्य सामाजिक सम्बन्धों के जाल से है।''[2] तो ड्रेसलर तथा विलिस के अनुसार-''समान संस्कृति वाले और हम सब एक हैं मानने वाला जनसमुदाय समाज कहलाता है।''[3] थिओ डोर केपलों का कथन है-''सभी उम्रवाले स्त्री पुरूषों की स्वयं पूर्ण और स्वयं सातत्यशील सामाजिक व्यवस्था समाज कहलाती है।''[4]

''चेतना'' रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के प्रति मानव की जागरूक आत्मा की प्रतिक्रिया होती है जो शैवाल जाल को हटाकर चेतना की निर्मत जल राशि तक पहुंचना चाहती है।''[5]

अतः कहा जा सकता है कि किसी भू-प्रदेश पर स्थित समान संस्कृति एवं एकता की भावना रखने वाले लोगों के बीच पारस्पारिक सम्बन्धों की व्यवस्था करना एवं रूढ़ियों, प्रथाओं एवं अंधविश्वासों के प्रति विद्रोह करना ही सामाजिक चेतना कहलाती है।

स्वतंत्रता के उषाकाल से ही समाज उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग में विभाजित हो गया था। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था तथा औद्योगिक प्रगति के कारण पूंजीवाद का निर्माण हुआ। दूसरे शब्दों में समाज का वर्गीकरण धनार्जन के आधार पर किया

❑ शोध अध्येत्री हिन्दी विभाग, हे.न.ब. केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तराखण्ड)

गया। धनिकवर्ग ही उच्चवर्ग की श्रेणी में आता है। मुटठी भर धनिक लोगों द्वारा मध्य एवं निम्नवर्ग पर अधिकार जमाया जाता है। यह हमें पहाड़ी जी के उपन्यासों में प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलेगा 'निर्देशक' उपन्यास में। उपन्यास में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के उबाकाल की सामाजिक पृष्ठभूमि का जागरूक चित्रण है। उस समय युवापीढ़ी का एक समुदाय सशक्त क्रान्ति पर आस्था रखता था, तो देश में गांधी जी के आगमान के साथ अंहिसा की भूमिका का प्रयोग सशक्त रूप में उभर रहा था। लेखक ने उस समय का सामाजिक चित्रण और युवा मनोस्थिति का सफलता के साथ विश्लेषण किया है।''[६]

सन् १६३० से जब गांधी जी का असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ तभी से लेखक ने समाज के यथार्थ को देखा और महसूस किया जिसका वर्णन 'निर्देशक' उपन्यास के क्रान्तिकारी नवीन के माध्यम से ज्ञात होता है। देश में आर्थिक एवं सामाजिक वैषम्य चरम पर था। इन सबके परे तो सबसे बुरी दशा जनसाधारण की थी। वह सड़क पर आ गया था, गांवों से बेइन्तहां पलायन हो रहा था मध्यवर्ग रोटी, कपड़ा, मकान महंगाई आदि समस्याओं की जंजीरों में जकड़ा था। सामाजिक यथार्थ का वर्णन निर्देशक, सराय, उपन्यास के साथ ही क्रान्ति के स्वर भी मुखरित हुए है इसकी पीड़ा ''पहाड़ी'' जी के उपन्यासों से अवगत होती है। निर्देशक उपन्यास के मुख्य पात्र नवीन में लेखक के विचारों का प्रतिनिधित्व मिलता है। नवीन समाज में क्रान्ति लाना चाहता है। समाज में पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर समानता लाना चाहता है। इसके लिए वह शहर की ओर रूख कर एक युवावर्ग को क्रान्तिकारी विचारों से ओतप्रोत कर सामन्तवाद के खिलाफ आन्दोलन छेड़ता है। शहरों में स्वदेशी, विदेशी, बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने उद्योगों का जाल सा बिछा दिया था मगर व्यापार उद्योग ज्ञान-विज्ञान, कृषि-सुधार, भूमि-सुधार, शिक्षा आदि की उन्नति के लिए नए कीर्तिमान स्थापित किए जाने लगे। लेकिन जनसाधारण को इसका कोई लाभ नहीं मिला। देश का मजदूर वर्ग एवं निम्न वर्ग कीड़े-मकोड़े की तरह जीवन जी रहा है। उद्योग में मजदूर वर्ग के एक व्यक्ति के घर का वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया-''एक क्वार्टर के दरवाजे को उसके साथी ने खटखटाया वह खुल गया, धप्पे लगी धोती पहने कोई औरत दरवाजा खोलने आई। चारपाई पर मैला कपड़ा बिछा हुआ था। उस पर एक बच्चा सो रहा था। छोटे दालान में धुंआ निकलता जा रहा था। एक ओर टाट का परदा लगाकर टट्टी बनाई गई थी। उनकी बदबू आंगन के भीतर महक रही थी।........... कमरे में सीलन की महक चलने लगी। मां शायद बच्चे होने के बाद रोगी हो गयी होगी, केदार बाबू की पोशाक डोरी पर टंगी हुई थी। एक ओर खपरैलों से पानी टपकता होगा। वहां पर पानी जमा करने के लिए लोहे का तसला रखा हुआ था। दीवालें लाल धब्बों से भरी हुइ थी। वह खटमलों के साथ वाले युद्ध का अवशेष है चारों ओर ऐसा वातावरण था जो कि आशापूर्ण नही था।''[७]

निर्देशक उपन्यास का पात्र नवीन शहर के गली-गली घूमता है। सही मायनों में शहर के निम्न वर्गीय समाज को सही रूप में तभी से उसने जाना-''वहां बड़ी गन्दगी थी। पतनालों पर पड़ी हुई दरारों से पानी की धाराएं बह रह थीं। वहां तेज बदबू थी कहीं-कहीं कूड़े के ढेर थे। कही मेहतरानियों ने अपनी टोकरियां खुली छोड़ दी थी, जिन पर मक्खियों के झुण्ड बैठे हुए थे......... कही भात पड़ा था कही तरकारी के छिलके कहीं सड़ी चीजें किसी पिछवाड़े की खिड़की से फेंक दी गयी थीं। जिस नरक की सृष्टि कभी ब्राह्मणों ने अपनी धर्म पुस्तकों में की उसका यह सही रूप था।.......... टूटे कुल्हड़ के टुकड़े, टीने के डिब्बे, कांच के बर्तन असावधनी से फेंके गए थे। जो नालियां थी उनमें बहुत गंदला पानी बह रहा था।''[८] यह समाज का निम्नवर्ग था जहां ये कीड़े-मकोड़ों की तरह अपना जीवन जीते हैं और वहीं मिट जाते हैं।

जिन सपनों की तलाश में जनसाधारण जीता रहा आजादी के ६५ साल बाद भी जारी है। पहाड़ी जी ने जनसाधारण का चित्रण कर उनके प्रति सहानुभूति भी दिखाई और उन्नयन के लिए प्रयत्न किए निम्नवर्ग में चेतना लाने के लिए स्वयं नवीन आन्दोलन की राह पकड़ लेता है। वह देखता है, पूंजीपति लोग 'मजदूरों का खून चूस रहे हैं', इस बात को चेतित करने के लिए तत्कालीन समाज का वर्णन लेखक ने किया-नवीन ''पूंजीपतियों को डाकुओं के गिरोह से कम नही पाता है, जो दिन-दहाड़े डाका डालते हैं। शासन और कानून उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। सन् १८५७ ई० का विद्रोह भारतीय इतिहास को बड़ा सबक था, वहीं मध्यकालीन भारत का आर्थिक जीवन समाप्त हो गया, नए रूप से साम्राज्यवाद ने ऐसे समाज का निर्माण किया जहां वह पनप सकें। जिसमें आज भारतीय परिवार की औसत सालाना आय ५० रू० मात्र रह गई।''[६] उपन्यास का नायक रूसी क्राान्ति से सीख लेता है, जिससे समाज में नूतन परिवर्तन आया था। ''सन् १६१७ ई० की रूसी अक्टूबर क्रान्ति ने मानवता के इतिहास में एक नया

अध्याय जोड़ दिया था। वे एक नये समाज की स्थापना करने में सफल हुए थे।''[१०] इसीलिए समाजवाद लाने के लिए ''संसार के मजदूरों एक हो जाओ'' का नारा उपन्यास में पूंजीपतियों को नष्ट करने के लिए मुखर होता दिखता है चूंकि मजदूर वर्ग समाज के निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और पूंजीपति लोग अभिजात वर्ग का। लेकिन अभिजात वर्ग को उच्चवर्ग बनाने मे निम्नवर्ग के किसान, मजदूर अपने शरीर का सभी परिश्रम न्यौछावर कर देते हैं जिसकी तुलना लेखक ने चीटियों, मधुमक्खियों एवं दीमक से की है-''मिलों का एक बड़ा ढांचा है। उनके भीतर चीटियों की भांति मजदूर काम करते हैं। प्रकृति का साधारण नियम है अपने काम का उपयोग स्वयं करना, चीटियाँ या मधुमक्खियां अपना श्रम अपने परिवार की रक्षा के हेतु संचित करती हैं। किन्तु नागवंश के व्यापारी अपनी वंश रक्षा में चतुर हैं। दीमक अपने श्रम से रहने के स्थान का निर्माण करती है। लेकिन एक दिन चुपचाप सांप वहां अपना अधिकार जमा देता है।''[११] फिर व्यंग्य कर लेखक ने धनीवर्ग की तुलना सांपों से कर चेतना जगायी है-''नाग-राजा की पूजा वर्षों से चली आई है, सांप उस बांबी पर अधिकार जमा कर चुप नहीं रहता। वह आस-पास पेड़ों पर चढ़ चिड़ियों के घोसलों में घुसकर उनके बच्चों को खा जावेगा। ''वह अपने साम्राज्य का पूरा स्वामी है।''[१२] कहने का अर्थ यह है कि जिनके श्रम के बिना बड़ी-बड़ी मिलें, ईट, चूना, सीमेंट और लोहे के ढांचे के अतिरिक्त कुछ नही है। वह शरीर निर्जीव है। उसमें प्राण डालता है मजदूर। उनको दबाकर हिंसा की प्रवृत्ति में प्रबल धनीवर्ग शोषण के तेज धार से उनको चूसते हैं।

स्त्री सकल विश्व की जन्मदात्री है। भारतीय संस्कृति में नारी को आदरणीय पूजनीय बताया गया है तथा नारी का घर में दीपक के समान स्थान है। साहित्य, संस्कृति आदि में नारी को जहां पूजनीय बताया गया है वहीं समाज में नारी का सदा निरादर हुआ है। उसकी हर युग में प्रताड़ना की गई है उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया। इस बात की पुष्टि 'पहाड़ी जी के सराय उपन्यास में होती है। एक दिलावर नामक गुण्डा अचानक दिनेश नामक सभ्य वकील से मिलता है और अपनी रखैल के बारे में बताते हुए कहता है-''बाबू जी एक टखहारी को कुछ दिनों के लिए घर में डाल लिया है। वह भागना चाहती है वह मेरे डर के मारे नहीं भागती। मैने समझा दिया कि भागेगी तो उसकी नाक काट डालूंगा।....... वह इसलिए ज्यादा हल्ला-गुल्ला न मचा कर चुपचाप पड़ी रहती है।''[१३] 'निर्देशक' उपन्यास में भी मास्टर जी की बेटी को गांव का एक सेठ उठाकर ले जाता है चुपचाप अन्याय सहते हुए गांव के लोग व लड़की के माता-पिता चुप रहते हैं। नारी के बिना संसार अधूरा है। प्रकृति निर्मित अप्रत्यक्ष रूप से नर-नारी एक दूसरे में अपने जीवन की पूर्ति पाते हैं लेकिन यही जीवन जब वेश्यालयों एवं रखेलों तक ही सीमित रहता है तो जीवन नरक बन जाता है ''नारी का वह वेश्या वाला रूप कभी नवीन को नहीं भाया। सौन्दर्य के भद्दे प्रदर्शन के बनावटी हाव-भाव और वह झूठा प्रेम का सौदा सारा का सारा वातावरण उसे अस्वस्थ मिलता है। वह मानव शरीर का सौदा।........ वे लड़कियां आजीवन कैदी का सा जीवन व्यतीत करती है। वह दासता औरतों की अब परिवारों के भीतर भी प्रवेश कर रही है। मानवता का यह शाप।''[१४]

समकालीन समाज में नारियों की विकासावस्था होने से पहले गर्भाधान के बोझ के नीचे दब जाती है। उसे असामयिक मातृत्व का भार उठाना पड़ता है और यदि वह दुःसमाज की भोग्या बनी है तो आश्रय के लिए भी दर-दर भटकना पड़ता है या फिर मायके में रहने पर मजबूर होना पड़ता है।-''लड़की के उस मातृत्व पर वह सोचने सा लगा, अब उसमें एक लाज पाई थी। वह एक ऐसा कलंक था जिसे आसानी से वह नहीं बिसार सकती थी। वह अपने विद्रोह को न दबा सकते और समाज को चुनौती देने के लिए ही शायद दूसरे लड़के के साथ एक सप्ताह गायब रही।......... यदि बच्चा पेट में न होता शायद वह आत्महत्या कर लेती। नरक की तस्वीरों ने उसे डराया होगा। बच्चे के बाद जीवन में परिवर्तन आया। वह मोह की नागफांस में फंस गई। बच्चा बहुत सुन्दर था। अपने अज्ञेय पिता की भांति उसका चेहरा और मां की सी बड़ी-बड़ी आंखें थी।''[१५]

भारतीय समाज व्यवस्था में विवाह एक संस्था है। मगर वह संस्कार न होकर एक बंधन है क्योंकि सुविधाओं से ज्यादा समस्याओं का सामना विवाह के बाद करना पड़ता है। इसलिए पति-पत्नी का रिश्ता पैरों में एक बेड़ी या जंजीर बन जाता है। पहाड़ी जी के यही विचार चलचित्र उपन्यास की करूणा पर सटीक बैठती है। जिसे महेश नामक व्यक्ति प्रेम करता है लेकिन करूणा के विवाहित होने के कारण प्रेम में असफल रहता है-''सामर्थ होती करूणा तुमकों बेड़ियां पहनाकर अपने पास रख लेता। इस समाज का ख्याल तभी अनायास हो आता है। एक नैतिक रूकावट उसमें है। तुम मुझे पापी तो नहीं समझती हो करूणा कुछ समझ लेना। मैं प्यार को नही मानता, प्रेम भी अमीरों के चकल्लस की चीज है मुझे अपनी सी एक

लड़की चाहिए।"[16]

पहाड़ी जी की दृष्टि में गृहस्थी में नारी का बहुत महत्व है क्योंकि पति-पत्नी के मेल से ही विकास सम्भव है। लेकिन पुरूष या स्त्री के अवैध सम्बन्धों से नारी की अवहेलना ही होती है-"प्रेमिका की बांहे बहुत प्यारी लगती हैं। वे दिल की परेशानी को सहला लेने की शक्ति रखती हैं-पत्नी नहीं। इस पहल के कई रंगीन चित्र हैं। पति एक सामाजिक समझौता है प्रेमी एक वैज्ञानिक समझौता।"[17] सराय उपन्यास में भी मिस्टर सिंह गृहस्थ होने के बावजूद रेखा नामक युवती से अवैध सम्बन्ध रखते है। पत्नी उन्हें सुन्दर नही दिखती-"मिस्टर सिंह को लगा पत्नी सुन्दर है आज तक जो कमी थी वह हट गई है वे बड़ी देर तक पत्नी को देखते रहे फिर सोचा रेखा अधिकार चाहती है पत्नी नही, पत्नी का नारीत्व बच्चे और पति तक ही सीमित है उसे और अधिक चाहना नही, वह गृहस्थी से सन्तुष्ट है।"[18]

"पहाड़ी" जी ने नारी के विभिन्न रूपों का वर्णन कर नारी को प्रेम, त्याग, संघर्ष, परिश्रम की मूर्ति ठहराया है। पहाड़ी जी स्त्रियों की अवहेलना एवं अपमान का ब्यौरा न देकर उनकी विभिन्न समस्याओं की अभिव्यक्ति करते हैं। नारी समाज को केवल भोग्या समझकर ही उपयोग किया गया-"जिनके पास पैसा है वह नारी को ऐश आराम का सामान समझते हैं उनके लिए नारी एक अच्छी खुराक है यह शोषण भी सही एक दरजा इस व्यापार से पेट पालता है। हम पुराण पंथी हैं वेदों को देवताओं की वाणी कहेंगे। देवता साधारण पुरूष ही थे। अनाचार की घटनाओं को लोगों ने धर्म के आडम्बर से ढक लिया है। इसे सामाजिक पाप कहना कठिन है और नारी को अनाचारिणी कह देना सरल। यदि हम वास्तविक कारण ढूंढें तो जान पड़ेगा कि हमारी धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के बीच कोई सीधी लड़ियां नही है। सारा समाज धर्म और पैसे वालों के इशारे पर चलता है।"[19]

"पहाड़ी" जी ने बहुविवाह पर भी व्यंग्य कसते हुए कहा है कि नारियों पर गुलामी की जंजीरें पहनाई जाती हैं। समाज में नारी का पत्नी रूप सबसे लाचार एवं पददलित है। नारी घर में एक दासी बनकर रहती है -"आज वह देखती है कि साधारण सामान की तरह छः सात नारियां रखने का अधिकार पुरूष को है। मानो बिल्ली, कुत्ते पाले गये हों। सामान्तवाद के युग में यह प्रथा तेजी से बढ़ी है।"[20]

यही नहीं "पहाड़ी" जी ने समाज में व्याप्त भुखमरी, अकाल एवं वर्गभेद का भी वर्णन बखूबी किया है। अभाव के साथ अतिरेक का चित्रण कर दिया कि देश में एक ओर लोग दाने-दाने को मोहताज हैं और दूसरी ओर जघन्य विलासिता -"एक धनी परिवार अपने नालायक लड़कों पर लाखों रूपये खर्च कर देगा। किन्तु दूसरा गरीब परिवार अपने होनहार बच्चों की परवरिश तक नहीं कर सकता।"[21]

"पहाड़ी" जी के उपन्यासों में जो कुछ लिखा गया है वह स्वयं उन्होंने अपनी आंखों से देखा एवं महसूस किया है। उनके उपन्यासों में यथार्थ दिखता है। उन्होंने निम्न एवं मध्यवर्ग की भावनाओं एवं संवेदनाओं को मुखरता से उकेरा, तथा समाज के पूंजीपतियों, नारियों का अनादर करने वालों, बहुविवाह आदि समाज की तमाम अनियोजित बुराइयों पर डंके की चोट पर वार किया है। उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी जो बात उन्होंने १९५० के बाद कही वह आज भी समाज में व्याप्त है। इसी दिशा एवं दशा को चेतित करने के लिए अपने अनुभव भी प्रदान किए है।

सन्दर्भ

१- शर्मा ब्रह्मदेव, 'गढ़वाल में हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास', राजस्थानी ग्रन्थाकार, २०००, पृ. १६४
२- उद्‌धृत सांलुखे, सर्जेराव-समाजशास्त्रीय मूलभूत संकल्पना, १९९९ -पृ. ६८
३- वहीं, पृ.६८
४- वहीं, पृ.६८
५- सिंह जवाहर लाल, 'भगवती चरण वर्मा के उपन्यास और युग चेतना', कला प्रकाशन, वाराणसी, २००० पृ.११
६- पहाड़ी रमा प्रसाद घिल्डियाल 'निर्देशक' प्रकाश गृह इलाहाबाद, १९८१ (उपन्यास के मुख भाग से)
७- पहाड़ी रमा प्रसाद घिल्डियाल 'निर्देशक', पूर्वोक्त, पृ.८१-८३
८- वहीं, पृ.२२१
९- वहीं, पृ.१३३
१०- वहीं, पृ.६७
११- वहीं, पृ.१२५
१२- वहीं, पृ.१२६
१३- पहाड़ी राम प्रसाद घिल्डियाल 'सराय', प्रकाश गृह, इलहाबाद, पृ.२३८
१४- पहाड़ी राम प्रसाद घिल्डियाल 'निर्देशक', पूर्वोक्त, पृ.१९७
१५- वहीं, पृ.१९२
१६- पहाड़ी राम प्रसाद घिल्डियाल 'चलचित्र', प्रकाश गृह, इलहाबाद, पृ.१३०
१७- पहाड़ी राम प्रसाद घिल्डियाल 'सराय', पूर्वोक्त, पृ.६५
१८- वहीं, पृ.५५
१९- वही, पृ.१३९
२०- वही, पृ.१३७
२१- पहाड़ी जी 'निर्देशक', पूर्वोक्त पृ.५०

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

दिल्ली में शहरीकरण के कारण पहचान खोते गाँव

❑ डा. रेखा रानी

प्रस्तुत शोध पत्र दिल्ली में शहरीकरण के कारण पहचान खोते गाँवों के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि शहरीकरण के कारण बहुत तेजी से सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन हुए जिसके परिणामस्वरूप दिल्ली का भी विकास हुआ। इसके अनेक अच्छे बुरे प्रभाव सामने आये हैं। शहरीकरण के कारण गाँव अपनी पहचान खो रहे हैं। अतः गाँव के अस्तित्व को बचाये रखने के लिए सरकार को प्रयास करने चाहिए। इन गाँवों की पहचान को बनाए रखने के लिए यह जरूरी है कि जिस गाँव की जमीन पर किसी भी प्रकार का विकास कार्य, आवासीय कॉलोनी, औद्योगिक क्षेत्र या किसी भी क्षेत्र में ढांचागत परिवर्तन प्रस्तावित है तो उन योजनाओं का नामकरण उस गाँव के किसी महापुरूष या स्वतंत्रता सेनानी या किसी क्षेत्र में उच्च उपलब्धियों को प्राप्त करने वाले व्यक्ति के नाम पर होना चाहिए। तभी हम इन गाँवों की संस्कृति, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक रीति-रिवाजों की सकारात्मक सोच को आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचा पाएंगे, और तभी हम इन गाँवों की पहचान को बचाये रख सकते हैं।

विश्व में मुख्यतः तीन प्रकार की क्रान्तियाँ हुई हैं-सामाजिक क्रान्ति, आर्थिक क्रान्ति एवं औद्योगिक क्रान्ति। इसी के साथ-साथ अन्य क्रान्तियां भी दृष्टिगोचर हो रही हैं जैसे-कृषि क्षेत्र में क्रान्ति व परिवहन के क्षेत्र में क्रान्ति। परन्तु इस समय विश्व में एक नई क्रान्ति बड़ी तीव्रता से बढ़ रही है जिसे शहरी क्रान्ति कहते हैं जो पूरे विश्व में चमत्कार की तरह बढ़ रही है। ऐसा विश्व के धरातल पर कोई भी देश नहीं है जहाँ पर शहरीकरण तेजी से न हो रहा हो। इस समय विश्व में शहरीकरण का विस्फोट सा होता जा रहा है। विश्व स्तर पर सभी विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि शहरीकरण का मुख्य कारण मानी जाती है। इसी प्रकार बढ़ती जनसंख्या एवं उसी के आधार पर बढ़ते शहरीकरण की गूंज ने सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में एक क्रान्ति का काम किया है। इससे विकासशील देशों के कन्धों पर विशेष बोझ बढ़ता जा रहा है कि किस प्रकार इस जनसंख्या को अपने सामर्थ्य के अनुसार व्यवस्थित किया जाये तथा उसके संरक्षण के लिए कौन-कौन से उपाय किए जायें। आज के इस परिवेश में ये समस्याएं बहुत बड़ा रूप धारण करती जा रही हैं। आज संसार के अंदर शहरीकरण बड़ी ही तीव्रगति से प्रसारित हो रहा है,जिसके कारण समाज में सांस्कृतिक परिवर्तन भी बड़े स्तर पर हो रहा है, इसी कारण व्यक्ति की विचारधारा में भी व्यापक परिवर्तन देखने को मिलते हैं।[1]

शहरीकरण ने विश्व को किस प्रकार प्रभावित किया है इसको समझने के लिए यह आवश्यक है कि ग्रामों के साथ-साथ नगरों का विस्तृत अध्ययन किया जाए क्योंकि औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप व्यक्तियों का ग्रामों से नगरों की ओर आवागमन बढ़ा है। इससे नगरों की जनसंख्या में वृद्धि हुई है। दूसरे शब्दों में उद्योग धन्धों का विकास होने के कारण व्यक्ति अपने समुदायों को छोड़कर काम की तलाश में नगरों में जाकर निवास करने लगते हैं। वास्तव में शहरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी समाज में उद्योग-धन्धों के विकास में अथवा किसी अन्य कारण के परिणामस्वरूप नगरों का विकास होता है। इसी प्रकार शहरीकरण का अर्थ एक दृष्टि में औसत शहरी जनसंख्या का एक समय सीमा के अंदर विस्फोटक वृद्धि से है। जब शहरी जनसंख्या तेजी से बढ़ती जाती है तो वह प्रक्रिया शहरीकरण कहलाती है।

आधुनिक विश्व में लोगों की जीवन शैली में बड़े-बड़े परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन अनेक प्रकार के आंकड़ों का अवलोकन करने पर सामने आते हैं। जैसे कि जनसंख्या वृद्धि, भौगोलिक पर्यावरण में परिवर्तन, प्राकृतिक एवं सामाजिक जीवन शैली में परिवर्तन, दुर्घटनाओं के विषय में शोध, नये-नये वातावरण में लोगों का प्रवासीकरण, सांस्कृतिक सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्ध, दूरसंचार के साधनों में क्रान्ति और सामाजिक आंदोलन तथा राजनीतिक क्षेत्र में बड़े स्तर पर जो क्रान्तियां आ रही हैं आदि। पुराने समाज के रीति-रिवाजों में परिवर्तन शहरीकरण के कारण दिखाई देता है।[2]

शहरीकरण की इस प्रक्रिया में प्रवासीकरण की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है जो विश्व में सामाजिक,आर्थिक एवं अन्य संस्थागत परिवर्तन ला रही है। ऐसा कहा जाता है कि मानव के जीवन में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों के क्षेत्र में परिवर्तन लाने में प्रवासीकरण ही उत्तरदायी है। जब

❑ **प्रवक्ता राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, गुडगांव (हरियाणा)**

कोई व्यक्ति या समूह अपने स्थायी या पारम्परिक निवास से किसी अन्य क्षेत्रों में बसने के लिए जाते हैं तो उस स्थान की जनसंख्या के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक परिस्थिति में परिवर्तन आता है। भारत के ऐतिहासिक भवन जैसे कुतुबमीनार, ताजमहल, लाल किला, जामा मस्जिद (दिल्ली) शाही मस्जिद (लाहौर) और मुगल उद्यान, शालीमार, निशांतबाग, चश्मेशाही, नसीम बाग (श्री नगर) में, इसी प्रवासीकरण की प्रक्रिया द्वारा भारत में आए लोगों व शासकों द्वारा निर्मित किए गए थे।

यूरोप में सर्वाधिक नगरीय वृद्धि की अवस्था १७२६ ई० की औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात पायी जाती है। सन् १८०० में यूरोप में कोई भी १०००००० की आबादी वाला नगर नहीं था। यद्यपि लंदन की आबादी केवल ६५०००० थी व पेरिस की ५ लाख थी। सन् १८५० तक पेरिस नगर की जनसंख्या १० लाख व लंदन की २० लाख के अंक को पार कर गई। सन १६०० तक इंग्लैंड,वेल्स व जर्मनी में अधिकांश जनसंख्या नगरीय थी। फ्रांस व स्वीडन सहित यूरोप के शेष देशों में ५० प्रतिशत जनसंख्या नगरीय थी।[३]

दिल्ली में शहरीकरण

भारत के समस्त नगरों में दिल्ली महानगर का अपना एक विशेष स्थान है जो महाभारत काल से ही अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे हुए है। सच कहा जाए तो दिल्ली शहर भारत की घरोहर है। यहाँ अनेक मतों और सम्प्रदायों का संगम है। यदि प्राचीन एवं मध्ययुगीन शहरों का अवलोकन किया जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि इन सभी में दिल्ली का विशेष महत्व है। यदि परम्परावादी अवलोकन किया जाये तो पता चलता है कि दिल्ली में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ७ शहर गिने जाते हैं। परन्तु यदि छोटे-छोटे कस्बों, किलों तथा गढ़ी व गढ़ों की गिनती की जाये तब यह संख्या कुल मिलाकर १५ तक हो जाती है।

जिस क्षेत्र में ये किले, कस्बे व गढ़ फैले हुए हैं उसकी सीमाएँ शाहजहानाबाद (आज की पुरानी दिल्ली) से रामपिथौरा व कुतुबमीनार तक मानी जाती है। दिल्ली इस काल में विशेष रूप से भारत की सामाजिक, आर्थिक,सांस्कृतिक व राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र है। इस शहर की बदलती व बढ़ती जरूरतें दिल्ली के विस्तार में मुख्य भूमिका निभा रही हैं। इस शहर के विस्तार में सितम्बर १६६२ में बना मास्टर प्लान विशेष भूमिका निभा रहा है। दिल्ली के व्यवस्थित विस्तार व विकास के लिए मास्टर प्लान तैयार किया गया जिससे यहाँ की बढ़ती आबादी के बीच स्थान सम्बन्धी बँटबारे, मकानों के बँटबारे, रोजगार,व्यापारिक केन्द्र, सार्वजनिक सुविधाएँ तथा कुछ अन्य योजनाओं के बीच समन्वय स्थापित करने की कोशिश की गई है। इस समय दिल्ली भारत की राष्ट्रीय राजधानी है। यह अनेक साम्राज्यों व शासको ंकी राजधानी भी रही है। ब्रिटिश सरकार ने १६११ में दिल्ली को राजधानी के रूप में विकसित किया। सन १६११ की जनगणना तक इस महानगर की जनसंख्या ४,१३,८५१ थी, जो बढ़कर १६६१ में २६,५८,६१२, १६८१ में ६२,२०,४०६, २००१ में १,३८,५०,५०७ हो गई। इन आकड़ों के अध्ययन से पता लगता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही इस महानगर की जनसंख्या में लगातार भारी वृद्धि हो रही है। सन २०११ की जनगणना के अनुसार दिल्ली की जनसंख्या १,६७,५३,२३५ है। दिल्ली विश्व के बड़े-बड़े शहरों में विशेष स्थान रखती है।[४]

दिल्ली में पहचान खोते गाँव : दिल्ली भारत की राजधानी है और हर क्षेत्र में तीव्र गति से विकसित हो रही है। इसमें भारतवर्ष के समस्त राज्यों से लोगों का पलायन हो रहा है लोग यहां के विकास, औद्योगिक क्षेत्र, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसी मूलभूत सुविधाओं के आसानी से उपलब्ध होने के कारण व राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र होने के कारण दिल्ली में बसना अपना सौभाग्य समझते हैं। देश के अन्य राज्यों से लोग यहाँ आकर बसे है और आवासीय कालोनियों में गुणात्मक वृद्धि हुई है। वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार दिल्ली में भारत के विभिन्न प्रान्तों से भारी संख्या में प्रवासी आए। जिससे शहरी व ग्रामीण जनसंख्या का स्वरूप बदला है। १६११ की जनगणना के अनुसार दिल्ली की कुल जनसंख्या ४ लाख १३ हजार ८५१ थी, जिसमें २,३७,६४४ शहरी व १,७५,६०७ ग्रामीण जनसंख्या थी। शहरीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण यह आंकड़ा १६६१ में २३,५६,४०८ शहरी व २,६६,२०४ ग्रामीण, १६८१ में ५७,६८,२०० शहरी व ४,५२,२०६ ग्रामीण, २००१ में १,२६,०५,७८० शहरी व ६,४४,७२७ ग्रामीण, जनसंख्या के रूप में सामने आया और २०११ की जनगणना के अनुसार दिल्ली की कुल जनसंख्या १,६७,५३,२३५ है। जिसमें ग्रामीण जनसंख्या मात्र २.५ प्रतिशत है।

जब वैध या अवैध रूप से आवासीय कालोनियों, औद्यौगिक इकाइयों व अन्य ढाँचागत योजनाओं का विस्तार हुआ तो निश्चित रूप से दिल्ली के कृषि योग्य क्षेत्र में भारी कमी आई और दिल्ली के गांव अपने आप में लाल डोरे के अन्दर सिमट कर रह गए। इन गावों की जमीन पर बसी वैध या अवैध

कालोनियाँ, औद्योगिक इकाईयाँ व ढांचागत विकास सरकारी रिकार्ड व दस्तावेजों में स्थान पा रहे है और दिल्ली के गाँवों की पहचान लुप्त हो रही है। दिल्ली का विकास अपने आस-पास के देहाती क्षेत्रों को दिनों दिन लीलता जा रहा है जिससे दिल्ली का देहाती रंग उड़ रहा है और देखते ही देखते दिल्ली के समस्त देहाती क्षेत्र पर शहरी रंग नजर आने लगा है।

दिल्ली में कुल ३६६ गाँव हैं। परंतु पिछले दशक में जैसे ही कृषि क्षेत्र में वैध या अवैध पुनर्वास बस्तियाँ बसनी आरम्भ हुई तो उसी के साथ बहुत से गाँवों को मास्टर प्लान के अनुसार नगरीय सीमाओं में सम्मलित किया गया और देहात की आबादी कम होने लगी। यह क्रम आज भी जारी है। अध्ययन से पता चलता है कि कुल जनसंख्या का २.५ प्रतिशत ही ग्रामीण आबादी है। इस प्रकार शहरीकरण के कारण दिल्ली के गाँव व ग्रामीण आबादी अपनी पहचान खोते जा रहे हैं। जब कोई व्यक्ति, समूह, संसार की कोई वस्तु या इकाई अपनी पहचान खो देती है तो उनका अस्तित्व खतरे में आ जाता है। उदाहरण के रूप में राष्ट्रपति भवन, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली क्षेत्र, दिल्ली कैंट आदि के बारे में आसानी से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। जिन गाँवों की जमीन पर यह स्थान विकसित किए गए उनकी जानकारी के लिए गहन अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है। शायद ही कोई जानता है कि राजा जी का बाजार, जयसिंहपुरा, रायसीना, मालचा गाँव को उजाड़ कर यह स्थान विकसित किए हैं और इन गाँवों में बसने वाली आबादी के जाति, धर्म, संस्कृति व देश के प्रति बलिदान के बारे में कोई नहीं जानता। दिल्ली में द्वारका व रोहिणी जैसे उपनगरों में आवासीय परियोजनाओं की वजह से बहुत से गाँव अपनी पहचान खोने लगे हैं।

हम द्वारका उपनगरी का अध्ययन करने पर पाते हैं कि यह दक्षिण-पश्चिम दिल्ली का उपनगर है जो २९ सैक्टरों में बंटा हुआ है। इस उपनगर के सैक्टरों को बसाने के लिए जिन गाँवों की जमीन का अधिग्रहण किया गया उनके बारे में आज दिल्ली के निवासियों को शायद ही कोई जानकारी हो। प्रस्तुत अध्ययन हेतु दिल्ली की दस अलग-अलग आवासीय कालोनियों में जाकर दस-दस व्यक्तियों से उस गाँव के बारे में जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की कि किस गाँव की जमीन पर यह आवासीय कालोनियां बसी हैं लेकिन कोई भी व्यक्ति सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पाया। इससे भी अधिक द्वारका के इन सैक्टरों में रहने वाले लोग शायद ही यह जानते हों कि वे किस गाँव की जमीन पर बसे हैं। उदाहरण के रूप में सैक्टर-२३ पोचनपुर गाँव की जमीन पर, सैक्टर एक नसीरपुर गाँव की जमीन पर व सैक्टर ८ व ६ बागडोला गाँव की जमीन पर बसे हुए हैं। अगर हम किसी से यह पूछते हैं कि सैक्टर २३ कहाँ है तो इसका हमें आसानी से उत्तर मिल जाता है। लेकिन पोचनपुर गाँव के बारे में पूछने पर लोग इसका उत्तर नहीं दे पाते । इसी प्रकार डिफेन्स कालोनी, ग्रेटर कैलाश, राजौरी गार्डन, राजेन्द्र नगर आदि के बारे में आसानी से जानकारी ली जा सकती है। जबकि उन गाँवों के बारे में लोगों को जानकारी नही है जिन गाँवों की जमीन पर यह आवासीय कालोनियाँ बसी है।

निष्कर्ष - शहरीकरण ने आज पूरे समाज की आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन ला दिया है। इसके कारण गाँव अपनी पहचान खो रहे हैं। अतः गांव के अस्तित्व को बचाये रखने के लिए सरकार को प्रयास करने चाहिए। गाँव के मूल नाम वास्तव में हमारी सांस्कृतिक विरासत होते है अतः इनका संरक्षण अन्य विरासतों की तरह आवश्यक है। वैसे भी मुगल काल से ही राजस्व दस्तावेजों में गाँव ही मूल आवासीय इकाई रहे हैं इनकी पहचान इसलिए भी आवश्यक है। इन गाँवों की जमीन पर विकसित की जाने वाली आवासीय, औद्योगिक व अन्य ढाँचागत परियोजनाओं का नामकरण उस गाँव के नाम या उस गाँव के किसी महापुरूष, स्वतंत्रता सेनानी या किसी क्षेत्र में उच्च्य उपलब्धियों को प्राप्त करने वाले व्यक्ति के नाम पर किया जाना चाहिए जिससे इन गाँवों की पहचान को बचाया जा सके। आदर्श उदाहरण के रूप में हम केन्द्रीय कारागार (तिहाड़), इंदिरा गांधी घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा पालम, डाबड़ी, वाटर ट्रिटमैंट प्लांट हैदरपुर, ओखला औद्योगिक क्षेत्र ओखला, नरेला औद्योगिक क्षेत्र नरेला आदि का उदाहरण दे सकते है जिनकी पहचान यहाँ के ढ़ांचागत निर्माण व परियोजनाओं का नामकरण इन गाँवों के नाम से होने के कारण बची हुई है।

संदर्भ

१. डोवल एन. के, 'आन द ब्रिंक' नई दिल्ली १९८२, पृ. १३२

२. गोयनका देसी, 'ए प्लानर्स नाईटमेयर', मुंबई १९९२, पृ. ८६

३. डोवल एन के, 'न्यू दिल्ली आनदि ब्रिंक दि सर्वे आफ हिन्दू एनवायरनमैंट', १९९२, पृ. १६४

४. अवस्थी आदित्य, ' दिल्ली क्रान्ती के १५० वर्ष', दिल्ली, पृ. ७

Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

अनुसूचित जाति की महिलाओं के उत्पीड़न के सामाजिक प्रभाव

❑ **डॉ० श्रृद्धा सुमन**

भारतीय समाज में अनुसचित जाति की महिलाओं को दोहरी प्रतिकूल परिस्थितियों का महिला होने के कारण सामना करना पड़ता है। उन्हे न केवल उनके महिला होने के कारण पक्षपात का सामना करना पड़ता है बल्कि युग - युगान्तर से चली आ रही अस्पृश्यता की मार भी झेलनी पड़ती है और इसी कारण उन पर अत्याचार किये जाते हैं। सामान्यतया इन जातियों और वर्गो की महिलाओं पर अपना गुस्सा निकालते हैं, उनका अपमान करते हैं, सामूहिक बलात्कार करते हैं और नग्नावस्था में उन्हें घुमाते हैं, जिसका उद्देश्य उनके समूचे समुदाय को एक सबक सिखाना होता है। इन महिलाओं के उत्पीड़न के शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, आर्थिक आदि अनेकानेक सामाजिक प्रभाव पड़ते हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत अनुसूचित जाति की महिलाओं के उत्पीड़न के सामाजिक प्रभावों को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है।

किसी भी राष्ट्र के विकास का वास्तविक आकलन उसके नागरिकों के जीवन स्तर और दर्जे से होता है। समाज में दलित उपेक्षित और कमजोर वर्गो के उत्थान का स्तर उस राष्ट्र की प्रगति और विकास का महत्वपूर्ण संकेत होता है। महिलाएँ समाज की आधी जनसंख्या तो होती ही हैं, इससे भी महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वे मानव समाज की जन्मदात्री और पालन-पोषण करने वाली जननी भी होती हैं, इसलिए ईश्वर के पश्चात् माता या जननी का स्थान निर्धारित होता है। 'नर' का अस्तित्व नारी के बिना सम्भव नहीं है लेकिन इससे बड़ी कोई विडम्बना नही हो सकती है कि पुरूष वर्ग ने इस आधी दुनिया को अत्याचारों की क्रूर जंजीरों से जकड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। उसको कुचलने, मसलने और उसके उपभोग से भिन्न अस्तित्व को स्वीकारने के सन्दर्भ में पुरूषों का सदैव दोहरा मानदण्ड रहा है। देह स्त्री की एक मात्र पहचान बना दी गई है। यह पुरूष की इच्छा, वासना, निरंकुशता के नियन्त्रण का अवांछित दंश भोगने को विवश होती हैं।

महिला उत्पीड़न कहीं न कहीं इन सभी सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक, शारीरिक आदि रूपों में प्रभावित करता है। महिला उत्पीड़न की घटनाएं एक ओर तो महिलाओं की स्थिति को समाज में निम्न और दयनीय बनाती हैं वहीं दूसरी ओर जैसे कि मार्क्स अपने वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त में सर्वहारा वर्ग के सन्दर्भ में वर्ग चेतना की बात करते हैं वही चेतना महिलाओं में भी कहीं न कहीं अपने शोषण और उत्पीड़न के विरूद्ध दिखाई पड़ने लगती है। अनेकानेक महिला आन्दोलन और उनके लिए निर्धारित किए जाने वाले कार्यक्रम निर्मित कानून इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

अनुसूचित जातियों के प्रति अत्याचारों और नृशंसताओं में वृद्धि हो रही है। प्रति दो घण्टे में एक दलित की पिटाई होती है, प्रतिदिन तीन दलित महिलाएँ बलात्कार की शिकार होती है दो दलितों का कत्ल और दो दलित घर जला दिये जाते हैं।[१] **अनुसूचित** जातियों के विरूद्ध अपराधों में वृद्धि इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि १९५५ में पुलिस द्वारा पंजीकृत १८० अपराधी मामले १९९१ में १८, ३३६, १९९५ में ३२, ९९० और १९९८ में २५, ६३८ हो गए।[२] अनुसूचित जाति के लोगों की जमीन हड़प कर उन्हें कम मजदूरी देकर और उन्हें बंधुआ मजदूर बनाकर उनका शोषण किया जाता है।

भारतीय समाज में अनुसचित जाति की महिलाओं को दोहरी प्रतिकूल परिस्थितियों का महिला होने के कारण सामना करना पड़ता है। उन्हे न केवल उनके महिला होने के कारण पक्षपात का सामना करना पड़ता है बल्कि युग - युगान्तर से चली आ रही अस्पृश्यता की मार भी झेलनी पड़ती है और इसी कारण उन पर अत्याचार किये जाते हैं। सामान्यतया इन जातियों और वर्गो की महिलाओं पर अपना गुस्सा निकालते हैं, उनका अपमान करते हैं, सामूहिक बलात्कार करते हैं और नग्नावस्था में उन्हें घुमाते हैं, जिसका उद्देश्य उनके समूचे समुदाय को एक सबक सिखाना होता है।

अनुसूचित जातियों और अन्य कमजोर वर्गों की महिलाएँ सामाजिक रूप से पिछड़ी होने के अलावा आर्थिक रूप से शोषित भी होती हैं। शहरी क्षेत्रों में अनुसूचित जाति की महिलाएं मुख्यतया असंगठित क्षेत्रों में स्वनियोजित कामगार अथवा मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिकों के रूप में कार्यरत हैं। कारखाने के क्षेत्र में अनुसचित जाति की महिलाएँ बड़े पैमाने पर उद्योगों में ठेका मजदूरों और छेटे कारखाने में श्रमिकों के रूप में कार्यरत हैं। इस काम में उन्हे हमेंशा कम वेतन मिलता है, शहरी क्षेत्रों में अनुसचित जाति की महिलाएं मुख्यतया घरों में नैमितिक श्रमिकों के रूप में साफ - सफाई करने और झाडू देने जैसे कार्य करती हैं। उनकी कमाई बहुत कम होती है और उन्हे अन्य कोई

❑ प्रवक्ता समाजशास्त्र, खुनखुन जी गर्ल्स पी.जी. कालेज, लखनऊ (उ.प्र.)

लाभ नही मिलते।

अनुसूचित जाति की महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों और उनके शोषण की घटनाएं आए दिन समाचार पत्र पत्रिकाओं में आती रहती हैं।

शोध प्रारूप :- प्रस्तुत अध्ययन फैजाबाद शहर की अनुसचित जाति की महिलाओं से सम्बन्धित है। चूँकि शोध अनुसूचित जाति की उत्पीड़ित महिलाओं तक सीमित है। इस हेतु शहर की अनुसूचित जाति की ८०० उत्पीड़ित महिलाओं को द्धैतीयक स्रोतों और प्रारम्भिक अवलोकन के आधार पर समग्र रूप में लिया गया जिसमें से सुविधाजनक निदर्शन विधि के माध्यम से २०० इकाइयों का चयन किया गया जो सम्पूर्ण का प्रतिनिधिक भाग है। इन २०० सूचनादाताओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सूचनाओं का संकलन किया गया। अध्ययन के अंतर्गत प्राथमिक तथ्यों के साथ-साथ द्वैतियक तथ्यों का उपयोग भी किया गया है।

उपलब्धियॉं : जहाँ तक उत्तरदात्रियों पर उत्पीड़न के प्रभाव का प्रश्न है। निम्नलिखित सारणी इस तथ्य पर विस्तृत प्रकाश डालती है।

सारणी संख्या १

सामाजिक उत्पीड़न के प्रभाव

प्रभाव	उत्तरदात्रियों की संख्या	प्रतिशत
आर्थिक प्रभाव	४८	२४.०
शारीरिक प्रभाव	४४	२२.०
मानसिक प्रभाव	६४	३२.०
पारिवारिक प्रभाव	२५	१२.५
उपर्युक्त सभी प्रकार से	१६	६.५
योग	२००	१००.००

उपर्युक्त सारणी में समाविष्ट दत्त- सामग्री का सांख्यिकीय विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि २४ प्रतिशत उत्तरदात्रियों पर उत्पीड़न का आर्थिक प्रभाव पड़ा है। जबकि २२ प्रतिशत उत्तरदात्रियॉ शारीरिक रूप से उत्पीड़न के प्रभाव को झेल रही हैं। ३२ प्रतिशत उत्तरदात्रियॉ ऐसी हैं जिनके ऊपर उत्पीड़न का मानसिक प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है। इसके अतिरिक्त १२.५ प्रतिशत उत्तरदात्रियों का परिवार भी इस उत्पीड़न के प्रभाव से अछूता नहीं हैं। शेष ६.५ उत्तरदात्रियॉ ऐसी हैं जो उपर्युक्त सभी प्रकार से उत्पीड़न के दंश को झेल रही हैं।

उत्तरदात्रियों के उत्पीड़न का मानसिक प्रभावः अनुसूचित जाति की महिलाओं पर पड़ने वाला अन्य मानसिक प्रभाव भी हैं। जैसे मानसिक तनाव, निराशा, पागलपन, गंभीर बीमारी आदि निम्नालिखित सारणी इस तथ्य पर विस्तृत प्रकाश डालती है-

सारणी संख्या २

उत्तरदात्रियों पर उत्पीड़न का मानसिक प्रभावः

प्रभाव	उत्तरदात्रियों की संख्या	प्रतिशत
बुरा	३१	४८.४३
अतिबुरा	२३	३५.६३
सामान्य	१०	१५.६२
योग	६४	१००.००

उपर्युक्त सारणी के विवेचन से ज्ञात होता है कि ४८.४३ उत्पीड़ित महिलाओं पर उत्पीड़न का बुरा प्रभाव पड़ा है जबकि ३५.६३ प्रतिशत उत्तरदात्रियो पर उत्पीड़न का अति बुरा तथा १५.६२ प्रतिशत महिलाओं पर सामान्य प्रभाव पड़ा है।

उत्तरदात्रियों पर उत्पीड़न का शारीरिक प्रभाव : निम्नलिखित सारणी उत्तरदात्रियों पर उत्पीड़न के शारीरिक प्रभाव पर विस्तृत प्रकाश डालती हैः-

सारणी संख्या ३

उत्तरदात्रियों पर उत्पीड़न का शारीरिक प्रभाव

प्रभाव	उत्तरदात्रियों की संख्या	प्रतिशत
बुरा	२४	५४.५४
अतिबुरा	१०	२२.७२
सामान्य	१०	२२.७२
योग	४४	१००.००

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्विष्ट दत्त सामग्री के विवेचन से ज्ञात होंता है कुल ४४ उत्तरदात्रियों जिन पर उत्पीड़न का शारीरिक प्रभाव पड़ा उनमें ५४.५४ प्रतिशत महिलाओं पर बुरा तथा २२.७२ प्रतिशत महिलाओं पर अतिबुरा प्रभाव पड़ा। शेष २२.७२ प्रतिशत महिलाएँ सामान्य रूप से प्रभावित हुईं।

उत्पीड़न का आर्थिक प्रभावः निम्नलिखित सारणी महिलाओं पर होने वाले उत्पीड़न के आर्थिक प्रभावों पर विस्तृत प्रकाश डालती हैः-

सारणी संख्या ४

उत्पीड़न का आर्थिक प्रभाव

प्रभाव	उत्तरदात्रियों की संख्या	प्रतिशत
बुरा	२६	५४.१६
अतिबुरा	१०	२०.८३
सामान्य	१२	२५.००
योग	४८	१००.००

उपर्युक्त सारणी के सांख्किीय विवेचन से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक अर्थात ५४.१६ प्रतिशत उत्तरदात्रियॉ उत्पीड़न से आर्थिक रूप से बुरी तरह प्रभावित हुईं, इसके अतिरिक्त २०.

८३ प्रतिशत उत्तरदात्रियों पर इसका अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ा जबकि २५ प्रतिशत उत्तदात्रियॉ सामान्य रूप से प्रभावित हुईं।

उत्पीड़न का पारिवारिक जीवन पर प्रभावः उत्तरदात्रियों के पारिवारिक जीवन पर उत्पीड़न का प्रभाव कितना पड़ा ? इस तथ्य पर निम्नलिखित सारणी विस्तृत प्रकाश डालती हैः-

सारणी संख्या ५

उत्पीड़न का पारिवारिक जीवन पर प्रभावः-

प्रभाव	उत्तरदात्रियों की संख्या	प्रतिशत
बुरा	५	२०
अतिबुरा	१५	६०
सामान्य	५	२०
योग	२५	१००

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्विष्ट दत्त-सामग्री के सांख्यिकीय विवेचन से स्पष्ट होता है कि उत्पीड़न से सर्वाधिक अर्थात् ६० प्रतिशत महिलाओं के पारिवारिक जीवन पर अति बुरा प्रभाव पड़ा २० प्रतिशत महिलाओं के पारिवरिक जीवन पर बुरा तथा २० प्रतिशत महिलाओं के पारिवारिक जीवन पर सामान्य प्रभाव पड़ा।

अनुसूचित जाति की महिलाओं के प्रति बढ़ती क्रूरताः उत्पीड़ित महिलाओं से जब यह पूछा गया कि क्या आप समझती है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के प्रति क्रूरता में वृद्धि हुई ? तो जो प्रत्युत्तर प्राप्त हुए उस पर निम्नलिखित सारणी विस्तुत प्रकाश डालती है।

सारणी संख्या ६

अनुसूचित जाति की महिलाओं के प्रति क्रूरता में वृद्धि

प्रत्युत्तर	उत्तरदात्रियॉ	
	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉ	१२५	६ २.५
नहीं	४५	२२.५
मैं नहीं जानती	३०	१५.०
योग	२००	१००.०

उपर्युक्त सारणी में प्रस्तुत ऑकड़ों के विवेचन से ज्ञात है कि सर्वाधिक अर्थात् ६२.५ प्रतिशत उत्तरदात्रियों का यह स्पष्ट मत है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के प्रति समाज में क्रूरता में बड़ी है जबकि २२.५ प्रतिशत उत्तरदात्रियों का अभिमत हैं कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के प्रति क्रूरता में वृद्धि नहीं हुई है। शेष १५.० प्रतिशत उत्तरदात्रियॉ इस बात से अवगत नही हैं कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के उत्पीड़न में वृद्धि हुई है कि नहीं।

मानव अधिकार एवं महिला उत्पीड़न : मानवाधिकार तथा आधारभूत स्वंतत्रताएँ सभी मानवमात्र के जन्मसिद्व अधिकार हैं तथा उनका संरक्षण और प्रचार-प्रसार सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी है। महिलाओं और बालिकाओं के मानवाधिकार विश्वव्यापी मानवाधिकारों के अहस्तान्तरणीय, अनिवार्य और अविभाज्य अंग हैं।

संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र में पुरूषों तथा महिलाओं के समान अधिकारों को स्पष्ट रूप से व्याख्या की गई है।[३] राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग रिर्पोट वर्ष १९९८-९९ की रिर्पोट चौका देने वाली यह है कि आलोच्य वर्ष में आयोग को मानवाधिकार हनन से जुड़ी लगभग ४०७२३ शिकायतें मिली जिनमें से लगभग ५४ प्रतिशत शिकायतें अकेले उत्तर प्रदेश राज्य की है। जहॉ अभी तक राज्य मानवाधिकार आयोग गठन नहीं किया गया है।[४]

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या निधि द्वारा प्रकाशित स्टेट आफ वर्ल्ड पापुलेशन १९९७ मे सम्पर्क सम्भवतः पहली बार विश्व का ध्यान उन मुद्दों की ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया गया है, जो महिलाओं के मानवधिकार के हनन से सम्बन्धित हैं।[५] प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से विद्यमान महिलाओं और बालिकाओं के प्रति हिंसा, भेदभाव, दोयम दर्जे का व्यवहार और अपमान दुनिया में मानवधिकारों का सबसे बड़ा उल्लंघन है। कल्पना कीजिये कि मानव समुदाय के एक हिस्से को नियमित रूप से बलात्कार, गाली गलौज, अंगभंग, हत्या, दहेज, दहन, छेड़छाड़ और गैर कानूनी कैद का शिकार होना पड़ता है, सिर्फ इसलियें कि वे महिलायें हैं, घर या काम-काज की जगह अदालत, हाट बाजार, खेल के मैदान, पूजा स्थल, स्कूल कालेज यानि समाज के हर क्षेत्र हर स्तर पर और धरातल पर उसको व्यवस्थित रूप से भेदभाव और अपमान सहना पड़ता है।[६]

१० दिसम्बर १९४८ को संयुक्त राष्ट्रमहासभा ने सभी के लिये मानवाधिकारों की घोषणा की थी, ताकि सब में स्वाधीनता और प्रतिष्ठानों को कायम रखने की एक प्रेरणादायी शक्ति का संचार हो सके । १० दिसम्बर १९९८ को इस योजना के ५० वर्ष पूरे हो चुके हैं लेकिन महिलाओं के सन्दर्भ में मानवधिकारों के प्रति जगरूकता की दिशा में अभी बहुत कुछ करना शेष है। प्रस्तुत सारणी मानवाधिकार आयोग की जानकारी और सहायता से सम्बन्धित हैः-

सारणी संख्या : ७

मानवाधिकार आयोग के विषय में जानकारी

प्रभाव	उत्तरदात्रियों की संख्या	प्रतिशत
हॉं	३२	१६.०
नहीं	१६८	८४.०
योग	२००	१००.०

उपर्युक्त सारणी के निर्वचन से ज्ञात होता है कि मानवाधिकार आयोग के सम्बन्ध में जानकारी रखने वाली कुल उत्तदात्रियों में से केवल १६ प्रतिशत अर्थात् ३२ उत्तरदात्रियॉं ही ऐसी हैं जिन्हें इसकी जानकारी है। शेष १६८ अथवा ८४ प्रतिशत उत्तरदात्रियॉ ऐसी हैं जिन्हे इस सन्दर्भ में कोई जानकारी नहीं है।

विश्लेषण से पता चलता है कि सम्पूर्ण में से ऐसी महिलाओं का प्रतिशत अधिक है जो इस क्षेत्र में कोई जानकारी नही रखती हैं। इसका कारण उनकी अशिक्षा अथवा अल्पशिक्षा, कमजोर आर्थिक स्थिति आदि को मानती हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिर्पोट वर्ष १६६८-६६ में मानवाधिकार हनन से जुड़ी ४०७२३ शिकायतें है जिनसे यही ज्ञात होता है कि मानवाधिकार आयोग के संबंध मे जानकारी का अभी अभाव है उचित जानकारी के अभाव में महिलाएँ इसकी सहायता से भी वंचित रहती हैं।

अनुसूचित जाति की महिलाओं में महिला जागरूकताः ऐतिहासिक क्रम में अनेकानेक सामाजिक और धार्मिक निषेधों तथा आर्थिक विशेषताओं के चलते महिलायें घर की चार दीवारी में कैद रही हैं जिसके परिणाम स्वरूप इनके ऊपर होने वाले अत्याचारों और उत्पीड़न को बर्दाश्त करना इनकी नियति बनी हुई थी। निम्न जाति महिलाओं के सन्दर्भ में तो ये विवशतायें और निर्योग्तायें दोहरी थीं। एक महिला होने की सामाजिक परिवर्तनों और आन्दोलनों के क्रम में भी हम देखते हैं कि जहां महिला जागरूगता धीरे-धीरे दिखाई पड़ने लगी थी वहीं अनुसूचित जाति की महिला होने के कारण इस वर्ग की महिलाओं में यह जागरूकता सामान्य तौर पर स्वतंन्त्रता के पश्चात भी काफी कम दिखाई देती रही है। महिलाओं मे सामाजिक जागरूकता लाने में कई समस्यायें सामने आती हैं, जिनका समाधान करने से महिलाओं में जागरूकता लायी जा सकती है, जैसे- निरक्षरता, सामाजिकत, जागरूकता को बाधित करने वाला प्रमुख तत्व है।

आरक्षण के प्रावधानों से तथा महिलाओं के अधिकारों और कल्याण सम्बन्धी विभिन्न योजनाओं तथा अनुसूचित जाति सम्बन्धी कल्याणकारी योजनाओं के परिणाम स्वरूप हमें इस वर्ग की महीलाओं में कुछ जागरूकता देखने को मिली है। महिला जागरूकता में आज भी बाधक बने खड़े हैं, जिनका समाधान आवश्यक है, तभी महिलाओं मे जागरूकता आयेगी।[७]

निष्कर्ष :- उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं का उत्पीड़न होने से सामाजिक आधार पर बुरा प्रभाव पड़ा अनुसूचित जातियों की महिलाओं का उत्पीड़न होने से उन्हे विभिन्न प्रकार की यातनायें झेलनी पड़ती हैं जैसे - शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक तथा आर्थिक आदि।

सन्दर्भ

१. क्राइम इन इंडिया नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो १६६८, पृ. १८४

२. क्राइम इन इंडिया नेशनल क्राइम रिकार्ड व्यूरो १६६८, पृ. १८१

३. आईना सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित, १६६६ पृ-४४

४. राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग रिपोर्ट वर्ष १६६८-६६

५. चौहान, श्याम सुन्दर 'महिला मानवधिकार और कुछ सवाल', समाज कल्याण पत्रिका मार्च, १६६८ पृ० १६-१७

६. मित्तल एल०एन०, 'मानवधिकारों का उल्लंघन महिलाओं के सन्दर्भ में' समाज कल्याण पत्रिका मार्च १६६८ पृ० १७

७. राष्ट्रीय महिला आयोग वार्षिक रिपोर्ट १६६६-६७, पृ. ५१

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 1, जनवरी–जून 2014
Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

ग्रामीण महिलाओं का स्वास्थ्य – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ श्रीमती किरन बाला

स्वास्थ्य का जीवन में अत्यधिक महत्व है। एक ओर जहाँ एक स्वस्थ व्यक्ति अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करता है, वहीं दूसरी ओर एक अस्वस्थ व्यक्ति को अपना जीवन बोझ लगने लगता है। भारत में पाए जाने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक ढाँचे में महिलाओं के स्वास्थ्य की देखभाल बहुत ही निम्न स्तर पर होती है। सामाजिक-आर्थिक संस्तरण में महिलाएं निम्न स्तर पर आती हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में यह पक्ष और भी भयंकर है। प्रायः महिलाएँ कुपोषण, रक्ताल्पता, शारीरिक दुर्बलता आदि अनेक व्याधियों से ग्रस्त रहती हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं के प्रमुख कारणों को जानने का प्रयास किया गया है।

महिला के स्वास्थ्य का प्रभाव उसके पूरे परिवार पर पड़ता है। आज महिलाऐं घर के भीतर कामकाज व बच्चों की देखभाल तक ही सीमित नहीं हैं। वे घर के बाहर आर्थिक गतिविधियों में पूरी तरह से व्यस्त हैं फिर चाहे उनका पारिवारिक व्यवसाय हो या फिर खेती या उद्योग। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तो उनका मुख्य योगदान है ही। स्वभाविक है कि इन महिलाओं का निरोग व स्वस्थ होना अपने परिवार के लिए ही नहीं राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए भी जरूरी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 'स्वास्थ्य' का अर्थ किसी बीमारी या कमजोरी का न होना मात्र नहीं है। यह शारीरिक, मानसिक व सामाजिक रूप से पूर्ण स्वस्थ होने का नाम है। स्वास्थ्य प्रत्येक व्यक्ति की आधारभूत जरूरत और मौलिक अधिकार है। महिलाओं के संदर्भ में यह बात कई कारणों से और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। सबसे पहले तो वे कुल जनसंख्या का आधा हिस्सा है और कुल श्रम बल का एक तिहाई से ज्यादा भी है। दूसरा बच्चा पैदा करने से लेकर उसके पालन पोषण की मुख्य जिम्मेदारी उनकी ही है। उनके स्वास्थ्य का बच्चों के स्वास्थ्य पर सीधा असर पड़ता है।

स्त्रियों को लम्बे समय तक कठिन काम करने पड़ते हैं और ये काम अक्सर कठिन और अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में करने होते हैं। बहुत से अध्ययनों में दर्शाया गया है कि अभाव की स्थिति में स्त्रियों तथा लड़कियों को खाने में कैसे भेदभाव सहना पड़ता है। पुरूष तथा लड़के पहले खाते हैं और उन्हें खाने का ज्यादा और अधिक पौष्टिक भाग परोसा जाता है। पारम्परिक रूप से हमारे समाज में स्त्रियां पुरूषों के बाद ही भोजन करती हैं और यदि भोजन सामग्री सीमित हो तो उन्हें स्वतः ही कम खाने को मिलेगा। महत्व की बात यह है कि कई बार भोजन में भेदभाव गरीबी तथा अभाव के परिणामस्वरूप ही नहीं होता अपितु दृष्टिकोण तथा अपेक्षाओं के कारण भी होता है। यह दृष्टिकोण एक ऐसी प्रणाली का हिस्सा है जिसमें स्त्री की जिन्दगी को कोई खास महत्व नहीं दिया जाता है।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि जीवन की बढ़ती लागत तथा बढ़ती अपेक्षाओं के कारण पहले से बड़े परिवारों में छोटे परिवार रखने की प्रवृत्ति ज्यादा लोकप्रिय होती जा रही है। लेकिन यहां पर भी वही तर्क है कि लड़के की अपेक्षा लड़की कम चाही जाती है। मादा भ्रूण का बिना हिचक गर्भपात कराए जाने की पूरी संभावना होती है। इस तरह कुपोषण, ग्रह कार्यों की अधिकता, स्वास्थ्य संबंधी चेतना का अभाव, बार-बार गर्भधारण व गर्भपात, बीमारियों को छिपाने की प्रवृत्ति महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं जिसके दुष्परिणाम परिवार व समाज को भुगतने पड़ते हैं।

स्वास्थ्य की देखभाल जुटाने में भी महिलाओं के प्रति भेदभाव किया जाता है। अस्पताल दाखिलों और रिकार्डों के अध्ययन से पता चला है कि महिलाओं और लड़कियों की तुलना में पुरूष और लड़कों की स्वास्थ्य देखभाल अधिक होती है। यह कहा जाता है कि महिलाएं और लड़कियां पुरूष और लड़कों की तुलना में बीमारी की स्थिति में काफी विलम्ब से अस्पतालों में ले जाई जाती हैं। इसके अलावा अधिकांश भारतीय महिलाओं में रक्ताल्पता होती है। वे भोजन पकाने, सफाई करने, कपड़ा आदि धोने, पानी लाने, लकड़ी इकट्ठा करने, बच्चों और वृद्धों की देखभाल करने, पशुओं की देखभाल करने और खेती का कामकाज जैसे कई कार्यों में बहुत शक्ति व्यय करती हैं। जबकि खर्च की गई शक्ति की तुलना में वे कम कैलोरी लेती हैं। कैलोरी की कमी से आमतौर पर महिला के स्वास्थ्य पर खासतौर से प्रजनन स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही वे जल जनित, फसल के अवशिष्टों, गोबर के

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, एम.बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

उपलों से भोजन बनाने से कई बीमारियों की शिकार होती हैं। महिलाओं को खेतों में काम करने से, कागज की थैलियां बनाने, कपड़ों की सिलाई-कढ़ाई करने से भी कई स्वास्थ्य हानियां होती हैं।

स्वास्थ्य में सुधार लाने के उद्देश्य से समय-समय पर स्वास्थ्य विभाग द्वारा बहुत से कार्यक्रमों की शुरूआत की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है तथा स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच भी इन ग्रामीण महिलाओं तक नहीं पहुंच सकी है साथ ही अधिकांश महिलाएं अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक भी नहीं हैं। अधिकांशतः रोग की प्रारम्भिक अवस्था में रोग की जांच इत्यादि भी नहीं करवा पातीं, ऐसा उनके निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा प्रारम्भिक सेवाओं का घर से दूर होना भी है।

उद्देश्य : प्रस्तुत शोध का उद्देश्य गौलापार क्षेत्र की ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य का अध्ययन करना है। अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं-

१. महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर को प्रभावित करने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक कारकों का अध्ययन करना।

२. ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं का अध्ययन करना।

शोध प्रारूपः- प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग करते हुए ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं को जानने का प्रयास किया गया है। अध्ययन के लिए के लिए उत्तराखण्ड राज्य के नैनीताल जनपद के अन्तर्गत गौलापार क्षेत्र के लछमपुर गाँव के ६० परिवारों को प्रतिदर्श के रूप में चुना गया है। प्रतिदर्श के चयन में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का प्रयोग किया गया है। तत्पश्चात साक्षात्कार अनुसूची द्वारा उत्तरदाताओं से जानकारी प्राप्त की गई।

साहित्य सर्वेक्षण :- जकिया रफत और श्रीमती इलीशिबापाल[१] के अध्ययन से पता चला कि महिलाओं की स्वास्थ्य दशा पुरूषों की अपेक्षा कही बदतर है। उनके स्वास्थ्य स्तर को प्रभावित करने वाले कारकों में शारीरिक स्वच्छता, भोजन की गुणवत्ता, स्वच्छ जल का अभाव आदि के साथ-साथ अपरिपक्व आयु में विवाह, मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न, प्रसव का परम्परागत स्वरूप एवं प्रसवोत्तर उचित देखभाल का अभाव, परम्परागत चिकित्सा में विश्वास तथा आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं की अनुपलब्धता आदि प्रमुख हैं।

महिलाओं का स्वास्थ्य बहुत से अंतःसंबंधित आर्थिक एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होता है, जैसे आमदनी का स्तर और शिक्षा का स्तर, विवाह के प्रति मनोभाव, विवाह के समय उम्र, प्रजनन एवं बच्चे के लिंग के प्रति विचार, परिवार का प्रभाव एवं सामाजिक परिपाटी द्वारा महिला से आदर्श व्यवहार की मांग आदि।

स्वास्थ्य के संदर्भ में भारतीय स्त्री को समान व सुविधाजनक स्थिति में न होने के लिए जहां एक ओर उचित नीति नियोजन के अभाव को उत्तरदायी माना जा सकता है। वहीं पुरूष समर्थक अनेक सांस्कृतिक परम्पराएं भी महिला स्वास्थ्य की उपेक्षा का कारण हैं।[२] हमारे सांस्कृतिक मूल्यों व परम्पराओं द्वारा पुरूषों को प्रदत्त उच्च स्थिति के कारण महिलाओं को हमेशा से ही अनेक विभेदों और विषमताओं को सहना पड़ा है।

विभिन्न अध्ययनों में महिला सम्बन्धी यथार्थ स्पष्ट हुआ है। कुछ उल्लेखनीय बिन्दु इस प्रकार हैं-

१) पोषण के संदर्भ में लैगिंक विषमता का पाया जाना (बाटली वाला[३], चटर्जी[४], दत्त[५], सेनगुप्ता[६])

२) उच्च महिला मृत्युदर (हेरिस व वाटसन[७])

३) बीमारी में स्वास्थ्य देखभाल की अपर्याप्तता तथा चिकित्सकीय सेवाओं की उपलब्धता की कमी (मथाई[८], राजेश्वरी[९])

इन्दू पाठक[१०] ने पाया कि लैंगिक विभेद सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन का यथार्थ बन कर महिलाओं के स्वास्थ्य पर अपना दुष्प्रभाव छोड़ता है, उन्होंने बतलाया है कि आज के कुछ सामाजिक, सांस्कृतिक मानदण्ड जैसे कम आयु में विवाह का सांस्कृतिक आग्रह, उच्च जनन क्षमता, माता व ग्रहणी की भूमिका का आदर्शीकरण आदि ऐसे कारण हैं जो कि महिला स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं। इससे न केवल महिलाएँ प्रभावित होती हैं बल्कि सम्पूर्ण समाज का स्वास्थ्य व विकास भी प्रभावित होता है। महिलाओं की अस्वस्थता का परिणाम, कमजोर शिशुओं का जन्म तथा उच्च शिशु मृत्यु दर के रूप में देखा जा सकता है।

भारत में महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी समिति द्वारा स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति रूख और पहुंच में ग्रामीण इलाकों में कोई बदलाव नहीं आया है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के अनुसार अपर्याप्त संसाधनों, पारिवारिक जिम्मेदारियों, अपर्याप्त प्रसव पूर्व देखभाल, उन माताओं का पता न लगा पाना जिनकी तबियत ज्यादा खराब हो सकती है। पर्याप्त तथा उपयुक्त परिवहन और संचार सुविधाओं की कमी के कारण औरतें समय पर स्वास्थ्य सुविधाओं तक नहीं पहुंच पाती।

पोषण स्थिति के मामले में महिला का स्वास्थ्य सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारणों से जुड़ा है। कई बार उन्हें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से चिकित्सकों के पास पहुंचने नहीं दिया जाता। घरों में भेदभाव की इतनी सूक्ष्म तथा स्पष्ट लकीरें

होती हैं कि महिलाओं के लिए इलाज तक पहुंचना मुश्किल हो जाता है।

अजय कुमार सिंह[११] में अपने लेख में यह सुझाव दिया कि आर्थिक दबावों, प्रवर्जन, समुदाय की अस्थिरता तथा संयुक्त परिवार प्रथा के टूटने एवं एकल परिवार प्रथा के कारण उपजे सामाजिक दबावों से पैदा हुई मानसिक बीमारियां केवल दवाइयों से ठीक नहीं हो सकती। इसलिए उपचारात्मक नीति के अनुसार, पोषण की समस्याओं पर विचार कर समग्र विकासात्मक पहलुओं पर विचार करना होगा।

उपलब्धियाँ :- ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं के कारणों को जानने के लिए सूचनादाताओं से निम्न प्रश्न पूछे गये। सर्वप्रथम पूछा गया कि आपकी आर्थिक स्थिति कैसी है।

तालिका नं०- १

आपकी आर्थिक स्थिति कैसी है

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिदर्ष
उच्च आर्थिक स्थिति	०२	०४
मध्यम आर्थिक स्थिति	१०	२०
निम्न आर्थिक स्थिति	३८	७६
योग	५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ०४ प्रतिशत महिलाओं की आर्थिक स्थिति उच्च है जबकि २० प्रतिशत महिलाओं की मध्यम और शेष ७६ प्रतिशत महिलाओं की निम्न स्थिति है। गरीबी के कारण प्रजजन से जुड़े जोखिम पहले से ही प्रतिकूल स्वास्थ्य प्रस्थिति को और खराब कर देती हैं। पोषण स्थिति के मामले में महिला का स्वास्थ्य, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारणों से जुड़ा है जो इसके जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करते हैं।

तालिका नं०- २

आपकी विवाह के समय आयु क्या थी?

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिदर्ष
१५ वर्ष से कम	४०	८०
१६ से २० वर्ष	१०	२०
२१ से २५ वर्ष	००	००
योग-	५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ८० प्रतिशत महिलाओं का विवाह कम आयु में हो गया था जिससे उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा है जो स्वयं में चिन्ता का विषय है। कम उम्र की लड़कियाँ जिनका अपना शरीर ही विकासशील अवस्था में होता है माँ बन जाती हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

तालिका नं०- ३

आप किस तरह के प्रसव को उचित मानती हैं?

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिदर्ष
घर में प्रसव	००	००
अस्पताल में प्रसव	५०	१००
दाई के द्वारा	००	००
योग-	५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि १०० प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे अस्पताल में प्रसव उचित मानती हैं।

तालिका नं०- ४

अपने बच्चों को रोग प्रतिरोधक टीके

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिदर्ष
बच्चों को टीके लगवाती हैं	२०	४०
कभी-कभी	२५	५०
कभी नहीं	०५	१०
योग-	५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ४० प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे बच्चों को टीके लगवाती हैं। जबकि ५० प्रतिशत ने कुछ टीके लगवाएं हैं केवल १० प्रतिशत महिलाओं ने बच्चों को कोई टीका नहीं लगवाया है।

तालिका नं०- ५

बीमार पड़ने पर कौन-सी चिकित्सा अपनाती हैं?

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिदर्ष
प्रशिक्षित डॉक्टर द्वारा	३५	७०
घरेलू उपचार	१०	२०
झाड़-फूँक	०५	१०
योग-	५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ७० प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि बीमार पड़ने पर वे प्रशिक्षित डॉक्टर की चिकित्सा का लाभ उठाती हैं जबकि २० प्रतिशत घरेलू उपचार तथा शेष १० प्रतिशत झाड़-फूँक द्वारा इलाज कराती हैं।

तालिका नं०- ६

अपनी स्वच्छता का ध्यान रखना

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिदर्ष
स्वच्छता का ध्यान रखती हैं	३५	७०
कभी-कभी	२०	२०
कभी नहीं	०५	१०
योग-	५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ७० प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे स्वच्छता का ध्यान रखती हैं जबकि २० प्रतिशत

कभी-कभी तथा शेष १० प्रतिशत स्वच्छता का ध्यान रखती हैं।

तालिका नं०- ७

संक्रामक रोगों की जानकारी

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिदर्ष
संक्रामक रोगों की जानकारी है	१०	२०
थोड़ा बहुत	२०	४०
विकल्प नहीं	२०	४०
योग-	५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि २० प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि उन्हें संक्रामक रोगों की जानकारी है जबकि ४० प्रतिशत थोड़ा बहुत तथा ४० प्रतिशत को बिल्कुल ज्ञान नहीं हैं।

तालिका नं०- ८

किस तरह के शौचालय का प्रयोग

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिदर्श
फ्लश शौचालय का प्रयोग करती हैं	३०	६०
खुले मैदानों का प्रयोग करती हैं	२०	४०
खुले गड्ढा का शौचालय प्रयोग करती हैं	००	००
योग-	५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ६० प्रतिशत महिलाएं फ्लश शौचालयों तथा ४० प्रतिशत खुले मैदान में शौच के लिए जाती हैं।

निष्कर्ष :- स्वास्थ्य से सम्बन्धित अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्वास्थ्य सम्बन्धी अत्यधिक समस्याएं है तथा वे स्वयं के प्रति भी जागरूक नहीं है। स्वास्थ्य की देखभाल जुटाने में भी महिलाओं के प्रति भेदभाव किया जाता है, महिलाऐं व लड़कियां, पुरूष व लड़कों की तुलना में बीमारी की स्थिति में काफी देर से अस्पताल में ले जायी जाती हैं। स्वास्थ्य की दशाओं को अमूल्य बनाने तथा व्याधकीय परिस्थितियों के नियन्त्रण के लिये विभिन्न प्रकार के विश्वास, मूल्य एवं व्यवहार प्रतिमानों का प्रचलन रहा है। सामाजिक, सांस्कृतिक विकास के स्तर के अनुरूप रोग एवं चिकित्सा सम्बन्धी विश्वासों, मूल्यों एवं व्यवहार का स्वरूप भिन्न-भिन्न रहा है। आदिम एवं परम्परागत समाजों में स्वास्थ्य रोग एवं चिकित्सा सम्बन्धित विश्वासों, मूल्यों एवं व्यवहारों का अपना पृथक अस्तित्व न होकर यह सम्पूर्ण संस्कृति का आर्थिक अंग है। इन समाजों में स्वास्थ्य और रोग की समस्या एक सामाजिक सांस्कृतिक समस्या रही है।

स्वास्थ्य में सुधार लाने के उद्देश्य से समय-समय पर स्वास्थ्य विभाग द्वारा बहुत से कार्यक्रमों की शुरूआत की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है तथा स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच भी इन ग्रामीण महिलाओं तक नहीं पहुंच सकी है साथ ही अधिकांश महिलाएं अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक भी नहीं है। इसलिए ग्रामीण महिलाओं को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करना सबसे अधिक आवश्यक है।

सन्दर्भ

१. रफत जकिया, इलीशिबा पाल, राधाकमल मुकर्जीः चिन्तन परम्परा, वर्ष १२, अंक-२, जुलाई-दिसम्बर, २०१० पृ. ६६-६८

२. मिलर, बी.डी. 'पैट्रिआर्की, द हाउसहोल्ड एंड पब्लिक हैल्थ प्रोग्राम', एशियन रीजनल कांफ्रेंस ऑन वीमैन एंड द हाउसहोल्ड, इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट, में प्रस्तुत शोध प्रपत्र, १६८५

३. बाटलीवाला, एस, 'रूरल एनर्जी स्केरसिटि एड न्यूट्रिशन', इकोनॉमिक एंड पालिटिकल वीकली, १६८२।

४. चटर्जी, एम, 'सोशियो इकोनॉमिक एंड सोशियो कल्चरल इंफ्लूएंसेज आन विमेन्स न्यूट्रिशनल स्टेटस', सी. गोपालन व एस. कौर द्वारा संपादित 'वीमैन एंड न्यूट्रिशन इन इंडिया' में सम्मिलित निबन्ध, १६८६।

५. दत्ता, ए., 'इंटर रीजनल जैंडर डिसपैरिटीज इन द लेवल्स ऑफ सोशल वैलबीइंग, ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ द उत्तराखण्ड रीजन एंड अवध प्लांस, जवाहरलाल नेहरू वि०वि०, नई दिल्ली, १६६६।

६. सेनगुप्ता, एस., मेलन्यूट्रिशन ऑफ चिल्ड्रन एंड द सेक्स वाइस': इकोनॉमिक एंड पालिटिकल वीकली', १६८३, १८ (१६-२०) ८५५-६४

७. हैरिस, बी व ई. वाटसन, 'द सेक्स रेशो इन साउथ एशिया', १६८७

८. मथाई, एस.एम., 'वीमैन एंड द हैल्थ सिस्टम', सी० गोपालन व एस०कौर द्वारा सम्पादित 'वीमैन एंड न्यूट्रिशन इन इंडिया' में सम्मिलित निबन्ध, १६८६।

६. राजेश्वरी, 'जैंडर वाइस इन यूटिलाइजेशन ऑफ हैल्थ केयर फैसिलिटीज इन रूरल हरियाणा', इकोनौमिक एंड पालिटिकल वीकली', १६६६ ३१ (८) ४८६-६४

१०. पाठक, इन्दु, 'कुमाऊँ की परिस्थितिकी व्यवस्थता एवं महिला स्वास्थ्य : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण', अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, २००६, पृ. ५०

११. अजय कुमार सिंह, 'ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति दृष्टिकोण' च-२३, योजना जर्नल अक्टूबर २०१२

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 16 अंक 1, जनवरी-जून 2014**
Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

ग्रामीण महिलाओं की समाजार्थिक प्रस्थिति

❑ अनीता बिष्ट

किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के उन्नयन में यदि निरपेक्ष दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो महिलाओं की भूमिका पुरूषों से कहीं भी कम दृष्टिगोचर नही होती हैं। महिलाएं राष्ट्रीय विकास एवं सामाजिक संरचना की रीढ़ होती हैं। भारत में गारो, खासी तथा नायर मातृ-सत्तात्मक परिवारों में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की प्रस्थिति ऊँची है सम्पूर्ण भारतीय जनसंख्या में ग्रामीण महिलाओं का प्रतिशत लगभग पुरूषों के समान ही है, परन्तु जनसंख्यात्मक समानता के बाद भी इन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक समानता नही प्राप्त हो सकी है। २००१ की जनगणना में महिलाओं की जनसंख्यात्मक स्थिति के प्रति नकारात्मक प्रतिमान उभरने का संकेत प्राप्त हुआ है जो गम्भीर चिन्तन एवं विचार का विषय है। ऐतिहासिक अनुशीलन से यह प्रतीत होता है कि भारत में स्त्रियों की स्थिति का धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था से प्रत्यक्ष संबंध रहा है। इन व्यवस्थाओं में ज्यों-ज्यों परिवर्तन हुआ है महिलाओं की स्थिति भी उसी परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित होती रही है। वैदिक काल में जहाँ सम्पत्ति, ज्ञान और शक्ति का प्रतीक मानकर सिद्धान्तः इनकी आराधना को महत्व दिया गया वहीं व्यवहारिक दृष्टिकोण से इन्हें सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक अधिकारों से वचिंत रखा गया है। केवल प्रजनन एवं पालन-पोषण के अधिकार तक सीमित रखकर इनके व्यक्तित्व को संकुचित कर दिया गया।

प्राचीन काल में जहाँ पर परिवार से बाहर महिलाओं का कार्य करना गलत समझा जाता था, वहीं आज की बदलती परिस्थितियों ने महिलाओं को विभिन्न अवसर देकर एक नये वर्ग को जन्म दिया है। विविध क्षेत्रों में कार्य करते हुए ये महिलाएँ पारिवारिक दायित्व के निर्वहन के साथ-साथ परिवार की आर्थिक स्थिति को भी सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत ग्रामीण महिलाओं की समाजार्थिक प्रस्थिति के विश्लेषणात्मक अध्ययन का प्रयास किया गया है।

प्राचीन काल में जहाँ पर परिवार से बाहर महिलाओं का कार्य करना गलत समझा जाता था, वहीं आज की बदलती परिस्थितियों ने महिलाओं को विभिन्न अवसर देकर एक नये वर्ग को जन्म दिया है। आज सामाजिक परिवर्तन की आँधियों के परिणाम स्वरूप महिलाओं ने अपने अधिकारों को जाना है, और घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर अपनी अलग व नयी पहचान बनाई है। विविध क्षेत्रों में कार्य करते हुए ये महिलाएँ परिवारिक दायित्व के निर्वहन के साथ-साथ पारिवार की आर्थिक स्थिति को भी सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही हैं। वे ये मानने लगी हैं कि आर्थिक सम्पन्नता उनको व्यक्तिगत रूप से भी सामाजिक श्रेष्ठता प्रदान करती है।

भारत में महिलाओं की स्थिति ने पिछली कुछ सदियों में कई बड़े बदलावों का सामना किया है। विद्वानों का मानना है कि प्राचीन भारत में महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरूषों के साथ समानता का स्तर प्राप्त था। महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक स्थिति विकासशील देशों खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न स्तर की है। सामाजिक कुरीतियाँ, गरीबी, निरक्षरता व अज्ञानता ही महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक स्थिति बिगड़ने में सहायक कारक हैं। १९९७ के नेशनल सैम्पल सर्वे डेटा के अनुसार केवल केरल और मिजोरम राज्यों ने सार्वभौमिक महिला साक्षरता दर को प्राप्त किया है, अधिकतर विद्वानों ने केरल में महिलाओं की बेहतर सामाजिक और आर्थिक स्थिति के पीछे प्रमुख कारक साक्षरता को माना है।

उद्देश्यः प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के निम्नांकित उद्देश्य हैं

१. निर्णय लेने/खर्च करने की स्वतंत्रता का पता करना।
२. महिलाओं की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति का पता लगाना।
३. महिलाओं की शैक्षिक स्थिति एवं जागरूकता का पता लगाना।
४. महिलाओं की प्रस्थिति को उच्च करने वाले उपायों का अध्ययन करना।

शोध प्रारूप :- चयनित इकाइयों से शोधार्थिनी ने स्वयं साक्षात्कार किया। जिसके लिए एक अनुसूची तैयार की गयी। जनपद ऊधम सिंह नगर के छत्तरपुर गाँव की ३३३ महिलाओं की सूची ग्राम पंचायत से ली और ४० महिलाओं का दैव

❑ **शोध अध्येत्री, एम०बी० (पी०जी०) कालेज, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)**

निदर्शन प्रणाली की क्रमांक सूची प्रणाली से हर आठवीं महिला का चुनाव किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यों के संग्रहण हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों का उपयोग किया गया है। **ग्रामीण** महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति से सम्बन्धित अध्ययन हेतु जनपद ऊधमसिंह नगर, ब्लाक रूद्रपुर के गाँव छत्तरपुर को चुना गया। नवम्बर, २०११ की जनगणना के अनुसार जनपद की जनसंख्या १६४८३६७ है। जिसमें पुरूषों की संख्या ८५८६०६ और स्त्रियों की ७८६४६१ है। ग्राम छत्तरपुर ब्लाक रूद्रपुर के अन्तर्गत आता है।

ग्राम की जनसंख्या निम्न प्रकार हैः-

जुलाई २०१२ के आँकड़ो के अनुसार

जनसंख्या	अ.जा.	पि.जा.	अल्प. जा.	स.जा.	योग
पुरूष	२८	१८३	-	१४०	३५१
स्त्री	२२	१७६	-	१३५	३३३
योग	५०	३५६	-	२७५	६८४

परिवारों की संख्याः-

ग्राम	अ.जा.	पि.जा.	अल्प. जा.	स.जा.	योग
छत्तरपुर	१४	६३	-	५०	१२७

परिवारों का स्वरूप

विवरण	संख्या	प्रतिशत
संयुक्त परिवार	७०	५५.११
एकल परिवार	५७	४४.८६
योग	१२७	१००.००

उपलब्धियाँ :- अध्ययन के अंतर्गत सूचनादाताओं से सर्वप्रथम यह ज्ञात किया गया कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के बाद भी क्या महिलाएं अपनी कमाई हुई आय को अपनी इच्छानुसार खर्च कर सकती हैं। इस संबंध में उनके विचार सारणी संख्या १ में प्रदर्शित हैं।

सारिणी संख्या-१

अपनी कमाई सम्पत्ति को खर्च करने में स्वतंत्रता

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१९	४७.५
नही	२१	५२.५
कुल योग	४०	१००

उपर्युक्त आँकड़ो से प्रदर्शित होता है कि ५२.५ प्रतिशत महिलाएँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के पश्चात भी अपनी इच्छा से खर्च करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, जबकि ४७.५ प्रतिशत महिलाओं ने इस स्वतंत्रता में अपनी सहमति व्यक्त की है।

सारिणी संख्या-२

परिवार में महिलाओं के निर्णय को मान्यता

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१२	३०
नही	१७	४२.५
कह नही सकते	११	२७.५
कुल योग	४०	१००

सारिणी संख्या-२ के विवेचन से स्पष्ट होता है कि ३० प्रतिशत महिलाओं के निर्णयों को परिवार में मान्यता मिलती है, जबकि ४२.५ प्रतिशत महिलाओं को यह मान्यता नही मिलती है और २७.५ प्रतिशत महिलाएँ कुछ भी कहने के पक्ष में नही दिखीं।

सारिणी संख्या-३

समाज में महिलाओं को पुरूषों के समान दर्जा

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
पूर्णरूप से	११	२७.५
आंशिक रूप से	१९	४७.५
बिल्कुल संतुष्ट नही	१०	२५
कुल योग	४०	१००

पूर्णरूप से समाज में पुरूषों के समान दर्जा २७.५ प्रतिशत महिलाओं को प्राप्त है। ४७.५ प्रतिशत महिलाओं को आंशिक रूप से दर्जा प्राप्त है। जबकि २५ प्रतिशत महिलाएँ इस तथ्य से बिल्कुल संतुष्ट नही हैं।

सारिणी संख्या-४

अधिकारों के विषय में जागरूकता

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१२	३०
नही	१८	७०
कुल योग	४०	१००

सारिणी संख्या-४ के विवेचन से स्पष्ट होता है कि ३० प्रतिशत महिलाओं को अपने अधिकारों के विषय में ज्ञान है। ७० प्रतिशत महिलाएँ ऐसी हैं जिन्हे अधिकारों के विषय में कोई ज्ञान नही है। प्रतिभा चतुर्वेदी ने अपने अध्ययन के आधार पर कहा है कि ग्रामीण समुदाय और निम्न वर्ग की महिलाओं का विकास तब तक नहीं होगा जब तक के अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं होंगी। अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता को आवश्यक बताते हुए जकिया रफत भी लिखती हैं अधिकतर महिलाओं को यह पता ही नही है कि उन्हें संविधान व विधि से विशेष अधिकार भी प्राप्त हैं। पहले महिलाओं को अपने

अधिकारों के प्रति जागरूक करना होगा ताकि वे मजबूत बनें और अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ सकें।[२]

सारिणी संख्या-५

महिलाओं की शैक्षिक स्थिति

शिक्षा	आवृत्ति	प्रतिशत
०-८	८	२०
६-१२	१६	४०
स्नातक	११	२७.५
स्नातकोत्तर	५	१२.५
कुल योग	४०	१००

उपर्युक्त सारिणी के विवेचन से स्पष्ट होता है कि ३० प्रतिशत महिलाएँ आँठवी कक्षा तक शिक्षित हैं। कक्षा ६-१२ तक ४० प्रतिशत महिलाएँ शिक्षित हैं। २७.५ प्रतिशत महिलाएँ स्नातक तक पढ़ी लिखी हैं। १२.५ प्रतिशत महिलाएँ स्नातकोत्तर की पढ़ाई कर चुकी हैं।

सारिणी संख्या-६

मोबाइल का प्रयोग करने वाली महिलाएँ

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	२६	७२.५
नही	११	२७.५
कुल योग	४०	१००

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि ७२.५ प्रतिशत महिलाएँ मोबाइल का प्रयोग करती हैं, उनके पास मोबाईल फोन है जबकि २७.५ प्रतिशत महिलाएँ मोबाईल का प्रयोग नही करती हैं।

निष्कर्ष :- उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर स्पष्ट है कि आत्मनिर्भर होने के पश्चात भी महिलाएँ अपनी इच्छा से खर्च नही कर सकतीं, ५२.५ प्रतिशत महिलाएँ यही मानती हैं। ३० प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि उन्हे परिवार में निर्णय लेने की मान्यता है २७.५ प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि उन्हे समाज में पुरूषों के समान दर्जा प्राप्त है। अपने मौलिक अधिकारों के विषय में ७० प्रतिशत महिलाओं को कोई जानकारी नही है। ७२.५ प्रतिशत महिलाएँ मोबाईल फोन का प्रयोग करती हैं। अधिकाँश महिलाएँ शिक्षित हैं जो महिलाएँ शिक्षित नही है उसका कारण गरीबी एवं अन्य कारण रहे हैं। प्रस्तुत अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि ग्रामीण समुदाय में महिलाओं की सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति में कुछ अन्तर तो आया है। वर्तमान समय में ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति मध्यकाल की प्रस्थिति से अच्छी है, किन्तु जितनी सुदृढ़ प्रस्थिति होनी चाहिए वर्तमान समय में उतनी नही है। वर्तमान समय में महिलाओं को संविधान द्वारा अनेक अधिकार दिये गये हैं, किन्तु अशिक्षा और अज्ञानता के कारण वह उनका लाभ नही उठा पा रही है, जिस कारण उनकी स्थिति आज भी कमजोर है।

सुझाव : छत्तरपुर गाँव की महिलाओं को सामाजिक आर्थिक स्थिति के सर्वेक्षण के दौरान जो समस्याएँ हमें ज्ञात हुई उनके निवारण के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं जिससे उनका जीवन समाज की मुख्यधारा के साथ सुखमय बन सके।

१. सर्वपथम महिलाओं को साक्षर बनाने के लिए उनको अभिप्रेरित करने की आवश्यकता है। यदि उन्हें शिक्षित करेंगें तो निश्चित ही वे जागरूक बनेंगी।
२. उन्हें सरकारी एवं गैर सरकारी योजनाओं के बारे में बताया जाय जिससे वे अधिक लाभान्वित होंगी।
३. लिंग विभेद दूर करने के लिए प्रयास करना चाहिए। इसके लिए विशेष महिला शिक्षा केन्द्र संचालित करने चाहियें।
४. महिलाओं को अंधविश्वास के दुष्परिणामों से अवगत कराना चाहिये।
५. महिलाओं के अच्छे निर्णयों को मान्यता देनी चाहिए। इसके लिए उन्हें प्रोत्सहित भी करना चाहिये।

सन्दर्भ

१. चतुर्वेदी प्रतिभा, 'समाज में स्त्रियों की स्थिति और महिला सशक्तीकरण के प्रभाव', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १४ अंक२, जुलाई-दिसम्बर २०१२, पृ. ६४

२. रफत जकिया, 'भारतीय परिप्रेक्ष्य में महिला मानवाधिकारः दशा और दिशा', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १४ अंक२, जुलाई-दिसम्बर २०१२, पृ. ३०

Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

भारतीय समाज में स्त्री : चिंतन का प्रश्न

❑ **कु० ममता सेमवाल**

भारतीय-परिवेश में स्त्री-तस्वीर विरोधाभाष युक्त है, सैद्धान्तिक तौर पर वह 'देवी' कही जाती है, किन्तु व्यावहारिक जगत् में वही स्त्री 'दासी' का रोल निभा रही है। आखिर यह कैसी देवी है ? जिसे कोख से चिता तक अपने प्राण पर भी अधिकार नहीं ''जहाँ सत्य अहिंसा और धर्म का पग-पग पर है डेरा, वह भारत देश है मेरा'' जैसे निश्छल भावगीत तब फीके पड़ जाते हैं जब करोड़ों निर्दोष सतियों की चीख का स्मरण होता है, कुछ सुधी-सुधारकों के प्रयत्नों से इस घृणित प्रथा से निजात अवश्य मिली है किन्तु आधुनिक बौद्धिक मानव ने स्त्री हिंसा के नये तरीके ढूँढ निकाले हैं जो स्त्री को विविध रूपों में कलंकित कर रहे हैं। प्रस्तुत आलेख भारतीय समाज में स्त्री की इसी विरोधाभाषी स्थिति को उजागर करने का एक प्रयास रहा है।

भारतीय-परिवेश में स्त्री-तस्वीर विरोधाभाष युक्त है, सैद्धान्तिक तौर पर वह 'देवी' कही जाती है, किन्तु व्यावहारिक जगत् में वही स्त्री 'दासी' का रोल निभा रही है। आखिर यह कैसी देवी है ? जिसे कोख से चिता तक अपने प्राण पर भी अधिकार नहीं ''जहाँ सत्य अहिंसा और धर्म का पग-पग पर है डेरा, वह भारत देश है मेरा'' जैसे निश्छल भावगीत तब फीके पड़ जाते हैं जब करोड़ों निर्दोष सतियों की चीख का स्मरण होता है, कुछ सुधी-सुधारकों के प्रयत्नों से इस घृणित प्रथा से निजात अवश्य मिली है किन्तु आधुनिक बौद्धिक मानव ने स्त्री हिंसा के नये तरीके ढूँढ निकाले हैं, वह अवाक् कन्याऐं पुत्रैषणा की आड़ में आये दिन कोख में ही कुचली जा रही हैं। क्षोभ का विषय है कि ऐसे अनैतिक और हिंसक लोग समाज में पूरी सफेदी के साथ फिरते हैं, उन्हें दंड का लेशमात्र भी भय नहीं है। प्रत्येक स्त्री को बालपन से दी जाने वाली खास तरह की 'तालीम' यानि कि एक विशेष तरीके से उठना, बैठना, हँसना, बोलना, खानपान, पहनावा इत्यादि का समाजनिर्मित निर्धारण ही संभवतः स्त्री-अपकर्ष का प्रमुख कारण है। वस्तुतः हमारा दकियानूसी सामाजिक पक्ष उसे 'देवी' और 'दासी' से इतर मनुष्य मानने को तैयार ही नहीं है। प्रतिष्ठित लेखिका प्रभा खेतान स्त्री के दोयम दर्जे के स्वरूप का खंडन करते हुए कहती हैं ''संस्कृति से ऊपर है मनुष्यता जो स्त्री को अब तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। यदि होती तो दुनिया में इतना आतंक नहीं फैलता। स्त्री तो मनुष्य बनने की प्रक्रिया में है, उस ओर अग्रसर है। प्रत्येक स्त्री की अपनी-अपनी क्षमता है सांस्कृतिक सामर्थ्य है।''[1]

भारतीय समाज पूर्वकाल से संयुक्तता का परिचय देता आया है, इन संयुक्त परिवारों में स्त्री सुरक्षित अवश्य थी, किन्तु उसकी अपनी कोई पहचान नहीं थी, वह बचपन से ही स्वयं को औरतों से घिरा पाती है, ये वे औरते हैं जिनमें से अधिकतर के पास कोई अधिकार या स्वतंत्र नजरिया नहीं होता। सुप्रसिद्ध लेखिका मृणाल पाण्डे इस सन्दर्भ में अपनी व्यथा प्रस्तुत करते हुए कहती हैं कि ''लड़कों के विपरीत वयःसंधि की बेला में हमें अपने आगे रखने को स्त्रियों में अपना कोई सकारात्मक मॉडल नहीं दिखाई देता, हाँ नकारात्मक कहिए तो ढेरों मिल जाएँगे। इसी के साथ यह अहसास भी निरंतर हमें होता रहता है, कि हमारे न चाहते हुऐ भी कई सामाजिक दबाब बड़े नामालूम ढंग से धकियाकर हमें अहर्निश चपटा, दब्बू, कातर और मौन बनाने में जुटे हुऐ हैं। हर कहीं उच्च्-शिक्षा की गंभीर दुनिया से हमें काटा जा रहा है (बहुत पढ़कर क्या करोगी ? रोटी ही तो बेलना है। दाल ही तो उबालना है ?वर ढूँढना कठिन होता है बहुत पक्की पोढ़ी के लिए)। होते-होते हममें से अधिकाँश लड़कियाँ समाज-स्वीकृत महिला बनने की प्रक्रिया में उलझे-उलझे पर जायज विचारों को भी सुलझाकर बिना खीझे, बिना शरमाए स्प्ष्ट् तर्कसंगत रूप से प्रस्तुत करने की क्षमता से हाथ धो बैठती हैं। फिर कहा जाता है ये कमअक्ल हैं।''[2] इसके विपरीत आज वही स्त्रियाँ विवाह के बाद जब धीरे-धीरे एकल-परिवारों में रह रही हैं, तो यहाँ स्वतंत्र अस्तित्व होते हुऐ भी असुरक्षा का खतरा उनके सिर पर मंडराता रहता है। बालपन से लायी दब्बू प्रवृत्ति पर पुरुष की दबंगई नामालूम कब टूट पड़े वह अहर्निश चिंतित रहती है। इसका ज्वलंत उदाहरण विगत कुछ वर्ष पूर्व एक सॉफ्टवियर इंजीनियर द्वारा अपनी पत्नी के अनेक टुकड़े कर डीपफ्रीजर में रखने की घटना है, यदि उस परिवार में कोई बुजुर्ग होता तो संभवतः ऐसी नृशंसता होने से बच जाती।

पुरुषतान्त्रिक समाज में परम्परा एवम् सौन्दर्य के नामपर

❑ शोध अध्येत्री, हिन्दी विभाग, हे०न०ब०ग० (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

विवाहित महिलाओं के लिए चूड़ी, बिन्दी, मंगलसूत्र, सिन्दूर, पायल जैसे बन्धन सूचक आभूषण तय किये गये हैं। इसके उलट पुरुष कुछ भी ऐसा धारण नहीं करता, जिससे विवाहित माने जायें। 'चूड़ी पहनकर बैठना' जैसी कहावतें स्त्री को महज अबला घोषित करने हेतु रची गयी हैं। पायल और घुंघुरू उसके सीमित दायरे के निर्धारक हैं और सिंदूर महज इसलिए सामाजिक महत्ता रखता है कि उसका पति जीवित है। पति की मृत्यु पर पत्नी को कुसूरवार ठहराया जाता है और उसका समग्र जीवन रंगहीन हो जाता है। इसका ज्वलंत उदाहरण विगत १५ अक्टूबर २०१३ को बंगाली विवाहित महिलाओं द्वारा 'सिंदूर खेला' उत्सव मनाया जाना है। खेद की बात है कि 'कड़वाचौथ' एवम् 'सिंदूर खेला' जैसे उत्सव को सर्वाधिक बढ़ावा सुशिक्षित-शहरीवर्ग द्वारा दिया जा रहा है। ऐसे त्यौहार विधवाओं का सामाजिक अपमान करते हैं। वरिष्ठ सहित्यकार तस्लीमा नसरीन ने इस परिप्रेक्ष्य में बेबाक टिप्पणी की है कि: ''औरत को तो यौन-वस्तु के रूप में व्यवहार किया जाता है। एक अधम प्राणी, बच्चा जनने की मशीन, आदमियों का गुलाम मानें या ना मानें पर 'सिंदूर खेला' जैसा पितृसत्तात्मक उत्सव; बजाय इसके कि उसका बहिष्कार किया जाए, पढ़े -लिखे शहरी समाज में काफी लोकप्रिय हो रहा है।"[३] इसी तर्ज पर मुस्लिम समाज चार कदम आगे है। वैश्विक धरातल पर जहां आधुनिक मानव मंगल की सैर करने को तैयार है। वहीं ये पर्दानशीं स्त्रियाँ अपने घर, आँगन, गली, मोहल्लों को भी ठीक से नहीं देख पा रही हैं। उनके झीने आवरण से उनकी छवि भी झीनी बनी हुई है।

भारतीय समाज में सामान्य स्त्रियों के लिए ससुराल एवम् मायके के अतिरिक्त एक तीसरा प्रमुख विचरण का स्थान है-धर्म का, मृणाल कहती हैं ''धर्म की टेढ़ी हुई पगडंडियाँ कई स्त्रियों को धार्मिक उन्माद के इसी मरूस्थल में भटका ले आती हैं। जहाँ हिस्टीरिया के गर्म थपेड़े और धारोधार आँसू बहाती ये स्त्रियाँ बाबाओं-गुरूओं भगवानों के चरणों में ढेर पड़ी दीखती हैं।"[४] वस्तुतः धर्म पैदा होता है डर से और हमारा समाज धर्म की सस्ती परिभाषा देकर महिलाओं को डराता है। सामान्यतः महिलाओं से ही धर्म की पुरोताई करायी जाती है। ये कैसा मेल है एक ओर 'नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग' की मानसिकता और दूसरी ओर उपवास लेती धार्मिक होती नारी।

वस्तुतः आज हाइटेक होती शिक्षा से नारी-अस्तित्व जाग उठा है, आज स्त्रियाँ परिवार की धुरी बनकर भी अपना दायित्व निर्वाह कर रही हैं, तो अपने सुख की खोज को नये दृष्टिकोण से देखती और परंपरागत अपराधबोधों से स्वयं को मुक्त भी करना चाह रही हैं। किन्तु जाने-अन्जाने घर-परिवार एवम् कार्य क्षेत्रों में उसके शोषण की दर निरन्तर बढ़ रही है। **राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो**[५] की हालिया रिपोर्ट के अनुसार वर्ष २००२ से २०१२ के बीच महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अपराधों में ६६ प्रतिशत की वृद्धि हुई जिनमें अधिकतर मामले ऐसे थे जिनमें पति अथवा निकट संबंधियों द्वारा क्रूरता दिखाई गई।

मामले अपराध	वर्ष २००२	वर्ष २०१२	वृद्धि प्रतिशत
महिलाओं के विरूद्ध कुल अपराध के मामले	१०६७८४	१८६०३३	६६.००
बलात्कार के मामले	१६३७३	२४६२३	५२.२०
अपहरण के मामले	१४५०६	३८२६२	१६३.८०
पति या निकट संबंधियों द्वारा किए गए अपराध	४६२३१	१०६५२७	

'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो' की हालिया रिपोर्ट के अनुसार : आय दिन रेप, बलात्कार, यौन-शोषण, दहेज-हत्या, भ्रूणहत्या के मामले में हमारा देश अन्य देशों की तुलना में चार कदम आगे है। एक अन्तराष्ट्रीय रिपोर्ट के अनुसार महिलाओं के लिए सबसे खतरनाक माने जाने वाले देशों की सूची में भारत चौथे नम्बर पर है। यही कारण है कि हमारे परिजन लड़कियों पर पाबन्दी लगाना शुरू करते हैं। गलती दूसरे वर्ग से होती है और नैतिकता का पाठ स्त्रियों को पढ़ाया जाता है। सामाजिक वरिष्ठ जनों द्वारा घृणित कार्य एवम् बेतुके बयान लज्जा का विषय हैं। १६ दिसंबर २०१२ को वसंत विहार गैंगरेप में बचाव पक्ष के वकील ए.पी. सिंह का यह विवादस्पद बयान कि ''बेटी अगर देर रात घर लौटी तो जिंदा जला दूंगा।"[६] इन्हीं नैतिक मूल्यों की मांग करता है। इस पर विडंबना यह है कि नैतिक जिम्मेदारियों की आस तो हमारा समाज स्त्रियों पर ही लगाये बैठा है किन्तु आजादी के ६६ वर्षों बाद भी स्त्री का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दायरा जहाँ का तहाँ पड़ा है। आज जब अचानक प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल या एस. बी. आई. की प्रथम महिला चेयरमेन अरुंधति राय जैसे नाम सुने जाते हैं तो आश्चर्य और प्रसन्नता होती है, आश्चर्य इसलिए कि क्या अब तक इन पदों का दावेदार मात्र पुरुष ही था ? और प्रसन्नता इसलिए कि इतने वर्षों बाद ही सही पर समाज में महिला जागरूकता की

अलख जग तो रही है।

अन्ततः यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है कि ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''[७] के देश में स्त्री चिन्तन का प्रश्न बनी हुई है, क्यों स्त्री सृष्टि सर्जक होकर भी वह अपनी इच्छानुसार सृष्टि पर कदम नहीं रख सकती, समाज के दोहरे मानदण्ड उसके पाँव की बेड़ियाँ बन गये। कन्याभ्रूण हत्या के मामले अन्य देशों के मुकाबले भारत में अधिक उजागर हो रहे हैं क्योंकि हमारे समाज में पुत्र द्वारा त्राण या अमरत्व की मिथ्या परिभाषा प्रचलित है। विकास के उच्चतम् पायदान पर पहुँचकर भी स्त्री सम्पूर्ण आजादी के लिए संघर्षरत है। आज स्त्री को मात्र अधिकार नहीं चाहिए बल्कि मुक्ति का वह गगन चाहिए जहाँ उसे खौफ न हो खुद लुट जाने का, इसके लिए उसे एक प्राणवत् इन्सान समझना आवश्यक है। आधुनिक स्त्री की वास्तविक तस्वीर राजस्थान के किसी लेखक (कलाकार) ने रेत पर इस तरह खींची -''में नारी हूँ, मां हूं, पत्नी हूं, सखी हूं। लेकिन आजादी के पंख फैलाने के लिए आज तक तरस रही हूं। आज भी मेरे पांव में बेड़ियां हैं। आंख में आंसू हैं। लाचार हूं। कभी कोई दरिंदा मेरी आबरू तार-तार करता है, तो कभी कोई तेजाब फेंक चेहरे के साथ सारे सपने जला डालता है। गैरों की बात क्या करूं मेरे तो अपने ही मेरे दुश्मन बन बैठे हैं। न जाने कितनी ही आंखों को खुलने से पहले कोख में ही बंद कर दिया जाता है। लड़ रही हूं खुद के अस्तित्व के लिए। मेरी आंखों में बस एक ही सपना है। पंख फैला उन्मुक्त गगन में ऊंची उड़ान भरूं। जहां मुझे खौफ न हो खुद के लुट जाने का। धुंधली सी आशा की किरण दिखती तो है, लेकिन. ....।''[८]

सन्दर्भ

१. खेतान प्रभा, 'उपनिवेश में स्त्री' (मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ), प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, २००३ पृ. १७

२. पाण्डे मृणाल, 'देवी' (समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की), प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९९, पृ.१५ (भूमिका से)

३. नसरीन तस्लीमा, 'तीन किस्से अंधी आस्था के' हंस, नवम्बर २०१३, पृ.८४

४. पाण्डे मृणाल, 'स्त्रीः देह की राजनीति से देश की राजनीति तक', तृतीय संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, २०११ पृ.१६-१७

५. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, साभार - अमर उजाला ३ अप्रैल २०१४, सम्पादकीय पृ. से.

६. अमर उजाला ,दिनांक-२५ अक्टूबर २०१३, पृ. ४३

७. मनुस्मृति - ३.५६

८. महाराणा सुबल, अमर उजाला, दिनांक - १५ अगस्त २०१३, संस्करण-देश-विदेश पृ. २२

Regd. No. UPHIN/1999/955 ISSN 0974-0074

भारत के ग्रामीण विकास में मनरेगा का योगदान एवं चुनौतियाँ

❑ विक्रम सिंह

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) भारत सरकार का एक प्रमुख बेरोजगारी–उन्मूलन अधिनियम है, जो सीधे–सीधे गरीबों की जिंदगी से जुड़ा है और स्थायी विकास को प्रोत्साहन देता है। विश्व में भारत प्रथम देश है जिसने ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार सुनिश्चित करके गरीबी दूर करने के लिए राष्ट्रीय रोजगार गारंटी बिल पारित कर रोजगार को कानूनी अधिकार की मान्यता दी है। ६ दिसम्बर २००५ को इसे अधिसूचित किया गया, २ फरवरी, २००६ को प्रथम चरण में इसका शुभारंभ २०० जिलों में किया गया तथा १ अप्रैल २००८ को संपूर्ण देश में लागू किया गया। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत भारत के ग्रामीण विकास में मनरेगा के योगदान एवं क्रियान्वयन में आ रही चुनौतियों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

भारत में आर्थिक लोकतंत्र के आदर्श विकास प्रणाली की अवधारणा संविधान निर्माताओं की दूरदृष्टिता का प्रतिफल है, जिसका उल्लेख संविधान की प्रस्तावना एवं नीति निदेशक तत्वों में अनु० ३८, ३९ एवं ४३ के अन्तर्गत आर्थिक विकास के क्षेत्र में राज्य को लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय वाली सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सभी नागरिकों (पुरूषों और स्त्रियों) दोनों को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार है और दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन प्राप्त हो। इसी दृष्टि से २००५ में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी कूनन का निर्माण किया गया, जिसे २ फरवरी २००६ को आंध्रप्रदेश के अनन्तपुर जिले के बन्दलापल्ली नामक गाँव से किया गया था। प्रथम चरण में यह योजना २०० जिलों में उपलब्ध करायी गई जोकि प्रत्येक ग्रामीण वयस्क नागरिक को रोजगार प्राप्त करने का अधिकार एक कानून के रूप देती है, जिसके द्वारा संविधान में उल्लेखित उन आदर्शो को प्राप्त किया जा सके, जोकि आर्थिक एवं सामाजिक न्याय के दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

मनरेगा योजना का अर्थ : मनरेगा योजना के माध्यम से यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है कि "अगर ग्रामीण परिवार में कोई वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार है तो एक वित्त वर्ष की अवधि में उस परिवार को कम से कम १०० दिनों का गांरटीशुदा रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा। रोजगार के साथ ही इस कानून के माध्यम से ग्रामीण जनता उत्पादक संपदाओं का निर्माण करने, पर्यावरण की रक्षा करने, कृषि के क्षेत्र में सुधार करने, ग्रामीण औरतों के सशक्तिकरण, गांवों से शहरों की ओर होने वाले पलायन पर अंकुश लगाने, आर्थिक और सामाजिक समानता सुनिश्चित करने में सहायता मिलेगी।"[1] मनरेगा योजना ग्रामीण गरीबों के एक बहुत बड़े भाग के लिए आय के स्रोत बढ़ाने और परिसंपतियों के निर्माण हेतु लागू की गयी थी जो कि सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के दृष्टिकोण से जरूरी हैं।

मनरेगा योजना के मुख्य उद्देश्यः मनरेगा योजना का मुख्य उद्देश्य हर हाथ को काम और काम का पूरा दाम दो की अवधारणा पर आधारित है। इसलिए यह कानून लोगों को काम (रोजगार) के अपने संवैधानिक अधिकार के बुनियादी पहलूओं के बारे में सरकार से दावे करने के योग्य बनाता है। मनरेगा का मुख्य लक्ष्य देश में ग्रामीण समाज के वंचित लोगों तक आर्थिक संसाधनों का विक्रेन्द्रीकरण करके उन्हें अपने गाँव में विकास एवं रोजगार के हिसाब से परस्पर जनसहभागिता के माध्यम से योजनाएं चयनित करने एवं क्रियान्वयन करने का पूर्ण संवैधानिक अधिकार दिया गया है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में दशकों से उपेक्षित समाज के लोगों में, जो कि गरीबी में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उनके जीवन स्तर को उठाना और उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता, जनसहभागिता, एवं नेतृत्व आदि क्षेत्रों में सशक्तिकरण प्रदान करना है, जिससे ग्रामीण भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपने "संवैधानिक अधिकार के बुनियादी पहलुओं के बारे में सरकार से दावा करने के योग्य बन सके है ऐसा हो इसके लिए जरूरी है कि अधिनियम उनके लिए जरूरी एवं प्रभावी अधिकार दे। इसका लक्ष्य वंचित को शक्ति देना तथा संबद्व अधिकारियों द्वारा कर्त्तव्य पालन में किसी भी प्रकार की लापरवाही के विरूद्व व्यापक उपाय करना है।"[2] संक्षेप में मनरेगा योजना (कानून) के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:–

१. मनरेगा योजना का सबसे प्रमुख उद्देश्य यह है कि संविधान की प्रस्तवाना एवं नीति निदेशकों तत्वों में उल्लेखित सामाजिक एवं आर्थिक न्याय को प्राप्त कर समानता के सिद्वान्त को प्राप्त किया जा सके।

❑ शोध अध्येता, राजनीति विज्ञान विभाग, हे०न०ब०ग० विश्विविद्यालय श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

२. ग्रामीण परिवारों को गरीबी तथा भूख से बचाने में मदद प्रदान करना, ताकि प्रत्येक ग्रामीण का जीवन स्तर सुधर सके और अधिकांश परिवारों को गरीबी रेखा से उपर उठाया जा सके।
३. यह योजना दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिकार को साकार करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इस कानून के माध्यम से ग्रामीण इलाकों में आर्थिक और समाजिक बुनियादी ढाँचा विकसित किया जाएगा, जिससे लोगों को रोजगार के नियमित अवसर प्राप्त हो सके।
४. योजना का मुख्य उद्देश्य गाँवों से शहरों की ओर रोजगार की तलाश में हो रहे श्रमिकों के पलायन में कमी लाना।[३]
५. यह गांरटी सार्वजनिक कार्य के लिये सामाजिक और मानवीय श्रम से सबंधित होगी।
६. ग्राम पंचातयों का सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सुदृढीकरण करना।[४]

मनरेगा योजना का महत्त्व : मनरेगा योजना के निर्णाण से जुड़े हुए कई तथ्य ऐसे हैं, जिनके आधार पर इसे जनता का कानून कहा जा सकता है। सबसे पहला तथ्य तो यही है कि इस अधिनियम की रूपरेखा को तैयार करते समय तमाम मुदों पर बहुत सारे जन संगठनों के साथ परामर्श की एक लंबी प्रक्रिया चलाई गई। दूसरा तथ्य यह कानून ग्राम पंचातयों के माध्यम से क्रियान्वयन किया जाएगा। जैसे सामाजिक आडिट सहभागी नियोजन और अन्य माध्यमों से आम लोगों की भी रोजगार गांरटी योजनाओं के क्रियान्वयन में सक्रिय भूमिका अदा करने का मौका देता है। यदि मनरेगा कानून की तुलना देश के अन्दर बने आज तक के रोजगार से जुड़े अन्य कानून जैसे संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, राष्ट्रीय समविकास योजना, नेशनल फूड फार वर्क, आदि से किया जाय तो मनरेगा कानून सचमुच ही जनता द्वारा जनता के लिए जनता का क़ूनन है, क्योंकि ग्राम सभाओं की अन्य कानूनों में इस तरह की भूमिका देखने का नहीं मिलेगी जो कि मनरेगा में दिखती है।

यह कानून केन्द्र और राज्यों की हिस्सेदारी के आधार पर एक केंद्रीय प्रयोजित योजना के रूप में लागू किया जाता है।[५] अधिनियम के प्रावधानो ंके अनुसार केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों एवं स्थानीय समुदायों (जिला, ब्लॉक, गाँव) आदि सभी में योजनाओं के प्रबंध एवं क्रियान्वयन में परस्पर सहभागिता, और सार्वजनिक उत्तरदायित्व होता है।[६] मनरेगा योजना के क्रियान्वयन एवं प्रबंध में सबसे निचले स्तर पर गाँवों की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। इस योजना के अंतर्गत किए जाने वाले कार्यो को करने, उन पर निगरानी और नजर रखने तथा क्रियान्वन करने तथा सामाजिक ऑडिट संचालित करने का अधिकार ग्राम सभा को दिया गया है।[७] रोजगार के लिए आवेदक को १५ दिनों के अन्तर्गत रोजगार पाने का अधिकार है। यदि व्यक्ति को १५ दिनों के अंतर्गत रोजगार नहीं मिलता है तो वह व्यक्ति बेरोजगारी भत्ता पाने का अधिकारी होगा[८] कार्य करने पर पुरूष एवं महिलाओं की मजदूरी में कोई अन्तर नहीं होता और उन्हें समान मजदूरी दी जाती है, जोकि संविधान में उल्लेखित समता के सिद्वांत पर आधारित है और इसमें महिला एवं पुरूष श्रमिकों के विकास का समान अवसर दिया गया है। मजदूरी का भुगतान सात दिनों के अंतर्गत किया जाएगा। यदि इसमें देरी होती है तो उसे मजदूरी भुगतान के अधिनियम के अंतर्गत क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार दिया गया है। अधिनियम के अंतर्गत रोजगार पाने के इच्छुक व्यक्तियों को ग्राम पंचायतों में पंजीकरण करना होगा। पंजीकृत व्यक्ति को ग्राम पंचायत एक जाब कार्ड देगी जिस पर श्रमिक का फोटो होगा। राज्य सरकार द्वारा बनाए गयें नियमों के अंतर्गत कार्डधारियों को रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा।[९]

७३ वें संविधान संशोधन के पश्चात भले ही ग्राम पंचायतों को सवैधानिक दर्जा दिया गया हो। लेकिन सामाजिक एवं आर्थिक रूप से ग्राम पंचायतें सशक्त नहीं थीं। मनरेगा कानून बनने के बाद केन्द्र सरकार से राज्य सरकारों को और राज्य सरकारों से ग्राम पंचायतों को सीधा वित्तीय हस्तांरण हो रहा है, जिससे ग्राम पंचायतें अपनी आवश्यकता के अनुसार योजनाओं का चयन एवं परिवारों का पंजीकरण करने, रोजगार कार्ड जारी करने, रोजगार आवंटित करने, कम से कम ५० प्रतिशत कार्यो को अपने स्तर से क्रियान्वन कर उस पर नजर रखने का दायित्व ग्राम पंचायतों को सौंपा गया, जिससे ग्राम पंचायतें अपने स्तर पर नीति बनाने निर्णय लेने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

मनरेगा योजना के तहत रोजगार पाने वालों में एक बड़ा हिस्सा महिलाओं का है। क्योंकि इस सुनिश्चित रोजगार से उन्हें आर्थिक आजादी प्राप्त हो रही है, जोकि महिला सशक्तिकरण का एक प्रमुख स्रोत है। इस योजना से ४५.९६ प्रतिशत ग्रामीण महिलाओं को रोजगार मिलता है।[११] मनरेगा अधिनियम बन जाने के बाद ग्राम पंचायतों में विकास कार्यो के चयन, क्रियान्वयन एवं प्रबंधन में ग्रामीण लोगों की जनसहभागिता बढ़ी है और साथ ही गांवों में परिसंपतियां खड़ी करने का एक अवसर मिला है। इसमें विशेष रूप से पर्यावरण रक्षा के क्षेत्र में वाटर भोडविकास, भूमि का उर्वर बनाने, भू-क्षरण रोकने, तालाबों के जीणोद्वार, तथा संबद्वगतिविधियों जैसे श्रमान्मुखी कार्य करने की बडी संभावना

आदि कार्य किए है।[12]

मनरेगा के क्रियान्वन में चुनौतियां : मनरेगा योजना के क्रियान्वयन एवं योगदान से जुड़े हुए पिछले अनुभव के आधार पर प्रतीत होता है कि इस अधिनियम के सामने कई व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक कठिनाईयां आ रही हैं, जिसके कारण यह अधिनियम अपने प्रावधानों के अनुसार अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पा रहा है। इससे भ्रष्टाचारियों एवं बिचौलियों की एक बहुत बड़ी फौज तैयार हुई है। मनरेगा अधिनियम के क्रियान्वयन में निम्नलिखित चुनौतियां हैंः-

१ मनरेगा योजना के द्वारा होने वाले विकास कार्यो में सबसे बड़ी चुनौती पारदर्शिता एवं उतरदायित्व की है। क्योंकि इस कानून के क्रियान्वयन होने के बाद भ्रष्टाचार के एक के बाद एक नये रिकार्ड बन रहे हैं और आज भी स्थिति यह है कि कोई भी जनप्रतिनिधि, अधिकारी एवं कर्मचारी इस योजना के प्रति अपना कोई उत्तरदायित्व नहीं समझ रहा है, जिससे मनरेगा योजना का भविष्य अधर में है।

२ मनरेगा अधिनियम में पारदर्शिता और उतरदायित्व के प्रति निष्ठा का भाव शुरू से अंत तक दिखता है। क्योंकि इस प्रतिबद्वता से सूचना का अधिकार को बल मिलने की उम्मीद थी, जिसमें सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा ४ का पालन करते हुए मनरेगा से संबंधित सूचनाएं स्वघोषणा का प्रावधान किया गया है। लेकिन यह सब कुछ अधिनियम ही बन कर रह गया है। इसे व्यावहारिकता में सक्रियता के साथ पालन नहीं किया जा रहा है।

३ आज मनरेगा योजना के सामने प्रबंधन की सबसे बड़ी चुनौती है। क्योंकि ग्रामीण स्तर पर मनरेगा अकुशल लोगों के हाथों में संचालित हो रही है। योजना का छह प्रतिशत राशि की व्यवस्था प्रशासनिक खर्चों के लिए है पर राज्य सरकारें इसके लिए अलग से कर्मचारी की व्यवस्था नहीं कर पा रही हैं। इस कारण योजना के क्रियान्वयन में कठिनाइयां आ रही है।[13]

४ मनरेगा योजना के प्रति सजग जागरूकता भी एक बड़ी चुनौती है। इस कानून के बारे में ग्रामीण लोगों की जागरूकता का तो क्या आकलन किया जाय जब हमारे "सांसद एवं विधायक भी इसके बारे में पूरी जानकरी नहीं रखते हैं जबकि वे जिला स्तरीय निगरानी समिति के मुखिया होते हैं।"[14] इसलिए इस योजना का वास्तविक लाभ आज भी गाँवों में उन लोगों को नहीं मिल पा रहा है, जिन्हें की मिलना चाहिए था।

५ मनरेगा अधिनियम की धारा १५ के तहत जिला अधिकारी की यह जिम्मेदारी बनती है कि वह सोशल ऑडिट कराए और वेबसाइट पर सूचना दे कि किन -किन लोगों को जॉब कार्ड दिए गए हैं और उन्हें कितना भुगतान हुआ है। लेकिन इसके बावजूद भी आंकडो एवं रिकार्ड के रख-रखाव, मास्टर रोल एवं हाजिरी रजिस्टर में भारी अनियमितता पायी जाती है।[15]

६ मनरेगा के बाद गांवों के नेतृत्व में परिवर्तन आने से लोग अब कई गुटों में विभक्त हो गये हैं और ग्राम प्रधान एवं क्षेत्र पंचायत सदस्य के चुनाव में असमाजिक तत्वों को आश्रय मिल रहा है।

७ मनरेगा के अंतर्गत रोजगार पाने के लिए परिवार को मुख्य माना गया है जबकि परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को इसके दायरे में लाए जाने की जरूरत है।

८ ग्रामीण समाज की संरचना पर मनरेगा का सीधा प्रभाव पड़ा है, क्योंकि यह योजना पश्चिमी सामाजिक मान्यताओं पर आधारित है। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक महत्वपूर्ण इकाई होता है, जिसके अधिकारों की रक्षा करना और उसके लिए योजना बनाना सरकार का दायित्व है। यदि भारत के ग्रामीण समाज को देखा जाए तो वह ठीक इसके विपरीत है। जहां आज भी मदद खरीदी नहीं जाती है। आज भारत के ग्रामीण समाजों में भी यही स्थिति है। अब भी लोग मिलकर काम निकाल लेते है और समूह उनके लिए व्यक्ति से महत्वपूर्ण होता हैं। गरीबी की आजीविका में उसके आपसी रिश्तों का भी योगदान होता है। मनरेगा योजना ने इन रिश्तों को नजरअंदाज किया है। आज गाँवों में स्थिति यह हो गयी है कि वह अकेला आदमी काम के लिए अर्जी देगा, लंबा इंतजार करेगा, काम मिला तो करेगा, नहीं मिला तो चुप बैठेगा, मजदूरी मिली तो ठीक, नहीं मिली या कम मिली, तो चुप्पी बनाए रखेगा। कोई एनजीओ आए ता इनके लिए लड़े। इस कानून ने पहले मजदूर के रिश्ते छोडने को मजबूर किया और फिर उसे सरकारी कर्मचारियों और सत्ताधारियों के सामने असाहय खड़ा किया और वर्षो से देश के ग्रामीण समाज में सामूहिक कार्य एवं श्रम दान करके गाँव को सशक्त करने की जो जनसहभागिता थी वे सामूहिक रिश्ते मनरेगा कानून बन जाने के बाद धीरे-धीरे समाप्त हो रहे हैं क्योंकि बाजार ने आदमी को अकेला बनाया और उनसे कही अधिक मनरेगा ने अकेला किया।[16]

निष्कर्ष : ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक नियोजन एवं विकास की जो

पहल सरकार द्वारा इस योजना के माध्यम से की जाने की कोशिश की गयी। वह कुछ अपवादों को छोड़कर उस हद तक सफल नहीं हो सका, जिन उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को लेकर मनरेगा को बनाया गया था। इसके लिए जरूरी है कि सरकार कुछ ठोस व आधारभूत कदम उठाए ताकि गरीबों से किया गया वादा पूरा किया जा सके। मनरेगा में तमाम गड़बड़ियों एवं भ्रष्टाचार को दूर करने की जिम्मेदारी ग्रामीण विकास मंत्रालय एवं प्रत्येक राज्य सरकारों की पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। ग्राम पंचायतों को पूर्ण कार्यपरक अधिकार मिलें, स्वायत शासन की तरह कार्य संभालने का, जैसा संविधान मे ंपरिकल्पित है, जिससे मनरेगा योजना अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सके।

लेकिन सच्चाई इस तथ्य में है कि यदि मानव संसाधन का सही उपयोग राज्य एवं देश के विकास में लाना है तो इसके लिए मनरेगा कानून जैसी आर्थिक योजना पर्याप्त नहीं है इसके लिए सार्वजनिक वितरण एवं सेवाओं में बढ़ोत्तरी लाना होगा। मनरेगा अधिनियम के प्रावधानों के प्रति प्रत्येक स्तर पर उतरदायित्व एवं जवाबदेही की जरूरत है। ग्राम सभाओं की योजनाओं के क्रियान्वयन में पूर्ण सहभागिता ली जाए। ग्राम सभाओं को एक ऐसे मंच के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिएं, जहां योजना के बारे में सूचना का आदान-प्रदान किया जा सके। एक आदर्श या नमूना नागरिक चार्टर विकसित किए जाने की जरूरत है, जिससे इस अधिनियम के अंतर्गत आने वाली सभी पंचायतों तथा अफसरों के दायित्वों से जुड़े सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाए। इस अधिनियम के क्रियान्वयन से संबंधित विभिन्न चरणों का उल्लेख किया जाना चाहिए और उन अधिकारियों एवं कर्मचारियों की कार्य करने के प्रति जवाबदेही तय होनी चाहिए। चौकसी एवं निगरानी समितियां ग्राम पंचायतों के अन्दर भी होनी चाहिए, जो मनरेगा के अन्तर्गत होने वाले कार्यो की गुणवता को परख कर सके। देश के विभिन्न राज्यों के सुदूरवती ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा कानून का क्रियान्वयन करने में कौन-कौन सी व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक समस्याएं आ रही हैं, जिसके कारण यह कानून अपने उदेश्य के अनुसार कार्य नहीं कर पा रहा है आदि तथ्यों को रेखांकित कर उसका ग्रामीण विकास मंत्रालय एवं राज्य सरकारों द्वारा समाधान किया जाना चाहिए। मनरेगा के माध्यम से गाँवों में आ रही धनराशि से कौन से विकास माडल अपनाया जा रहा है। इन सब तथ्यों की समीक्षा एवं अध्ययन किए जाने की जरूरत है तभी मनरेगा योजना गरीबों का मसीहा बन पाएगा।

संदर्भ

१ राष्ट्रीय रोजगार गांरटी अधिनियम २००५, ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, वर्ष २००६, पृ० १

२ ज्यां द्रेज, 'वायदों का सच', योजना, नई दिल्ली, अप्रैल २००५,पृ० ६

३ कामेश्वर पंडित एवं अखिलेश कुमार पंडित, 'रोजगार गांरटी कानून, ग्रामीण नियोजन की ओर एक महत्वपूर्ण कदम', कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, मई २००५,पृ० २०

४ रामकृष्ण जायसवाल एवं कुमुद रंजत, 'मनेरगा कार्यक्रमः उपलब्धियाँ, समस्याएँ एवं समाधान (फैजाबाद जनपद के संदर्भ में)' शर्मा, सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, अमरोहा उत्तरप्रदेश, २०१३, पृ० २१२

५ राष्ट्रीय रोजगार गांरटी अधिनियम २००५ पूर्वोक्त, पृ० १

६ वही, पृ० ३

७ वही, पृ० ४

८ जी० एल० पुणताम्बेकर, डी० के० नेमा, 'ग्रामीण गरीबो को रोजगार की गांरटी', कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, मई २००५,पृ० २२

९ वही, पृ० २३

१० www.nrega.nic.in

११ वही, वेबसाइट

१२ वही, वेबसाइट

१३ रविशंकर, 'मनरेगा में पारदर्शिता का पुराना सवाल', सहारा, देहरादून, २५ सितम्बर २०१०, पृ० ८

१४ वही, पृ० ८

१५ वही, पृ० ८

१६ प्रदीप भार्गव, 'ग्राम समाज के खिलाफ मनरेगा', अमर अजाला, देहरादून, ३० अप्रैल २०१३

Regd. No. UPHIN/1999/955 **ISSN 0974-0074**

भूमण्डलीकरण और हिन्दी

❑ बिजेन्द्र विश्वकर्मा

शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् दुनिया भर में अनेक ऐसे परिवर्तन हुए जिसमें प्रत्येक देश की नीतियाँ प्रभावित हुईं। इन परिवर्तनों में सबसे महत्वपूर्ण थे आर्थिक नीतियों में विश्वव्यापी बदलाव जिनसे हमारे भारत समेत अनेक देशों की परम्परागत राजनीतिक-सामाजिक नीतियों की दिशा और दशा ही बदल गई। उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण ने वैश्विक स्तर पर क्रांतिकारी परिवर्तन लाए, इन परिवर्तनों के प्रभाव ना केवल देशों की विदेश नीति, राजनीति और आर्थिक नीतियों पर दिखे वरन् उनके सामाजिक क्षेत्र भी दूर नही रहे। विश्व व्यापार संगठन के निर्देशों के आगे देशों की सीमाएँ छोटी पड़ने लगीं और अधिक से अधिक सुधार और खुलेपन की नीति अपनानी पड़ी। ऐसी वैश्विक विवशता और अनिवार्यता के साथ बने रहने के लिए भारत ने भी भूमण्डलीकरण और उदारीकरण की नीति अपनाई। देश को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक बड़े बाजार के रूप में प्रक्षेपत किया गया और सरकार ने अपने इस बड़े बाजार को भुनाने के लिए विदेशी कम्पनियों को आमंत्रित किया। इन सब परिवर्तनों ने देश की भाषा हिन्दी को भी पर्याप्त प्रभावित किया। हिन्दी जो पहले से ही राष्ट्रभाषा और राजभाषा होने के बावजूद भी अंग्रेजी के नीचे रही है। भूमण्डलीकरण की इस चकाचौंध में यह और भी असुरक्षित हो गई है। भूमण्डलीकरण में बड़े उत्पादक देशों को भारत एक बड़ा सा बाजार दिखता है, जहाँ आगे बढ़ता हुआ मध्यम वर्ग है।

भारतीय अर्थव्यवस्था क्रय शक्ति क्षमता के दृष्टिकोण से विश्व में दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और विश्वभर में सर्वाधिक युवा जनसंख्या भारत में ही है। ऐसे युवाओं की बड़ी जनसंख्या जो अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं और वैश्विक अवसरों को भुनाने के लिए तत्पर हैं। इस बड़े बाजार में हिन्दी को भी अपनी नई भूमिकाएँ और सीमाएँ तय करनी पड़ रही हैं; परन्तु यह भी पर्याप्त चर्चा का विषय हो सकता है कि भूमण्डलीकरण ने क्या हिन्दी का बुरा किया या फिर नये बदलाओं और नई भूमिका में अपने नये रूप में हिन्दी में जीवंतता आई है। प्रस्तुत आलेख के अंगर्तत भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में हिन्दी की स्थिति, आवश्यकता एवं भविष्य का विश्लेषण किया गया है।

भारतीय अर्थव्यवस्था क्रय शक्ति क्षमता के दृष्टिकोण से विश्व में दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और विश्वभर में सर्वाधिक युवा जनसंख्या भारत में ही है। ऐसे युवाओं की बड़ी जनसंख्या जो अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं और वैश्विक अवसरों को भुनाने के लिए तत्पर हैं। इस बड़े बाजार में हिन्दी को भी अपनी नई भूमिकाएँ और सीमाएँ तय करनी पड़ रही हैं; परन्तु यह भी पर्याप्त चर्चा का विषय हो सकता है कि भूमण्डलीकरण ने क्या हिन्दी का बुरा किया या फिर नये बदलाओं और नई भूमिका में अपने नये रूप में हिन्दी में जीवंतता आई है।

अगर भूमंडलीकरण के साथ-साथ सामने आए विभिन्न रोजगार के अवसरों की ओर देखा जाए तो भारत के लिए आई०टी०, बी०पी०ओ० कॉल सेंटरों की भरमार, ई० बिजनेस और उच्च तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर विदेशों में रोजगार के अवसर पहले से ही बड़ी संख्या में रोजगार को पर्याप्त आकर्षित कर रहे हैं। इन सब अवसरों को प्राप्त करने के लिए माध्यम के रूप में सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी को उपयुक्त माना जाता है। ऐसे में अभिभावकों में बच्चों को आरंभ से ही अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा दिलाने की होड़ लगी रहती है। छोटे-छोटे गाँवों में भी आजकल बड़ी संख्या में अमेरिकन अंग्रेजी सिखाने वाले संस्थान खुल गए हैं। कॉल सेन्टरों में रोजगार पानेवाले फास्ट-फूड संस्कृति वाले युवा हिन्दी के नाम पर सरेआम नाक-भौंह सिकोड़ते हैं और अभिभावक अपने बच्चे को हिन्दी माध्यम के माहौल से दूर रखकर सुखद अनुभव करते हैं। बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा जैसे अत्यन्त पिछड़े और पारम्परिक राज्यों के निजी विद्यालयों में भी हिन्दी में बात करते पकड़े गए बच्चों को प्रताड़ित करने की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं।

अबतक सामान्यतः सरकारी विद्यालयों में पाँचवीं कक्षा से अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी और उसके बाद भी कम से कम हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था, परन्तु बदलते हुए समय के साथ छात्रों की अभिरुचि हिन्दी में घटती गई और भविष्य व कैरियर को लेकर छात्र और अभिभावक हिन्दी की व्यर्थता और भूमंडलीकरण के युग में सफलता की वैतरणी पार करनेवाली गाय - अंग्रेजी के महत्व को अधिक समझते गए। भूमण्डलीकरण के साथ आए स्वर्णिम

❑ यू.जी.सी. नेट, रांची (झारखण्ड)

अवसर और इसके लिए अंग्रेजी की अनिवार्यता को देश के नीति नियंता भी समझ चुके हैं। देश की शैक्षणिक व्यवस्था की नीतियाँ, दिशा और दशा तय करने वाले महत्वपूर्ण संस्थान राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी) की नई शैक्षिक योजना के अनुसार अब देश भर में तीसरी कक्षा से ही अनिवार्य रूप से अंग्रेजी की शिक्षा दी जाएगी। झारखण्ड सरकार ने तो पहली कक्षा से ही अंग्रेजी की पढ़ाई को अनिवार्य कर दिया है। अबतक देशी भाषा में ही पर्याप्त प्रशासनिक और वाणिज्यिक कौशल प्रदर्शन कर रहे राज्य गुजरात की सरकार ने भी आर्थिक खुलेपन और वैश्विक अवसर अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिए अपने यहाँ पहली कक्षा से ही अंग्रेजी को अनिवार्य कर दिया। अब देश की सरकार जागरूक हो चुकी है और उन्हें भी हिन्दी की व्यर्थता और अंग्रेजी की समयानुकूलता का भान हो चुका है। सरकार भूमंडलीकरण की विवशता में हिन्दी की कीमत पर अंग्रेजी के विकास के लिए पूरी तरह तैयार है। हिन्दी को यद्यपि राष्ट्रभाषा और राजभाषा संविधान ने घोषित किया है फिर भी उसे सही अर्थो में फारसी अथवा अंग्रेजी की तरह हिन्दी राजभाषा होकर भी राजभाषा नहीं है।

शैक्षणिक माध्यम के संदर्भ में भारत की एक और महत्वपूर्ण विशेषता रही है कि भारत एक ऐसा देश है, जहाँ अपनी भाषा में तकनीकी साहित्य और शिक्षा के विकास पर कम ध्यान नहीं दिया गया, अंग्रेजी तकनीकी विषयों के छात्रों के लिए एकमात्र विकल्प के रूप में बची रही। उदारीकरण और सुधारों के वर्तमान युग में तो किसी भी तरह की शिक्षा के लिए हिन्दी और तमाम अन्य देशी भाषाएँ नाकारा साबित हो चुकी हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की चकाचौंध में हिन्दी माध्यम के छात्र अपने ही देश में पिछड़ी जातियों की तरह शोषित और अछूत हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि भूमंडलीकरण की इस दौड़ में हिन्दी खतरे में है। हमें यह समझना होगा कि वास्तविक खतरा कहाँ से है, भूमंडलीकरण की वैश्विक अनिवार्यता से या फिर हमारी अपनी मानसिकता और नीतियों से।

हिन्दी की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है कि उसने अपना विकास स्वयं अपने बलबूते पर तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप ढलकर किया है। विभिन्न जनभाषाओं के संगम से विकसित हुई की पैठ देश के बड़े भाग में है। आज भारत के अधिकांश भाग में हिन्दी को समझा और बोला जाता है। हिन्दी की जीवंतता का राज उसकी व्यापकता में है। भूमंडलीकरण के युग में भी हिन्दी की जीवंतता का राज उसकी व्यापकता में है। भूमंडलीकरण के युग में भी हिन्दी की अनिवार्यता और आवश्यकता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा महसूस की जा रही है। उत्पादों को बाजार से बड़ी संख्या में उपभोक्ताओं के हाथों तक पहुँचाने के लिए हिन्दी की नई भूमिकाएँ तय की गई हैं। विशुद्ध बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ विदेशी उत्पादों के ठेठ देशी हिन्दी में विज्ञापन उनके प्रसार और सफलता के पीछे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अंग्रेजी जो आज भी अभिजात्यों की भाषा है, सामान्य भारतीय तो देशी भाषा में ही सोचता है, समझता है और बोलता है। सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी की भूमिका भूमंडलीकरण के युग में और भी सशक्त हो गई है।

भारतीय हिन्दी सिनेमा वर्तमान विश्व के अनेक देशों में लोकप्रिय है और भारतीय टी०वी० धारावाहिकों ने विदेशों में भी हिन्दी के प्रसार और समझ में पर्याप्त योगदान दिया है। एक समय था जब विदेशों में भारत के सम्बन्ध में अध्ययन सिर्फ विद्वान भारतवंशी लोग ही किया करते थे, परन्तु आज भारत के बारे में अधिक जानने की अभिरुचि अधिकांश देशों के सामान्य लोगों में बढ़ रही है। लोग भारत की सभ्यता, संस्कृति, समाज में बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था और भारत की भाषा के सम्बन्ध में जिज्ञासु हैं। यह खुशी की बात है कि वर्तमान समय में भारत के बाहर विश्व के सौ से भी अधिक विदेशी विश्वविद्यालयों में हिन्दी की विधिवत् शिक्षा दी जाती है। भारत के बाहर हिन्दी जाननेवाले अब केवल उन्हीं देशों में नहीं हैं, जहाँ बड़ी संख्या में प्रवासी भारतीय हैं जैसे मॉसीशस, फिजी, गुयाना आदि, बल्कि हिन्दी अब वैश्वीकरण के साथ-साथ विश्वभर में विस्तृत हो रही है। अनेक विदेशी विद्वान अपने देशों में हिन्दी के प्रसार में लगे हुए हैं। जर्मनी के डॉ० लोठार लुत्से और नीदरलैंड के थियो डेमिस्टी के नाम इस क्षेत्र में अग्रणीय हैं। विदेशी सरकार भी भारत में अपनी स्वीकार्यता बढ़ाने और जनसंवाद स्थापित करने के दृष्टिकोण से आजकल काफी कुछ कर रही है, विभिन्न विदेशी संचार माध्यम विशुद्ध हिन्दी में प्रसारण करते हैं, रेडियो-तेहरान, रेडियो चाईना, रेडियो जापान आदि। अनेक विदेशी चैनल भी हिन्दी में आज अपनी सेवा दे रहे हैं। इस सब की सामान्य विशेषता यह है कि उसी देश के प्रस्तोता हिन्दी में कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं, उन देशों की भाषाओं का प्रभाव उनकी हिन्दी पर स्पष्ट सुना जा सकता है।

विश्व भर में आयोजित होनेवाले विश्व हिन्दी सम्मेलनों के द्वारा बदलते हुए युग में हिन्दी के विस्तार और विश्वव्यापी प्रगति के लिए अनेक उपाय सुझाए गए हैं। आज जब सशक्त

होता भारत संयुक्त राष्ट्रसंघ के सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता के लिए मजबूत दावे कर रहा है, विश्व हिन्दी सम्मेलन की एक प्रमुख माँग है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषाओं में हिन्दी में शामिल किया जाये जो आज विश्वव्यापी है और इसके बोलने वालों की संख्या अंग्रेजी बोलने वालों से भी अधिक है। बदलते वैश्विक परिवेश में आज भारत के बाहर तो निश्चित रूप से हिन्दी का प्रसार पहले से अधिक हुआ ही है, देश के भीतर भी उसकी नई भूमिका तय हुई है। विदेशी कम्पनियों के लिए विज्ञापन एजेंसियों, सर्वेक्षण कम्पनियों, किसानों और ग्रामीणों की सहायता के लिए हिन्दी में कॉल सेंटरों की स्थापना हिन्दी के लिए आनेवाले समय में उपलब्ध होने वाले अनेक नये अवसरों के कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

भूमंडलीकरण, निजीकरण और आर्थिक सुधारों के विभिन्न चरण ऐसी प्रकियाएँ हैं जिनसे पीछे लौटना अब किसी प्रकार से संभव नहीं है। अनेक परिप्रेक्ष्यों में सभी विकासशील और परम्परागत सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था वाले देश और समाज खुलेपनवाली उस विश्वव्यवस्था में असहज महसूस कर रहे हैं। हिन्दी के संदर्भ में भी इस असहजता को स्पष्ट रूप में अनुभव किया जा सकता है। एक तरफ हिन्दी की आवश्यकता नये वैश्विक बाजारवाद को भारत के संदर्भ में महसूस हो रही है, वहीं दूसरी तरफ हिन्दी के दमन और पतन की कहानी आम हो गई है। ऐसी स्थिति में हमारे समाज और हमारी सरकार को भी उचित कदम उठाने होंगे। भूमंडलीकरण की इस दौड़ में भी हिन्दी की प्रासंगिकता को बनाए रखने के लिए हमें अपनी मानसिकता में सुधार करने की आवश्यकता है। यह समझना आवश्यक है कि देश में सर्वाधिक बोली और समझी जानेवाली यह भाषा कोई पिछड़ी हुई भाषा नहीं है। यह एक समृद्ध भाषा है। तकनीकी शिक्षा में हिन्दी में अधिकाधिक साहित्य उपलब्ध कराने की जिम्मेवारी सरकार की है। छोटी कक्षाओं से ही विज्ञान विषयों में भी हिन्दी की प्रमाणिक और रोचक पुस्तकें प्रकाशित करवाना सरकारी एजेंसियों का दायित्व है। अंग्रेजी विद्यालयों और सरकारी विद्यालयों के रूप में जो दोहरी शिक्षा पद्धति देश में व्याप्त है उसमें सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निजी विद्यालयों में भी हिन्दी पर पर्याप्त ध्यान दिया जाए, परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि केवल सरकारी हस्तक्षेप से ही अंग्रेजी की जगह हिन्दी की शुरुआत करना तो लक्षणों का इलाज करने जैसा है। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रवाद और भूमण्डलीकरण के इस युग में हिन्दी में रूचि देश के लोगों में तभी जग सकेगी जब इस भाषा को रोजगारपरक बनाया जा सकेगा। वस्तुतः हिन्दी की अंग्रेजी से प्रतिस्पर्धा भी नहीं है। हमें जापान और जर्मनी से सीख लेकर तकनीकी शिक्षा को हिन्दी में उपलब्ध कराने होंगे। इन देशों की सफलता की कहानी सभी कोई जानते हैं। रोजगारोन्मुख होने पर कोई कारण नहीं कि हिन्दी पढ़नेवालों की संख्या में वृद्धि न हो, हिन्दी को सरल और लचीला बनाने की भी आवश्यकता है जिससे इसकी क्लिष्टता और संस्कृतोन्मुखता में कभी आ सकें।

हम हिन्दी की प्रासंगिकता के बारे अपनी मानसिकता में परिवर्तन कर लें और सरकारी तंत्र भी हिन्दी की आनेवाली भूमिकाओं के लिए पूरी तैयारी और मनोयोग से कदम उठाए तो कोई कारण नहीं कि भूमण्डलीकरण के इस युग में हिन्दी की प्रासंगिकता समाप्त हो जाए। अगर हम स्वयं तैयार हों तो न केवल देश में आ रहे नये अवसरों को हिन्दी के साथ भुनाने में सक्षम होंगे, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को नई प्रतिष्ठा मिलेगी।

पुस्तक समीक्षा

प्रोफेसर ए.आर.एन. श्रीवास्तव एवं सुश्री मीताश्री श्रीवास्तव द्वारा लिखित पुस्तक जनजातीय विकास के साठ वर्ष का आद्योपान्त अध्ययन करने से विदित होता है कि लेखकद्वय ने जनजातीय-विशेष रूप से भारतीय जनजातीय समाज का मौलिक, सूक्ष्म व गहन अध्ययन तथा चिन्तन किया है। पुस्तक के प्रथम अध्याय में जनजाति की मानवशास्त्रीय अवधारणा; द्वितीय अध्याय में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाली विभिन्न जनजातियों का विवरण, जनजातीय बाहुल्य व कम जनसंख्या वाले क्षेत्र, प्रजातीय तत्व, भाषा, अर्थोपार्जन के साधन व धार्मिक विश्वास के आधार पर जनजातियों का वर्गीकरण; अध्याय तीन में ब्रिटिशकालीन भारत में जनजातियों की प्रस्थिति व उनसे संबंधित अधिनियमों यथा १८२७ का रेगुलेशन, भारत सरकार अधिनियम १८७०, अनुसूचित क्षेत्र अधिनियम १८७४ व भारत सरकार अधिनियम १९३५ व कैबिनेट मिशन १९४६ का उल्लेख, अध्याय चार में भारत में जनजातीय विकास से संबंधित संवैधानिक प्राविधानों, संवैधानिक गारंटियों, सामाजिक-राजनीतिक व आर्थिक तथा अनुसूचित क्षेत्र व जनजातीय क्षेत्र की अवधारणाओं व मापदण्डों के साथ-साथ स्वातन्त्रयोत्तर भारत में १९५० से १९८० तक की तथा वर्तमान स्थिति का स्पष्ट वर्णन; अध्याय पांच में जनजातियों की मूल समस्याओं-भूमि हस्तान्तरण, बाह्य शक्तियों द्वारा शोषण व विकास की मन्द गति; अध्याय छः में जनजातीय विकास हेतु समाजसेवी संस्थाओं, राजनीतिक व धार्मिक संगठनों व शासन-प्रशासन द्वारा कृत प्रयासों; अध्याय सात व आठ में पंचवर्षीय योजनाओं; अध्याय नौ में जनजातीय उपयोजना की १९७४ से २०१७ तक कृत या योजनाबद्ध भौतिक उपलब्धियों; अध्याय दस में कृषक जनजातियों में भूहस्तान्तरण और ऋणग्रस्तता के विभिन्न कारणों विशेष रूप से राज्य सरकारों की उदासीनता; अध्याय ग्यारह में वन के प्रति जनजातियों की धारणा, वन से जुड़ी समस्याओं व कल्याणकारी योजनाओं, विशेष रूप से ट्राइफेड की भूमिका; अध्याय बारह में आदिम समूह की अवधारणा, उनका वर्गीकरण, उनके विकास हेतु प्रस्तावित मानवशास्त्रीय कल्याणकारी योजनाओं व संगठित प्रयासों; अध्याय तेरह में स्थानान्तरित कृषि से जनजातियों के लगाव; अध्याय चौदह में उनके विस्थापन व पुनर्वास की प्रकृति; अध्याय पन्द्रह में उनके शैक्षिक पिछड़ेपन; अध्याय सोलह में स्वयंसेवी संस्थाओं के योगदान; अध्याय सत्रह में जनजातीय विकास में मानवशास्त्रियों की भूमिका तथा अध्याय अठ्ठारह में कल्याणकारी योजनाओं के प्रभाव पर विशद् रूप से प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक	: जनजातीय विकास के साठ वर्ष
लेखक	: प्रोफेसर ए.आर.एन. श्रीवास्तव पूर्व विभागाध्यक्ष मानवशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद एवं सुश्री मीताश्री श्रीवास्तव असिस्टेंट प्रोफेसर मानवशास्त्र विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रकाशक	: Hi Rel Info Genesis Centre, Tagore Town, Allahabad
प्रकाशन वर्ष	: २०१४
मूल्य	: १५०/-, २५०/-
पृ. सं.	: १८१

अन्त में परिशिष्टों के माध्यम से जनजातीय समाज के विभिन्न पक्षों से संबंधित आंकड़ें प्रस्तुत कर अध्ययन को रोचक बनाने का प्रयास किया गया है।

समीक्षक

डॉ. हरि प्रकाश श्रीवास्तव

असोशिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग

लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय

गोण्डा (उ.प्र.)

आजीवन सदस्यों की सूची

(गतांक से आगे)

५६१. डॉ. अमित कुमार, अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत (उत्तराखण्ड)

५६२. डॉ. प्रतिभा सिंह, अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़)

५६३. डॉ. रेखा बहुगुणा, असिस्टेन्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र, बाल गंगा महाविद्यालय, सेन्दुल केमर, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

५६४. श्री संतराम पाल, प्रवक्ता समाजशास्त्र, लोकमान्य तिलक इंटर कालेज, पचपेड़वा, सुल्तानपुर (उ.प्र.)

५६५. डॉ. गीता उपाध्याय, अस्थायी प्रवक्ता पर्यटन विभाग डॉ. भीमराव अम्बेडकर आगरा विश्वविद्यालय, आगरा (उ.प्र.)

५६६. श्रीमती नीना कुमारी, शोध अध्येत्री इतिहास विभाग, एम.डी. यूनिवर्सिटी, रोहतक (हरियाणा)

६६७. सुश्री मंजू बाला, असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास विभाग, जे.सी. महिला महाविद्यालय, असंघ, करनाल (हरियाणा)

५६८. डॉ. सोनू पुरी, प्रवक्ता समाजशास्त्र, राजकीय महिला महाविद्यालय, बांगर, कन्नौज (उ.प्र.)

५६६. सुश्री प्रियंका श्री, शोध अध्येत्री गृह विज्ञान विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

६००. श्रीमती रेखा, शोध अध्येत्री हिन्दी विभाग हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तराखण्ड)

६०१. कु. ममता सेमवाल, शोध अध्येत्री हिन्दी विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तराखण्ड)

६०२. डॉ. जी.एल. शर्मा, मुख्य संपादक, पैनासीआ इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल, जयपुर (राज.)

६०३. डॉ. रेखा रानी, प्रवक्ता राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा)

६०४. डॉ. नीतू सिंह तोमर, पीएच.डी., सी.एस.जे.एम. कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

६०५. डॉ. मथुरा राम उस्ताद, अध्यक्ष इतिहास विभाग, करमचन्द्र भगत महाविद्यालय, बेड़ो, रांची (झारखण्ड)

६०६. सुश्री सुप्रिया सोनाली, शोध अध्येत्री इतिहास विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

६०७. डॉ. सीमा श्रीवास्तव, असोशिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, शासकीय जे.एस.टी. (पी.जी.) कालेज, बालाघाट (म.प्र.)

६०८. डॉ. विमला सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यलाय, रामनगर, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

६०६. डॉ. रजनी दुबे, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, शासकीय कन्या स्वशासी स्नतकोत्तर महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

६१०. डॉ. रजनी गोसांई, असिस्टेंट प्रोफेसर मानव विज्ञान, राजकीय स्नतकोत्तर कालेज, नई टिहरी (उत्तराखण्ड)

६११. डॉ. आशा गोहे, असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास शासकीय जे.एस.टी. (पी.जी.) कालेज, बालाघाट (म.प्र.)

६१२. डॉ. वर्षा पटेल, अतिथि व्याख्याता, स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

६१३. डॉ. सारिका दीक्षित, अतिथि व्याख्याता, स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

६१४. डॉ. रितु सक्सेना, प्रवक्ता समाजशास्त्र, त्रिलोक चन्द्र डिग्री कालेज फतेहगंज पश्चिमी, बरेली (उ.प्र.)

६१५. डॉ. विजय कुमार श्रीवास्तव, प्रवक्ता मनोविज्ञान, त्रिलोक चन्द्र डिग्री कालेज, फतेहगंज पश्चिमी (उ.प्र.)

६१६. डॉ. तारा कुमारी, समाजशास्त्र विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

६१७. श्री विजेन्द्र विश्वकर्मा, शोध अध्येता हिन्दी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

६१८. डॉ. चन्द्रपाल तोमर, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फतेहाबाद, आगरा (उ.प्र.)

६१९. डॉ. देवाशीष गुप्ता,प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, श्री गांधी पी.जी. कालेज, सिधौली, सीतापुर (उ.प्र.)

६२०. श्रीमती कविता राठी, शोध अध्येत्री इतिहास विभाग, एम.डी. यूनीवर्सिटी, रोहतक (हरियाणा)

६२१. डॉ. मनोज कुमार मिश्र, रीडर समाजशास्त्र विभाग, गनपत सहाय पी.जी. कालेज, सुल्तानपुर (उ.प्र.)

६२२. कु. सुरेखा तिवारी, शोध अध्येत्री, प्रौढ़ सतत एवं प्रसार शिक्षा विभाग, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड वि.वि. बरेली (उ.प्र.)

६२३. सुश्री मीनाक्षी सिंह कुशवाहा, शोध अध्येत्री गृह विज्ञान विभाग, बी.एच.यू. वाराणसी (उ.प्र.)

६२४. श्री सनी कुमार सुमन, शोध अध्येता समाजशास्त्र तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

६२५. श्री सतीश कुमार सिंह, प्रवक्ता राणा प्रताप इंटर कालेज, रामपुर कलां, सारण (बिहार)

६२६. श्रीमती अर्निका दीक्षित, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र आर्य कन्या पी.जी. कालेज, शाहजहांपुर (उ.प्र.)

६२७. डॉ. कल्पना गुप्ता, गृह विज्ञान विभाग, महिला महाविद्यालय, बी.एच.यू. वाराणसी (उ.प्र.)

इस अंक में

१. समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में संरचनाकरण के सिद्धान्त की रूपरेखा एवं समीक्षा — १-१४
प्रोफेसर श्यामधर सिंह

२. हिन्दू विवाह पर आधुनिकीकरण का प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन — १५-२०
डॉ. ब्रजेश कुमार सिंह

३. वृद्धावस्था के विविध आयाम, समस्याएँ एवं चुनौतियाँ — २१-२३
डॉ. परेश द्विवेदी

४. १८५७ और पलामू के प्रमुख क्रांतिकारी योद्धा नीलाम्बर और पीताम्बर शाही — २४-२८
डॉ० मथुरा राम उस्ताद

५. समलैंगिकताः अपराध या मानवाधिकार- एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण — २९-३२
डॉ. जी. एल. शर्मा

६. प्राचीन भारतीय समाजार्थिक व्यवस्था में नगरों का महत्व — ३३-३५
शानुल इस्लाम मलिक
डॉ. राकेश कुमार

७. छात्र-छात्राओं की परिवर्ती मनोवृत्ति एवं जीवन-शैली : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन — ३६-४१
श्वेता श्रीवास्तव
डा० उदय भान सिंह

८. विकास योजनाओं का जनजातीय जीवन पर प्रभाव — ४२-४६
डॉ० कलावती कोरी

९. एण्टी मनी लाण्ड्रिंग एवं के.वाई.सी बैकिंग कार्य प्रणाली — ४७-५०
डॉ० ज्योति खरे

१०. गढ़वाल के लोकगीत -'एक सांस्कृतिक अध्ययन' — ५१-५४
डॉ० रजनी गुसांई

११. बलात्कार : एक सामाजिक विकृति-कारण एवं निवारण — ५५-५९
डा० रश्मि
डा० मीना शुक्ला

१२. भारतीय शासन व्यवस्था में सूचना-अधिकार की स्थिति एवं भावी अपेक्षायें — ६०-६२
डॉ० रेखा बहुगुणा

१३. मौलाना अबुल कलाम आजाद का पत्रकारिता में योगदान — ६३-६४
डॉ० तारा कुमारी

१४. मिलों के बंद होने का श्रमिकों के समाजार्थिक जीवन पर प्रभाव — ६५-६९
डॉ. वर्षा पटेल

१५. मलिन बस्ती में परिवार नियोजन का सामाजिक अध्ययन — ७०-७४
डॉ. सारिका दीक्षित

१६. बाल अपराधियों में दुश्चिंता तथा आक्रामकता का तुलनात्मक अध्ययन — ७५-७८
डा० विजय कुमार

१७. महिला उद्यमियों की पारिवारिक भूमिका एवं द्वन्द — ७९-८३
डा० ऋतु सक्सेना
डा० प्रभा शर्मा

१८. वृद्धाश्रम में निवास करने वाले वृद्धों का समाजशास्त्रीय अध्ययन — ८४-८६
ललन यादव

१९. महिलाओं के विरूद्ध हिंसा : एक अध्ययन — ८७-८९
प्रियंका श्री

२०.	**हरियाणा में राष्ट्रीय आंदोलन : सविनय अवज्ञा आंदोलन का क्षेत्रीय अध्ययन** नीलम रानी	६०-६५
२१.	**अर्थशास्त्र में वर्णित स्त्रियों के विविध कार्य : एक पूर्वावलोकन** नीना कुमारी	६६-१०१
२२.	**सामूहिक स्नानों से प्रभावित जल की गुणवत्ता - एक अध्ययन** डॉ.नीतू सिंह तोमर	१०२-१०६
२३.	**उदारीकरण के दौरान बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों से फैजाबाद जनपद में हुई प्रगति** कु. सुरेखा तिवारी	१०७-११०
२४.	**मनरेगा कार्यक्रम और जातीय पृष्ठभूमि : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** सनी कुमार सुमन	१११-११५
२५.	**''स्वर्ण एवं स्वर्णकार अतीत से वर्तमान तक''** डॉ० ज्योति रस्तोगी	११६-१२०
२६.	**भील जाति के लोकगीत - पश्चिम निमाड़ के संदर्भ** डॉ. श्रीमती गुलाब सोलंकी	१२१-१२३
२७.	**गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लाभान्वित परिवारों की समस्याएँ** अर्निका दीक्षित	१२४-१२७
२८.	**विक्रम-सम्वत् : एक अध्ययन** डॉ० पवन शेखर	१२८-१३०
२९.	**सामाजिक सेवाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन में जनप्रतिनिधियों की भागीदारी व जागरूकता का स्तर** प्रियंका सोनी	१३१-१३४
३०.	**भील जनजाति पर शिक्षा का प्रभाव** सोनिका बघेल	१३५-१३७
३१.	**औद्योगीकरण, वैश्वीकरण और विकास नीति के दौर में पलायन** सुप्रिया सोनाली	१३८-१४५
३२.	**रमा प्रसाद घिल्डियाल ''पहाड़ी'' जी के उपन्यासों में सामाजिक चेतना** श्रीमती रेखा	१४६-१४९
३३.	**दिल्ली में शहरीकरण के कारण पहचान खोते गाँव** डा. रेखा रानी	१५०-१५२
३४.	**अनुसूचित जाति की महिलाओं के उत्पीड़न के सामाजिक प्रभाव** डॉ० श्रृद्धा सुमन	१५३-१५६
३५.	**ग्रामीण महिलाओं का स्वास्थ्य - एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** श्रीमती किरन बाला	१५७-१६०
३६.	**ग्रामीण महिलाओं की समाजार्थिक प्रस्थिति** अनीता बिष्ट	१६१-१६३
३७.	**भारतीय समाज में स्त्री : चिंतन का प्रश्न** कु० ममता सेमवाल	१६४-१६६
३८.	**भारत के ग्रामीण विकास में मनरेगा का योगदान एवं चुनौतियाँ** विक्रम सिंह	१६७-१७०
३९.	**भूमण्डलीकरण और हिन्दी** बिजेन्द्र विश्वकर्मा	१७१-१७३
४०.	**पुस्तक समीक्षा** समीक्षक - डॉ. हरि प्रकाश श्रीवास्तव	१७४